महात्मा गांधी

पूर्णाहुति

द्वितीय खण्ड

प्यारेलाल

महात्मा गांधी : पूर्णाहुति
द्वितीय खण्ड

लेखक
प्यारेलाल

अनुवादक
रामनारायण चौधरी

पहला संस्करण, मई १९७१

ISBN 81-7229-304-6

मुद्रक और प्रकाशक
जितेन्द्र ठाकोरभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय
अहमदाबाद १४. .३८ -
फोन: +91-79-28540635 I 27542634
E-mail : jitnavjivan10@gmail.com I Website : www.navajivantrust.org

अर्पण

महादेव देसाईको

मूक दरिद्र-नारायणोंके अंतरमें बसनेवाले प्रभुके सिवा अन्य किसी ईश्वरको मैं नहीं पहचानता । . . . और मैं इस मूक जनताकी सेवाके द्वारा ही परमेश्वरको सत्यके रूपमें अथवा सत्यको परमेश्वरके रूपमें पूजता हूं।

महात्मा गांधी

प्रकाशकका निवेदन

'महात्मा गांधी – पूर्णाहुति' का प्रथम खण्ड १९६५ में प्रकाशित हुआ था। उसके छह वर्ष बाद यह द्वितीय खण्ड प्रकाशित हो रहा है। इन दो खण्डोंके बीच इतना लंबा समय निकल गया, इसके लिए हम पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं। ग्रन्थका तृतीय खण्ड प्रेसमें है । उसके प्रकाशित होनेके बाद चतुर्थ खण्ड भी जल्दी ही प्रकाशित करनेका हमारा प्रयत्न रहेगा।

ये ग्रन्थ गांधीजीके जीवनमें तथा हमारे राष्ट्रके इतिहासमें घटी हुई, दूरगामी प्रभाव डालनेवाली, महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर पूरा प्रकाश डालते हैं। आशा है कि ये ग्रन्थ इन ऐतिहासिक घटनाओंको समझनेमें सहायक सिद्ध होंगे।

इस खण्डमें आये अंग्रेजी काव्यांशोंका हिन्दी पद्यानुवाद डॉ. अम्बाशंकर नागरने किया है, जिसके लिए हम उनके हृदयसे आभारी हैं।

२६-४-१९७१

अनुक्रमणिका

प्रकाशकका निवेदन

पहला भाग

श्रद्धाकी कसौटी

१. प्रथम पाठ

२. श्रद्धाका साहस

३. 'एकला चलो रे'

४. सूक्ष्म परिवर्तन

५. 'करो या मरो' का प्रयोग

६. अंधकारके साथ संघर्ष

दूसरा भाग

भक्तराजकी यात्रा

७. नेंगे पैरोंवाला यात्री

८. कड़वे और मीठे अनुभव

९. स्वाधीनताकी चुनौती

१०. गहरी बनती तपस्या

११. ब्रह्मचर्य

तीसरा भाग

पश्चात्तापके लिए पुकार

१२. 'जितना बड़ा पापी उतना ही बड़ा सन्त'

१३. परदा उठा

१४. 'जिसे तोड़ा उसे फिर जोड़ो'

१५. कड़वी बातें

१६. 'अगर मैं मंत्री होता'

पहला भाग

श्रद्धाकी कसौटी

पहला अध्याय

प्रथम पाठ

१

जब गांधीजी नोआखालीके लिए दिल्लीसे चले, तब भी कलकते में दावानल जल रहा था। अगस्त १९४६ से यह दावानल पूरी तरह कभी बुझ ही नहीं पाया था। गांधीजी और उनके दलको यह चेतावनी भी मिलो थी कि कलकत्तेमें रेलसे उतरनेके बाद उनकी मोटरकी खिड़कियोंमें से तेजाबके गोले फेंके जा सकते हैं, जिसके लिए उन्हें तैयार रहना चाहिये। मित्रोंने गांधीजीसे यह तर्क करनेकी कोशिश की : क्या आपके लिए ऐसा खतरा उठाना ठीक है? और, नोआखालीमें आपकी निःशस्त्र उपस्थितिसे दंगेके शिकार बने हुए लोगोंकी क्या रक्षा हो सकती है?

"मैं नहीं जानता कि वहां मैं क्या कर सकूंगा," गांधीजीने अपने एक बहुत आदरणीय मित्रसे कहा, जिन्होंने ऐन समय पर इस खतरनाक दुस्साहसके लिए प्रस्थान करनेसे गांधीजीको रोकनेकी कोशिश की थी । "मैं इतना ही जानता हूं कि जब तक मैं वहां नहीं जाऊंगा तब तक मुझे आंतरिक शांति नहीं मिलेगी।" [हरिजन, १० नवम्बर १९४६, पु० ३९४] फिर वे विचारकी शक्ति पर भाषण करने लगे। विचार दो प्रकारके होते हैं—निष्क्रिय और सक्रिय। निष्क्रिय विचार हमारे मस्तिष्कमें असंख्य हो सकते हैं, जैसे सूर्यकी किरणमें असंख्य कण होते हैं। वे निर्जीव अंडोंकी तरह हैं। उनका कोई मूल्य नहीं होता। "परन्तु एक ही सक्रिय विचार हृदयको गहराईसे निकले, मूलतः शुद्ध हो और प्राणकी सम्पूर्ण शक्तिसे पूर्ण हो, तो वह गतिशील और सक्रिय बन कर इतिहासका निर्माण कर सकता है।" नोआखालीके लोगोंके पास जानेके लिए मेरे भीतर जो प्रेरणा स्वयं उत्पन्न हुई है; उसे मैं दबाना नहीं चाहता।

अपन प्रस्थानके एक दिन पहले शामकी प्रार्थना-सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने कहा कि मैं जिस यात्रा पर जा रहा हूं, वह लम्बी और कठिन यात्रा है और मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। परन्तु अपना मार्ग सरल बनानेके लिए मानवको ईश्वर पर विश्वास रखना होता है और अपने

कर्तव्यका पालन करना होता है। मेरा अनुरोध है कि लोग रास्तेमें स्टेशनों पर भीड़ न करें। भारतने मुझ पर अपना अपार प्रेम बरसाया है। अब अधिक प्रदशेनकी जरुरत नहीं है। मैं बंगालमें किसीका न्यायाधीश बनकर नहीं जा रहा हूं। मैं वहां ईश्वरका सेवक बन कर जा रहा हूं, और जो ईश्वरका सेवक है उसे ईश्वरकी सारी सृष्टिका सेवक बनना पड़ता है।

यात्रा वैसी ही थकानेवाली साबित हुई जैसी कि बहुतोंको आशंका थी। रास्तेके तमाम बड़े स्टेशनों पर विशाल मानव-समुदाय एकत्र हो जाता था। कई स्थानों पर जहां तक नजर जाती थी, मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते थे। भीड़ डिब्बोंकी छतों पर चढ़ जाती थी, खिड़कियोंकी हवा रोक देतो थी, कांच तोड़ देती थी, किवाड़ोंका नाश कर देती थी और इतना चीखती-चिल्लाती थी कि कान फट जाते थे। लोग दर्शनोंके लिए बार-बार जंजीर खींच लेते थे। इसलिए यह जरूरी हो गया कि डिब्बोंके ‘व्हेक्युम ब्रेक’ काट दिये जायं। स्टेशनके अधिकारी ऊपरसे पानीका नल लोगों पर खोल कर उन्हें हटानेकी कोशिश करते थे। लोगोंके लिए तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था; हां, डिब्बेमें पानो जरूर भर जाता था। बादमें शामको गांधीजी अपने कानोंमें उंगलियां डाल कर बैठ गये, ताकि असह्य शोरगुलसे उन्हें कष्ट न हो। परन्तु जब गांधीजीके सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि डिब्बेकी रोशनी बन्द कर दी जाय तो दर्शनार्थी हतोत्साह हो जायेंगे, तब उन्होंने यह कह कर इस सुझावको अस्वीकार कर दिया कि जनसाधारणकी सरल श्रद्धाका तकाजा है कि मैं अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे उनकी सेवा करूं और उनके प्रति अपना कर्तव्य पालन करते समय अपने अरामको कभी प्रथम स्थान न दूं।

गाड़ी कलकत्ते ५ घंटे देरसे पहुंची। स्टेशनसे गांधीजीको सीधे शहरसे १० मील दूर स्थित सतीशचन्द्र दासगुप्तके खादी-प्रतिष्ठान आश्रममें सोदपुर ले जाया गया। वहां सैकड़ों लोगोंकी श्रोता-मंडली लगभग दो घंटेसे शामकी प्रार्थनाके लिए गांधीजीकी प्रतीक्षा कर रही थी। गांधीजीने, विलम्बके लिए लोगोंसे क्षमा-याचना की और कहा, मैं किसी निश्चित योजनाके साथ कलकत्ता नहीं आया हूं। परन्तु ईश्वरकी इच्छा पूरी करनेके लिए कोरा दिमाग लेकर आया हूं। ईश्वर मुझे अपना अगला कदम बतायेगा।

दूसरे दिन उन्होंने प्रार्थनाके महत्त्वको अपने सायंकालके भाषणका विषय बनाया। जिस साहसपूर्ण कार्यके लिए वे प्रयाण कर रहे थे, उसमें प्रार्थना उनके कार्यका बड़ेसे बड़ा साधन बननेवाली थी। वे असंख्य पुरुषों और स्त्रियों के सामने भयकी रामबाण दवाके रूपमें, दुर्बलोंको बलवान बनानेवाले साधनके रूपमें प्रार्थनाकी भेंट धरनेवाले थे। यद्यपि गवर्नरसे मिलने जानेके कारण उन्हें देर हो गई थी, फिर भी जिस आदर्श धैर्यके साथ सभा उनकी प्रतीक्षा करती रही उससे उनमें आनन्द, श्रद्धा और जो भगीरथ कार्य उनके सामने था उसके बारेमें आत्म-विश्वास भर गया था। इसे उन्होंने एक शुभ शकुन समझा।

गांधीजीके दिल्लीसे रवाना होनेके पहले वाइसरॉयके प्राइवेट सेक्रेटरी उनके पास एक, वक्तव्यका मसौदा लाये, जिसमें "किसीके भी द्वारा हुई" हिंसाकी निंदा की गई थी, और साम्प्रदायिक शान्तिके लिए जनतासे अपील की गई थी। वाइसेरॉय चाहते थे कि वह वक्तव्य गांधीजी और जिन्ना दोनोंके सम्मिलित हस्ताक्षरोंसे निकाला जाय। गांधीजीकी अभिलाषा साम्प्रदायिक शान्तिके लिए किसीसे कम नहीं थी। परन्तु यह तो समानता स्थापित करनेकी हद हो गई ! इस अपीलका महत्त्व तभी होता जब वह उस पक्षकी ओरसे की जाती, जिसने पहले हिंसाका सक्रिय प्रचार किया था और हिंसाका ताण्डव खेले जानेके बाद उसे उचित बताया था। परन्तु यदि वाइसरॉय ऐसा न करा सकें तो गांधीजीका सुझाव था कि वाइसरॉय स्वयं सरकारके मुखियाकी हैसियतसे अपने ही नामसे शांतिकी अपील निकालें, क्योंकि कानून और व्यवस्थाकी रक्षाकी विशेष जिम्मेदारी उन्हीं पर थी। अन्तमें अपील वाइसरॉय और उनके मंत्रि-मंडलकी ओरसे निकाली गई, जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनोंके प्रतिनिधि थे। उस अपीलकी ओर लोगोंका ध्यान दिलाते हुए गांधीजीने ३० अक्तूबर, १९४६ को अपने प्रार्थना-प्रवचनमें कहा कि यदि हम हिंस्त्र पशुओंकी तरह आपसमें लड़ते रहे, तो हम दुनियामें भारतका नाम बदनाम कर देंगे।

*

बंगालके गवर्नर मि. बरोज़ने गांधीजीसे अपनी मुलाकातके समय पूछा, “आप मुझसे क्या कराना चाहते हैं?” जहां तक गांधीजीका संबंध था, वे गवर्नरसे मिलने शिष्टाचारके नाते ही गये थे। उन्होंने उत्तर दिया, “महोदय, कुछ नहीं ।” अंग्रेजोंकी भारतसे चले जानेकी घोषणाके बाद अन्तरिम कालमें गवर्नरकी स्थिति एक वैधानिक मुखियाकी थी। उसे अपने मंत्रियों की सलाहके अनुसार काम करना होता था। प्रशासन और शान्तिरक्षाका दायित्व मंत्रियों पर था। इसलिए गांधीजीने गवर्नरसे कहा, मेरा काम मुख्यमंत्रीसे है। इसी प्रकार उन्होंने पूर्वी कमांडके प्रधान सेनापति जनरल बुशेरसे कहा कि सेनाका काम मांगने पर मुल्की अधिकारियोंको मदद देना है और मुख्यमंत्री तथा उसके मंत्रि-मंडलकी आज्ञाका पालन करना है। कानून और व्यवस्थाकी जिम्मेदारी मुल्की सत्ताकी है, न कि सैनिक अधिकारियोंकी; और मुल्की सत्ताके प्रतिनिधि लोकप्रिय मंत्री हैं।

गांधीजीके उत्तर न तो गवर्नरको बहुत पसन्द आये और न सेनापतिको। शायद सरकारमें गांधीजीके जो कांग्रेसी साथी थे उनकी विचारधाराके भी ये उत्तर बहुत अनुकूल नहीं थे, क्योंकि ये साथी भी इसी सामान्य मांगको प्रतिध्वनित करते थे कि बंगालमें तुरन्त गवर्नरका शासन स्थापित कर दिया जाय और उपद्रव-ग्रस्त प्रदेशमें अधिक सैनिक सहायता भेजी जाय। ऐक प्रभावशाली अंग्रेजी दैनिकके संचालकसे, जो दिल्लीमें मिले, गांधीजीने कहा, “आज भले हो मेरी आवाज अरण्य-रोदन जैसी हो, परन्तु मैं मानता हूं कि जब तक ब्रिटिश सेना यहां है तब तक हिन्दू और मुसलमान दोनों सहायताके लिए उसकी ओर देखते रहेंगे और उपद्रव जारी रहेगा। स्वतंत्रताके खातिर संग्राम करनेवाली प्रजाके लिए इससे बुरा और क्या हो सकता है ?”

गांधीजीसे मिलने आये हुए मित्रको इससे आघात लगा। उन्होंने पूछा, “अंग्रेज तो चाहेंगे कि उनकी सेना भारतसे चली जाय। . . . तब रोकता कौन है ?”

गांधीजीने उत्तर दिया, “स्वयं अंग्रेजोंके सिवा और कौन रोकता है ?”

कुछ वाद-विवादके बाद उन मित्रने स्वीकार किया कि भारतमें ब्रिटिश व्यापारी, दूसरे स्थापित स्वार्थ और उनके पिट्ठू ब्रिटिश सेनाके भारतसे हटनेमें बाधक हैं। परन्तु ब्रिटिश सेनाके

उपयोगके बारेमें उन्होंने अपनी राय नहीं बदली। "आप कहते हैं कि जब तक ब्रिटिश सेना यहां है तब तक शान्ति नहीं हो सकती। फिर भी प्रतिदिन शान्तिरक्षाके लिए उसकी मांग देशमें बढ़ रही है। शिकायत तो यह है कि सेनाका पूरा उपयोग नहीं किया जाता।"

गांधीजीने उत्तर दिया, "इसी कारण उसे भारतसे हटा लेना चाहिये। . . . कानून और व्यवस्था बनाये रखनेके लिए उसका उपयोग उपद्रव हो जानेके बाद ही होता है। पूर्व बंगालमें भी व्यवस्था फिरसे स्थापित हो जायगी, परन्तु कितने बड़े हत्याकांडके बाद, कितने भयंकर कष्ट-सहनके बाद !"

अन्तमें गरांधीजीने कहा : "भारतमें ब्रिटिश सेनाएं भारतकी रक्षा करनेके लिए नहीं, परन्तु उन ब्रिटिश स्वार्थोकी रक्षाके लिए हैं, जो भारत पर जबरन् लादे गये थे; और अब उनकी जड़ें इतनी जम गई हैं कि ब्रिटिश सरकार भी उन्हें उखाड़ नहीं सकती। अंग्रेज यहां परोपकारी बनकर नहीं आये थे और न उनके यहां ठहरे रहने अथवा उनकी सेनाओंके यहां बने रहनेके पीछे भी कोई परोपकारकी भावना है, भले ही इसके विरुद्ध कुछ भी कहा जाय।" [वही, पृ० ३८९]

गवर्नरसे मिल कर लौटते हुए जब गांधीजीकी कार कलकत्तेके निर्जन रास्तोंसे होकर गुजरी, तो वहां कूड़े-करकट और मलबेके ढेर लगे हुए थे—जो कहीं कहीं तो फुटपाथसे दो दो फुट तक ऊंचे उठे हुए थे; और आगसे खंडहर बनी हुई दुकानें और जले हुए घरोंकी, रास्तों और गलियोंमें जहां तक नजर पहुंच सकती थी वहां तक, कतारें लगी हुई थीं। इस सामूहिक पागलपनको, जिसने इन्सानको हैवानसे भी बदतर बना दिया था, देखकर गांधीजीका दिल बैठा जा रहा था। सन्तोष इतना ही था कि ऐसी स्थिति सतत नहीं बनी रह सकती थी। मानव-स्वभाव उसे बरदाश्त ही नहीं कर सकता था। इसके प्रति घृणा पैदा होनेके लक्षण दिखाई देने लगे थे। दिनमें एक प्रमुख मुस्लिम लीगी गांधीजीसे मिले थे और उन्होंने कहा था, "हमें अपने लक्ष्य तक पहुंचना ही है; फिर वह कुछ भी हो—पाकिस्तान हो या अखंड भारत हो। उसके लिए खून-खच्चर या लड़ाई-झगड़ा नहीं होना चाहिये। मैं तो यहां तक कहता हूं कि खून-खच्चर और

आपसकी लड़ाईके बिना अगर पाकिस्तान नहीं मिल सकता हो, तो वह हासिल करने लायक नहीं है।" [वही, पृ० ३९६]

अपने सायंकालीन प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने पुरानी बातें याद करते हुए कहा कि कैसे युवावस्थासे ही आपसमें झगड़नेवाले पक्षोंमें मेलजोल कराना उनका एक धन्धा रहा है। उन्होंने कहा कि जब मैं वकालतका पेशा करता था तब भी अदालतसे बाहर दोनों पक्षोंको अपने झगड़े निबटा लेनेमें मदद दिया करता था। भारतमें दोनों कौमोंके बीच मेलजोल क्यों नहीं कराया जा सकता ? परन्तु दोनों कौमें एक जगह रहनेका निश्चय करें या अलग होनेका, ऐसा उन्हें सद्भाव और समझौतेकी भावनासे करना चाहिये।

एक मुसलमान मित्र आये और गांधीजीसे पूछने लगे, "आप नोआखाली क्यों जाना चाहते हैं? बंबई, अहमदाबाद या छपरा तो आप नहीं गये ?" नोआखाली आप क्या इसीलिए जाना चाहते हैं कि इन दूसरे स्थानों पर पीड़ित लोग मुसलमान हैं, जब कि नोआखालीमें वे हिन्दू हैं? क्या ऐसी हालतमें आपके नोआखाली जानेसे भारतके हिन्दू और मुसलमानोंका मौजूदा तनाव ज्यादा नहीं बढ़ेगा ? गांधीजीने उत्तर दिया, आपके बताये हुए किसी भी स्थान पर मैं अवश्य जाता, यदि नोआखाली जैसी भीषण घटनाएं वहां हुई होतीं और मुझे यह लगता कि घटना-स्थल पर उपस्थित हुए बिना मैं उन स्थानोंके लिए कुछ नहीं कर सकता। अत्याचार और बलात्कारकी शिकार बनी हुई नोआखालीकी नारियां मुझे तुरन्त बुला रही हैं। मैंने निश्चय कर लिया है कि जब तक उपद्रवकी अन्तिम आग बुझ न जायगी तब तक मैं बंगाल नहीं छोडूंगा । "मैं यहां पूरे वर्ष या इससे भी अधिक ठहर सकता हूं। आवश्यक हुआ तो मैं यहीं मरूंगा। परन्तु मैं हार नहीं मानूंगा । यदि मेरे सशरीर उपस्थित रहनेका एकमात्र परिणाम यह हो कि लोग ऐसी आशासे मेरी ओर देखें जिसे चरितार्थ करनेके लिए मैं कुछ नहीं कर सकता, तो अधिक अच्छा यह होगा कि मृत्यु मेरी आंखें बन्द कर दे । [वही]

यह पहला संकेत था जो गांधीजीने अपने मनमें आकार ले रहे "करो या मरो" के दृढ़ निश्चयके विषयमें जनताको दिया था । उनके दूसरे उद्गारसे यह प्रगट हो गया कि वे अपना अटल

निर्णय पहले ही कर चुके हैं। उन्होंने कहा; मैंने अपने आपको अगले कांग्रेस अधिवेशनमें अनुपस्थित रहनेके लिए तैयार कर लिया है। यह अधिवेशन नवम्बरके अन्तिम सप्ताहमें मेरठमें होनेवाला है। मैंने अपनेको सेवाग्राम आश्रम और अपनी नयी प्रिय वस्तु उरुलीकांचनके निसर्गोपचार-केन्द्र संबंधी तमाम जिम्मेदारियोंसे मानसिक रूपमें मुक्त कर लिया है।

२

फिर भी जल्दीसे जल्दी नोआखाली पहुंचनेकी अपनी सारी अधीरताके बावजूद ४ दिन बाद ही गांधीजी सचमुच कलकत्ता छोड़ सके। ये ४ दिन उनके मिशनमें सबसे अधिक फलदायक सिद्ध हुए ।

बकरीदका मुस्लिम त्योहार निकट आ रहा था। उस मौके पर साम्प्रदायिक संघर्षकी सम्भावना नकारी नहीं जा सकती थी। यह त्योहार इब्राहीमके बलिदानका स्मारक है और उस दिन मुसलमान गायकी कुरबानी करते हैं। बंगालके मुख्यमंत्रीने सुझाया कि कमसे कम बकरीदका त्योहार पूरा हो जाने तक शहरकी शान्तिको स्थिर करनेके लिए गांधीजी कलकत्तेमें और ठहर जायं। जब कलकत्ता कौमी आगमें जल रहा है तब नोआखाली जानेसे क्या लाभ? ऐसे लोग थे जो मुख्यमंत्रीकी नीयत पर अविश्वास करते थे। वे यह मानते थे कि यही एक आदमी कलकत्तेके भीषण हत्याकांडके लिए और दूसरे असंख्य दुष्कृत्योंके लिए जिम्मेदार रहा है। उन्होंने गांधीजीसे कहा कि आपका नोआखाली जाना पूरी तरह तो नहीं रोका जा सकता; परन्तु मुख्यमंत्रीके इस सुझावसे आपके वहां पहुंचनेमें देर अवश्य हो जायगी। उनके सुझावके पीछे यही चाल है। निवेदनमें यह भी कहा गया कि दंगोंके दिनोंमें जो लोग जबरदस्ती मुसलमान बना लिये गये हैं और अब वहां फंस गये हैं, उनसे बकरीदेके दिन गोहत्या कराई जायगी, उन्हें गोमांस खिलाया जायगा, आदि। परन्तु ये सब दलिलें गांधीजीको जंची नहीं। उन्हें इनमें भय और अविश्वासकी गंध आई। अहिंसा तो इन दोनोंको नहीं जानती । उन्होंने कहा, मैं मुख्यमंत्री पर विश्वास करना चाहता हूं और उनके प्रस्तावको उसी रूपमें ग्रहण करना चाहता हूं जिस रूपमें

वह रखा गया है । जिस व्यक्तिका मैं अपने प्रेमसे हृदय-परिवर्तन करना चाहता हूं, उसका अविश्वास करके मैं अपने प्रयत्नका आरंभ नहीं करना चाहता।

इस पागलपनमें भी एक कार्य-पद्धति थी। उन्होंने सोचा यदि कलकत्तेकी शान्तिको दृढ़ करनेके लिए शहीद सुहरावर्दीकी प्रार्थना पर मैं कलकत्तेमें अधिक ठहर गया, तो इसका यह अर्थ होगा कि उस अर्सेमें नोआखालीमें शान्तिरक्षा करनेका भार शहीद साहब पर रहेगा। शहीद साहबने मुझे इस सम्बन्धमें शपथपूर्वक विश्वास दिलाया है। इससे उनकी इज्जतकी बाजी लग जायगी। परन्तु मान लीजिये, शहीद साहबने अपने वचनका पालन नहीं किया। तो मैं यह खतरा उठा लूंगा। मेरे लिए यह एक श्रद्धाका विषय है कि यदि हम अपने विरोधी पर अविश्वासके लिए कारण होने पर भी आंखें खोल कर—न कि डरसे—विश्वास करें, तो विरोधी अन्तमें हमारे विश्वासका बदला अच्छा ही देगा, बशर्ते हम अन्त तक सदा ईमानदारीका व्यवहार करें। मैंने जीवन भर इस सिद्धान्तका अनुसरण किया है। दक्षिण अफ्रीकामें जनरल स्मट्सने शुरूमें ही मेरा अविश्वास किया। परन्तु बादमें उन्हें मालूम हो गया कि इसके बावजूद मैंने सदा उन पर भरोसा किया और अपने वचनका १०० प्रतिशत पालन किया। अन्तमें जनरल स्मट्स द्रवित हो गये और मेरे एक उत्तम मित्र बन गये।

गांधीजी ठेठ खिलाफतके दिनोंसे बंगालके मुख्यमंत्रीको जानते थे। उस समय शहीद अपने आपको गांधीजीका “बेटा” बतानेमें गौरव अनुभव करते थे। काश, उस भावनाको वे शहीद सुहरावर्दीमें पुन: जगा पाते ! और क्यों नहीं जगा सकते ? उनका मन बोला। इसलिए गांधीजीने परस्पर विरोधी लगनेवाले ढंगसे नोआखालीका मिशन नोआखाली न जाकर आरम्भ करनेका और जो व्यक्ति जन-साधारणकी कल्पनामें नोआखालीके उपद्रवोंका जन्मदाता माना जाता था उसके हाथमें पहुंचकर उसे जीतनेका निर्णय किया ! और यह कार्य उन्होंने ऐसे मनुष्यकी स्वाभाविकता और शालीनताके साथ किया, जिसने मानव-स्वभावको उसके हर पहलूमें देखा था, उनमें से हर व्यक्तिके साथ तादात्म्य सिद्ध किया था और फिर भी जो उन सबसे परे रहा था।

गांधीजीने अपने इस भावी सहयोगीके साथ अपनी पहली भेंट यह कह कर आरंभ की, "शहीद साहब, यह क्या बात है कि हर आदमी आपको गुंडोंका राजा कहता है? कोई भी आपके बारेमें अच्छी बात नहीं कहता !" उस समय शहीद सुहरावर्दी अपनी कोहनीके सहारे धृष्टतापूर्वक गांधीजीके सामने लम्बे लेटे हुए थे।

शहीदने उपेक्षाके भावसे उत्तर दिया, "महात्माजी, क्या आपकी पीठके पोछे आपके बारेमें भी लोग तरह तरहकी बातें नहीं करते?"

गांधीजीने हंसते हुए उत्तर दिया, "ऐसा हो सकता है। फिर भी कमसे कम कुछ आदमी तो ऐसे हैं, जो मुझे महात्मा कहते हैं। परन्तु मैंने एक भी व्यक्तिको शहीद सुहरावर्दीको महात्मा कहते नहीं सुना है !"

शहीद पर इसका जरा भी असर नहीं हुआ। उन्होंने उत्तर दिया: "महात्माजी, आपके सामने आपके बारेमें लोग जो कुछ कहते हैं, उस पर आप विश्वास न कीजिये !"

गांधीजीके विनोद भी कभी हेतुरहित नहीं होते थे। अरस्तुके प्राचीन ऋषिकी भांति गांधीजी भो मानते थे कि "विनोद ही गाम्भीर्यकी एकमात्र कसौटी है ।" और यह कि "जो विषय विनोदको बरदाश्त नहीं कर सकता वह संदिग्ध है; तथा जो विनोद गम्भीर परीक्षामें टिक नहीं सकता वह अवश्य ही झूठा विनोद है।" [एरिस्टोटल, टरिक '____', ३, १८] गांधीजी शहीदका हृदय-परिवर्तन करनेकी आशा नहीं रख सकते थे, यदि गांधीजी लोग उनके बारेमें क्या कह रहे हैं यह बात उनसे छिपाते। पारस्परिक विश्वासकी पहली शर्त नितान्त स्पष्टवादिता है। शहीदके साथ विनोदमें लड़ाई लड़ कर गांधीजीने सिद्ध कर दिया कि वे कोई असामाजिक महात्मा नहीं हैं, परन्तु एक ऐसे पुरुष हैं जो यदि दे सकता है तो ले भी सकता है। इससे दोनोंके बीचका संकोच बिलकुल टूट गया और वे एक-दूसरेको पूरी तरह समझ सके। इसके बाद शहीदने समझ लिया कि वे उस मानवसे प्रेम कर सकते हैं, जो उनके रोम-रोमको जानता है और जो कुछ वह जानता है उसे उनके मुंह पर बतानेकी हिम्मत रखता है और फिर भी जिसका स्नेह और प्रेम उनके लिए कम नहीं होता ।

बादके दिनोंमें उन्होंने बंगालमें साम्प्रदायिक मेलजोल स्थापित करनेके लिए एक योजना बनाई, जो आगे चलकर गांधीजीके नोआखाली शान्ति-मिशनका आधार बन गयी। उस योजना पर हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंने संपूर्ण बंगालके लिए अपनी एक शान्ति-समिति बना ली। उसमें हिन्दू और मुसलमान समान संख्यामें लिये गये और मुख्यमंत्री उसके सभापति बने। उसका उद्देश्य प्रान्तमें साम्प्रदायिक शान्ति पैदा करना था—"ऐसी शान्ति जो सेना और पुलिसकी मददसे बाहरसे थोपी हुई न हो, परन्तु स्वाभाविक हार्दिक प्रयत्नसे स्थापित की गई हो।" शान्ति-समितिके सदस्योंकी सम्मिलित घोषणामें दूरवर्ती महत्त्वकी बुनियादी बातें रखी गईं: "हमारा यह पक्का विश्वास है कि साम्प्रदायिक लड़ाई-झगड़ेसे न तो पाकिस्तान प्राप्त किया जा सकता है, न भारतको अखंड रखा जा सकता है। हमारा यह भी विश्वास है कि बलात् कोई धर्म-परिवर्तन या विवाह नहीं किया जा सकता। और न स्त्रियोंके अपहरणकी ऐसे समाजमें कोई गुंजाइश हो सकती है, जो शिष्ट या सभ्य कहलानेका थोड़ा भी दावा करता हो।" समितिके सभापतिके नाते मुख्यमंत्रीने यह वचन दिया कि बंगाल सरकार समितिके निर्णयों पर अमल करेगी।

कुछ लोगोंने इस दस्तावेजको इस बिना पर दोषपूर्ण बताया कि न तो उसमें हिन्दुओंको—जो पीड़ित पक्ष थे—और न कांग्रेसको ही समितिमें बहुमत दिया गया है। दूसरोंकी आपत्ति यह थी कि समितिके अध्यक्षके नाते शहीद साहबके हाथमें निर्णायक मत होनेसे वे निर्णयकी तराजू अपने हाथमें रख सकते हैं। परन्तु गांधीजीने यह कह कर इन सब आपत्तियोंका समाधान कर दिया कि समितिका उपयोग साम्प्रदायिक या राजनैतिक अखाड़ेके रूपमें करनेका इरादा नहीं है; परन्तु समिति एक ऐसा मंच प्रस्तुत करती है जहां समान उद्देश्यके लिए मिलजुल कर कार्य करनेवाले विभिन्न समूह एकत्र हो सकें—और वह समान उद्देश्य है हृदयकी एकता पर आधारित साम्प्रदायिक शांतिकी सिद्धि। गांधीजीकी दृष्टिमें इस योजनाका महत्त्व इस बातमें था कि दोनों पक्षोंने यह स्वीकार कर लिया था कि पाकिस्तान जैसे प्रश्नोंके निबटारेमें भी, जिन पर दोनोंमें बुनियादी मतभेद था, पशुबल और हिंसासे काम नहीं लिया जायगा। उसमें इस प्राणभूत सिद्धान्तका भी समावेश कर लिया गया था कि मूलभूत नैतिकताके किसी भो भंगको धर्म पवित्रता प्रदान नहीं कर सकता। २२ वर्ष पहले अली बन्धुओंका और गांधीजीका साथ विशेषतः इसी प्रश्न

पर छूटा था कि किसी अ-मुस्लिम विवाहिता स्त्रीके इस्लाम ग्रहण करते ही उसका विवाह रद्द हो जाता है। इस प्रकार इस योजनासे नोआखालीके लिए ही नहीं, परन्तु सारे भारतके लिए साम्प्रदायिक समस्याके हलकी कुंजी मिरू गई।

शहीद साहबसे जो बातें हुई थीं, उनका उल्लेख करते हुए गांधीजीने अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें कहा, मैं जानता हूं कि आप लोगोंको मुख्यमंत्रीके खिलाक बहुत शिकायतें हैं। परन्तु मैं उनके दिये हुए इस आश्वासन पर अविश्वास नहीं कर सकता कि वे शान्ति चाहते हैं। "स्वर्णमार्ग यह है कि सारे संसारके साथ मित्रता रखी जाय और सारे मानव-परिवारको एक समझा जाय। जो अपने धर्मके अनुयायियोंमें और दूसरे धर्मके अनुयायियोंमें भेद रखता है, वह अपने सहधर्मियोंको कुशिक्षा देता है और फूट तथा अधर्मका मार्ग खोल देता है।" [प्रार्थना-प्रवचन, ३ नवम्बर १९४६]

३

गांधीजी नोआखालीके लिए रवाना हो सके उससे पहले बिहारने उनकी कड़ी परीक्षा ली। कलकत्ता और नोआखालीकी घटनाओंके समाचार अन्य बडे समाचारोंकी तरह तेजीसे फैले और बिहारके पड़ोसी प्रान्तमें उन्होंने एक व्यापक उत्तेजना पैदा कर दी, जिससे वह एक विशाल बारूदखाना बन गया। प्रतिशोधका नारा बुलन्द हो चुका था। गांधीजीको यह सुनकर आघात पहुंचा कि बिहारसे डर कर भागनेवाले कुछ मुसलमानों पर आक्रमण करके बिहारी हिन्दुओंने उन्हें मार डाला।

३ नवम्बरको कलकत्तेके एक मुस्लिम लीगी अखबार 'मोर्निंग न्यूज़' में यह खबर छपी कि बिहारमें विशाल पैमाने पर दंगे फैल गये हैं। गांधीजीने तुरन्त पंडित नेहरूको तार देकर बिहारकी ब्योरेवार बातें पूछीं। वे अन्तरिम सरकारके अपने तीन साथियों—अर्थात् सरदार पटेल, लियाकतअली खां और सरदार अब्दुर्रब निश्तरके साथ कलकत्तेसे पटना चले गये थे। नेहरूजीने तारसे उत्तर दिया कि बिहारके अनेक भागोंमें तनावकी स्थिति है, परन्तु सरकार उसे काबूमें

लानेके लिए भरसक प्रयत्न कर रही है। तारमें उन्होंने यह भी बताया कि मैंने निश्चय कर लिया है कि जब तक जरूरी होगा मैं अब्दुर्रब निश्तरके साथ बिहारमें रहूंगा।

गांधीजीने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें कहा, प्रतिशोध न तो शान्तिका मार्ग है और न मानवताका। अगर आप इतने उदार नहीं हो सकते कि जो आदमी आपके थप्पड़ लगाये उसे आप क्षमा कर दें, तो आप बदलेमें उसे एक थप्पड़ लगा सकते हैं। परन्तु मान लीजिये कि अपराध करनेवाला असली आदमी भाग गया और पीड़ित पक्षने बदला लेनेके लिए उसके संबंधी अथवा सहधर्मीको थप्पड़ लगा दिया, तो यह मानव-गौरवको कलंकित करनेवाली बात होगी। "यदि कोई मेरी लड़कीको भगा ले जाय, तो क्या मैं उसको या उसके मित्रकी लड़कीको भगा ले जाऊं? यह तो लज्जा और कलंककी बात होगी। मुझे अपार दुःख होता है। खूनके बदले खूनका नारा निरा जंगलीपन है। नोआखालीकी घटनाओंका बदला आप बिहारमें नहीं ले सकते।" [वही]

उस रात सोदपुर आश्रम और पटनाके बीच टेलीफोनकी घंटियां तेजीसे बजती रहीं। बिहारके एक मुस्लिस लीगी नेता मोहम्मद यूनुसने ट्रंक कॉलके उत्तरमें फोनसे कहा, "महात्माजी ही हमें बचा सकते हैं।" मैने पूछा, "क्या वे तुरन्त रवाना हो जायं? वे तैयार हैं।" उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, तुरन्त आनेकी जरूरत नहीं है। वे अपनी सुविधासे आ सकते हैं। तो पंडित नेहरू और दूसरे मंत्रियोंकी हाजिरी यहां काफी है।"

गांधीजीकी ओरसे टेलीफोन पर पूछने पर पंडित नेहरूने यह उत्तर दिया था, "काफी खराब स्थिति है, परन्तु हम तेजीसे फिर काबू पा रहे हैं।" मैंने पूछा, "स्त्रियोंके विरुद्ध कोई अपराध हुए हैं?" उन्होंने उत्तर दिया, "ऐसे अपराधोंका अभाव नहीं है।"

गांधीजीको दुःखमें डुबा देनेके लिए इतना पर्याप्त था। उन्होंने दूसरे दिन प्रार्थना-सभाके लिए लिखित एक सन्देशमें कहा, "कांग्रेस जनताकी है। जहां कांग्रेस सत्तारूढ़ है वहां यदि कांग्रेस-जन मुसलमानोंकी रक्षा न कर सकें, तो कांग्रेस सरकारके होनेसे क्या काम ?" इसी प्रकार यदि किसी लीगी प्रान्तमें लीगी मुख्यमंत्री हिन्दुओंकी रक्षा नहीं कर सके, तो उसका वहां रहना व्यर्थ है। यदि दोनोंमें से कोई एक अथवा दोनों ही अपने अपने प्रान्तोंमें मुस्लिम या हिन्दू

अल्पसंख्यकोंकी रक्षा करनेके लिए सेनाकी सहायता लेनेको मजबूर होते हैं, तो इसका यह मतलब हुआ कि उनमें से किसीका भी संकटके समय सामान्य लोगों पर सचमुच कोई नियंत्रण नहीं है और दोनों अंग्रेजोंको इस बातका निमंत्रण दे रहे हैं कि वे भारत पर अपनी सर्वोपरि सत्ता बनाये रखें। "यह ऐसी बात है जिस पर हम सबको गहरा विचार करना चाहिये।" मैं इस आत्म-सन्तोषकी आदतको नापसन्द करता हूं कि सारा दोष गुंडों पर डाल कर हम अपनेको दोषमुक्त कर लें। "हम सदा गुंडों पर ही सारा दोष रख देते हैं। परन्तु हमीं गुंडोंको पैदा करते हैं और उन्हें प्रोत्साहन देते हैं। यह कहना सही नहीं है कि जो कुछ उपद्रव हुआ है, वह सब गुंडोंका ही काम है।"

५ नवम्बरको यह चेतावनो उन्होंने और भी भारपूर्वक दोहराई। हिन्दू ऐसा कह सकते हैं: "क्या झगड़ेकी शुरुआत मुसलमानोंने नहीं की?" मैं चाहता हूं कि आप इस तरहका उत्तर देनेके प्रलोभनमें न पड़ें, बल्कि आत्म-निरीक्षण करें और अपने ही कर्तव्यका विचार करें, भले ही दूसरा पक्ष कुछ भी करता हो। हिंसाके उपयोगके लिए भी नैतिक नियम होते हैं। यदि आप लोग बदलेकी भावनाके शिकार हो जायेंगे, तो हिंसाकी आग उन सबको जला कर भस्म कर देगी जो उसे सुलगायेंगे। स्वाधीनता हवामें उड़ जायगी । और यदि आप लोग एक-दूसरेसे झगड़ते रहे, तो कोई तीसरी ही सत्ता—"फिर वे अंग्रेज हों या कोई दूसरे"—भारतमें मजबूतीसे अपने पैर जमा लेगी। आप सब नष्ट हो जायं तो मैं उसकी परवाह नहीं करूंगा, परन्तु मैं भारतकी स्वतन्त्रताका नाश बरदाश्त नहीं कर सकता ।

जब सारे भारतमें बकरीदका त्योहार शान्तिसे गुजर गया, तो सबने आरामकी सांस ली। परन्तु बिहारके समाचारोंने गांधीजीको स्वयं अपने साथ युद्ध करनेके लिए प्रेरित किया। ४ नवम्बरको उन्होंने राजकुमारी अमृतकौरको एक पत्रमें लिखा, "मुख्यतः तो स्वास्थ्यके कारणोंसे कलकत्ता आनेके बाद मैंने जल्दी ही मिताहार और दुग्धरहित आहार शुरू कर दिया था। देशमें घटी बादकी घटनाओंने मुझे इसकी अवधि बढ़ानेकी प्रेरणा दी। अब यदि स्थितिमें जड़मूलसे सुधार नहीं हुआ, तो बिहार मुझे सम्पूर्ण उपवासके लिए विवश कर देगा। समयकी कोई मर्यादा नहीं होगी। तुम अशान्त न होकर इस बातसे सचमुच प्रसन्न होना कि इस अग्निपरीक्षामें से

निकलने और अपने सिद्धान्तके अनुसार आचरण करनेका बल मुझे अपने भीतर अनुभव होता है।" दूसरे दिन उन्होंने पंडित नेहरूको पत्र लिखा:

> बिहारके समाचारोंने मुझे जड़से हिला दिया है। मुझे अपना कर्तव्य स्पष्ट दिखाई देता है। . . . यद्यपि मैंने उपवासको टालनेका कठोर प्रयत्न किया है, तो भी अब मैं उसे अधिक टाल नहीं सकता। . . . मेरा अन्तर्नाद मुझसे कहता है: "तुम इस अत्यन्त मुर्खतापूर्ण हत्याकांडके साक्षी होनेके लिए जीवित नहीं रह सकते। यदि लोग जो सूर्यके प्रकाशकी तरह स्पष्ट है उसे भी देखनेसे इनकार करें और जो कुछ तुम कहते हो उस पर ध्यान न दें, तो क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारा जीना व्यर्थ है?" यह तर्क मुझे उपवासकी ओर अनिवार्य रूपमें धकेल रहा है। इसलिए मैं एक वक्तव्य निकालना चाहता हूं कि यदि पागलपनका यह दौर बन्द नहीं होगा, तो मुझे आमरण अनशन करना पड़ेगा। . . . तुम मुझे समझानेका प्रयत्न कर सकते हो, अगर तुम्हारा मत इससे भिन्न हो। तुम जो कुछ कहोगे उस पर मुझे गंभीर विचार करना होगा। परन्तु तुम मेरे स्वभावको जानते हो, इसलिए मुझे विश्वास है कि तुम मेरे प्रस्तावित कदमका समर्थन करोगे। कुछ भी हो, मेरी सम्भव मृत्युके बारेमें एक क्षणका भी विचार किये बिना तुम अपना काम करते रहना और मुझे ईश्वरकी दया पर छोड़ देना। चिन्ता तो करना ही मत।

परन्तु न तो पंडित नेहरूने और न सरदार पटेलने गांधीजीको समझानेकी कोशिश की। वे अच्छी तरह जानते थे कि बाजी कितनी बड़ी है। वह भारतकी स्वाधीनता गंवानेसे जरा भी कम नहीं थी। ६ नवम्बरको नोआखालीके लिए रवाना होनेसे पहले गांधीजीने एक वक्तव्य और एक अपील 'बिहारसे' नामक शीर्षकसे निकाली:

> लगता है कि बिहारने अपने बारेमें मेरे सपनोंको झुठला दिया है। . . . भारतके प्रधानमन्त्री और उनके साथियोंका वहां लगातार रहना इस बातका प्रमाण है कि वहां कैसी करुण घटनायें हो रही हैं। इसके उत्तरमें यह बड़ी आसानीसे कहा जा सकता है कि मुस्लिम लीगी सरकारके शासनमें बंगालकी हालत बिहारसे अधिक बुरी नहीं तो

अधिक अच्छी भी नहीं थी। और यह भी कहा जा सकता है कि बिहारमें जो कुछ हो रहा है, वह केवल बंगालका ही परिणाम है। यदि कोई दल बुरा काम करे, तो उसके विरोधी दलको वैसा ही बुरा काम करनेका अधिकार नहीं मिल जाता। ...जिस साम्प्रदायिकताका दोष कांग्रेस-जनोंने मुस्लिम लीग पर लगाया है, उसका उत्तर साम्प्रदायिकतासे देना भी कोई उत्तर कहलायेगा ? क्या बिहारके १४ प्रतिशत मुसलमानोंको बर्बरतासे कुचलनेकी कोशिश करना भी कोई राष्ट्रीयता है?

कोई मुझसे यह न कहे कि कुछ हजार बिहारियोंके पापके लिए मुझे सारे बिहारको दोषी नहीं ठहराना चाहिये। . . . मुझे डर है कि यदि बिहारमें यह दुर्व्यवहार चलता रहा, तो संसार हिन्दुस्तानके सभी हिन्दुओंको इसके लिए दोषी ठहरायेगा। संसारका यही तरीका है; और वह कोई बुरा तरीका भी नहीं है। . . . जिस बिहारने कांग्रेसकी प्रतिष्ठा बढ़ानेमें इतना काम किया है, वही बिहार उसकी कब्र खोदनेमें सबसे प्रथम न रहे।

मुझे अपनी अहिंसाके लिए कोई शर्म नहीं है। . . . परन्तु इस पत्रमें में मैं आपसे अहिंसाकी बात नहीं कहना चाहता। फिर भी मैं आपसे इतना तो कहना चाहता ही हूं कि आपने जो कुछ किया कहा जाता है, . . . वह कायरतासे भी बदतर है। वह न तो हमारे धर्मको शोभा देता है, और न हमारी राष्ट्रीयताको। . . . आपने अपनी करतूतोंसे अपनेको नीचे गिराया है और हिन्दुस्तानको भी उसके ऊंचे स्थानसे घसीट कर नीचे ला पटका है।

आपको पंडित जवाहरलालजीसे, निश्तर साहबसे और डॉ. राजेन्द्रप्रसादसे कह देना चाहिये कि वे अपनी सेनायें वापिस ले जायं और हिन्दुस्तानका राजकाज चलानेके लिए दिल्ली लौट जायं। ऐसा वे तभी कर सकते हैं जब आप अपनी हैवानियतके लिए पछतायें और उन्हें इस बातका विश्वास दिलायें कि मुसलमान भी आपकी सार-संभालके उतने ही अधिकारी हैं जितने कि आपके सगे भाई-बहन हैं।

जब तक हरएक हिजरती मुसलमान वापस अपने घर न लौट आये तब तक आपको चैन नही लेना चाहिये। आपको चाहिये कि आप उनके उजड़े और बरबाद हुए

घरोंको फिरसे बनवानेका जिम्मा लें और अपने मंत्रियोंसे कहें कि वे इस कार्यमें आपकी मदद करें। टीकाकारोंने आपके मंत्रियोंके बारेमें मुझसे जो कुछ कहा है उसे आप नहीं जानते।

वक्तव्यमें आगे कहा गया है: "मैं अपनेको आपका ही एक अंग मानता हूं। मुझमें यह वफादारी आपके स्नेह और प्रेमने पैदा की है। और चूंकि बिहारी हिन्दुओंके कर्तव्यके विषयमें आप जितना जानते हैं उससे अधिक मैं उसे समझनेका दावा करता हूं, इसलिए जब तक मैं इसका कुछ प्रायश्चित्त न कर लूं तब तक मुझे चैन नहीं पड़ सकता।"

बिहारियोंका पागलपन बन्द न होने और राह भूले बिहारियों द्वारा नया मार्ग न अपनानेकी हालतमें गांधीजीके प्रस्तावित उपवासकी शर्तें प्रस्तुत करनेके पश्चात् वक्तव्यमें आगे कहा गया है: "किसी भी मित्रको मेरी मददके लिए या मेरे प्रति हमदर्दी दिखानेके लिए मेरे पास दौड़कर नहीं आना चाहिये। . . . मेरे साथ हमदर्दी दिखानेके लिए किसीको आधा या पूरा उपवास करनेकी जरूरत नहीं । ऐसे कदमसे केवल नुकसान ही हो सकता है। मेरी इस तपस्यासे उन लोगोंकी अन्तरात्मा जागनी चाहिये, जो मुझे जानते हैं और मेरी प्रामाणिकतामें विश्वास रखते हैं। . . . जब तक ईश्वरको मेरे इस शरीरसे सेवा लेनी होगी तब तक मुझे कुछ न होगा।"

सत्याग्रहके शस्त्रागारमें उपवास सबसे शक्तिशाली शस्त्र है। परन्तु यदि उसका दुरुपयोग किया जाय, तो वह अत्यन्त खतरनाक भी है। उसके उपयोगके कुछ निश्चित नियम हैं। स्वयं उपवासका अपने आपमें कोई महत्त्व नहीं है। परन्तु उपवासके पीछे जो आत्मशुद्धि है उसीका महत्त्व है। यदि उपवासमें पर्याप्त तीव्रता हो, तो उससे विरोधीके साथ साथ समाजकी भी सर्वांगीण शुद्धि होनी चाहिये। इसलिए गांधीजी, कुछ अपवादोंको छोड़कर, अपने उपवासोंमें सहानुभूतिपूर्ण उपवासोंको बहुत नापसन्द करते थे; इसके बजाय वे सब लोगोंसे यह अनुरोध करते थे कि वे आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार और कर्तव्य-पालनकी दिशामें अधिक परिश्रम करके अधिक शुद्ध बनें और इस प्रकार उनके साथ सहयोग करें। लक्ष्य यह था कि उनके उपवासके कारण उत्पन्न होनेवाली भावनात्मक शक्तिको सही कार्यमें लगाया जाय ।

सहानुभूतिपूर्ण उपवास उस नैतिक कर्तव्यसे लोगोंको छुटकारा दिला देते थे, जो गांधीजीके उपवाससे प्रत्येकके और सबके कन्धों पर आता था और इसलिए वे आत्मशक्तिके अपव्ययका रूप ले लेते थे।

गांधीजीका आंशिक उपवास आरंभ करने और यदि बिहारकी स्थितिमें तुरन्त सुधार न हो तो संपूर्ण उपवास करनेका निर्णय उसी ढंगका था, जिसे सैनिक रणनीतिमें "शत्रुसेनाको आगे न बढ़ने देनेकी कार्रवाई' कहा जाता है । इससे नोआखालीमें अपना मिशन जारी रखनेके लिए वे स्वतन्त्र हो गये। उनकी अपीलका बिहारकी स्थिति पर तुरन्त बिजलीका-सा असर हुआ। उनकी दलील यह थी कि यदि उन्हें नोआखालीमें सफलता मिल गई, तो उसका बिहार पर और भी शान्तिदायक प्रभाव पड़ेगा।

४

गांधीजी ६ नवम्बरको सोदपुरसे एक विशेष ट्रेनमें रवाना हुए। ट्रेनकी व्यवस्था मुख्यमंत्रीने की थी । गांधीजीके साथ बंगालके श्रममंत्री शमसुद्दीन अहमद और बंगाल सरकारके दो संसदीय सचिव नसरुल्ला खां और अब्दुर रशीद गये । इन्हें बंगाल सरकारने गांधीजीकी सुविधाका ध्यान रखने और नोआखालीमें गांधीजीके शान्ति-मिशनमें स्थानीय कर्मचारियोंका सहयोग प्राप्त करानेके लिए खास तौर पर नियुक्त किया था। मुख्यमंत्रीका भी गांधीजीके साथ जानेका इरादा था, परन्तु कलकत्तेमें "दूसरा कामकाज" होनेके कारण वे नहीं जा सके । उनका यह भी सुझाव था, और गांधीजीने उसका उत्साह-पूर्वक स्वागत किया था, कि मुख्यमंत्रीकी लड़की और नसरुल्ला खांकी लड़की भी उनके साथ दौरे पर जायं। दोनों लड़कियां जानेको उत्सुक थीं। परन्तु बादमें यह योजना छोड़ दी गई, क्योंकि शहीद साहबको बताया गया कि परदा-रहित लड़कियोंके गांधीजीके साथ जनताके सामने आनेसे कट्टरपंथी मुसलमानोंको आघात लग सकता है और धर्मान्ध मुल्लाओंका, जिनके लिए नोआखाली बदनाम था, विरोध खड़ा हो सकता है।

शमसुद्दीन अहमदके शहर कुश्तिया, गोआलंदो और कुछ अन्य स्टेशनों पर भारी भीड़ जमा हो गई थी। इन स्थानों पर गांधीजीने पुरानी बातें स्मरण करते हुए अपने भाषणोंमें कहा कि

किस प्रकार वे खिलाफतके दिनोंमें गर्वसे कहा करते थे कि मैं बड़े भाई मौलाना शौकतअलीकी जेबमें पड़ा हूं । गांधीजीने यह आशा प्रकट की कि उनके नोआखाली आनेसे खिलाफतके समयकी हिन्दू-मुस्लिम-एकता दुबारा लौट आयेगी।

गोआलंदोसे नदीकी यात्रा शुरू हुई । लगभग १०० मील स्टीमरसे पद्मामें यात्रा करके गांधीजी और उनकी मंडली रातको देरसे चांदपुर पहुंची । वहां सरदार पटेलका एक महत्त्वपूर्ण तार उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। गांधीजी ट्रंक टेलीफोनसे तुरंत ही दिल्ली उत्तर भिजवाना चाहते थे, परन्तु टेलीफोनकी कोई व्यवस्था काम नहीं कर रही थी । हमने नदीके किनारे जो सैनिक केन्द्र था वहां जाकर कोशिश की । परन्तु वे लोग भी हमारी सहायता न कर सके। जाहिर है कि स्थिति बहुत खराब थी।

रात तो नदीके बीच स्टीमर पर बीती। दूसरे दिन सुबह गांधीजीके रेल द्वारा नोआखालीमें अपने उद्दिष्ट स्थान चौमुहानीके लिए रवाना होनेसे पहले एस. एस. कीवी स्टीमर पर दो शिष्ट-मंडल उनसे मिले । एक मुसलमानोंका था, दूसरा हिन्दुओंका । पहले शिष्ट-मंडलमें कई प्रमुख मुस्लिस लीगी थे। वे रोष और विरोधकी मनस्थितिमें दिखाई दिये। उनमें से एकने कहा कि चांदपुर सब-डिविजनमें कोई दंगा नहीं हुआ; चांदपुरमें शरणार्थीयोंकी भीड़का कारण "झूठे अखबारी प्रचार" से पैदा होनेवाली घबराहट थी; मुसलमानोंके हाथों केवल १५ हिन्दू मारे गये, जब कि उससे दुगुने मुसलमान सेनाकी गोलियोंसे मरे। सेनाके अधिकांश सैनिक हिन्दू थे। शिष्ट-मंडलके एक और सदस्य, जो बंगाल विधान-सभाके भी सदस्य थे, इस बात पर नाराज थे कि हिन्दू अभी भी भाग रहे हैं और उनके पुनर्वासमें हिन्दू कार्यकर्ता "बाधा पहुंचा रहे है", क्योंकि वे मुस्लिम लीगी सरकारको बदनाम करने और प्रशासनको ठप करनेके खातिर हिन्दुओंको हिजरतके लिए प्रोत्साहन दे रहे हैं !

गांधीजीके साथ यात्रा कर रहे मंत्री शमसुद्दीन और दोनों संसदीय सचिव भी इस मुलाकातमें मौजूद थे। मंत्रीने हस्तक्षेप किया: चांदपुर सब-डिविजनको अलग मानने और जिलेमें अन्यत्र जो घटनाएं हुई हैं उनकी उपेक्षा करनेसे कोई लाभ नहीं है । सेनाके गोली चलानेका

उल्लेख भी उतना ही अप्रस्तुत है । अन्तमें गांधीजीके बोलनेकी बारी आई । उन्होंने इस प्रकार प्रारम्भ किया: जो कुछ आप लोगोंने कहा उसीको यदि सच मान लिया जाय, तो इसका अर्थ यह हुआ कि मुसलमान निर्दोष हैं; झूठे प्रचार और पुलिस तथा सेनाकी ज्यादतियोंके कारण दंगोंको उत्तेजना मिली और इसलिए ये लोग तथा घबराहट फैलानेवाले हिन्दू ही दंगोंके सच्चे अपराधी हैं! यह इतना बड़ा झूठ है कि कोई इस पर विश्वास नहीं कर सकता । अत्यधिक प्रमाण देना अपराध स्वीकार करना होता है । अगर नोआखालीमें दंगे नहीं हुए थे, तो सेनाको बुलाना क्यों जरूरी हुआ ? मुस्लिम लीगियों तकने यह स्वीकार किया है कि यहां भयंकर घटनाएं हुई हैं । उनका विरोध केवल आंकड़ोंके बारेमें है । मुझे संख्याकी चिन्ता नहीं है । यदि स्त्रियोंको भगा ले जाने, बलात् धर्म-परिवर्तन करने अथवा जबरदस्ती शादी करनेकी एक भी घटना घटी है, तो वह प्रत्येक ईश्वर-भीरु पुरुष या स्त्रीका सिर लज्जासे झुका देनेके लिए काफी है। सही मार्ग यह है कि जो कुछ हुआ हो वह साफ साफ स्वीकार कर लिया जाय। "अपनी भूलको बड़ी मान कर सारी दुनियाके सामने उसे घोषित कर देना कहीं अच्छा है। लोग आपकी तरफ उंगली उठायें और आपको दोषी कहें, यह अच्छा नहीं है। बुरा काम करनेवालेको खुदा कभी माफ नहीं करता ।" [हरिजन, २४ नवम्बर १९४६, पृ० ४१३] मैं परस्पर सद्भावना और विश्वास पैदा करनेके लिए ही यहां आया हूं । इसके लिए मुझे आपकी सहायता चाहिये । मैं पुलिस और सेनाकी सहायतासे शान्ति स्थापित कराना नहीं चाहता। मैं लोगोंको पूर्व बंगालके अपने घरोंसे भाग जानेके लिए भी प्रोत्साहन देना नहीं चाहता।

इस पर जो सज्जन पहले बोले थे उन्होंने इतना स्वीकार किया कि मैंने सुना है आगजनी और लूटपाटकी "कुछ" घटताएं हुई हैं। परन्तु लूटपाट घरवालोंके भाग जानेके बाद हुई है। वीरान घरोंको देख कर लोभका संवरण करना बदमाशोंके लिए बहुत कठिन था।

गांधीजीने तीखे स्वरमें पूछा, "परन्तु लोग अपने घरोंसे भागे क्यों? सब कोई जानते हैं कि जिस घरमें कोई न हो और जिसकी रक्षा न हो, उसे कोई ना कोई जरूर लूटेगा। कया कोई आदमी केवल लीगको बदनाम करनेके लिए अपना सर्वस्व खो देनेका खतरा उठायेगा?"

शिष्ट-मंडलके एक अन्य सदस्यने कहा कि केवल एक प्रतिशत लोगोंने ही गुंडेपनके काम किये हैं; बाकी ९९ प्रतिशत लोग सचमुच भले हैं और वे उपद्रवोंके लिए किसी तरह जिम्मेदार नहीं हैं।

गांधीजीने उनसे कहा, यह इस प्रश्नको देखनेकी सही दृष्टि नहीं है। यदि ९९ प्रतिशत "लोग भले" थे और जो कुछ हुआ उसे उन्होंने सक्रिय रूपमें नापसन्द किया होता, तो १ प्रतिशत लोग कुछ भी नहीं कर सकते थे और उन्हें आसानीसे ठीक किया जा सकता था। "भले लोगोंको बुराईका सक्रीय विरोध करना चाहिये, तभी वे भले कहलानेके अधिकारी हो सकते हैं। खड़े खड़े देखते रहनेसे कोई लाभ नहीं।" [वही] यदि आप ऐसा नहीं चाहते तो आपको स्पष्ट कहना चाहिये और मुस्लिम बहुमतवाले क्षेत्रोंके तमाम हिन्दुओंसे अपना वतन छोड़कर चले जानेके लिए खुले तौर पर कह देना चाहिये। परन्तु जहां तक मैंने समझा है, आप यह नहीं चाहते । 'क्या नोआखालीके उपद्रव उस व्यवहारके द्योतक हैं, जिसकी उन्हें पाकिस्तानमें उम्मीद रखनी चाहिये ?'— यह प्रश्न जो हिन्दू मुझसे पूछते हैं उन्हें मैं क्या उत्तर दूं? मेरे हृदयमें इस्लामके पैगम्बरका आदर आपसे कम नहीं है; परन्तु तानाशाही और बलात्कार किसी धर्मको भ्रष्ट करनेका मार्ग है, न कि उसे आगे बढ़ानेका।

शमसुद्दीन अहमदने गांधीजीसे सहमत होते हुए कुरानकी एक आयत इस आशयकी सुनाई कि मजहबमें कोई जबरदस्ती नहीं हो सकती । उन्होंने कहा, मैंने मुसलमानोंसे कह दिया है कि आपको पाकिस्तान चाहिये तो अल्पसंख्यक समुदायके साथ न्याय करके आपको उनका विश्वास प्राप्त करना चाहिये। आपने जो कुछ किया है उससे आपने पाकिस्तानकी हत्या कर दी है।

गांधीजीको नोआखालीके जिला-मजिस्ट्रेट मि. मैकिर्नेर्नीकी निकाली हुई इस आशयकी एक सरकारी विज्ञप्ति दिखायी गयी कि जब तक इसके विपरीत कोई प्रमाण नहीं दिया जायगा तब तक वे यह मानेंगे "कि हालके उपद्रव शुरू होनेके बाद जिस किसीने इस्लाम स्वीकार किया है, उसका जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन हुआ है और वह वास्तवमें हिन्दू ही है।" इसका जिक्र करते

हुए गांधीजीने कहा कि यदि सब मुसलमान इस घोषणाका समर्थन कर दें, तो प्रश्नके निबटारेमें इससे बड़ी मदद मिलेगी। यदि कोई सचमुच कलमा पढ़ना चाहे, तो उसका सार्वजनिक प्रदर्शन क्यों होना चाहिये ? यदि हृदयसे धर्म-परिवर्तन हो, तो ईश्वरके सिवा और किसी साक्षीकी जरूरत नहीं होनी चाहिये। इसलिए यह घोषणा करना मुस्लिम नेताओंका काम है कि जबरदस्ती अथवा यांत्रिक रूपमें कलमा पढ़ देनेसे कोई गैर-मुस्लिम मुसलमान नहीं बन जाता।

इस पर उनमें से एक सदस्य बोले, हम तो अपनी ओरसे हिन्दू नेताओंके साथ जिलेके भीतरी भागोंमें जाकर फिरसे शान्ति स्थापित करनेको तैयार हैं। परन्तु हिन्दू नेता हम पर भरोसा करनेको तैयार नहीं हैं। गांधीजीने कहा, आप इसकी चिन्ता न करें। "आप और मैं भीतरी भागोंके हर गांव और हर घरमें जायंगे और शान्ति तथा विश्वास पैदा करनेकी कोशिश करेंगे।" [वही, पृ० ४१४]

शिष्ट-मंडलके सदस्य आये तब उनके मनमें पूर्वाग्रह भरा हुआ था। वे मानते थे कि वाग्बाणोंसे उनका स्वागत किया जायगा। परन्तु उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जहां गांधीजीने मुसलमानोंकी भूल बतानेमें कोई संकोच नहीं किया, वहां मुसलमानोंके लिए उन्होंने एक भी रोषपूर्ण शब्द नहीं कहा। इतना ही नहीं, सेना और पुलिसके उपयोगका और हिन्दुओंके सामूहिक रूपमें हिजरत करनेका भी उन्होंने विरोध किया। अवश्य ही यह आदमी उनका शत्रु नहीं हो सकता।

दूसरे शिष्ट-मंडलमें कोई २० हिन्दू कार्यकर्ता थे। उनमें से कुछ जिलेके प्रमुख कांग्रेसी थे। विविध कष्ट-निवारण संस्थाओंके कई प्रतिनिधि भी उसमें शामिल थे। गांधीजीने उनसे कहा, "अगर आप यह कहते हैं कि पुलिसके या सेनाके संरक्षणके बिना आपका काम नहीं चल सकता, तो आप लड़ाई शुरू होनेसे पहले ही सचमुच हार मान लेते हैं। जो लोग कायर हैं उनकी रक्षा संसारकी कोई भी पुलिस या सेना नहीं कर सकती। मैं तो यह मान ही नहीं सकता कि एक भी व्यक्तिका जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन किया जा सकता है, अथवा एक भी स्त्रीको भगाया अथवा सताया जा सकता है। जब तक आपको यह लगता है कि आपको इन अपमानोंका शिकार

बनाया जा सकता है, तब तक आप सचमुच इनके शिकार **बनाये जाते रहेंगे** । आपकी मुसीबत संख्याकी कमी नहीं है, परन्तु आप पर छाई हुई लाचारीकी भावना तथा परावलम्बनकी आदत है। इसीलिए मैं आपके सामूहिक रूपमें पूर्व बंगाल छोड़ कर चले जानेके विचारके विरुद्ध हूं। कायरता या लाचारीका यह इलाज नहीं है।"

उन्होंने उत्तर दिया, "पूर्व बंगाल ऐसी किसी कार्रवाईके विरुद्ध है।"

गांधीजीने अपनी बात जारी रखते हुए कहा: "२० हजार सशक्त मनुष्य बहादुरोंकी तरह अहिंसक ढंगसे मरनेको तैयार हों, यह बात आज कपोल-कल्पित समझी जा सकती है । परन्तु यदि २० हजारकी आबादीमें से प्रत्येक सशक्त मनुष्य खुली लड़ाईमें शूरवीर सैनिकोंकी तरह मर जाय, तो इसे कोई कपोल-कल्पित नहीं मानेगा। वे लोग थर्मापीलीके ५०० शहीदोंकी तरह इतिहासमें अमर हो जायंगे। मैं स्पष्ट शब्दोंसे आपसे कहूंगा कि केवल इसी शर्त पर आप बंगालमें जीवित रह सकते हैं।"

शिष्ट-मंडलके सदस्योंकी यह मांग थी कि उपद्रव-ग्रस्त प्रदेशमें मुस्लिम अफसरों, मुस्लिम पुलिस और मुस्लिम सेनाकी जगह हिन्दू अफसर, हिन्दू पुलिस और हिन्दू सेना आनी चाहिये, ताकि हिन्दुओंमें फिरसे विश्वास पैदा हो जाय । गांधीजीने कहा, यह नारा गलत है। भूतकालमें हिन्दू अफसरों, हिन्दू पुलिस और हिन्दू सेनाने अपने हिन्दू भाइयोंके विरुद्ध वे सब बातें की हैं, जिनकी आपने शिकायत की है। "मैं काठियावाड़का हूं, जहां छोटी छोटी रियासतें हैं। उनमें से कुछ राज्योंमें किसी भी स्त्रीकी इज्जत सुरक्षित नहीं है; और वहांके प्रत्येक राज्यका राजा कोई गुंडा नहीं है, बल्कि नियमा-नुसार सिंहासन पर बैठाया हुआ राजा है।"

"वे व्यक्तिगत दुराचरणके मामले हैं। हमारे यहां तो यह सब सामूहिक पैमाने पर होता है।"

"परन्तु वहां व्यक्ति (राजा) अकेला नहीं है। उसके पीछे उसकी छोटीसी रियासतका पूरा तंत्र है।"

"उसके साथी उसकी निन्दा करते हैं। यहां ऐसे कामोंकी मुसलमान प्रशंसा करते हैं।"

"निन्दाके शब्द आपके कानोंको अच्छे लग सकते हैं; परन्तु इससे उन अभागी स्त्रियोंको क्या सान्त्वना मिल सकती है, जिनके घर निर्जन बना दिये गये हैं अथवा जिन्हें भगा कर जबरदस्ती धर्मभ्रष्ट कर दिया गया है अथवा जिनका बलात् मुसलमानोंसे विवाह कर दिया गया है? यह हिन्दुओंके लिए कितनी लज्जाकी और इस्लामके लिए कितनी कलंककी बात है ! नहीं, मैं आपको चैन नहीं लेने दूंगा। थोड़े समयमें आप अपने मनमें कहेंगे, 'यह बूढ़ा हमारा पिंड कब छोड़ेगा?' परन्तु यह बूढ़ा यहांसे जानेवाला नहीं है। वह आपके बुलानेसे नहीं आया है। और अपनी मर्जीसे ही वह यहांसे जायगा; परन्तु जब पूर्व बंगालमें उसका मिशन पूरा हो जायगा तब आपका आशीर्वाद लेकर जायगा।"

"ये उपद्रव मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी योजनाका अंग हैं।"

"यह निरा पागलपन है और उन्होंने इसको समझ लिया है। वे जल्दी ही इससे ऊब जायंगे। वे ऊबने भी लगे हैं।"

"तब वे यहां आकर स्थितिको सुधारते क्यों नहीं?"

"वह समय आयेगा। रोग संकटका चिह्न है। रोगमुक्त होनेसे पहले संकटकी स्थिति आनी चाहिये। आप जानते हैं, मैं प्राकृतिक चिकित्सावादी हूं !" यह कहते हुए गांधीजी हंस पड़े और निसर्गोपचारके इस प्रसिद्ध सिद्धान्तका उल्लेख उन्होंने किया कि शरीरसे गंदगी निकल जानेके कारण 'लक्षणोंका तीव्र होना "रोगमुक्त होनेका पूर्व-लक्षण होता है।"

चर्चाको फिरसे पकड़ते हुए एक और मित्र बोले, "यहां तो हम सागरमें बूंद जैसे हैं।"

गांधीजीने उत्तर दिया, "यदि पूर्व बंगालमें एक ही हिन्दू हो, तो भी मैं चाहता हूं कि उसमें यह साहस हो कि वह मुसलमानोंके बीच जाकर रहे और मरना ही पड़े तो वीरकी भांति मरे। इससे मुसलमान भी उसकी प्रशंसा करेंगे। ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा, फिर वह कितना ही निर्दय और कठोर-हृदय क्यों न हो, जो बहादुर आदमीकी प्रशंसा न करे । गुंडा उतना दुष्ट नहीं होता जितना उसे समझा जाता है। उसमें भी कुछ अच्छे गुण होते हैं।"

इस मंडलीमें कुछ नवयुवक ऐसे थे, जो उस आतंकवादी दलके सदस्य थे, जिसने चटगांवके शस्त्रागार पर सफल आक्रमण किया था। उनके शौये और साहसकी प्रशंसा ब्रिटिश अधिकारियोंको भी करनी पड़ी थी; उनके इन्हीं गुणोंने कलकत्तेके एक एंग्लो-इण्डियन दैनिक पत्रके सम्पादकको अपने पत्रमें यह उद्‌गार प्रकट करनेके लिए प्रेरित किया था कि ऐसे नौजवानोंको लेकर तो वे शेरोंका भी शिकार कर सकते हैं। जो मित्र इस चर्चामें प्रमुख भाग ले रहे थे, वे उस दलके सदस्य थे। उन्हें अभी तक गांधीजीकी बात जंची नहीं थी। "गुंडा तर्कको नहीं समझता", वे बोले ।

"परन्तु वह वीरताको समझता है । यदि उसे पता लग जाय कि आप उससे भी अधिक बहादुर हैं, तो वह आपका आदर करने लगेगा।"

गांधीजीने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "आप देखेंगे कि जहां तक हमारी वर्तमान चर्चाका सम्बन्ध है, मैंने आपसे शस्त्र-प्रयोगका परित्याग करनेको नहीं कहा है। मैं आपको शस्त्र नहीं दे सकता। चटगांव शस्त्रागारके आक्रमणकारियोंको शस्त्र देना मेरा काम नहीं है। शस्त्रागार पर धावा बोलनेवाले लोगोंके बारेमें सबसे दुःखद बात यह है कि उनका शौर्य एकांगी था। उसकी छूत दूसरोंको नहीं लगी।

दलमें से एक सदस्य बोले, "कोई आश्चर्य नहीं कि उसकी छूत दूसरोंको नहीं लगी, क्योंकि उनकी तो निन्दा की गई थी।"

"किसने की थी?"

"लोगोंने ।"

"नहीं, लोगोंने नहीं की । मैंने की होगी । परन्तु यह दूसरी बात है।"

"मैं स्वयं शस्त्रागार पर धावा बोलनेवालोंमें से एक हूं।"

"आप शस्त्रागार पर धावा करनेवालोंमें से नहीं हैं, अन्यथा आप मुझे ये बातें कहनेके लिए जीवित न रहते। आपमें से इतने लोग जो घटनाएं यहां हुई उनके जीवित साक्षी रहे, यह मेरी

दृष्टिमें प्रथम श्रेणीकी दुःखद घटना है। यदि इस संकटमें मौतका सामना करनेके लिए आपने उतनी ही निर्भयता और हिम्मत दिखाई होती जितनी उस धावेके समय दिखाई थो, तो वीरोंके नाते इतिहासमें आपका नाम अमर हो जाता। अभी तो आपने इतिहासके पृष्ठ पर एक छोटीसी टिप्पणी ही लिखी है। आप देखेंगे कि इस समय मैं अपने ढंगके शौर्यका पालन करनेके लिए आपसे नहीं कह रहा हूं । मैं स्वयं भी अभी तक उस पर शत-प्रतिशत अमल नहीं कर पाया हुं। उसकी परीक्षा करनेके लिए ही मैं पूर्व बंगाल आया हूं। आपसे तो मैं परम्परागत बहादुरीकी ही अपेक्षा रखता हूं। आपमें स्त्री और पुरुष दोनोंको उस साहस और निर्भयताकी छूत लगानेकी शक्ति होनी चाहिये, जो उस समय मृत्युका सामना करनेके लिए जरूरी होते हैं जब अप्रतिष्ठा और अपमान ही मृत्युका विकल्प होता है। केवल इसी तरह हिन्दू पूर्व बंगालमें रह सकते हैं, और किसी तरह नहीं । आखिर तो मुसलमान भी हमारे ही खून और हड्डियोंसे बने हुए हैं।"

"मुसलमानों और हिन्दुओंका अनुपात यहां ६ और १ का है। आप कैसे आशा रख सकते हैं कि हम इतनी भारी संख्याका सामना करें?"

"जब अंग्रेजोंने भारतको गुलाम बनाया था तब ३३ करोड़ भारत-वासियोंके विरुद्ध केवल ७० हजार ही यूरोपियन सिपाही थे।"

"हमारे पास शस्त्र नहीं हैं। बदमाशोंके पीछे सरकारी संगोनें हैं।"

इससे गांधीजीको विरोधीकी प्रचंड शक्तिके सामने साधारण शस्त्रोंकी अपेक्षा सत्याग्रह अथवा आत्मबलकी श्रेष्ठताका वर्णन करनेका अवसर मिल गया। दक्षिण अफ्रीकामें भारतीय समाज हबशियों और गोरोंके भारी बहुमतके बीच केवल मुट्ठीभर ही था। "गोरोंके पास शस्त्रास्त्र थे, हमारे पास एक भी शस्त्र नहीं था। इसलिए हमने सत्याग्रहका शस्त्र तैयार कर लिया । आज दक्षिण अफ्रीकाका गोरा भारतवासीकी इज्जत करता है; जूलूमें श्रेष्ठ शरीर-बलके होते हुए भी गोरा उसकी इज्जत नहीं करता।"

अन्तमें भूतपूर्व आतंकवादी मित्र बोले, "तो हमें किसी न किसी तरह शस्त्रोंके बल पर लड़ना है?"

गांधीजीने उत्तर दिया, "किसी न किसी तरह नहीं। हिंसाके भी कुछ नैतिक नियम होते हैं। उदाहरणके लिए, लाचार बूढ़ों, स्त्रियों और बच्चोंकी हत्या करना बहादुरी नहीं, परन्तु परले सिरेकी बुजदिली है। शौये चाहता है कि अपने प्राण देकर भी हम उनकी रक्षा करें। प्रारम्भिक कालके इस्लामका इतिहास शौर्यके ऐसे दृष्टान्तोंसे भरा पड़ा है और इससे इस्लामका बल बढ़ा ही है।"

"क्या आप हिन्दुओंको मुसलमानों पर आक्रमण करनेकी अनुमति देंगे ?"

"बिहारके लोगोंने ऐसा ही किया और अपने आपको तथा भारतको कलंकित कर दिया। मैंने यह कहते सुना है कि बिहारके बदलेने मुसलमानोंको 'ठंडा कर दिया है !'। उनका मतलब यह है कि फिलहाल उन्हें गाय बना दिया है। परन्तु उन्हें यह पता नहीं कि बिहारने भारतीय स्वाधीनताकी घड़ीको पीछेकी ओर ढकेल दिया है। आज बंगाल और बिहारमें भारतकी स्वाधीनता दांव पर लगी हुई है। ब्रिटिश सरकारने केन्द्रमें कांग्रेसको सत्ता इसलिए नहीं सौंपी कि वह कांग्रेससे प्रेम करती है, परन्तु इसलिए सौंपी कि उसे यह विश्वास है कि कांग्रेस सत्ताका बुद्धिमानीसे सदुपयोग करेगी । आज पंडित नेहरूको ऐसा मालूम होता है कि उनके पैरोंके नीचेसे जमीन खिसक रही है। परन्तु वे ऐसा नहीं होने देंगे। इसीलिए वे आज बिहार में हैं।"

अन्तमें गांधीजी बोले, "अगर आपको शस्त्रोंका उपयोग करना ही है, तो अच्छी तरहसे कीजिये। उनका दुरुपयोग न कीजिये। बिहारने अपने शस्त्रोंका अच्छा उपयोग नहीं किया। . . . दुर्बलों और निस्सहायोंकी रक्षा करना शस्त्रोंका सौभाग्य है। बिहार अपने प्राणों द्वारा अपने बीच रहनेवाले मुसलमानोंको संपूर्ण सुरक्षाकी गारंटी देकर पूर्व बंगालके हिन्दुओंकी उत्तम सहायता कर सकता था। तब बिहारियोंके उदाहरणका जरूर असर होता। और मेरी यह श्रद्धा है कि जब आजका पागलपन मिट जायगा तब बिहारके लोग उचित प्रायश्चित्तके साथ ऐसा ही करेंगे। कुछ भी हो, यदि वे चाहते हैं कि मैं जोवित रहूं, तो मैंने अपने प्राणोंकी यही कीमत लगाई है। यहां प्रथम पाठ समाप्त होता है।"

दूसरा अध्याय
श्रद्धाका साहस

१

पड़ावका दूसरा बड़ा स्थान लक्षम था। लक्षम उस त्रिकोणका शिखर है, जिसके नोआखाली और चांदपुर आधार हैं। नोआखालीके उपद्रव कम-ज्यादा इसी क्षेत्रमें सीमित रहे । यहां एक बड़ी शरणार्थी छावनी थी और गांधीजीने रेलवे स्टेशन पर एकत्र हुए शरणार्थियोंके सामने ही प्रवचन किया था। उन्होंने कहा, मैंने प्रण कर लिया है कि मैं बंगाल तब तक नहीं छोडूंगा जब तक कि यहां पुन: शान्ति स्थापित नहीं हो जायगी और किसी अकेली हिन्दू लड़कीमें भी मुसलमानोंके बीच आजादीसे घूमने-फिरनेकी हिम्मत न आ जायगी। आप मुझे सबसे बड़ी सहायता यह दे सकते हैं कि आप अपने हृदयोंसे भयको निकाल दें। और वह कौनसा जादू है, जो आपको निर्भय बना सकता है ? वह जादू रामनाम है। “ईश्वर सदा शुद्ध लोगोंके हृदयमें निवास करता है। यदि आप उससे डर कर चलें, तो पृथ्वी पर और किसीसे डरनेकी आपको जरूरत नहीं। 'अल्लाहो अकबर' के नारेसे आपको भयभीत क्यों होना चाहिये ? इस्लामका अल्लाह और हिन्दुओंका राम एक ही है—वह निर्दोषोंका रक्षक है । अगर रामनाममें आपका विश्वास हो, तो आप पूर्व बंगालको छोड़ कर जानेका विचार नहीं करेंगे। खतरेका सामना करनेके बजाय उससे भागना मनुष्यमें, ईश्वरमें और अपने आपमें भी श्रद्धाका अभाव सूचित करना है। इस श्रद्धाका दिवाला पीट कर जीवित रहनेसे तो डूब कर मर जाना ज्यादा अच्छा है।”

गांधीजीकी मंडली ७ नवम्बरको तीसरे पहर चौमुहानी पहुंची । कांग्रेस- अध्यक्षकी निर्भीक पत्नी सुचेता कृपलानी भीतरी भागोंका दौरा करके हाल ही लौटी थीं। उन्होंने जो कुछ देखा और सुना, उससे वे निराश हो रही थीं। उनकी रिपोर्ट हृदय-विदारक थी।

लगभग १० स्वयंसेवकोंका एक अग्रिम दल गांधीजीके आगमनकी तैयारियां करनेके लिए एक सप्ताह पहले चौमुहानी चला गया था। उसके नेता चारु चौधरी थे, जो एक तपे हुए सत्याग्रही

और सतीशचन्द्र दासगुप्तके सोदपुर आश्रमके कार्यकर्ता थे। जब वे पहले-पहल चौमुहानी पहुंचे तो वहां सर्वत्र अव्यवस्था और अंधाधुंधी फैली हुई थी। वह शहर तो उपद्रवोंसे अछूता रहा था, परन्तु उसके चारों ओरका सारा प्रदेश जल रहा था। सभी वर्गोंमें आतंक, क्रोध, निराशा और साहसहीनताकी भावना फैली हुई थी। बाह्य स्थिति आंतरिक स्थितिको प्रतिबिम्बित करती थी। हालकी वर्षाके बाद वहां बदबू ही बदबू थी। नाक पर रूमाल रखे बिना कोई वहां चल-फिर नहीं सकता था। मजदूर न प्रेमसे मिल सकते थे, न रुपयेसे । कोई भी आगे आकर सहायता करनेको तैयार नहीं था; सब लोग भयभीत थे।

चौमुहानीमें कई संस्थाएं कष्ट-निवारणका काम कर रही थीं। परन्तु उन सबकी कोई एक सामान्य योजना नहीं थी और न उनमें कोई समन्वय था। शरणार्थी बड़ी संख्यामें रोज भाग कर चले आ रहे थे । उसका कोई अन्त ही दिखाई नहीं देता था। दूसरे लोग सेनाके रक्षणकी सुविधाकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सब ओर घबराहट फैली हुई थी। लोग इकट्ठे होते थे, चर्चा करते थे, जोशमें वाद-विवाद करते थे और एक इंच भी आगे बढ़े बिना बिखर जाते थे। सबसे ज्यादा हिम्मत बुद्धिजीवियोंकी टूटी थी। उनमें से कुछ लोग नपुंसक क्रोध दिखा कर जो कुछ हुआ उसका दोष गांधीजीकी अहिंसा पर मढ़ते थे !

चारु और उनके स्वयंसेवक बंगाल विधान-सभाके सदस्य हरेन घोष चौधरीके नेतृत्वमें नोआखाली उद्धार, कष्ट-निवारण तथा पुनर्वास समिति (नोआखाली रेस्क्यू, रिलीफ एंड रीहेबिलिटेशन कमिटी) के कार्यकर्ताओंको साथ लेकर धीरजके साथ गांधीजीकी सिखाई हुई रचनात्मक कार्य-पद्धतिको कार्यान्वित करने लगे। यह पद्धति उस समय हमेशा अत्यन्त परिणामकारी सिद्ध होती है जब हिंसाकी शक्तियोंका सबसे अधिक जोर होता है। यह पद्धति अहिंसाकी भावनाको साहस, सेवा और प्रेमके सादे कार्योका जामा पहना देती है, ताकि हर आदमी उन्हें समझ सके और उनका आदर कर सके । अहिंसाको जब उसकी बुनियादी बातों तक सीमित रखा जाता है और किसी तरहकी शेखी या घमंडकी भावना न रखकर अत्यन्त नम्र भावसे तथा किसीके प्रति मनमें शत्रुभाव न उत्पन्न होने देकर उसका पालन किया जाता है, तब वह प्रकृतिकी रोग-निवारण प्रक्रियाकी तरह अदृश्य परन्तु अत्यन्त सक्रिय बन जाती है और

पंचमहाभूतोंकी तरह प्रचण्ड, सर्व व्यापक और अजेय हो जाती है। कार्यकर्ता टोकरियां, झाड़ू और फावड़े लेकर तथा मेहतर और मजदूर बन कर निकल पड़े। उन्होंने सड़ककी मरम्मत की, प्रार्थना-भूमिकी सीमाएं निश्चित करके उसे समतल बनाया और सफाईकी व्यवस्था की । यह काम धीरे-धीरे होनेवाला और बहुत मुश्किल था, परन्तु वे लोग जुटे रहे । जैसे जैसे कामकी प्रगति होती गई और एकके बाद दूसरी कठिनाई हल होती गई, वैसे वैसे आरम्भमें जिन्हें शंका थी वे भी इन लोगोंके उत्साहसे प्रभावित होने लगे । अदृश्य रूपमें उदासीनता और निराशाका भूत भागने लगा। कुछ लोगोंने सहायता देनेका प्रस्ताव भी रखा। कार्यकर्ता भारी कठिनाइयोंके बावजूद जो काम कर रहे थे, उसमें मुसलमान तक दिलचस्पी लेने लगे और उसकी कदर करने लगे। गांधीजीके पहुंचने तक सड़क बना ली गई, प्रार्थना-भूमि तैयार कर ली गई और सफाईकी बढ़िया व्यवस्था हो गयी; यही नहीं इससे उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रके लोगोंमें फिरसे साहस भी आ गया और गला घोटनेवाले वायुमंडलमें प्राणप्रद ताजी वायुका संचार हो गया। धीरे धीरे अव्यवस्थामें से व्यवस्थाका जन्म होने लगा।

गांधीजीकी नोआखालीकी यात्रामें बंगाल सरकारने उनकी रक्षाके लिए सुरक्षाके लम्बे-चौड़े उपाय किये थे । जीपों, सशस्त्र मोटरों और ट्रकोंके साथ सशस्त्र पुलिस और सेनाके आ जानेसे स्थानीय मुसलमानोंमें आतंक पैदा हो गया। बाजारमें अफवाहें फैलने लगी। उनमें से एक यह भी थी कि गांधीजी 'गुंडों' की एक फौज लेकर आ रहे हैं। नोआखालीमें जिसे भी लोग नापसन्द करते हों उसके लिए 'गुंडा' शब्द ही काममें लिया जाता है ! गांधीजीके चौमुहानी पहुंचने पर कई प्रमुख स्थानीय मुस्लिम लीगी उनसे मिले । उनको आश्चर्यके साथ प्रसन्नता हुई जब गांधीजीने उनसे कहा कि आपकी तरह मुझे भी पुलिस और सेनाका मोह नहीं है।

एक हिन्दू नौजवानने, जो चौमुहानीमें गांधीजीसे मिला, पूछा, "मौजूदा परिस्थितियोंमें हम लोगोंमें सुरक्षितता और आत्म-विश्वास कैसे पैदा कर सकते हैं?"

"बहादुरीसे मरना सीख कर । सेना और पुलिसको भूल जाओ । उनका आधार झूठा है।"

"परन्तु हम तो रोषसे जल रहे हैं।"

"तो अपने रोषको अपने ही विरुद्ध आजमाओ।"

उस नौजवानने जरा कटुताके साथ पूछा, "हम किससे अपील करें? कांग्रेससे, लीगसे या ब्रिटिश सरकारसे ?"

"इनमें से किसीसे भी नहीं। अपनेसे ही अपील करो, और इसलिए ईश्वरसे अपील करो।"

"हम तो हाड़-मांसके आदमी हैं। हमें कोई भौतिक आधार चाहिये।"

"तो अपने ही हाड़-मांससे अपील करो । उसका सारा मैल धोकर उसे पूरी तरह शुद्ध कर लो।"

एक महिला कार्यकर्त्री गांधीजीके पास आई । वह पहले आतंकवादी थी। उसे स्त्रियोंकी दशा पर बहुत दुःख हो रहा था। उसने पूछा, "निराश्रितोंके पुनर्वासके बारेमें आपके क्या विचार हैं?"

"उन्हें आसाम और पश्चिम बंगालमें न भेज कर उनके भीतर साहसका संचार करना चाहिये, ताकि वे निर्भय होकर अपने पुराने घरोंमें बने रहें।"

"यह कैसे संभव है?"

"तुम्हें उनके बीच रहकर उनसे कहना चाहिये: 'हममें से एक एक आदमी मर जायगा, परन्तु तुम्हारा बाल भी बांका न होने देंगे ।' तब तुम पूर्व बंगालमें वीरांगनाएं उत्पन्न कर सकोगी।"

महिला कार्यकर्त्रीने उत्तर दिया, "एक बार हमारा भी यही विचार था।?"

गांधीजीने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "मुझे परवाह नहीं यदि तुम्हारे क्षेत्रके ५०० परिवारोंमें से प्रत्येकका वध कर दिया जाय । यहां तो तुम्हारी २० प्रतिशत आबादी है, जब कि बिहारमें मुसलमान केवल १४ प्रतिशत हैं। . . ."

"वे जानते हैं कि वहां उन्हें कोई नहीं सतायेगा।"

"वहां तो उनकी हत्या और भी क्रूर ढंगसे हुई है। और इस बार स्त्रियों पर भी अत्याचार हुए हैं।"

"यदि सरकार राशन न दे, तो क्या करें? . . ."

"इतनी कष्ट-निवारण संस्थाएं जो पड़ी हैं। . . . राशन खरीदा जा सकता है, परन्तु प्रतिष्ठा और स्वाभिमान नहीं खरीदा जा सकता। मुझे ऐसा लगता है कि बंगाल सरकार भी इस चीजको आगे नहीं बढ़ने देना चाहती। यह सबक बिहारने नहीं, बंगालकी काली करतूतोंने सिखाया है। सरकार स्तब्ध हो गयी है।"

महिला कार्यकर्त्रीने अपनी प्रारम्भिक शंकाशीलताको छोड़ कर कहा: "महात्माजी, आपने हमारे सामने एक नयी दिशा खोल दी है। हमें अपनी रगोंमें मानो नया खून दौड़ता मालूम होता है।"

चौमुहानीकी साधारण आबादी ५ हजारसे अधिक नहीं थी। परन्तु गांधीजीके पहुंचनेके दिन शामकी प्रार्थना-सभामें १५ हजारसे कमकी भीड़ नहीं थी। बहुत बड़ी संख्यामें लोग चारों तरफके क्षेत्रोंसे आये थे। उनमें लगभग ८० प्रतिशत मुसलमान थे। उन्हें संबोधित करते हुए गांधीजीने कहा, मैं आपके साथ क्रोधसे नहीं, दुःखसे बातें करने आया हूं। जबसे मैं बंगालमें आया हूं तभीसे मुस्लिम अत्याचारोंकी भयानक कहानियां मैं सुन रहा हूं। शहीद सुहरावर्दी, बंगाल सरकारके सारे मंत्री और लीगके नेताओंने, जो मुझसे कलकत्तेमें मिले, इन अत्याचारोंकी स्पष्ट शब्दोंमें निन्दा की है। "उनसे इस्लामके नाम पर बट्टा लगा है। मैंने कुरानका अध्ययन किया है। इस्लाम शब्दका अर्थ ही अमन या शान्ति है। मुस्लिम अभिवादन 'सलाम अलैकुम' (तुम्हें शान्ति मिले) सबके लिए एक ही है, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो या दूसरा कोई हो। नोआखाली और टिपरामें जो घटनाएं हुई हैं, उनके लिए इस्लाममें कहीं भी इजाजत नहीं है। पूर्व बंगालमें मुसलमानोंका इतना भारी बहुमत है कि उन्हें छोटेसे हिन्दू अल्पसंख्यक समुदायके रक्षक बन जाना चाहिये और हिन्दू स्त्रियोंसे कह देना चाहिये कि जब तक तुम यहां हो तब तक तुम पर कोई बुरी नजर डालनेकी हिम्मत नहीं कर सकता।"

दूसरे दिन लीगी मंत्री शमसुद्दीन अहमदने इस बातको आगे बढ़ाते हुए चेतावनी दी कि जहां मुसलमानोंका बहुमत है वहां हिन्दुओंको कत्ल कर देनेसे पाकिस्तान बनाम हिन्दुस्तानका मसला तय नहीं होगा । यही बात हिन्दू बहुमतवाले प्रदेशोंको लागू होती है । अपने नामको सार्थक करनेवाली कोई सरकार चुपचाप रहकर तमाशा नहीं देख सकती और बहुमतको अल्पमत पर अत्याचार करने अथवा उसे नेस्त-नाबूद नहीं करने दे सकती। बलात् धर्म-परिवर्तन तथा अन्य जो बुरी बातें हुई हैं वे इस्लामके विरुद्ध हैं। यह काम नोआखालीके मुसलमानोंका है कि वे हिन्दुओंको आश्वस्त करें और उनकी चिन्ताको मिटा दें । गुंडोंको उनके अपराधोंकी सजा मिलनी ही चाहिये। और सारे मुसलमानोंका यह फर्ज है कि वे गुंडोंका पता लगाने और उन्हें सजा दिलवानेमें सरकारकी मदद करें। मुझे आशा है कि कौमी आगकी इसे राखसे बंगालमें स्थायी हिन्दू-मुस्लिम-एकताकी इभारत फिरसे खड़ी हो जायगी।

रातको शमसुद्दीन अहमद कलकत्तेसे आये हुए अपने साथियों और कुछ स्थानीय प्रमुख मुसलमानोंके साथ गांधीजीसे मिले। उन्होंने शरणार्थियोंके अपने अपने गांवोंको लौट जानेके प्रश्नकी गांधीजीसे चर्चा की। मुसलमान मित्रोंसे से एकने सुझाया कि फिरसे विश्वास पैदा करनेके लिए हिन्दू नेताओंको मुसलमानों द्वारा शरणार्थियोंसे अपने गांवोंको लौट जानेके लिए की जानेवाली अपीलोंका समर्थन करना चाहिये । परन्तु गांधीजीने कहा कि ऐसी अपीलोंका कोई फल नहीं निकलेगा। पहले उचित सुरक्षितता स्थापित होनी चाहिये और इसकी गारंटी मुसलमानोंकी ओरसे मिलनी चाहिये।

२

जब दोनों संसदीय सचिवों, जिला-मजिस्ट्रेट और पुलिस-सुपरिटेंडेंटके साथ ९ नवम्बरको गांधीजी चौमुहानीसे भीतरी भागमें प्रवेश करनेके लिए निकले, तब रास्तेमें हर जगह धानके हरेभरे खेत लहराते नजर आते थे। इस साल ऐसी बढ़िया फसल हुई थी जैसी पिछले १२ सालोंसे जिलेमें कभी नहीं हुई थी। परन्तु प्रकृतिकी इस उदारताको मानवकी घोर निर्दयताने कलंकित कर दिया था। फसल पकनेको आ गई थी, परन्तु जिन्होंने धान बोया था उनमें से अधिकांश

फसल काटनेके लिए वहां थे ही नहीं। कुछ लोग मारे गये थे और दूसरे लोग सुरक्षाके लिए भाग कर भिन्न भिन्न शरणार्थी-छावनियोंमें चले गये थे। शरणार्थियोंको पुनः अपने घरोंमें बसानेका प्रश्न सरकारी अधिकारियों और विविध कष्टनिवारण संस्थाओंके दिमागको परेशान कर रहा था। यदि विस्थापित लोग जल्दी अपने घरोंको नहीं लौटते, तो धान और सुपारीकी खड़ी फसलें मालिकोंकी अनुपस्थितिमें या तो नष्ट हो जाती या चुरा ली जातीं। समस्या कठिनाइयोंसे भरी हुई थी।

मुलाकातका पहला गांव गोपाइरबाग था । यहां सुपारी और नारियलके पेड़ोंके घने कुंजोंके बीच एक मैदानमें हिन्दू परिवारोंके झोंपड़ोंके पांच समूह थे और उनके चारों तरफ लगभग पचास गुना अधिक मुस्लिम परिवार थे। इनमें से एक धनवान पटवारीका मकान था। उसकी जायदादकी कीमत कई लाख रुपये थी। नीलम जैसे नील गगनकी छायामें रेशम जैसे केलेके पत्तोंने फैलकर शानदार मेहराबका रूप ले लिया था। सब ओर प्रकृतिका सौन्दर्य बिखरा हुआ था। वायुमें आनन्दप्रद ताजगी और ठंडक थी। परन्तु मानवीय दृश्य देखकर लहू जम जाता था। उपद्रवोंके दिनोंमें एक सबसे भयंकर हत्याकांड यहां हुआ था। तेईसमें से इक्कीस पुरुष क्रूरतासे मार डाले गये थे। जो दो जीवित रहे वे हत्याकांडके समय किसी न किसी तरह भाग कर निकल गये थे। चौकके एक कोनेमें वध किये गये पुरुषोंकी लाशोंका ढेर लगाकर उसे जला दिया गया था। जो शरीर किसी समय रक्त और मांससे प्राणवान थे, उनके अब जले हुए अवशेष रह गये थे और भयंकर दुर्घटनाकी गवाही दे रहे थे। कुछ झोंपड़ोंकी सीढ़ियों पर खूनके धब्बे मौजूद थे। बहुतसे घरोंके कच्चे फर्श खोद डाले गये थे—शायद गाड़ी हुई नकद रकम या गहनोंकी तलाशमें। मौतकी दुर्गन्ध उस स्थान पर बुरी तरह मंडरा रही थी । वह सर्वनाशका चित्र था। इस हत्याकाण्डको संगठित करनेवाला कासिम अली नामका एक नजदीकका पड़ोसी ही था। वह शाही वायुसेनामें नौकरी कर चुका था और विश्वविद्यालयका ग्रेजुएट था। गांधीजी गये तब वह फरार था।

लौटते समय गांधीजी दत्तापाड़ामें ठहरे जहां जिलेका एक बड़ेसे बड़ा कष्ट-निवारण केन्द्र काम कर रहा था। वहां शरणार्थियोंकी संख्या ५००० से ऊपर थी। वहां जिला-मजिस्ट्रेट, पुलिस-सुपरिटेंडेंट, संसदीय सचिवों और कुछ स्थानीय मुस्लिम लीगी नेताओंके साथ विस्थापितोंको

वापस घर भेजनेके बारेमें एक सम्मेलन हुआ। गांधीजीने उसमें पहले दिनकी शामकी चर्चाका सूत्र फिर हाथमें लिया। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि हर गांवमें एक भला हिन्दू और एक भला मुसलमान अपने घरोंको लौटनेवाले शरणार्थियोंकी रक्षाकी जिम्मेदारी ले। वे शपथपूर्वक यह घोषणा करें कि वापस आनेवालोंके साथ हम कोई बुरा व्यवहार न होने देंगे; इसके बदले वे अपना बलिदाना करनेको तैयार रहेंगे। जब यह गारंटी मिल जायगी, तो लोग अपने घरोंको लौट जायंगे। गांधीजीके प्रस्तावसे सब चकित हो गये। सबसे अधिक आश्चर्य दंगेके शिकार बने लोगोंके प्रतिनिधियोंको हुआ। उन्हें तो यह आशा थी कि गांधीजीके पहुंचने पर अधिक पुलिस और अधिक सेना आ जायगी, शायद फौजी कानून घोषित हो जायगा और समाज-विरोधी तत्त्वोंको, खास तौर पर उनके सरदारोंको, सबक सिखानेके लिए कठोर उपायोंका प्रयोग किया जायगा।

जिला-मजिस्ट्रेटने कहा कि उन्हें अपने अफसरोंसे सलाह लेनी पड़ेगी। उनके विशेष कष्ट-निवारण अधिकारीने सुझाया कि पहले अपराधी तत्त्वोंको यहांसे हटाना चाहिये। कई उपस्थित लोगोंने बताया कि किस प्रकार उन्हें लूटा गया और बलात् धर्मभ्रष्ट किया गया। एक विशेष ग्राम-मंडल (विलेज यूनियन) को लिया गया और वहांकी घटनाओंका ब्योरा मांगा गया। मंडलके अध्यक्षने बताया कि उन्होंने अपने गांवमें शान्तिकी रक्षाके लिए भरसक कोशिश की, परन्तु "बाहरके" लोगोंने आकर यह सब किया और अपने पड़ोसियोंको बचानेके मेरे प्रयत्न बेकार गये। एक संसदीय सचिवने उनसे साफ साफ कहने और जिन अपराधियोंने ये अपराध किये थे उनके नाम बतानेके लिए कहा। ठीक उसी समय वहां उपस्थित लोगोंमें से किसीने कहा कि ग्राम-मंडलके अध्यक्षके भाईने लूट और आगजनीमें सक्रिय हिस्सा लिया था, स्वयं अध्यक्षने ऐसे अपराधोंको उत्तेजना दी थी और लूटपाट वगैरा चली उस बीच वे मौजूद भी थे। मंडलके अध्यक्षने कहा कि "मैं निर्दोष हूं। गांधीजी और दूसरे लोग इसकी जांच कर सकते हैं। वे मुझे निरपराध पायेंगे ।" गांधीजीने उनसे कहा, "आपके खिलाफ बहुतसी शिकायतें हैं। मैं यहां कोई मुकदमा चलाने या फैसला देने नहीं आया हूं। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि अगर आपने गलती की हो, तो आपको अपनी गलती स्वीकार कर लेनी चाहिये।" यह पूछे जाने पर कि क्या वे स्वयं कोई गारंटी देंगे अथवा ऐसा कोई भला मुसलमान तलाश कर लेंगे, जो उनके गांवमें वापस आनेवाले

विस्थापितोंकी सुरक्षाके लिए किसी भले हिन्दूके साथ मिलकर जमानत दे दे, वे बोले कि मैं ऐसी कोई गारंटी नहीं दे सकता। मैं अकेले दम ऐसी घटनाओंको कैसे रोक सकता हूं?

गांधीजीका सुझाव अधिकारियोंको भी पसन्द नहीं आया। वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि दो व्यक्ति सारे गांवकी सुरक्षाके लिए कैसे असरकारी जमानत दे सकते हैं। गांधीजीने उन्हें समझाया कि मेरे हेतुके लिए इतना काफी होगा कि जो व्यक्ति जामिन बनें वे यह प्रतिज्ञा करें कि उनके आश्वासनका भंग होगा तो वे मर जायंगे, परन्तु जीवित या उसके निष्क्रिय साक्षी नहीं रहेंगे। गांधीजीने कहा: "आप तो मुझे आवश्यक मुसलमान ढूंढ़ दीजिये। हिन्दू मैं प्राप्त कर लूंगा।"

पुलिस-सुपरिटेंडेंट अब्दुल्लाने कहा कि जब तक मैं यहां हूं नोआखालीमें ऐसी बातें फिरसे नहीं होने दूंगा। इस पर गांधीजी बोले, अगर आप इतना आश्वासन देते हैं तो मैं मान लेता हूं कि मेरा अपना काम पूरा हो गया। आपको इतना ही याद रखना चाहिये कि अगर इस आश्वासनके बाद फिर वही पुराना किस्सा दोहराया गया, तो मैं आपके दरवाजे पर आत्महत्या करूंगा ! सब लोग हंसे। परन्तु गांधीजीकी मंडलीमें से एकके कान खड़े हो गये। वे सुचेता कृपलानीके पास गये और उनके कानमें कहा कि पुलिस-सुर्परिटेंडेंट गांधीजीको एक बहुत गम्भीर जिम्मेदारीमें फंसा रहा है। मान लोजिये कि नोआखालीमें वह शान्ति कायम न रख सका, तो गांधीजी आमरण उपवास कर सकते हैं। "वे लोग इस बातको समझते मालूम नहीं होते कि वे कितना बड़ा खतरा मोल ले रहे हैं। बापूको वे जानते नहीं हैं।" सुचेताने इशारेको समझ लिया और गांधीजीने जो कुछ कहा उसका पूरा फलितार्थ उपस्थित लोगोंको समझाया। गांधीजी मुस्करा दिये। अधिकारियोंके चेहरे गंभीर हो गये। अब्दुल्लाका चेहरा सबसे गंभीर हो गया। अब्दुल्लाने स्पष्टता की कि अपने विभागमें मेरी नजरके सामने मैं कोई दंगे नहीं होने दूंगा, इतनी ही गारंटी मैंने दी है। मेरी हाजिरीमें अगर दंगे फूट पड़ें, तो उन्हें शान्त करनेके प्रयत्नमें मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगा दूंगा।

सरकारी अधिकारियोंने यह साबित करनेकी कोशिश की कि सब जगह सलामती है; कोई नई घटनाएं नहीं हो रही हैं और हत्याकांड उतना गम्भीर नहीं हुआ था जितना कि

समाचारपत्रोंमें बताया गया है। उपस्थित लोगोंमें से एकने बताया कि उस दिन दो स्वयंसेवक गांधीजीकी प्रार्थना-सभासे घर लौटते समय लापता हो गये थे । क्या पुलिस-सुपरिंटेंडेंट और दूसरे अधिकारी उनका पता लगा सकते हैं? वे चुप रहे। उन लड़कोंमें से एककी लाश तीन दिन बाद एक खालमें तैरती हुई पाई गई।

पुलिसके विरुद्ध भी शिकायतें थीं। यह कहा गया कि पुलिस बदमाशोंसे अक्सर मिली हुई दिखाई देती है और इसलिए उनकी धर-पकड़ करनेमें कम उत्साह बताती है, जब कि हिन्दुओंके विरुद्ध स्थानीय मुसलमान सामनेसे जो मुकदमे दायर कर रहे थे उनके चालान वह उत्साहसे कर रही थी। कई हिन्दुओं पर यह अभियोग लगाया गया कि उन्होंने मसजिदों और मुस्लिम घरोंको आग लगाई थी, जो वर्तमान परिस्थितिमें तो स्पष्ट ही बेहूदा बात मालूम होती थी।

कुछ लोगोंने पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टके विरुद्ध खुले आरोप लगाये। ये आरोप उपद्रवोंके पहले और उपद्रवोंके बीच उसके आचरणसे संबंधित थे। परन्तु वह इन आरोपों पर केवल तिरस्कारपूर्वक मुस्करा दिया। उसके माथे पर एक भी बल नहीं पड़ा।

इसके बाद अपराधियोंकी धर-पकड़का प्रश्न लिया गया। पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टने शिकायत की कि उसके पास पुलिसका जत्था पूरा नहीं है और इससे उसके काममें बाधा पड़ती है। “सेनाकी सहायता लेनेके बारेमें क्या हुआ ? ”वह एक भिन्न कहानी थी। चौमुहानीसे मोटरमें आते हुए कैप्टन नियाजी नामक एक पंजाबी मुसलमान सैनिक अफसर उसी जीपमें मेरे साथ था। वह सेनाकी कठिनाइयोंका वर्णन मेरे सामने कर रहा था। वह बर्माकी लड़ाईमें लड़ चुका था और अपने साहस और सूझ-बूझके कारण उसने नाम कमा लिया था। मैंने उससे पूछा, क्या यह सच है कि कुछ ही दिन पहले एक ऐसा आदमी, जिसकी जोरोंसे तलाश हो रही है, जो गोपाइरबागके हत्याकांडका संगठक और संचालक था और जो फरार माना जाता है, दत्तपाड़ा सैनिक छावनीमें कुछ अफसरोंके साथ चाय और सिगरेट पीता हुआ देखा गया था ? उसका उत्तर था, “हमारे पास आनेवाले हर आदमीका इतिहास हमें कैसे मालूम हो? ” मैं हक्काबक्का रह गया । मैं बोला, यह तो मैं पहली ही बार सुन रहा हूं कि कोई भी व्यक्ति किसी सैनिक छावनीमें चला जा सकता

है, सिगरेट पी सकता है, गपशप लगा सकता है और अफसरोंके साथ चाय पीकर चला जा सकता है और छावनीके अधिकारियोंको कुछ पता ही नहीं चल पाता उसके बारेमें ! वह चुप रहा। मैंने अपनी बात जारी रखी: "आपने बर्माके जंगलोंकी लड़ाईको तो कुछ नहीं समझा। तब क्या आप मुझसे यह कहना चाहते हैं कि यहांका प्रदेश बर्माके जंगली प्रदेशसे अधिक कठिन है? " उसने उत्तर दिया, "हां।" "और क्या आप चाहते हैं कि मैं यह विश्वास कर लूं कि जापानी छापामारोंको वशमें करनेके बाद आप यहांके स्थानीय आदमियोंके सामने पंगु हो गये हैं !" वह भड़क उठा: "वहां सिपाहीगीरी थी, यहां गन्दी राजनीति है । इससे हमें घृणा होती है । अपनी जीपके लिए एक नारियलका पेड़ गिरा कर सड़क साफ करनेके लिए मुझे आधी दर्जन रुकावटें दूर करनी पड़ती हैं।" और उसने मुल्की अधिकारियोंको जीभर कर गालियां दे डालीं। सेनाको पूरी आजादी नहीं दी गई। मुल्की अधिकारी सेनाके काममें सहायता करनेके बजाय उसमें रुकावटें डालते थे और उनके प्रयत्नोंको असफल बनाते थे।

जब मैं यह कहानी गांधीजीको सुना रहा था तब उपस्थित लोगोंमें से एक आदमी खड़ा हुआ और उसने शिकायत की कि जहां कहीं भी तलाश करनेवाला दल (सर्च पार्टी) गिरफ्तारियां करने जाता वहां वांछित मनुष्योंको पहलेसे ही उसका पता लग जाता और वे उससे बचकर निकल जाते थे। सुचेताने कहा कि किस तरह उन्होंने देखा कि सेनावालोंके साथ जानेवाली पुलिस कभी कभी सीटी बजा कर अथवा और किसी पूर्व-निश्चित संकेतके द्वारा उन्हें चेतावनी दे देती थी, जिससे मालूम होता था कि अपराधी तत्त्वोंके साथ किसी न किसी तरह पुलिस मिली हुई थी।

पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टने बीचमें ही कहा कि पुलिस और सेनाके थानोंके दो दो मीलकी त्रिज्यामें स्थित गांव "सुरक्षित" हैं । गांधीजीने सुझाया कि उन "सुरक्षित" स्थानोंका नाम बताया जाय और छोटे पैमाने पर उन स्थानोंके भीतर पुनर्वासका काम आरम्भ किया जाय । जिला-मजिस्ट्रेट घबराये : "यदि हम कुछ स्थानोंको 'सुरक्षित' बता दें, तो दूसरे स्थान 'अरक्षित' हो जाते हैं।" गांधीजीने उत्तर दिया, "परन्तु आज तो सब अरक्षित हैं।" अन्तमें जिला-मजिस्ट्रेटने सुझाया कि शरणार्थियोंको "श्रद्धाके एक कृत्य" के रूपमें अपने गांवोंको लौट जाना चाहिये । परन्तु गांववालोंने आपत्ति की। उन्होंने कहा, अपराध करनेवाले अब भी गांवोंमें आजादीसे घूमते हैं ।

हम कैसे वापस जाकर उनके बीचमें फिरसे रह सकते हैं, जब तक हमें यह भरोसा न हो जाय कि हमारा जीवन सुरक्षित रहेगा ? मजिस्ट्रेटने उन्हें वचन दिया कि सेना और पुलिस हर जगह गश्त लगाती रहेगी और उनकी आवश्यक रक्षा करेगी। उन्होंने यह भी वचन दिया कि यदि वे अपने गांवोंको लौट जायं, तो उन्हें राशन दिया जायगा और सरकार यथासंभव जल्दीसे जल्दी उनके घर फिरसे बना देनेका प्रबन्ध करेगी । गांधीजीने बीचमें ही कहा, "यथासंभव जल्दीसे जल्दी" वाली बात काम नहीं देगी। सरकारको एक समय-पत्रक बना देना चाहिये और नष्ट हुए घरोंके पुनर्निर्माणका समय निश्चित हो जाना चाहिये। उन्होंने सुझाया कि सरकारको मकान बनानेका सामान देना चाहिये और स्थानीय मुसलमानोंको अपनी नेकनीयतीके सबूतके तौर पर मुफ्त और स्वेच्छापूर्ण श्रमदान करना चाहिये।

इसके बाद सम्मेलन बिखर गया और बातचीत सामान्य हो गई। उसमें जिला-मजिस्ट्रेटने संयोगवश बताया कि विधान-सभाका एक मुस्लिम सदस्य "रेडक्रॉसके स्वयंसेवकों" की आड़में एक निजी सेना तैयार कर रहा था और उन्हें (जिला-मजिस्ट्रेटको) उसकी संख्याको कम करके ठीक अनुपातमें ला देना पड़ा। "रेडक्रॉसके इन स्वयंसेवकों" में से बहुतसे दरअसल हत्या और आगजनीके अभियुक्त थे और बादमें ये समाचार मिले कि वे आवागमनको रोक रहे थे, हिन्दू परिवारोंको तंग कर रहे थे और नहरोंमें से गुजरनेवाली नावोंकी तलाशी ले रहे थे, इत्यादि इत्यादि।

इस बीच गांधीजीकी दूसरे दिनकी यात्राके कार्यक्रमके बारेमें कमरेके एक कोनेमें एक और चर्चा शुरू हो गई थी। संसदीय सचिवोंमें से एकने दूसरेको अलग ले जाकर पूछा कि अगले दिन वह गांधीजीके साथ भीतरी इलाकेमें जायगा या नहीं । उसने यह भी कहा, "मेरे खयालसे हमें उनके साथ जाना चाहिये।" दूसरेने उत्तर दिया, "आप चाहें तो जा सकते हैं, मैं तो नहीं जाऊंगा। हमें मतदाताओंका सामना करना पड़ेगा।" और उसने अपने साथीके हाथमें एक मुस्लिम लीगी अखबारकी कतरन रख दी, जिसमें बंगालके मंत्रियोंको "मि. गांधीकी सेवामें उपस्थित रहनेके लिए" आड़े हाथों लिया गया था और केन्द्रीय मुस्लिम लीगसे उन पर अंकुश रखनेको कहा गया था । इस पर वे दोनों जिला-मजिस्ट्रेकके पास गये और उससे कहा कि

"तबोयत खराब होने" के कारण अगले दिन वे गांधीजीके साथ नहीं जा सकेंगे। जिला-मजिस्ट्रेटने आंख मटकाते हुए मुझे अलग ले जाकर कहा, "मुझे आशा है कि यह कूटनीतिक बीमारी नहीं है !"

गांधीजीके हाथोंमें एक बंगालीमें छपा परचा दिया गया, तो उन्होंने दुःखसे कहा: "देखो क्या हो रहा है !" वह परचा धर्म बदल कर मुसलमान बने हुए एक व्यक्तिके द्वारा प्रकाशित किया हुआ माना जाता था । उसमें उसने कहा था: "हमने स्वेच्छासे इस्लाम स्वीकार किया है" और इस्लाम एक सुन्दर धर्म है !

शामको दत्तपाड़ामें १० हजारसे अधिक हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एक सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने कहा, यह हिन्दू और मुसलमान दोनोंके लिए शर्मकी बात है कि हिन्दुओंको इस ढंगसे अपने घरोंसे भाग जाना पड़ा | मैं जानता हूं कि हिन्दुओंको बहुत कष्ट सहन करना पड़ा है और वे अभी भी कष्ट सहन कर रहे हैं। परन्तु पुरानी बातोंको याद करनेसे कोई फायदा नहीं होता । उन्हें जो कुछ हुआ उसके लिए क्षमा कर देना चाहिये और उसे भूल जाना चाहिये; और यदि आवश्यक आश्वासन मिल जाय तो हृदयोंमें साहस रख कर अपने घरोंको लौट जाना चाहिये।

श्रोताओंमें से एक मुसलमान भाईने कहा, हमने तो पहले ही आश्वासन दे दिया है कि हम हिन्दुओंकी देखभाल करेंगे, परन्सु हिन्दू हमारा विश्वास नहीं करते। गांधीजीने उत्तर दिया, आपको हिन्दुओंके अविश्वासका कारण समझ कर उसकी कद्र करनी चाहिये और उनका डर दूर करना चाहिये। एक हिन्दू शरणार्थीने खड़े होकर पूछा, अब हम मुसलमानोंके आश्वासन पर भरोसा कैसे कर सकते हैं? जब उपद्रवका खतरा था तब उन्होंने हमारी देखभाल करनेका वचन दिया था, परन्तु बादमें वे हमारी रक्षा नहीं कर सके । और यदि ५० भले मुसलमान उस अवसर पर गांवमें हमें नहीं बचा सके, तो अब एक भला मुसलमान हमें कैसे बचा सकेगा ? इसके अलावा, अब घर ही कहां रह गये हैं कि हम लौटकर वहां जा सकें ? हमारा तो सर्वस्व लुट गया है। क्या हम वापस जाकर जंगलमें रहें ? गांधीजी बोले कि सरकारने वचन दिया है कि जब वे

अपने घरोंको लौट जायंगें, तो उनके झोंपड़े फिरसे बना दिये जायंगे और उन्हें अन्न-वस्त्र भी दिया जायगा। भूतकालमें कुछ भी हुआ हो, अब अगर एक भला मुसलमान और एक भला हिन्दू प्रत्येक गांवमें आपकी हिफाजतकी जिम्मेदारी ले लेते हैं, तो आप उनके वचन पर भरोसा कर सकते हैं; क्योंकि इसके पीछे गांवके सारे मुसलमानोंका सामूहिक निमंत्रण और उनके सद्भावका आश्वासन होगा । अगर आपको अब भी डर है, तो आप कायर हैं; और कायरोंकी सहायता तो ईश्वर भी नहीं कर सकता।

३

दूसरे दिन १० नवम्बरको गांधीजी अपनी छावनी चौमुहानीसे दत्तपाड़ा ले गये, ताकि भीतरी भागमें दंगोंके अधिक शिकार हुए गांवोंको देखा जा सके। शामकी प्रार्थना-सभामें, जिसमें लगभग ८० प्रतिशत मुसलमान थे, गांधीजीने ईश्वरके नामकी पवित्र करनेवाली महिमाका वर्णन किया और कहा, वह पारसमणिसे भी अधिक शक्तिशाली है। “पारसमणिके लिए कहा जाता है कि वह लोहेको सोना बना देती है। . . . परन्तु ईश्वरका स्पर्श आत्माको पवित्र बना देता है। . . . पारसमणि हम सबके अंतरमें है।” मैं मुसलमान भाइयोंसे कहता हूं कि आप अपने हृदय टटोलें और मुझे बतायें कि क्या आप सचमुच यह चाहते हैं कि हिन्दू वापस आयें और मित्र तथा पड़ोसी बन कर आपके बीच रहें ? “आप मुझ पर विश्वास करें या न करें, मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं हिन्दू और मुसलमान दोनोंका सेवक हुं। मैं यहां पाकिस्तानसे लड़ने नहीं आया हूं। यदि भारतके भाग्यमें बंटवारा लिखा है, तो मैं उसे नहीं रोक सकता । परन्तु मैं आपसे कहना चाहता हूं कि ताकतसे पाकिस्तान कायम नहीं किया जा सकता। . . . मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे कहता हूं कि वे अपने हृदय टटोलें; और यदि वे हिन्दुओंके साथ मित्र बन कर नहीं रहना चाहते, तो खुले तौर पर ऐसा कह दें । उस सूरतमें हिन्दुओंको पूर्व बंगाल छोड़ कर और कहीं जाना होगा । शरणार्थी सदा ही शरणार्थी बन कर नहीं रह सकते। सरकार अनिश्चित काल तक उन्हें खिला नहीं सकती। वे आजकी तरह लम्बे अर्से तक एक तन्दुरुस्त आदमीको जिन्दा रखनेके लिए रोज जितना अनाज चाहिये उसके बजाय आधेसे भी कम अनाज पर गुजर नहीं कर सकते, जब तक कि अन्नकी कमी पूरी करनेके लिए मछली, कोई सागभाजी या और कोई

चीज उन्हें न मिले। परन्तु यदि पूर्व बंगालका प्रत्येक हिन्दू चला जाता है, तो भी मैं पूर्व बंगालके मुसलमानोंके बीच ही रहूंगा। मैं बाहरसे कोई खुराक नहीं मंगाऊंगा और जो कुछ वे मुझे देंगे, तथा जिसे लेना मैं उचित समझूंगा, उसीसे मैं अपना निर्वाह कर लूंगा। इसके विपरीत, अगर आप चाहते हों कि हिन्दू आप लोगोंके बीच ही रहें, तो आपको उनसे कह देना चाहिये कि उन्हें रक्षाके लिए सेनाकी ओर न देखकर अपने मुसलमान भाइयोंकी ओर देखना चाहिये। उनकी बहन-बेटियां और माताएं आपकी बहन-बेटियां और माताएं हैं और उनकी रक्षा आपको अपने प्राणोंसे करनी चाहिये। आपको मेरी बात पर गौर करना चाहिये और मुझे बताना चाहिये कि आप वास्तवमें क्या चाहते हैं। मैं हिन्दुओंको वैसी ही सलाह दूंगा।"

एक सप्ताहसे अधिकके अर्ध-उपवासके कारण गांधीजी शरीरसे थक गये थे । वे रोज ६०० कैलरीसे भी कम पोषण लेते थे । अपनो शक्तिको टिकाये रखनेके लिए उन्हें इस प्रस्तावसे सहमत होना पड़ा कि उनकी मंडलीके कुछ साथी उन्हें एक डंडे पर लटकाई हुई कुरसी पर बैठा कर प्रार्थना-भूमि तक ले जायं । उनकी आवाज दुर्बल थी और चेहरे पर गहरी पीड़ाकी छाया घिर आई थी। परन्तु उनके भाषणमें रोष अथवा अधीरता लेशमात्र भी नहीं थी । उसमें क्षमा और प्रेम ही भरा रहता था। उन्होंने कठोरतम सत्य लोगोंसे कहा, कुछ भी छिपाकर नहीं रखा, कोई चीज दबाई नहीं और किसी बातमें लल्लोचप्पो भी नहीं की । फिर भी उनकी वाणीसे किसीको आघात नहीं पहुंचा । श्रोताओंको ऐसा ही महसूस हुआ जैसे उनकी अन्तरात्मा उनसे बोल रही हो । उन्होंने प्रेमभरी पोड़ाकी जो वाणी सुनी उसने किसीको नहीं छोड़ा । उसमें सबके लिए समान प्रेम और समान वेदना भरी थी। यह श्रोताओंकी अन्तरात्माके प्रति एक आतुर पुकार थी। जो चीज हृदयसे निकली वह ठेठ हृदय तक पहुंच गई।

११ नवम्बरको गांधीजी नोआखोला, सोनाचक और खीलपाड़ा गांवोंको देखने गये। ये सब रामगंज पुलिस थानेके भीतर थे। यह यात्रा कुछ तो मोटरसे और कुछ नावसे हुई। नावोंको खालोंके भीतरसे बड़ी मुश्किलसे खेया जा सका, क्योंकि पानीमें बढ़नेवाली लतायें उनमें इतनी घनी फैली हुई थीं कि उन्होंने खालोंका मार्ग रोक दिया था। नोआखोलामें एक हिन्दू घरानेके ८ आदमियोंकी हत्या हुई बतायी जाती थी। उनमें से एक १५ वर्षका लड़का था। घर लगभग सभी

जला दिये गये थे। घरोंके चारों ओर खड़े सुपारी और नारियलके पेड़ आगसे झुलस गये थे। एक घरमें, जहां लड़केका वध किया गया था, उसकी पुस्तकें और ताजी लिखी हुई कापियां आंगनमें बिखरी पड़ी थीं। जो लोग मारे नहीं गये अथवा भाग नहीं गये, उनका धर्म-परिवर्तन कर दिया गया था। उनमें से एक पुरुष बहरा और गूंगा था, जो दयाजनक संकेतोंसे एक चिथड़ेमें बंधे हुए अपनी चोटीके बाल दिखाता था। उसकी चोटी जबरदस्ती काट ली गई थीं, लेकिन वह अभी तक उससे चिपटा हुआ था। थोड़ीसी स्त्रियां जो रह गई थीं, सब रो और चिल्ला रही थीं। सारा दृश्य हृदय-विदारक था।

जब गांधीजी अपनी गम्भीर निरीक्षण-यात्राके बाद उस विनष्ट मकानसे बाहर निकले, तो एक तिब्बती कुत्ता—जो हमेशा विषादपूर्ण मौनमें उस स्थानके चक्कर लगाता दृष्टिगोचर होता था—आया और एक हल्की-सी आवाजसे गांधीजीका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगा। वह कुछ कदम दौड़ता, फिर लौट आता और उसके पीछे कोई न जाता तो फिर इशारा करता था। गांधीजीके साथी उस कुत्तेके विचित्र व्यवहारसे चक्करमें पड़ गये थे और उसको भगा देना चाहते थे। गांधीजीने उन्हें रोक कर कहा : "देखते नहीं कि कुत्ता हमसे कुछ कहना चाहता है?" वे कुत्तेके पीछे पीछे हो लिये। वह उन्हें मानवके एकके बाद एक तीन नर-कंकालों और कई खोपड़ियों और हड्डियोंके पास ले गया, जो जमीन पर इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। उसने अपने स्वामीका और घरके अन्य कई आदमियोंका दंगेके दौरान वध होते देखा था। तभीसे वह उस स्थानके इर्दगिर्द मंडराता रहता था और जिस काली करतूतका वह साक्षी बना था उसे प्रकाशमें लानेका प्रयत्न करता रहा था। उस पशुकी अद्भुत बुद्धि पर और अपने मृत स्वामीके प्रति उसकी मूक निष्ठा पर सब कोई चकित थे।

सोनाचकमें गांधीजी एक बाड़ी देखने गये, जिसमें १०० से अधिक मकान थे। उसे लूट लिया गया था और जला दिया गया था। परिवारके मंदिरको भ्रष्ट करके नष्ट कर दिया गया था। जब गांधीजी उन टूटी हुई मूर्तियोंके पास पहुंचे, जो पगडंडियों पर और मंदिरके भग्नावशेषोंमें बिखरी हुई पड़ी थीं, तो एकदम रुक गये और कुछ देरके लिए पूजाके भावसे चुपचाप खड़े रहे। यहां भी स्त्रियोंका वही रोना और चिल्लाना सामने आया।

दूसरे दिन शामकी प्रार्थना-सभामें अधिकांश श्रोता शरणार्थी थे। गांधीजीने पुनः उनके पुनर्वासका प्रश्न छेड़ा । एक मौलवी साहब खड़े हुए और अतिशयोक्तिपूर्ण भाषामें कहने लगे : यह देख कर कि हमारे हिन्दू भाई हमें छोड़कर पूर्व बंगालसे सामूहिक रूपमें चले जायंगे, मुसलमानोंको "दु:ख और भय भी" हो रहा है। मुझे विश्वास है कि यदि विस्थापित लोग वापस चले आयें, तो "हजारों" मुसलमान उनका फिरसे अपने यहां स्वागत करनेको तैयार होंगे । गांधीजीने उनकी अतिशयोक्ति पर उन्हें टोका : इस संकटके समय जरूरत १०० फीसदी सचाईकी है । जहां तक निराश्रितोंके घर लौटनेका सवाल है, जैसा कि मौलवी साहबने सुझाया है, उनके लिए यह इतना आसान नहीं है जितना मौलवी साहब समझते हैं। मैंने दंगोंके शिकार बने लोगोंके भयभीत चेहरे देखे हैं। एक बार उन्हें जबरदस्ती मुसलमान बनाया गया था और उन्हें डर है कि कहीं फिर ऐसा न हो। जब तक मुस्लिम लीग पूरा सहयोग न दे तब तक उन्हें फिरसे बसानेकी कोई योजना काम नहीं कर सकती ।

१३ नवम्बरको दत्तपाड़ाके सम्मेलनमें यह चर्चा फिर शुरू हुई। उसमें संसदीय सचिव, जिला-मजिस्ट्रेट, पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट और कुछ अन्य अधिकारी भी थे। इनके अलावा, कष्ट-निवारण संस्थाओंके प्रतिनिधि, शरणार्थी और स्थानीय मुसलमान भी मौजूद थे। जो मौलवी साहब पिछले दिनकी प्रार्थना-सभामें बोले थे, उन्होंने बताया कि मुसलमान हिन्दुओंको भगाना नहीं चाहते; उलटे वे स्वयं सुरक्षितता अनुभव नहीं करते, क्योंकि निर्दोष होते हुए भी कई प्रतिष्ठित मुसलमान गिरफ्तार कर लिये गये हैं; और हिन्दुओंके साथ मुसलमानोंकी दोस्तीके रास्तेमें यही असली रुकावट है। गांधीजीने उत्तर दिया, मेरी समझमें नहीं आता कि इससे हिन्दुओंके साथ अच्छे संबंध स्थापित करनेमें बाधा कैसे हो सकती है? उलटे, इससे तो हिन्दुओंके साथ दोस्ती करने और उनका विश्वास प्राप्त करनेकी प्रेरणा मिलनी चाहिये, क्योंकि इससे निर्दोष मुसलमानोंको फंसानेका कोई कारण नहीं रह जायगा। इस बातका हमारे सामने जो प्रश्न है उसके साथ वस्तुत: कोई सम्बन्ध ही नहीं है। "जब बहुतसे लोगोंने अपराधमें भाग लिया हो, तब यह स्वाभाविक ही है कि कुछ निर्दोष आदमी भी अपराधियोंके साथ फंस जायं। दुनियाभरमें ऐसा ही होता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होता कि अपराधियोंके खिलाफ कोई कार्रवाई न

की जाय।" इसका उपाय यह है कि मुसलमान हिन्दुओंके साथ सलाह-मशविरा करके जो लोग सचमुच अपराधी हैं उनकी सर्व-सम्मत सूचियां तैयार करें। उस हालतमें किसी निर्दोष व्यक्तिको हानि नहीं होगी। अधिकारियों और स्थानीय मुसलमानोंकी सचाईकी खरी कसौटी यह है कि सच्चे अपराधियोंको सजा दिलाई जाय।

सम्मेलनमें उपस्थित मुस्लिम लीगके सदस्योंको संबोधित करते हुए गांधीजी आगे कहने लगे, "मैं यहां आपका सहयोग लेने आया हूं। आपका दल शक्तिशाली है। यहां जो घटनाएं हुई हैं उनसे इस्लामका अच्छेसे अच्छा रूप या बुरेसे बुरा रूप भी प्रगट नहीं होता । वह तो इस्लामके निषेधकी बात हुई। पहला सवाल जो हमें तय करना है वह यह है कि हिंन्दुओं और मुसलमानोंमें सहयोग हो सकता है या नहीं। मैंने शहीद सुहरावर्दीको उन बातोंकी जानकारी दे दी है, जिनके कारण शरणार्थियोंके अपने गांवोंमें लौटनेमें रुकावट हो रही है। कल मैंने विनाशका जो दृश्य देखा, वह भयंकर था। इन चीजों पर लीपापोती नहीं की जा सकती । इनके खिलाफ जोरदार कार्रवाई करनी पड़ेगी।"

मंत्री शमसुद्दीन अहमद मुख्यमंत्री और उनके साथियोंसे विचार-विनिमय करनेके लिए कलकत्ता चले गये थे। जब तक बंगाल सरकारके विचार मालूम न हो जाते तब तक आगे कोई प्रगति नहीं हो सकती थी। प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। यदि नोआखालीमें हिन्दू मुसलमानोंके साथ साथ रह सकते हों, तो मातृभूमिका अंगभंग किये बिना शेष भारतमें भी दोनों समुदायोंका सह-अस्तित्व संभव था। इस प्रकार नोआखालीकी चुनौतीके जवाब पर भारतके भाग्यका आधार था।

४

गांधीजीके नोआखाली मिशनका पहला दौर गोमाटोली और नंदीग्राम नामक दो और गांवोंकी यात्रासे पूरा हुआ। विनाशका जो दृश्य नोआखाली और खीलपाड़ामें उन्होंने देखा था वही यहां भी उनके सामने आया। नंदीग्राम राखका ढेर बन गया था; लगभग ६०० घर, पाठशालाका एक भवन, एक छात्रालय और एक अस्पताल जला कर खाक कर दिये गये थे।

१४ नवम्बरको गांधीजी अपनी छावनी दत्तपाड़ासे काजिरखिल ले गये । यह स्थान विनाशके ठीक बीचमें था । मार्गमें वे शाहपुर ठहरे, जो उपद्रवोंका आरम्भ बिन्दु था। यहां एक सार्वजनिक सभाका प्रबन्ध किया गया था और बड़ी संख्यामें लोगोंकी उपस्थितिकी आशा रखी गई थी | परन्तु जब गांधीजी वहां पहुंचे, तो बहुत कम लोग दिखाई दिये। बादमें मालूम हुआ कि यह उपद्रवोंमें प्रमुख भाग लेनेवाले 'तानाशाह' (फ्यूहरर) का अड्डा था और उसके आदमियोंने यह अफवाह फैला दी थी कि गांधीजीके साथ पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट और सशस्त्र पुलिस रहेगी और इस अवसरका उपयोग गिरफ्तारियां करनेके लिए किया जायगा। इससे डर कर मुसलमान सभामें नहीं आये थे।

काजिरखिलमें गांधीजीकी छावनी वहांके एक सम्पन्न हिन्दूके कुछ हद तक विनष्ट हुए घरमें रखी गई । उस समय वहां कोई रहता नहीं था। स्वयंसेवकोंके एक अग्रिम दलने उसकी सफाई करके उसे रहने लायक बना दिया था। १४, १५ और १६ नवम्बरको अपने प्रार्थना-प्रवचनोंमें गांधीजीने कहा, अपने चारों ओरके प्राकृतिक दृश्यमें मुझे अवर्णनीय शान्ति प्रतीत होती है, परन्तु यहांके नर-नारियोंके मुख-मंडल पर शान्ति नहीं दिखाई देती । मेरी आंखोंमें आंसू नहीं हैं। जो आदमी आंसू बहाता है, वह दूसरोंके आंसू नहीं पोंछ सकता । परन्तु मेरा हृदय अवश्य रोता है । मैंने दक्षिण अफ्रीकामें वहांकी सरकारके विरुद्ध २० वर्ष तक और पिछले ३० वर्ष तक भारतमें विदेशी सरकारके विरुद्ध घोर लड़ाई लड़ी है। परन्तु भाई-भाईकी जो लड़ाई आप लोग लड़ रहे हैं, वह मेरे अनुभवमें सबसे भयंकर लड़ाई है । इससे मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया हूं। परन्तु मैं बंगालसे खाली हाथ न जानेका निश्चय कर चुका हूं। मेरे शब्दकोशमें "निराशावाद" शब्द कहीं नहीं है। बंगालमें मुसलमानोंने हिन्दुओंकी हत्या और उससे भी बुरी बातें की हैं और बिहारमें हिन्दुओंने मुसलमानोंकी हत्या की है। जब दोनों पक्ष दुष्टता करते हैं तब तुलना करनेसे या यह कहनेसे कि कौन किससे कम दुष्ट है या किसने उत्पात आरम्भ किया, कोई लाभ नहीं होता । अगर आप बदला लेना चाहते हैं तो यह कला मुझसे सीखिये। मैं भी बदला लेता हूं, लेकिन वह दूसरी किस्मका होता है। मैंने बचपनमें एक गुजराती कविता पढ़ी थी,

जिसमें कहा गया था: “जो तुम्हें एक प्याला पानी दे, उसे दो प्याले पानी देनेमें कोई गुण नहीं है। असली गुण तो बुराईके बदले भलाई करनेमें ही है।” उत्तम प्रतिशोधकी मेरी कल्पना यह है।

काजिरखिलके दक्षिण-पूर्वमें ४ मील पर दसघरिया गांव था। गांधीजीके आश्रमकी एक भक्त मुसलमान महिला अम्तुस्सलाम गांधीजीके पहले वहां चली गई थी । गांवकी लगभग सारी हिन्दू स्त्रियां, जो उपद्रवके दिनोंमें मुसलमान बना ली गई थीं, अपने मूल धर्ममें वापस आ गई थीं। गांधीजीके आगमनके अवसर पर वे सब मिल कर आईं और तालके साथ रामधुन गाकर उन्होंने गांधीजीका स्वागत किया। गांधीजीके शान्ति-मिशनके प्रभावसे थोड़े ही अर्सेमें समस्त नोआखाली जिलेमें जबरदस्ती मुसलमान बनाया हुआ कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं रहा, जो अपने मूल धर्ममें वापस न आ गया हो ।

कुछ समयसे गांधीजीने देखा कि यद्यपि आरम्भमें हिन्दुओंसे मुसलमान उनकी प्रार्थना-सभाओंमें अधिक संख्यामें नजर आते थे, किन्तु अब वे उनसे और उनकी सभाओंसे कन्नी काट रहे थे। दसधरियाके मुसलमानोंकी सभामें गांधीजी द्वारा की गई अपीलके जवाबमें कुछ मुसलमानोंने कहा, हिन्दुओंके साथ दोस्ती करनेकी आपकी सलाह हम मान सकें, इसके पहले हमें मुस्लिम लीगके नेताओंके हुक्मकी जरूरत होगी । इस पर गांधीजीने पहले दिनका अखबार निकाला, जो संयोगवश उनके पास था, और उसमें से एक वक्तव्य पढ़कर सुनाया । उसमें जिन्नाने कहा था कि मुसलमान अपना संतुलन खो देंगे और बदलेकी भावनाके शिकार बन जायंगे, तो इससे उनका पाकिस्तानका अधिकार ही नहीं मारा जायगा, बल्कि रक्तपात और निर्दयताका ऐसा कुचक्र भी आरम्भ हो जायगा, जो उनकी आजादीके दिनको दूर धकेल देगा और गुलामीकी मियादको बढ़ा देगा। वक्तव्यके अन्तमें कहा गया था, “हमें राजनीतिक दृष्टिसे सिद्ध कर देना होगा कि हम बहादुर, उदार और विश्वसनीय हैं। . . . और पाकिस्तानी प्रदेशोंमें अल्पसंख्यकोंको मुसलमानों जितनी ही, बल्कि उससे अधिक जीवनकी, जमीन-जायदादको और इज्जत-आबरूकी सुरक्षितता प्राप्त होगी।” गांधीजी बोले, यदि जांच-पड़ताल करने पर यह मालूम हो कि मैंने जो उद्धरण पढ़कर सुनाया वह सही है, तो आपको अपने दिल टटोलने चाहिये

और अपने आपसे पूछना चाहिये कि आपने जिन्नाके इस संदेशका पालन किया है या नहीं और वह सन्देश आपसे क्या तकाजा करता है।

१६ नवम्बरको रसद-मंत्री अब्दुल गोफरानने, जो कलकत्तेसे आये थे, गांधीजीकी प्रार्थना-सभामें भाषण दिया। वे नोआखालीके ही थे और मंत्री बननेसे पहले सरकारी वकीलका काम कर चुके थे। अपने भाषणमें उन्होंने पूर्व बंगालके हिन्दुओंको यह आश्वासन दिया कि जैसे कांग्रेस यह नहीं चाहती कि कांग्रेसी प्रान्तोंके मुसलमान अपने घरबार छोड़ कर और कहीं चले जायं वैसे ही बंगाल सरकार और मुस्लिम लीग भी नहीं चाहती कि हिन्दू पूर्व बंगालसे दूसरी जगह चले जायं। लीग यह प्रमाणित करना चाहती है कि वह इन्साफसे सरकार चलाना जानती है। आपको पुरानी बातें भूल जाना चाहिये और नये सिरेसे आरंभ करना चाहिये। आप लोगोंकी तरफसे जब कोई कष्ट भोगता है तब वह शंकाका शिकार हो सकता है। परन्तु उसे दूर करना होगा। शाहपुरमें जो शरारतभरी अफवाहें फैलाई गई थीं, उनका खंडन करनेके लिए मंत्री महोदयने श्रोतागणोंके बीच घोषणा की कि गांधीजीकी इच्छानुसार ऐसे आदेश जारी कर दिये गये हैं कि गांधीजीकी सभाओंमें आते समय, सभाओंमें उपस्थित रहते समय और घर लौटते समय किसीको गिरफ्तार न किया जाय । इस प्रकार गांधीजीकी प्रार्थना-सभाएं एक पवित्र स्थान और हृदयोंका सच्चा मिलन-स्थान बन गई।

सभा हो रही थी उसी बीच एक श्रोता खड़ा हो गया । वह चाहता था कि उसे गोफरानके भाषणका उत्तर देनेके लिए पांच मिनट दिये जायं। गांधीजीने यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की, क्योंकि वे सभाको सार्वजनिक विवादका स्थान बनने देना नहीं चाहते थे। उन्होंने कहा, आप जो कुछ कहना चाहते हैं एक पत्रमें लिख दीजिये। और यदि उसकी भाषा आपत्तिजनक न हुई, तो मैं उसे खुशीसे गोफरान साहबके पास भेज दूंगा।

दूसरे दिन शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसमें एक भी स्त्री नहीं आई थी और बहुत थोड़े हिन्दू आये थे। जांच करने पर उन्हें बताया गया कि हिन्दुओंको यह बात बुरी लगी कि पिछली शामको गांधीजीने सभामें एक श्रोताको अब्दुल

गोफरानके उद्गारोंका उत्तर नहीं देने दिया। परन्तु बादमें हिन्दू नेताओंने समझाया कि उन्होंने सभाका बहिष्कार नहीं किया था; परन्तु रविवार और हाटका दिन होनेके कारण स्त्रियोंको बाहर निकलनेमें डर लगता था, क्योंकि उन्होंने माना था कि आसपासके गांवोंसे बहुतसे मुसलमान आयेंगे और उनमें गुंडे भी होंगे । यह स्पष्टीकरण विश्वसनीय नहीं लगा । गांधीजीने उनसे कहा, विरोधके रूपमें आप मेरी सभाका बहिष्कार करते, तो मुझे परवाह न होती । परन्तु जैसा कहा गया है, यदि सभामें न आनेका कारण डर है, तो यह कायरताकी बात है । स्त्रियोंके डरनेकी बात तो समझमें आ सकती है । परन्तु क्या पुरुष भी ऐसे कायर हैं?

१८ नवम्बरकी प्रार्थना-सभामें एक लिखित सन्देश पढ़ा गया। गांधीजीने उसमें भयका विश्लेषण किया: "मैं इस प्रदेशमें जितना अधिक घूमता हूं उतना ही अधिक मुझे पता चलता है कि आपका सबसे बुरा शत्रु भय है । डरानेवाले और डरनेवाले दोनों ही उसके शिकार हैं । यह भय आपके प्राणोंको खाये जा रहा है। डरानेवाला इसलिए डरता है कि उसके शिकारमें कोई ऐसी चीज है, जो उसकी अपनी चीजसे कुछ भिन्न है । यह उसका धर्म हो सकता है या उसकी धन-दौलत हो सकती है । दूसरे प्रकारका भय लोभ अथवा परिग्रह कहलाता है । अगर आप गहराईसे खोज करेंगे, तो आपको पता चलेगा कि लोभ भी एक प्रकारका भय है। परन्तु आज तक कोई आदमी न तो ऐसा हुआ है और न होगा जो उस व्यक्तिको डरा सके, जिसने अपने हृदयसे भयको निकाल फेंका है; क्योंकि ईश्वर सदा निर्भयके पक्षमें रहता है। यदि हम केवल ईश्वरकी ही शरण लें, तो हमारा सारा भय मिट जायगा। जब तक आप अपने भीतर निर्भयता पैदा नहीं कर लेंगे तब तक इस प्रदेशमें न तो हिन्दुओंके लिए कोई स्थान होगा, और न मुसलमानोंके लिए।"

मधुपुर गांवकी स्त्रियोंके अनुरोध पर गांधीजीने दूसरे दिन मधुपुरमें स्त्रियोंकी सभा रखी । गांधीजीसे कहा गया कि गांवोंमें कुछ स्त्रियां ऐसी हैं, जो आना तो चाहती हैं परन्तु फौजी पहरेकी मांग करती हैं। गांधीजीने उनसे कहा, मैं ऐसी मांगका कभी समर्थन नहीं कर सकता । हिन्दू और मुसलमान चाहें तो उन्हें एक-दूसरेके सिर फोड़नेकी आजादी होनी चाहिये। यह पुरुष कार्यकर्ताओंका काम है कि वे स्त्रियोंसे कह दें कि हम आपका पहरा देंगे और अपने प्राण देकर

भी आपकी रक्षा करेंगे । फिर भी यदि स्त्रियोंको आनेमें डर लगे, तो उनकी कोई सहायता नहीं की जा सकती । जो लोग स्वतन्त्रतासे सुरक्षाको अधिक महत्त्व देते हैं, उन्हें जीनेका अधिकार नहीं है। मैं स्पष्ट शब्दोंमें यह कहने आया हूं कि स्त्रियोंको या तो बहादुर बनना होगा या फिर मिट जाना होगा। उन पर जो विपत्ति आई है उसका सदुपयोग करके उन्हें भयरूपी राक्षसका काला मुंह कर देना चाहिये।

५

अपने अर्ध-उपवासके बावजूद इस प्रकार जहां गांधीजी अपनेको थकाते हुए निरन्तर सरकारी अधिकारियों, मुस्लिम लोगियों, दंगेके शिकारों और स्थानीय मुसलमानोंके दिलों तक पहुंचनेका प्रयत्न कर रहे थे, वहां उनके मनमें एक निश्चय भी धीरे धीरे रूप ग्रहण कर रहा था । यद्यपि उन्होंने अभी तक आशा नहीं छोड़ी थी, फिर भी प्रत्येक गांवके लिए एक भले मुसलमान और एक भले हिन्दूके जामिन बन जानेकी उनकी योजनाका मुस्लिम लीगियोंकी ओरसे अनुकूल उत्तर नहीं मिला था । अपराधी तत्त्व हिन्दुओंको धमकियां दे रहे थे कि महात्माजी सदा उनके बीच रहनेवाले नहीं हैं। उधर हिन्दू यह देखकर अशांत थे कि अधिक पुलिस और अधिक सैनिक संरक्षणकी उनकी मांगका समर्थन करनेके बजाय गांधीजी दोनोंकी उपेक्षा करते हैं । मान लीजिये कि पुलिस और सेना कल ही अचानक हटा ली जाय, तो हम फिर गुंडोंके शिकंजेमें फंस जायंगे और अपने भूतपूर्व उत्पीड़कोंकी दया पर छोड़ दिये जायंगे। इस संभावनाके डरके मारे उनका लहू जम जाता था। सूखा मौसम तेजीसे पास आ रहा था। वे सोचते थे कि खाल जल्दी ही सूख जायंगे और उनके लिए सुगम परिवहनका एकमात्र साधन भी नहीं रहेगा। उन पर दुबारा चूहेदानी बन्द कर दी जाय, इससे पहले भाग जानेमें ही उनकी सुरक्षा है। उनके इस डरका कोई उपाय ढूंढ़ना था।

१९ नवम्बरको मुख्यमंत्री शहीद सुहरावर्दी, उनके दो साथी, संसदीय सचिव और कुछ स्थानीय मुसलमान गांधीजीसे मिले । बातचीत सामान्य और कोई रास्ता निकालनेके ढंगकी थी। उन्होंने सुझाव रखा कि दोनों समुदायोंके बीच सद्भावना स्थापित करनेके उपायके रूपमें उन

भागोंसे अतिरिक्त पुलिस और सेना हटा ली जाय । उन्हें साश्चर्य प्रसन्नता हुई कि इन दोनों प्रस्तावोंके बारेमें गांधीजी खुशीसे तत्काल सहमत हो गये। उनकी अहिंसाका यही तकाजा था । परन्तु जब गांधीजीकी ओरसे उन लोगोंसे पूछा गया कि क्या वे प्रत्येक गांवमें लौटनेवाले शरणार्थियोंकी हिफाजतको जमानत देनेके लिए एक ईमानदार मुसलमान दे सकेंगे, तब एक मंत्रीनें उत्तर दिया, एक नहीं, सारे मुसलमान सामुदायिक रूपमें जमानत देनेको मौजूद हैं । गांधीजीने कहा, बहुत अच्छी बात है । जितने अधिक लोग हों उतना ही अच्छा। परन्तु सबको जिम्मेदारीमें दरअसल किसीकी भी जिम्मेदारी नहीं होती। मैंने हर गांवके लिए सिर्फ एक मुसलमान और एक हिन्दू मांगा है। हिन्दू मैं ढूंढ लूंगा। क्या मुस्लिम लीगी, जिनकी बंगाल सरकार है, एक मुसलमान तलाश कर देंगे ? इसका उत्तर सम्पूर्ण मौन था। अनजाने ही उन्होंने एक ईंट फेंक दी थी । बात यह थी कि मुस्लिम लीगने न तो गांधीजीके नोआखाली आनेकी बातको अच्छा समझा था और न उनके वहां ठहरे रहनेके हेतुको । और यह आदेश कभीका सर्वत्र घूम गया था कि उनके मिशनमें कोई सहयोग न दिया जाय। बंगालका लीगी मंत्रि-मंडल गांधीजी और "बाहरकी संस्थाओं" को नोआखालीमें काम करनेकी इजाजत देकर और उपद्रव-ग्रस्त भागोंमें अतिरिक्त पुलिस और सेना भेज कर मुसलमानोंके एक वर्गमें अप्रिय बन गया था और बंगालके लीगी संगठनके प्रतिस्पर्धी गुटने इसका लाभ उठानेमें देर नहीं की थी। मुख्यमंत्री और उनके साथी मुश्किलमें फंस गये थे । वे सुसम्बद्ध रूपमें न तो सोच सकते थे, न कार्य कर सकते थे। वे गोलमोल बातें करते थे। उनके ठोस प्रस्ताव तो गांधीजीके सामने बादमें आये।

उस बीच गांधीजी चुपचाप नहीं बैठ सकते थे । उन्हें तो अपना काम करना था। १२ नवम्बरको ही वे इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि अपनी छावनी वे तोड़ देंगे, अपने तमाम साथियोंकी सेवाओंसे अपनेको वंचित कर लेंगे और उस समय तक पूर्व बंगालमें डटे रहेंगे जब तक हिन्दू और मुसलमान मेलजोल और शान्तिके साथ रहना न सीख लेंगे । उन्हें जो भी स्थानीय सहायता मिल जायगी, उसीसे वे अपना काम चला लेंगे । उनके दलके स्त्रियोंसहित सभी सदस्योंको उनके द्वारा चुने हुए एक एक पीड़ित गांवमें बैठा दिया जायगा और उस गांवके हिन्दुओंकी सुरक्षाके लिए उन्हें जामिन बना दिया जायगा। उन्होंने कहा, मेरा निर्णय मेरी मंडलीके

किसी भी सदस्यके लिए बन्धनकारक नहीं है। जो चाहें वे चले जा सकते हैं और कोई दूसरा रचनात्मक कार्य कर सकते हैं । "जिनमें मुसलमानोंके विरुद्ध दुर्भाव हो अथवा जिनके हृदयोंमें इस्लामके लिए अनादर हो या हो चुकी घटनाओंके बारेमें जो अपने रोषको दबा न सकें, उन्हें चले जाना चाहिये । वे मेरी इस योजनानुसार कार्य करके मेरे बारेमें गलतफहमी ही फैलायेंगे ।" उन्होंने घोषणा की कि जहां तक मेरा संबंध है, मेरा यह निश्चय अन्तिम है और अटल है।

इसके बाद मंडलीके सदस्योंके साथ उनकी चर्चा हुई। गांधीजीने समझाया, यदि मैं यह कदम न उठाऊंगा, तो मेरी अहिंसा अपूर्ण रहेगो। "या तो अहिंसा जीवनका धर्म है या नहीं है।" मुझे याद है कि एक मित्र यह कह कर मुझे टोका करते थे कि पतंजलिका 'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग:' (पूर्ण अहिंसाके सामने सारा शत्रुभाव विलीन हो जाता है) अहिंसा-सूत्र गलत है और उसमें सुधारकी आवश्यकता है; और 'अहिंसा परमो धर्म:' वाला वचन 'अहिंसा परमोऽधर्म:' होना चाहिये । दूसरे शब्दोंमें, हिंसा न कि अहिंसा जीवनका धर्म है । यदि इस परीक्षाके समय अहिंसामें मेरा विश्वास न रहे, तो मुझे यह संशोधन स्वीकार करना चाहिये। मेरी सारी आत्मा इसके विरुद्ध विद्रोह करती है। "बंगालकी स्त्रियोंको मैं शायद बंगालियोंसे अधिक पहचानता हूं। आज वे अपनेको कुचली हुई और लाचार अनुभव करती हैं। मेरे और मेरे साथियोंके बलिदानसे कमसे कम वे स्वाभिमानके साथ मरना सीख जायंगी। इससे अत्याचारियोंकी आंखें भी खुल सकती हैं और उनके हृदय पिघल सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि मेरी आंखें बन्द होते ही उनकी आंखें खुल जायंगी। परन्तु इसमें मुझे जरा भी शंका नहीं कि अन्तिम परिणाम यही होगा । यदि अहिंसा मिट जाती है, तो हिन्दू धर्म भी मिट जाता है।"

मंडलीके एक भाई बोले, "यह प्रश्न धार्मिक नहीं, राजनीतिक है। यह आन्दोलन हिन्दुओंके विरुद्ध नहीं, बल्कि कांग्रेसके विरुद्ध है।"

"क्या तुम समझते नहीं कि मुस्लिम लीग यह मानती है कि कांग्रेस एक शुद्ध हिन्दू संस्था है ? और तुम यह न भूलो कि मैं धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक जैसे एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न विभाजन नहीं करता । हमें शब्दोंके मायाजालमें खो नहीं जाना चाहिये। प्रश्न यह है कि यह गुत्थी

हिंसासे सुलझाई जाय अथवा अहिंसासे? दूसरे शब्दोंमें, क्या मेरी कार्य-पद्धति आजकी परिस्थितियोंमें सफल सिद्ध हो सकती है?"

मंडलीके एक और भाई बीचमें बोले, "उन लोगोंको हम कैसे समझा सकते हैं, जो हमारे खूनके प्यासे हैं? अभी उस दिन हमारे दो कार्यकर्ताओंकी हत्या कर दी गई।"

"मैं जानता हूं। परन्तु क्रोधको शान्त करना ही हमारा काम है।"

एक मित्रको भेजे पत्रमें उन्होंने लिखा, "जिस काममें मैं यहां लगा हुआ हूं, वह शायद मेरा अन्तिम कार्य हो। यदि मैं यहांसे जिन्दा और सही-सलामत लौट आया, तो यह मेरे लिए नये जन्मके बराबर होगा। मेरी अहिंसाकी जैसी अग्नि-परीक्षा यहां हो रही है वैसी पहले कभी नहीं हुई थी।" [हरिजन, २४ नवम्बर १९४६, पृ० ४१२]

*

सत्याग्रहके मार्गमें कोई पड़ाव नहीं होता, कोई विश्रामका स्थान नहीं होता । या तो सत्याग्रहीको सदा आगे बढ़ते रहना होता है या पीछे हट जाना होता है। दो दिन बाद गांधीजीने एक और महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ाया। यदि बंगालके मंत्रि-मंडल द्वारा पसन्द किया हुआ कोई मुस्लिम लीगी उन्हें अपने परिवारका आदमी समझ कर स्वीकार करनेके लिए तैयार हो, तो वे किसी मुस्लिम परिवारमें रहना चाहेंगे। उन्होंने मंत्री अब्दुल गोफरानके साथ इस प्रश्नकी चर्चा की और उनसे पूछा, क्या आप किसी मुसलमानकी सिफारिश कर सकते हैं? इस प्रस्तावसे मंत्री अचम्भेमें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि नोआखालीकी मौजूदा परिस्थितियोंमें गांधीजी ऐसे सर्वथा अपरिचित लोगोंके बीच एकाकी कैसे रह सकते हैं, जिन्हें इस बातका बिलकुल ज्ञान नहीं है कि गांधीजीकी देखभाल किस प्रकार की जाती है? गांधीजीने उत्तर दिया : "अपनी देखमाल मैं स्वयं कर लूंगा। मुझे किसीकी देखभालकी जरूरत नहीं पड़ेगी ।" "तब तो मुझे यह कहना होगा कि कोई मुस्लिम परिवार आपको रखनेके लिए तैयार नहीं है ! " मंत्रीने हंसकर उत्तर दिया।

परन्तु गांधीजीका निर्णय तो हो चुका था। उन्होंने कहा, मैं नोआखालीमें मुस्लिम आबादीके बीच पड़ा हूं। इसलिए मैं किसी हिन्दू परिवारमें ठहरना पसन्द नहीं करूंगा। यदि हिन्दू मुझे

किसी मुस्लिम लीगी भाईके साथ अकेले रहते देखेंगे, तो इससे उनमें हिम्मत आयेगी और कदाचित् उन्हें विश्वासके साथ घर लौट जानेकी प्रेरणा मिलेगी। मुसलमान भी मेरे जीवनकी निकटसे परीक्षा कर सकेंगे। "मेरी कोई वस्तु गुप्त नहीं है। वे मेरी हर बातको देखेंगे और स्वयं ही पता लगा लेंगे कि मैं उनका दुश्मन हूं या दोस्त।"

परन्तु जब तक कोई मुसलमान परिवार उन्हें स्वीकार करनेको तैयार न हो तब तक वे अपना श्रद्धाका साहस स्थगित नहीं करना चाहते थे। वे बोले, "जब मैं आगाखां महलमें नजरबन्द था तब एक बार अहिंसाके पुजारीके रूपमें भारत पर एक निबन्ध लिखने बैठ गया। परन्तु जब मैंने लिखना शुरू किया, लो आगे नहीं बढ़ सका। मुझे रुक जाना पड़ा। हिन्दू धर्मके दो पहलू हैं। एक ओर ऐतिहासिक हिन्दू धर्म है, जिसमें अस्पृश्यता है, अन्धविश्वास है, पत्थरों और प्रतीकोंकी पूजा है, पशुयज्ञ है – इत्यादि इत्यादि । दूसरी ओर गीता, उपनिषदों और पतंजलिके योगसूत्रसे सम्बन्धित हिन्दू धर्म है, जिसमें अहिंसाकी, प्राणिमात्रके साथ एकताकी तथा एक अन्तर्यामी, अविनाशी, निराकार और सर्वव्यापक ईश्वरकी विशुद्ध उपासनाकी चरम सीमा है। मेरी दृष्टिमें अहिंसा हिन्दू धर्मका मुख्य गौरव है। हमारे लोगोंने अहिंसाको यह कह कर टालना चाहा है कि वह तो सिर्फ संन्यासियोंके लिए ही है । किन्तु मैं ऐसा नहीं मानता । मैं मानता हूं कि वही **एकमात्र** जीवन-प्रणाली है और भारतको वह प्रणाली संसारको दिखानी है। लेकिन अहिंसाके सम्बन्धमें मेरी स्थिति क्या है? क्या मैं स्वयं इस अहिंसाका प्रतिनिधित्व करता हूं? यदि करता हूं तो जो धोखेबाजी और विद्वेष यहांके वातावरणको जहरीला बनाते हैं वे मिटने चाहिये। अपने साथियोंसे अलग होकर ही—उन साथियोंसे जिनकी सहायता पर मैं सदा निर्भर रहा हूं—और अपनी ही बैसाखीका सहारा लेकर मुझे अपनी शक्तिका भान होगा और मेरी ईश्वर-श्रद्धाकी परीक्षा भी होगी।" [हरिजन, ८ दिसम्बर १९४६, पृ० ४३२]

सेवाग्रामके आश्रमवासियोंको उन्होंने लिखा: "मेरा खयाल है कि तुम लोगोंको मेरे जल्दी लौट आनेकी या कभी भी लौटनेकी तमाम आशाएं छोड़ देनी चाहिये । यही बात मेरे साथियों पर भी लागू होती है । मेरे सामने भगीरथ कार्य पड़ा है | मेरी परीक्षा हो रही है । मेरी कल्पनाका

सत्याग्रह कमजोरोंका शस्त्र है या सचमुच बलवानोंका शस्त्र है? या तो मैं दूसरी बात सिद्ध कर दिखाऊंगा या इस प्रयत्नमें अपने प्राण न्योछावर कर दूंगा। यही मेरी साधना है।" [वही]

२० नवम्बरको गांधीजीने अपनी छावनी भंग कर दी और वे अपने स्टेनोग्राफर और बंगाली दुभाषिया प्रोफेसर निर्मलकुमार बोसको साथ लेकर कोलम्बसकी तरह अन्धकारपूर्ण अज्ञातका सामना करनेके लिए चल पड़े । प्रस्थानसे पहले उनकी छोटीसी मंडलीने छोटी प्रार्थना की । उनका प्रिय भजन 'वैष्णवजन तो तेने कहीए' गाया गया । अनेकोंके स्वर गद्गद हो गये, अनेकोंकी आंखें आंसुओंसे भीग गईं, जब बांसकी देहाती नाव गांधीजीको लेकर रामगंजके पुलकी मेहराबोंके नीचेसे गुजरी और श्रीरामपुरकी दिशामें दूर और दूर जाती विलीन हो गई। एक वक्तव्यमें गांधीजीने कहा:

> मैं यहां अतिशयोक्ति और झूठके बीच घिरा हुआ हूं। मैं सत्यका पता लगानेमें असमर्थ हूं। यहां लोगोंमें परस्पर भयंकर अविश्वास है। पुरानीसे पुरानी मित्रताएं भी टूट गई हैं। जिस सत्य और अहिंसामें मेरी पूर्ण श्रद्धा है और जिन्होंने मुझे ६० वर्ष तक सहारा दिया है, उनमें वे गुण नहीं दिखाई देते जो मैंने उन पर आरोपित किये हैं । उनकी परीक्षा लेनेके लिए या यह कहना अधिक सही होगा कि अपनी ही परीक्षाके लिए मैं श्रीरामपुर नामक गांवको जा रहा हूं और उन लोगोंसे अलग हो रहा हूं, जो इतने वर्ष तक मेरे साथ रहे हैं और जिन्होंने मेरे जीवनको सरल और सुखी बनाया है। . . . दूसरे कार्यकर्ता, जिन्हें मैं साथ लाया हूं, नोआखालीके एक एक गांवमें बिखर जायंगे और यदि संभव हुआ तो दोनों कौमोंके बीच शान्तिका काम करेंगे। . . .
>
> मेरा आदर्श तो यह है कि मैं किसी स्थानीय मुस्लिम लीगी परिवारमें रहूं, परन्तु . . . इस बीच मुसलमानोंके साथ उनके गांवोंमें जाकर जितना भी सम्पर्क संभव है उतना मैं स्थापित करूंगा। लीगी मंत्रियोंको मैंनें सुझाया है कि वे हर पीड़ित गांवके लिए एक ईमानदार और बहादुर मुसलमान दें, जो एक उतने ही ईमानदार और बहादुर हिन्दूके साथ रहे। . . . ऐसा कुछ किये बिना (हिन्दू शरणार्थियोंको) अपने गांवोंमें लौट जानेके

लिए राजी करना मुझे कठिन मालूम होता है । जहां तक मुझे मालूम हुआ है . . . अभी तक गांवोंमें अल्पसंख्यक जातिके लिए जीवन सरल और सुरक्षित नहीं है। इसलिए वे लोग अपने घरों, फसलों, खेत-खलिहानों, बाग-बगीचों और वातावरणसे दूर सरकारके दिये हुए अपर्याप्त और असंतुलित अन्न पर निर्वाह करना पसन्द करते हैं।

बंगालसे बाहरके अनेक मित्रोंने मुझे लिखा है कि मैं उन्हें शान्तिकार्यके लिए नोआखाली आनेकी अनुमति दूं। परन्तु मैंने उन्हें आनेसे दृढ़तापूर्वक रोका है। जब मुझे इस अभेद्य अंधकारमें प्रकाश दिखाई देगा तब मैं उन्हें खुशीसे आने दूंगा । इस बीच . . . मैंने पत्र-व्यवहारको, 'हरिजन' पत्रोंके भारी कामको और दूसरी सारी प्रवृत्तियोंको स्थगित कर देनेका निश्चय किया है। . . .

मैं नहीं कह सकता कि यह असमंजस कब तक रहेगा। लेकिन इतना मैं कह सकता हूं कि मेरा उस समय तक पूर्व बंगाल छोड़नेका इरादा नहीं है जब तक कि मुझे यह सन्तोष न हो जाय कि दोनों कौमोंमें परस्पर विश्वास स्थापित हो गया है और दोनों अपने गांवोंमें फिरसे शान्तिपूर्वक जीवन बिताने लगी हैं। इसके बिना न तो पाकिस्तानके लिए कोई अवकाश है, न हिन्दुस्तानके लिए; केवल आपसी झगड़ों और बर्बरतामें फंसे हुए भारतके भाग्यमें दासता ही लिखी रहनेवाली है।

परन्तु एक बातका आश्वासन था। डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादका एक तार मिला, जिसमें गांधीजीसे आग्रहपूर्वक अनुरोध किया गया था कि बिहारकी स्थितिमें तेजीसे सुधार हो रहा है, इसलिए उन्हें अपना अर्ध-उपवास छोड़ देना चाहिये। इस पर गांधीजीने घोषणा की कि शरीरकी स्थिति अनुकूल होते ही मैंने फिरसे साधारण आहार लेनेका निश्चय कर लिया है। यह निश्चय ठीक समय पर ही किया गया। एक मित्रको गांधीजीने लिखा: "मैं मृत्युके मुखसे बाल-बाल बचा हूं।"

कुछ दिन बाद एक पत्रमें उन्होंने लिखा: "मेरा वर्तमान मिशन मेरे जीवनका सबसे पेचीदा और कठिन कार्य है। मैं (कार्डिनल न्यूमैनके साथ) शत प्रतिशत यह सत्य गा सकता हूं: "रात अंधेरी है और मैं घरसे दूर हूं; है ईश्वर, तू मेरा मार्ग प्रकाशित कर।" मैंने अपने जीवनमें पहले

कभी इतना अन्धकार अंनुभव नहीं किया था। रात लम्बी मालूम होती है। इतनी ही सांत्वना है कि न तो मैं स्वयंको पराजित अनुभव करता हूं और न निराश अनुभव करता हूं। मैं किसी भी घटनाके लिए तैयार हूं। 'करो या मरो' की परीक्षा यहां करनी होगी। 'करो' का अर्थ यहां यह है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंको शांति और मेलजोलसे साथ साथ रहना सीखना चाहिये। अन्यथा इसे प्रयत्नमें मुझे मर जाना चाहिये। यह कार्य सचमुच कठिन है। ईश्वरेच्छा बलीयसी।" [गांधीजीका पत्र नारणदास गांधीको, ५ दिसम्बर १९४६; ५ जनवरी १९४७ के 'हरिजन' में उद्धृत]

तीसरा अध्याय
‘एकला चलो रे’

१

ढाई घंटेकी यात्राके बाद लगभग अपने सभी साथियोंसे अलग पड़े हुए महात्माको ले जानेवाली, धीरे धीरे चलनेवाली देहाती नाव श्रीरामपुर पहुंची। यह नन्हा-सा गांव रामगंज पुलिस थानेसे दो मील दूर उत्तर-पश्चिममें स्थित है। गांधीजीने युवक जैसी चपलताके साथ नावसे बाहर कदम रखा और उनका स्वागत करनेके लिए जो कुटिया तैयार की गई थी उसमें एकान्त-वासके लिए पहुंचे। उसमें प्रवेश करते ही उन्होंने तुरन्त लकड़ीके पाट पर अपनी चटाई अपने ही हाथोंसे बिछायी। यह पाट दिनमें उनके दफ्तरका और रातमें बिस्तरका काम देनेवाला था। गांधीजी वहां छह सप्ताह ठहरनेवाले थे। उन्होंने पाटके एक सिरे पर अपने स्वभावके अनुसार सुघड़ और व्यवस्थित ढंगसे अपनी पुस्तकें और कागजात जमा दिये। इस प्रकार उनका नया जीवन आरम्भ हुआ।

श्रीरामपुरमें गांधीजीका नया निवास-स्थान टीनकी छतवाली एक छोटीसी कुटिया थी। वह पानीसे भरे हुए धानके खेतों और ऊंचे सुपारी तथा नारियलके कुंजोंके बीच एक धूपवाले खुले स्थानमें खड़ी थी। बाजार और डाकघर वहांसे बहुत दूर थे। चारों ओर विनाश और निर्जनताका भयंकर दृश्य फैला हुआ था। गांवके मूल ५८२ परिवारोंमें से ३८२ परिवार मुसलमान थे और २०० परिवार हिन्दू थे। हिन्दुओंके सिर्फ ३ परिवार अब रह गये थे, बाकी सब डरके मारे भाग गये थे। गांधीजीकी बैठकके ठीक ऊपर कुटियाके भीतरी भागमें अधजला लकड़ीका काम आगजनीका सबूत दे रहा था।

गांधीजी वहां बिलकुल अकेले रहना पसन्द करते, परन्तु यह संभव नहीं था। रक्तचापके एक उपचारके रूपमें बरसोंसे गुनगुने पानीमें रोज कटिस्नान करने और मालिश करानेकी उनकी आदत रही थी। पहला बलिदान इन दो चीजोंका उन्हें करना था। इनके बजाय उन्होंने

खुद ही अपने शरीर पर थोड़ासा तेल मल लिया और गरम पानीकी बाल्टीसे लोटेमें पानी लेकर नहा लिये। बादमें उन्होंने अपनी डायरीमें लिखा, "इससे थकावट तो लगी, परन्तु बहुत अच्छा लगा। "भोजनमें अत्यन्त आवश्यक वस्तुएं ही बनाई जातीं। पावभर बकरीके दूधमें मिलाया हुआ उतना ही स्वच्छ तरकारीका रस दोपहरका उनका भोजन था । शामके भोजनमें भी ये ही चीजें रहती थीं। उसमें थोड़े अंगूर मिला लिये जाते थे।

गांधीजीकी कठिन तपस्याके बावजूद इस परिवर्तनसे उन्हें कष्ट तो हुआ । उनके पोतेकी बहू आभा गांधी नोआखाली तक उनके साथ गई थी । वह उनके लिए आदर्श परिचारिका बन गई थी। पर उसे भी उन्होंने नोआखाली जिलेके चार मंडल प्रदेशमें ठककरबापाके अधीन १६ मील दूरके एक गांवमें काम करनेके लिए भेज दिया था। उन्होंने बादमें एक पत्रमें लिखा, " मुझे स्वोकार करना चाहिये कि मैं उसकी सेवाका अभ्यस्त बनता जा रहा था। परन्तु एक विशेष व्यक्तिसे ही सेवा लेनेकी आदत तपस्याके साथ सुसंगत नहीं है।" [गांधीजीका पत्र नारणदास गांधीको, ५ दिसम्बर १९४६]

गांधीजीके प्रस्थानके समाचार उनसे बहुत पहले ही एक गांवसे दूसरे गांव तक पहुंच गये थे और प्रातःकालसे ही नर-नारियोंका एक अनन्त प्रवाह श्रीरामपुरकी दिशामें बहने लगा था। दिनभर आगंतुकोंका तांता लगा रहा। श्रीरामपुर पहुंचने पर जो लोग पहले-पहल गांधीजीसे मिले, उनमें से एकको गांधीजीने कहा, "मैं यहांके प्रत्येक निवासीके हृदयमें प्रवेश करनेके लिए यहां आया हूं ।" वह व्यक्ति पड़ोसकी एक बाड़ीका मुसलमान चौकीदार था। उसने गांधीजीसे कहा कि हम सबको उन बुरी बातोंका दुःख है जो यहां हुई हैं। परन्तु हम क्या कर सकते हैं? यह सब तो अल्लाहकी मर्जीसे ही हुआ है ! गांधीजीने उत्तर दिया, मैं भी मानता हूं कि भगवानकी इच्छा सर्व-शक्तिमान है । परन्तु व्यक्तियोंको भी अपना फर्ज अदा करना पड़ता है। मैं अपना फर्ज अदा करनेके लिए ही यहां आया हूं।

थोड़ी देर बाद एक मौलवी साहब आये और दूसरे दिन अपने घर आनेके लिए गांधीजीको उन्होंने निमंत्रण दिया। गांधीजीने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। उसके बाद एक समाज-

सेवक आये और उन्होंने पूछा कि क्या रामगंजके शरणार्थी-शिविरके शरणार्थियोंको अब श्रीरामपुर लौट आनेके लिए कहा जा सकता है। गांधीजीने उनसे कहा कि अभी उन्हें प्रतीक्षा करनी चाहिये। कुछ दिनमें मैं स्थानीय मुसलमानोंके विचार जान लूंगा और फिर ठीक सलाह दे सकूंगा।

शामकी सामूहिक प्रार्थनामें कोई एक हजार व्यक्ति आये थे। अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने कहा, मैंने हिन्दुओंको सलाह दी है कि वे अपने साहस पर निर्भर रहें । परन्तु अब तक मैं स्वयं कई साथियोंसे घिरा हुआ रहता था। लेकिन हालमें ही मैं अपने आपसे कहने लगा हूं, “अब सच्चा समय आ गया है। यदि अपने आपको जानना चाहते हो, तो अकेले निकल पड़ो ।” और इसलिए ईश्वरमें अटल श्रद्धा रखकर मैं आपके गांवमें रहनेके लिए लगभग अकेला आ गया हूं । मैं तब तक कोशिश करता रहूंगा जब तक कि सब विरोध मिट न जायगा और जो लोग सारी आशा छोड़ चुके हैं उनमें फिरसे विश्वास न आ जायगा।

प्रार्थनाके बाद शामकी सैर करते हुए गांधीजीको किसी कीड़ेने काट लिया । उस दिनकी उनकी डायरीके अन्तमें यह लिखा हुआ है: “अत्यन्त पीड़ा होती है। वजन १०६॥ पौंड है।”

दूसरे दिन वर्षा हो रही थी, इसलिए गांधीजी मौलवी साहबके घर नहीं जा सके। परन्तु उन्होंने क्षमा-याचनाके लिए प्रोफेसर बोसको भेजा। उसके बाद ५ हिन्दू लड़के आये। उनके पिता, चाचा और भाइयोंकी उपद्रवके दिनोंमें हत्या कर दी गई थी और स्वयं उनको मुसलमान बना लिया गया था। गांधीजीने उनसे विस्तारसे पूछा कि क्या क्या घटनाएं हुई और सब बातें लिख कर देनेको कहा। इसके बाद उनकी दुनिया गरीबों, छोटे आदमियों और अधिकांश बेघर निर्धनों, मालियों, चौकीदारों, नाइयों, लोहारों, जुलाहों, बढ़इयों और मछुवों वगैराकी बन गई । ऊंची राजनीतिके कूटनीतिज्ञों और राजनीतिज्ञोंके संसारको फिलहाल उन्होंने पीछे छोड़ दिया था। इससे पहले उन्होंने आम लोगोंकी सेवाके लिए राजनीतिका उपयोग किया था। अब उन्होंने साधारण लोगोंकी सेवाके द्वारा देशकी राजनीतिको ढालकनेका कार्य शुरू किया। जनताका

मानस तैयार करनेकी इंजीनियरिंग विद्याके क्षेत्रमें यह एक अनोखा प्रयोग था। यह काम वे पहले भी अलग अलग ढंगसे कर चुके थे और उसके आश्चर्यजनक परिणाम आये थे।

श्रीरामपुरके निवास-कालमें गांधीजीके जीवनकी झांकी उस ब्योरेवार डायरीसे मिलती है, जो वे अचूक नियमितताके साथ रखते थे। उसमें से कुछ बातें नमूनेके रूपमें नीचे दी जाती हैं:

श्रीरामपुर, २१ नवम्बर, १९४६

गीताके अध्यायोंके सिवा प्रात:कालीन प्रार्थना मैंने ही कराई। प्रार्थनाके बाद क. ख. और ग. को पत्र लिखें। हावड़ा मस्जिद (नोआखाली) के एक मौलवीसे सुबहकी सैरके समय मेरी बातें हुईं। इसके बाद च. और छ. (दो हिन्दू कार्यकर्ता) आये। उनसे लम्बी बातें हुईं। उनसे मैंने कहा कि लोगोंको पूरा साहस करके अपने गांवोंमें लौट जाना चाहिये, खास तौरसे उन गांवोंमें जहां सलामती और सुरक्षाकी गारंटी देनेवाला एक अच्छा हिन्दू और एक अच्छा मुसलमान हो। . . .

शरीरकी मालिश अपने हाथों की, परन्तु (समयाभावसे) हजामत छोड़ देनी पड़ी। दोपहरके खानेमें दहीके साथ भाजीका रस लिया। कुछ मुसलमान . . . शामकी प्रार्थनासे पहले मुझसे मिले; कुछ और प्रार्थना-सभाके बाद आये। स्थानीय मुसलमानोंके बारेमें पूछताछ की। . . . एम. और उनके मित्रोंसे दो घंटे बातें कीं। भोजन वही जो कल था, परन्तु अंगूर नहीं थे।

श्रीरामपुर, २२ नवम्बर, १९४६

४ बजे सुबह उठा | गीतापाठमें दो घंटे लगे। पाठ करनेवालेका उच्चारण बहुत असन्तोषजनक था।

आर. को लिखा कि उनके लड़केको (जिसकी पत्नी कुछ समय पूर्व मर गई थी) दुबारा शादी नहीं करनी चाहिये और यदि करे ही तो विधवासे करे।

सुबह ७॥ बजे एक मुस्लिम बाड़ीमें गया। रास्ता लम्बा था। वहां पहुंचनेमें पूरे २० मिनिट लगे—जाने और आनेमें ५५ मिनिट लगे।

कलकी तरह खुद ही मालिश की। . . . १०॥ बजे कई मिलनेवाले आये। उनके चले जानेके बाद पेट पर मिट्टीकी पट्टी लगा कर झपकी ली । एक घंटे तक काता। अब्दुल्ला (पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट) कुछ और लोगोंके साथ शामकी रामगंजकी सभाके लिए आये। ४ बजे उनके साथ रामगंजके लिए रवाना हुआ। रामगंज ५ बजकर २० मिनिट पर पहुंचा। सभा रातके १०॥ बजे तक होती रही। अन्तमें कुछ शब्द मैं बोला । . . . लौटते वक्त नावमें शामकी प्रार्थना की और फिर कुछ देर सोया। थोड़ा दूध रामगंज जाते हुए लिया। लौटने पर गरम पानी पिया। श्रीरामपुर आधी रातको पहुंचा।

श्रीरामपुर, २३ नवम्बर, १९४६

(सुबहकी प्रार्थनामें) गीताके अध्यायोंका पाठ भी मैंने ही किया। भविष्यमें पी. गीताका पाठ तभी करेगा जब वह उच्चारणमें काफी प्रवीण हो जायगा। प्रार्थनामें एक अंग्रेजी भजन गवाया।

मालवीयजीकी मृत्यु सम्बन्धी वक्तव्य पूरा किया। ७॥ बजे सुबह एक मुसलमानके घर गया। घरवालोंके साथ कुरानके बारेमें बात की। बादमें उन्होंने नारियलों और संतरोंकी भेंट भेजी ।

मालिश एन. ने की और मैं मालिशको मेज पर ४० मिनिटकी नींद ले सका। दोपहरके खानेमें पत्ताभाजी बहुत कड़वी थी। उसे एक औंस नारियलके दूधके साथ खाया। . . . इसके बाद नींद लेनेकी कोशिश की, परन्तु नहीं आई। मतली और पेटमें दर्द रहा। अपने आप एनिमा लिया। . . . रामगंज जाते हुए मिट्टीकी पट्टी रख कर सो लिया। ... जोरके दस्त और उलटियां होनेके कारण नावको ठहराना पड़ा। . . . बादमें आराम मालूम हुआ। . . . ५ बजे शामको रामगंज पहुंचा। सभाकी कार्रवाईके बीच छुट्टीके समय एक और दस्त हुआ । परन्तु अन्तमें कठिनाईके बिना सभामें भाषण दे सका। रातको ८।

बजे श्रीरामपुरके लिए रवाना हुआ। . . . रातके ११ बजे श्रीरामपुर पहुंचा । . . . दैनिक कताईका कोटा पूरा किया — कुछ तो सभामें जाते समय नाव पर और शेष सभामें।

दैनिक कताई तो व्रतके रूपमें चलती थी । गांधीजीने कार्यकर्ताओंसे और उपद्रव-पीड़ित लोगोंसे भयकी मनोदशा पर विजय पानेके लिए और उपद्रवके शिकार बने हुए भागोंमें ध्वस्त हो चुकी समाज-व्यवस्थाका नये आधार पर पुनर्निर्माण करनेके लिए कताईकी सिफारिश की।

१ दिसम्बरको दिनभरकी व्यस्तताके बाद : "कमरमें दर्द रहा। बिस्तर पर लेटे लेटे 'हरिजन' के लिए लिखे एक लेखको फिरसे देखा। बीचमें सो लिया ।" दाहिने हाथके थक जाने या काम करनेमें असमर्थ हो जानेकी हालतमें बायें हाथसे लिखनेका गांधीजीने अभ्यास कर लिया था। २ दिसम्बरको उन्हें थकावट मालूम हुई, परन्तु पड़े पड़े काम करते रहे । उस दिनकी डायरीमें यह लिखा हुआ है: "अब तो रुकना ही होगा । बायां हाथ भी अब दुखने लगा है और उसने काम करनेसे इनकार कर दिया है। रात ९॥ बजे सो गया।"

८ दिसम्बर, १९४६ की डायरीमें अपने साप्ताहिक मौनके पालनमें भूल हो जानेका इस प्रकार उल्लेख किया गया है: "मैं देखता हूं कि मेरा मौनव्रत छिछला ही है। मौन एक बड़ी कला है, जिसमें प्रवीण होना आसान नहीं है।"

११ दिसम्बरको शामकी सैरके बाद उन्हें बहुत थकावट मालूम हुई। १२ दिसम्बरकी डायरीमें लिखा है: "थकावट बनी रहती है।" सुबहकी सैरके बाद वे बिलकुल थक गये और उन्हें बिस्तरमें लेटना पड़ा । आधी रातके करीब वे पेशाबके लिए उठे। "मालूम होता है मैं पूरा जागा नहीं था। सोचा था कि पॉट मेरे सामने होगा, परन्तु वास्तवमें वह था नहीं। . . . चौंक कर जागा । अंधेरेमें उसे टटोलने लगा । कुछ मिनिटके बाद मिल गया। . . . अंडीके तेलकी एक खुराक लेनी चाही। पी. को तीन बार पुकारा । . . . कोई उत्तर नहीं मिला। रामनाम लेकर सो जानेकी कोशिश की । अन्तमें सफल हुआ।" और फिर जुलाबका सहारा लेना पड़े इसके लिए मानो दुःख अनुभव करते हुए आगे डायरीमें लिखते हैं: "जब मैं दूसरोंके लिए रामनामको सब रोगोंकी रामबाण दवा बताता हूं, तो मैं स्वयं उसी पर भरोसा करके सन्तोष क्यों नहीं कर सकता ?"

कभी कभी दिनमें १६ घंटेकी कड़ी मेहनत हो जाती थी । इसके अलावा, कभी कभी वे अपने साथियोंकी भोजन-व्यवस्थाको देखनेके लिए भोजनालयमें भी चले जाते थे और पाकशास्त्रमें प्रवीण होनेका दावा करते हुए उन्हें सूचनायें भी देते थे । अपना बिस्तर वे स्वयं ही बिछानेका आग्रह रखते थे, अपने कपड़ोंकी मरम्मत आप ही करते थे और बादमें अपना सफरका सामान खुद ही बांधते थे। उस सामानमें उनकी जरूरतकी सारी चीजोंका समावेश होता था। अक्सर अखबारोंके लिए अपने प्रार्थना-प्रवचनोंकी रिपोर्ट स्वयं ही लिख डालते थे और जब एक बार उन्हें मालूम हुआ कि काजिरखिलके गांधी-शिविरके मुख्य केन्द्रका भेजा हुआ हिंसाब सन्तोषजनक नहीं है, तो अपने संयमके एक अंगके रूपमें उन्होंने दैनिक हिंसाब भी अपनी डायरीमें लिखना शुरू कर दिया।

जनतासे अपील की गई थी कि उन्हें कोई पत्र न लिखे, फिर भी उनकी दैनिक डाक बढ़ती ही गयी। साधारणत: उसे निबटानेके लिए लगभग आधे दर्जन अच्छे प्रशिक्षित सहायकोंकी जरूरत होती थी । अब तो उनके पास केवल प्रो. निर्मलकुमार बोस और उनका स्टेनोग्राफर ही थे। अपनी आत्मत्यागकी योजनाके अंगके रूपमें उन्हें लगता था कि यथासम्भव उन्हें सचिवोंके नाते दोनोंकी इस सहायतासे भी स्वयंको वंचित कर लेना चाहिये । उन्होंने साथियोंको यह समझानेकी कोशिश की कि आपको अपने लिखने-पढ़नेके कामको तो संयोगवश आ पड़ा काम समझना चाहिये । मेरे लिए आपका असली मूल्य तो इस बातमें है कि दंगेके शिकार बने हुए जिन लोगों और मुस्लिम जनताके बीच आप हैं उनकी सेवामें आपका क्या उपयोग हो सकता है। इसलिए उन्होंने अपनी अधिकांश डाकको निबटानेका काम भी अपने ही कंधों पर ले लिया है।

तीसरे पहरका समय आम तौर पर दिनका सबसे व्यस्त भाग होता था और वह साथी कार्यकर्ताओं, अधिकारियों, मुलाकातियों और जो स्थानीय हिन्दू और मुसलमान उनसे अकेले या समूहमें मिलने आते थे उनसे मुलाकातें करनेमें बीतता था। भोजनके समय भी गांधीजी अकेले नहीं रह सकते थे। या तो कोई न कोई मिलनेवाला रहता था या दूसरा कोई काम होता था ।

सुबह-शामकी सैरका उपयोग निराधारों, पीड़ितों और बीमारोंसे मिलनेमें और खास तौर पर स्थानीय मुसलमानोंसे परिचय करनेमें होता था।

उपद्रवोंके दिनोंमें पीड़ित क्षेत्रके लगभग सभी दवाखाने लूट लिये गये थे और नष्ट कर दिये गये थे। डॉक्टर ज्यादातर हिन्दू थे। वे सब भाग गये थे, इसलिए कोई दवादारू अथवा डॉक्टरी सहायता मीलों तक पीड़ित क्षेत्रमें प्रेम अथवा रुपयेसे भी उपलब्ध नहीं हो सकती थी। इससे गांधीजीको ग्रामजनोंके सामने सादी बीमारियोंके लिए अपनी प्राकृतिक चिकित्साकी सिफारिश करनेका अवसर मिल गया। वे खुद ही उनके प्राकृतिक चिकित्सा करनेवाले डॉक्टर बन गये। थोड़े ही अर्सेमें गांधीजीने लोगोंका विश्वास प्राप्त कर लिया और लोग चर्चा करने लगे कि इस सन्त पुरुषके हाथमें तो जादू है । परन्तु यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा और रामनामकी रोग-निवारण करनेकी शक्तिमें, जहां तक उनका अपना संबंध था, गांधीजीकी अपार श्रद्धा थी, फिर भी वे कट्टर बन कर उसे दूसरों पर थोपते नहीं थे । इसलिए जब काला आजारसे पीड़ित दो मुसलमान लड़के उनके पास लाये गये, तो उन्होंने डॉक्टर सुशीलाको बुलाया। डॉ. सुशीलाने दोनों जातियोंके गरीबोंके लिए चांगीरगांवमें एक मुफ्त दवाखाना खोल लिया था। उन दोनों ल्ड़कोंको जरूरी इंजेक्शन लगानेके लिए डॉ. सुशीलाको रोज लगभग ६ मील पैदल चलकर आना पड़ता था।

*

२० दिसम्बरको गांधीजीने श्रीरामपुरका अपना एक महीनेका निवासकाल पूरा किया। ४ सप्ताह पहले उन्होंने लगभग अकेले ही प्रस्थान किया था और उनके दुर्बल शरीरको उनकी लम्बी बांसकी लाठीका ही सहारा था। एक अखबारी समाचार इस प्रकार था कि, “(अब) वे यहांकी दोनों कौमोंके मित्र हैं। गांवके मुसलमान और हिन्दू उनसे सहायता लेनेके लिए उनके पास आनेमें हिचकिचाते नहीं हैं । वे दोनोंके मित्र, दार्शनिक और पथदर्शक हैं । . . . वे अपने एकाकी जीवनमें सब कुछ अपने हाथसे ही करनेका प्रयत्न करते हैं । . . . वे अपना भोजन आप

बनाते हैं। . . . अपनी चीजोंको खुद व्यवस्थित रखते हैं, अपने शरीरकी मालिश स्वयं करते हैं और स्वयं ही अपने डॉक्टर भी हैं।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, २२ दिसम्बर १९४६]

एक और समाचार इस प्रकार था: "महात्मा गांधी अपना अधिकांश समय गरीबों और बीमारोंकी देखभालमें खर्च कर रहे हैं । कल सुबह वे फिर एक मुसलमानके घर गये, जहां उन्होंने डॉक्टर सुशीला नय्यरके दो बीमारोंको देखा । तीसरे पहर वे एक और मुसलमानके घर दवादारूकी मदद देने गये । शामको वे अखबारवालोंकी छावनीमें जाकर रोगशय्या पर पड़े हुए एक पत्रकारको देख आये। [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, ५ दिसम्बर १९४६]

तीसरा अखबारी समाचार था: "अब वे अपनी शक्तिके साथ प्रयोग कर रहे हैं . . . (यह देखनेके लिए कि) वे बहुत ज्यादा थके बिना कितनी दूर पैदल चल सकते हैं । वे तेज चलते हैं । पिछले शनिवार वे गांवकी तंग सड़क पर बहुत अच्छी गतिसे चले और दो खतरनाक पुलोंको उन्होंने पार किया । ४० मिनिटमें लगभग २ मीलकी यात्रा की । उन्होंने अपनी सुबह-शामकी सैरको भी बढ़ा दिया है। . . ." [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, २१ दिसम्बर १९४६]

कुछ समाचार तो चिन्ता पैदा करनेवाले थे । उनमें से एक था: "गांधीजीको आजकल बहुत ज्यादा काम रहता है और (इसलिए) उन्होंने काम करनेके घंटोंमें लगभग एक घंटेकी वृद्धि की है। प्रातःकाल ४ बजेसे ही उनका कार्य आरम्भ हो जाता है । उन्होंने प्रार्थना-सभामें भाषण नहीं दिया . . . क्योंकि वे बहुत थक गये थे।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डड, २२ दिसम्बर १९४६]

अन्तिम समाचार यह था: "गांधीजीको यह पसन्द नहीं है कि कार्यकर्ता या दूसरे लोग उन्हें घेरे रहें। . . . विशेष परिस्थितिके सिवा रात उनकी छावनीमें किसीको ठहरने नहीं दिया जाता। एक आदमी ठेठ नागपुरसे आया था, परन्तु उसका विशेष कार्य पूरा होते ही उसे तुरन्त वापस भेज दिया गया। एक बहन, जिसने उपवास कर रखा था, कल यहां आई और गांधीजीके सामने उसने उपवास तोड़ा । . . . उसे भी तुरन्त लौटा दिया गया ।" [वही]

एक बार गांधीजी एक स्थानीय मौलवीकी बाड़ीमें गये, जो आधे मील दूर थी । उससे उन्हें मालूम हुआ कि गांवकी १४०० की कुल आबादीमें से केवल एक आदमी मैट्रिक पास था, पढ़ना-

लिखना जाननेवालोंकी संख्या सिर्फ ४० थी; जब कि अर्थ समझे बिना कुरानका पाठ १००० आदमी कर सकते थे। फिर भी इस इलाकेमें सामुदायिक रूपमें धर्म-परिवर्तन किया गया और स्थानीय मुसलमानोंका यह दावा था कि यह सब "स्वेच्छापूर्वक और स्वाभाविक" हुआ था ! गांधीजीने प्रकट रूपमें विचार किया, "यहांके हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी दशा कितनी शोचनोय है ! यह भयंकर बात है कि उन्हें (मुसलमानोंको) अपने धर्मग्रंथके अर्थके बारेमें अन्धकारमें रखा जाय ।" इसके बाद, गांधीजी अपने विनीत ढंगसे कट्टरपंथी मौलानाओं और मुल्लाओंको नाराज करके भी मुसलमानोंको कुरानकी शिक्षा देनेका कोई मौका चूकते नहीं थे। मौलाना और मुल्ला लोग अपनेको कुरानकी शिक्षा देनेंका ठेकेदार समझते थे, इसलिए वे अपने क्षेत्रमें गांधीजीके हस्तक्षेप करनेसे नाराज होते थे।

एक और अवसर पर वे एक गरीब मुस्लिम परिवारमें गये । उन लोगोंने शिकायत की कि उनको गुजर चलानेमें कठिनाई होती है । इससे गांधीजी विचारमें पड़ गये । बंगालमें दरिद्रता क्यों होनी चाहिये? उन्हें याद आया कि किस तरह उन्होंने बंगालके भूतपूर्व गवर्नर श्री केसीसे कहा था कि बंगालको दरिद्र अथवा घाटेका प्रान्त बताना अपनी बुद्धि और सूझबूझका दिवाला पीटना है । उन्होंने शहीद सुहरावर्दीकि नाम एक व्यक्तिगत पत्रमें अपना हृदय उंडेल दिया:

> आप बंगालको दुनियाका नहीं तो कमसे कम भारतका सर्वोत्तम प्रान्त क्यों नहीं बनायें? प्रकृतिने बंगालको अपनी उत्तमसे उत्तम भेंट देकर बहुत बड़ी उदारता दिखाई है । उसके नारियल, सुपारी, ताड़ आदिके भव्य वृक्षों और विपुल वनस्पतिको देखकर मन उन्मत्त हो जाता है। प्रकृतिने बंगालको साहित्य, विज्ञान और संगीतके क्षेत्रमें भी धुरन्धर विद्वान देकर उतनी ही कृपा की है और . . . पंजाबकी तरह आपके प्रान्तमें भी संतुलित आबादी है। सारे बंगालमें मुस्लिम आबादी हिन्दू आबादीसे कुछ अधिक है और प्रान्तके अत्यन्त समृद्ध भाग पूर्व बंगालमें मुस्लिमोंका निर्णायक बहुमत है। . . . श्रीरामपुरके मुस्लिम भागोंमें जाकर जब मुझे पता लगा कि लड़के कुरानको तोतेकी तरह पढ़ लेते हैं, परन्तु जो कुछ पढ़ते हैं उसका अर्थ नहीं जानते, तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। वहांके मुसलमानोंसे मेरी बड़ी मित्रतापूर्ण और घनिष्ठ बातचीत हुई । उसमें मैंने देखा कि

उन लोंगोंको इस दुर्दशा पर कोई दुःख या लज्जा अनुभव नहीं होती । वहां सड़कें बिलकुल नहीं हैं । एक जगहसे दूसरी जगह पैदल जाना पड़ता है। बांसके पुल अत्यन्त सस्ते और कलापूर्ण होते हुए भी उन्हें पार करनेके लिए काफी चपलता जरूरी होती है। . . . बहुतसे तालाबोंमें पानी पीनेके लायक नहीं है। लोगोंमें स्वच्छताकी भावना नहीं है, इसलिए सुन्दर दिखाई देनेवाले तालाबोंमें पानी इतना गंदा रहता है कि मुझे उनमें नहानेका भी साहस नहीं होता। मैं जानता हूं कि थोड़ीसी ठोस शिक्षासे, जिसमें अक्षरज्ञान आवश्यक नहीं है, वे लोग तालाबोंको अच्छी हालतमें रख सकते हैं। श्री केसीने बंगालको पानी देनेकी अपनी महंगी योजनाकी चर्चामें मुझे घंटों लगाये रखा था। उस योजनाको शायद आप कभी अमलमें नहीं ला सकेंगे। परन्तु स्वच्छताकी शिक्षा और सादी इंजीनियरिंग कलासे बंगालको अपनी सामान्य जरूरतोंके लिए जितने शुद्ध पानीकी आवश्यकता होगी उतना मिल जायगा। मैं जानता हूं कि बंगाल एक घाटेका प्रान्त या गरीब प्रान्त रहे, इसके लिए कोई कारण नहीं है। भगवानने सेवाकी जो शक्ति मुझे दी है उसका उपयोग करके बंगालकी—जहां संस्कृतियोंके संघर्षके लिए कोई अवकाश नहीं है—इन अत्यन्त सादी किन्तु उतनी ही महत्त्वपूर्ण समस्यायें निबटानेमें मुझे बड़ा आनंद होगा। [गांधीजीका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, २४ दिसम्बर १९४६]

गांधीजीके लिए तो सोचनेका अर्थ कार्य करना होता था । उन्होंने तुरन्त अपने आपको नोआखालीका आदमी बनाना शुरू कर दिया। उन्होंने बंगाली भाषाके पाठ नियमित रूपसे सीखना आरम्भ कर दिया; और कोई पाठशालाका लड़का भी अपनी परीक्षाकी तैयारीके लिए उनसे अधिक लगन और परिश्रमके साथ बंगाली नहीं सीख सकता था । बंगालीके पाठ उनके लिए धार्मिक व्रत, उनके यज्ञका अंग बन गये। गांधीजी यह काम कितनी पूर्णतासे करते थे, यह उस समयकी एक डायरीके निम्नलिखित अंशसे समझा जा सकता है:

बंगाली वर्णमालाके अक्षर लिखनेका अभ्यास करनेके लिए उन्होंने अपनी नोटबुकमें छोटी कक्षाके लड़कोंकी तरह चौकोन बना लिये। जब मैंने उन्हें टोका तो उन्होंने उत्तर दिया, “मेरा शिक्षक वर्णमालाके अक्षर लिखना हमें इसी तरह सिखाया करता

था। यह उत्तम पद्धति है। लोग समझते हैं कि शालाकी पढ़ाई पूरी होने पर मनुष्य विद्यार्थी नहीं रहता । मेरे साथ इससे उलटी बात है। मैं मानता हूं कि जब तक मैं जीवित हूं तब तक मुझमें विद्यार्थीकि जैसी जिज्ञासा-बुद्धि और ज्ञान-पिपासा रहनी चाहिये।"

(सुबह) फलोंका रस लेनेके बाद वे अपनी बंगालीकी प्रारम्भिक पुस्तक लेकर पढ़ने बैठ गये। उसे पढ़ते पढ़ते १० मिनिट तक सो लिये । ७.१५ बजे जागे। ७.२५ पर हमारी दैनिक यात्रा शुरू हुई। पूरे एक घंटे चलनेके बाद हम ८.२५ को . . . पड़ाव पर पहुंचे। वहां पहुंचने पर तुरन्त वे फिर अपना बंगालीका पाठ तैयार करने बैठ गये । [मनु गांधीकी डायरी, २ फरवरी १९४७]

रातमें कितनी ही देर क्यों न हो जाय, कामका कितना ही भारी दबाव क्यों न हो, तो भी बंगाली पढ़ने और बंगाली लिखनेका अभ्यास करना गांधीजी कभी नहीं चूकते थे । लिखनेका अन्तिम अभ्यास उन्होंने ३० जनवरी, १९४८ को मृत्युसे कुछ घंटे पहले ही किया था।

२

जिस दिन गांधीजी श्रीरामपुर पहुंचे उस दिन बंगाल सरकारकी शांति-योजनाकी चर्चा करनेके लिए श्रममन्त्री शमसुद्दीन अहमद अपने एक संसदीय सचिव और कुछ मुसलमान नेताओंको लेकर गांधीजीसे मिले । योजना यह थी कि उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंमें सरकार द्वारा स्थानीय हिन्दुओं और मुसलमानोंकी शान्ति-समितियां स्थापित की जायं। गांधीजी पर मंत्रीकी ईमानदारीका गहरा असर हुआ। परन्तु अल्पसंख्यक जातिके एक स्थानीय नेताने, जो वहां उपस्थित थे, आपत्ति उठायी कि जब तक मशहूर गुंडोंको पहले गिरफ्तार न कर लिया जाय तब तक शान्ति-समितियां लोगोंमें विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकेंगी। गांधीजीने उन्हें सलाह दी कि बदमाशोंकी गिरफ्तारीका आग्रह करके उसे एक शर्त न बनायें । "शान्ति-समितियां बनने दी जायं। फिर समितियोंसे कहा जा सकता है कि जिन अवांछनीय व्यक्तियोंकी गिरफ्तारी होनी चाहिये उनके नाम वे बतायें।"

दूसरे दिन जिलेके हिन्दू नेताओंके एक शिष्टमंडलके साथ फिर चर्चा शुरू की गई। उन्होंने अपनी तरफसे कुछ मांगें रखीं और यह चाहा कि शान्ति-समितियां बननेसे पहले वे मांगें पूरी की जायं। (उनकी मांगें ये थीं: मुसलमान पुलिस अफसरोंके स्थान पर हिन्दू अफसर रखे जायं, मुसलमान पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टको हटाया जाय, क्योंकि दंगोंके समय जिला उसीके सुपुर्द था— इत्यादि इत्यादि) । उस समयकी स्थितियोंमें उनकी ये मांगें पूरी तरह स्वीकार करनेका आग्रह रखनेका अर्थ होता सरकारके शान्ति-प्रस्तावको एकदम अस्वीकार कर देना । गांधीजीने कहा, यह विनाशकारी होगा । इससे कटुता बढ़ेगी । आप लोग सरकारको सही काम करनेका मौका दीजिये। यदि पूरी आजमाइशके बाद आपको लगे कि योजना पर अमल नहीं हो सकता, तो आप उसकी निन्दा करके शान्ति-समितियोंसे त्यागपत्र दे सकते हैं। इससे आपका बल बढ़ेगा ।

गांधीजीने उनसे कहा, मुझे विश्वास है कि यदि प्रत्येक गांवकी शांतिके लिए जमानत देनेवाले एक हिन्दू और एक मुसलमानकी मेरी योजना सफल हो जाय, तो सारा मामला ठीक हो जायगा। परन्तु मैं स्वीकार करता हूं कि उसके लिए तत्काल मुझे कोई आशा दिखाई नहीं देती, यद्यपि एक श्रद्धावान पुरुषके नाते उस प्रयत्नमें लगे रहना मेरा कर्तव्य है। उनसे पूछा गया, “वर्तमान सरकारी शांति-योजनामें आपको कोई हृदय-परिवर्तन दिखाई देता है? ” उन्होंने उत्तर दिया, “नहीं, परन्तु सरकारकी नीतिमें परिवर्तन है।” उन्होंने यह भी कहा कि कटु अनुभवसे मैं यह समझ गया हूं कि नोआखालीकी वर्तमान परिस्थितियोंमें आप इतनी जल्दी हृदय-परिवर्तनकी आशा नहीं रख सकते । लेकिन एक अनुभवी मनुष्यके नाते मेरी सलाह यह है कि आपको सरकारकी योजना स्वीकार कर लेनी चाहिये और उसके गुण-दोषोंके साथ उसे कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

इसके बाद गांधीजी हिन्दू नेताओंके एक एक मुद्देकी जांच करने लगे। मुसलमान अफसरोंके बजाय हिन्दू अफसरोंको रखनेकी नेताओंकी मांगके स्थान पर उन्होंने “निष्पक्ष और पूर्वाग्रहरहित अफसरों” का असाम्प्रदायिक सूत्र सुझाया। उन्होंने मुसलमान पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट पर किये गये आक्षेपको पसन्द नहीं किया । उन्होंने कहा, यदि आप किसीको दोष देना चाहते हैं, तो बंगाल सरकारको या उसके मुख्यमंत्रीको देना चाहिये। सेवाओंमें साम्प्रदायिक

दृष्टिकोणका आग्रह करके आप भूल करते हैं। "ऐसी मांगें रखते समय आपको अपने आपसे पूछना चाहिये कि, उदाहरणके लिए, बिहारके मुसलमानोंकी ओरसे इसी तरहकी मांग हो, तो बिहार सरकार क्या करेगी।"

शिष्ट-मंडलके एक सदस्यने बताया कि बिहार सरकारने दंगोंको दबा देनेके लिए मुसलमान पुलिसका उपयोग किया है। गांधीजीने उत्तर दिया कि यदि ऐसा है तो इससे सरकारकी कमजोरी जाहिर होती है। वह सरकार अयोग्य है जो असंदिग्ध प्रामाणिकतावाले ऐसे अधिकारी तैयार न कर सके, जिन पर सरकारके आदेशोंका ईमानदारीसे पालन करने और निष्पक्षताके साथ अपना फर्ज अदा करनेका विश्वास रखा जा सके।

इसके बाद गांधीजीसे यह कहा गया कि चूंकि नोआखालीके प्रमुख हिन्दू परिवार भाग गये हैं, इसलिए कुछ असंगठित लोग—जिनमें प्रभावशाली लोगोंके निम्न कर्मचारी जैसे माली, चौकीदार, धोबी वगैरा हैं—पीछे रह गये हैं। ऐसी हालतमें शान्ति-समितियोंमें हिन्दुओंके प्रतिनिधियोंके नाते किन्हें रखा जाय ? गांधीजीने उत्तर दिया, चूंकि प्रमुख हिन्दू गरीब वर्गको मझधारमें छोड़कर भाग गये हैं, इसलिए उन्होंने हिन्दू समुदायका प्रतिनिधित्व करनेका अधिकार खो दिया है। यह सच है कि यदि शान्ति-समितियोंमें मुसलमानोंके प्रतिनिधि बुद्धिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति होंगे और हिन्दुओंके प्रतिनिधि सिर्फ अज्ञान और निरक्षर लोग ही होंगे, तो वे अज्ञान और निरक्षर लोगोंको जरूर दबा लेंगे। परन्तु यदि हमें लोकतंत्रका विकास करना है, तो यह खतरा उठाना ही पड़ेगा। इसका उपाय यह है कि जो लोग भाग गये हैं उनसे वापस आकर जिम्मेदारी उठानेको कहा जाय | यंदि वे न आयें तो साधारण आदमियोंको आगे आकर उनका स्थान लेना ही होगा । "प्रकृति रिक्ततासे घृणा करती है। अब साधारण आदमियोंके दिन आ गये हैं।"

२२ नवम्बरकी शामको रामगंजके डाक-बंगलेमें गांधीजीकी उपस्थितिमें दोनों कौमोंके लगभग ३० प्रतिनिधियों और सरकारके प्रवक्ताओंका एक सम्मेलन हुआ । उसमें बंगाल सरकारके प्रस्तावोंके आधार पर शांति-स्थापना की एक योजना अन्तिम रूपसे बना ली गई और

रामगंज थानेके छिए शान्ति-समितिका एक ढांचा तैयार कर लिया गया। जो योजना अपनायी गयी वह इस प्रकार थी : गांव, ग्राम-मंडल और पुलिस थानेके लिए हिन्दुओं और मुसलमानोंकी समान संख्यावाली शान्ति-समितियां होनी चाहिये। मुसलमानोंका चुनाव हिन्दू करेंगे और कोई सरकारी अधिकारी सभापति होगा। सरकार शान्ति-समितियोंकी सिफारिशों पर अमल करानेकी जिम्मेदारी लेगी। मतभेद पैदा होने पर क्रमसे ऊपरकी समितियोंको पूछनेकी व्यवस्था रहेगी और जिला-मजिस्ट्रेट संपूर्ण सत्ताधारी अन्तिम पंच होगा।

शान्ति-समितियोंके कार्य इस प्रकार निश्चित किये गये थे: (क) फिरसे विश्वास स्थापित करनेके लिए तीव्र प्रचार-कार्य किया जाय। (ख) लौट कर आनेवाले शरणार्थियोंके लिए मकान बनाने और कष्ट-निवारणका सामान अर्थात् अन्न-वस्त्र वगैरा जुटाने और बांटनेमें मदद दी जाय। (ग) जिन अपराधियों और शान्ति भंग करनेवालोंकी गिरफ्तारियां होनी चाहिये, उनकी सूचियां तैयार की जायं। इन सूचियोंको पुलिसमें पहले की हुई रिपोर्टोंके साथ मिला लिया जाय और विश्वास हो जाने पर गिरफ्तारियां की जायं । यदि कोई निर्दोष व्यक्ति गिरफ्तार कर लिया गया हो, तो शान्ति-समिति मजिस्ट्रेटको जमानत पर या बिलाशर्त, जैसा भी मामला हो, उसकी रिहाईकी सिफारिश करेगी । और (घ) दंगोंके दिनोंमें जो मकान नष्ट कर दिये गये हों या जिन्हें क्षति पहुंची हो, उनकी सूची तैयार की जाय। इसको सरकारकी सूचीसे मिलाकर अन्तिम सूची तैयार की जाय।

नव-निर्मित शान्ति-समितिकी पहली बैठक २५ नवम्बरकी शामको रामगंजके पुलिस थानेमें हुई। कुल मिला कर बैठककी कार्रवाईमें आपसी सहयोग और उचित समझौतेकी शुभ वृत्ति प्रगट हुई। जब हिन्दुओंके एक प्रवक्ताने सुझाया कि ऐसे किसी व्यक्तिको, जिसके सम्बन्धी दंगेके मुकदमोंमें फंसे हुए हों, शान्ति-समितिमें नहीं रहना चाहिये और उसे इस्तीफा दे देना चाहिये, तो एक मुसलमान सदस्यने यह प्रस्ताव रखा कि त्यागपत्र देनेके बजाय ऐसे व्यक्तिको उस समय चर्चामें भाग नहीं लेना चाहिये जब उसके रिश्तेदारका मामला पेश हो । दूसरे पक्षने उसके सुझावको मान लिया ।

मंत्री शमसुद्दीन अहमदने सरकारकी शान्ति-योजनाका आरम्भ करते हुए कहा कि हमारी पिछली बैठकके बाद ७ यूनियन शान्ति-समितियां बन गई हैं। मैंने आपके सामने जो योजना रखी है वह बंगाल सरकारकी निश्चित नीतिका प्रतिनिधित्व करती है और मैं वचन देता हूं कि उस पर अमल किया जायगा।

अन्तमें बोलते हुए गांधीजीने कहा, योजनाकी सफलता इस बात पर अवलम्बित रहेगी कि शान्ति-समितिमें सही आदमी रखे जायं । गलत तरहके सदस्योंकी समितियां रखनेके बजाय समितियां न रखना ज्यादा अच्छा है। कमसे कम एक गांवकी शान्ति-समितिमें कुछ मुसलमान सदस्य स्वयं अविश्वस्त बताये जाते हैं। हिन्दू उनसे डरते हैं, परन्तु अपनी आपत्ति खुले शब्दोंमें प्रगट करनेका उनमें साहस नहीं है। जरूरत इस बातकी नहीं है कि कोई लंबा-चौड़ा सरकारी या गैर-सरकारी तंत्र हो, परन्तु बहादुर और सच्चे आदमियोंकी जरूरत है। मुझे तो अब भी दो वीर पुरुषोंवाली अपनी योजना ज्यादा पसन्द है, जिसके अनुसार एक हिन्दू और एक मुसलमान प्रत्येक गांवका काम संभाल लें और अपने प्राण देकर भी दंगोंको रोकनेकी प्रतिज्ञा करें। मैं शान्ति-समितियों में स्थान पानेके लिए कुछ मुसलमानोंका दौड़धूप करना पसन्द नहीं करता । यह चीज मेरे मनमें आशंका पैदा करती है। ऐसे आसार मालूम होते हैं कि कुछ हिस्सोंमें अब भी उपद्रवकी तैयारी हो रही है। संद्वीपसे भी एक तार आया है, जिसमें वहां गम्भीर उपद्रव होनेके समाचार हैं। मैं ऐसी स्त्रियोंस मिला हूं, जो घरमें अपने ललाट पर सिन्दूरका सुहाग-चिह्न लगाती हैं, परन्तु सबके सामने लगा कर आनेमें उन्हें डर लगता है। इसलिए जब वे अपने घरोंसे बाहर निकलती हैं तो उसे मिटा देती हैं। इस स्थितिको दूर करना ही पड़ेगा। इसकी जिम्मेदारी मुसलमानों पर है। उनकी नेकनामी खतरेमें है। सरकारी तंत्र स्वयं इस बारेमें बहुत थोड़ी मदद कर सकता है।

कुछ दिन बाद चंडीपुर गांवमें एक सार्वजनिक सभामें यह शान्ति-योजना लोगोंके सामने रखी गई। सभाके अन्तमें बोलते हुए गांधीजीने ये अर्थपूर्ण शब्द कहे: "यहां वे निर्वाचित मुसलमान बैठे हैं, जो प्रान्तकी सरकारको चला रहे है। उन्होंने आपको वचन दिया है—वे लज्जाजनक कृत्योंकी पुनरावृत्तिके मूक साक्षी नहीं बनेंगे। हिन्दुओंको मेरी सलाह है कि वे उनके वचन पर

विश्वास करें और उन्हें काम करनेका उचित अवसर दें। इसका यह अर्थ नहीं कि पूर्व बंगालमें एक भी खराब मुसलमान नहीं रह जायगा। सभी समाजोंमें भले और बुरे आदमी होते हैं। अप्रामाणिक आचरणसे अन्तमें कोई भी मंत्रि-मंडल अथवा संगठन टूट जायगा। . . . यदि आप सच्ची शान्ति चाहते हैं, तो आपसमें विश्वास रखनेके सिवा और कोई मार्ग नहीं है। यदि शमसुद्दीन साहब और उनके साथी जो कहते हैं वह करना नहीं चाहते, तो आपको इसका पता लग जायगा। मैं तो ऐसी करुण घटनाको देखनेके लिए जिन्दा नहीं रहना चाहता।"

३

गांधीजीको अहिंसा मुख्यतः न्यायप्राप्तिका साधन थी। वे न्यायकी बलि चढ़ाकर नहीं परन्तु न्यायकी स्थापनाके लिए विरोधीके साथ शांति बनाये रखना चाहते थे। इस मामलेमें उसकी सफलता ही उनकी अहिंसाको क्रान्तिकारी और प्राणवान स्वरूप प्रदान करती थी। नोआखालीमें उनके साहसपूर्ण कार्यकी प्रगतिके साथ अहिंसाका यह पहलू अधिकाधिक सामने आता गया।

२४ नवम्बरको तड़के ही बंगालके प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता शरत्चन्द्र बोस और कलकत्तेके कुछ मित्रोंकी श्रीरामपुरमें सरकारके शान्ति-प्रस्तावोंके बारेमें गांधीजीसे दो घंटे बातें हुईं। शरत् बोसने कहा, मैं कलकत्तेमें मुख्यमंत्रीसे मिला और मैंने उन्हें सुझाया कि हम नोआखाली चलें और कुछ समय तक मिलकर अल्पसंख्यक कौमके लोगोंमें पुनः विश्वास स्थापित करनेका कार्य करें, तभी परिणामकारी शान्ति-समितियोंकी स्थापना हो सकती है। परन्तु मेरे सुझावका कोई नतीजा नहीं निकला। मंत्री बातें तो बहुत करते हैं, परन्तु सच्चे हृदय-परिवर्तनका कोई ठोस प्रमाण उन्होंने नहीं दिया है। गांधीजी इस बातसे सहमत थे कि नेता लोग अतिशय नीचे गिर गये हैं, जब कि आम लोग उतने नीचे नहीं गिरे हैं। उनका हृदय अब भी ऊंचा है। "इस गांवमें भो मैंने कुछ अनुकूल प्रतिक्रिया लोगोंमें देखी है। परन्सु मैं उस पर कोई आधार नहीं रखता।"

गांधीजीसे मिलने आये हुए लोगोंने पूछा, पूर्व बंगालमें आपने जो कुछ सुना और देखा है, क्या उसके बाद भी आप यह कहेंगे कि शान्तिका समय आ गया है ? या लड़ाईकी तैयारीका समय आ गया है? क्या शान्ति-समितियोंके बारेमें मुसलमान सच्चे दिलसे काम कर रहे हैं? "हमें

तो एक शब्दमें बता दीजिये कि वे शान्ति-समितियां होंगी अथवा युद्ध-समितियां ?" एक क्षणका भी संकोच किये बिना गांधीजीने उत्तर दिया: "हमें शान्तिके लिए काम करना चाहिये । यदि शान्ति असफल हो जाय, तो युद्ध हो सकता है। . . . परन्तु शान्ति सदा सम्मानके साथ होनी चाहिये।"

गांधीजीने आगे कहा, यदि लोगोंमें आवश्यक साहस होगा, तो वे अवश्य ही बिना किसी संरक्षणके अपने पुराने घरोंको लौट जायेंगे और अपनी रक्षाके लिए ईश्वर तथा अपने आत्मबलके सिवा और किसी पर निर्भर नहीं रहेंगे। तब गुंडोंको वायुमंडलमें हुआ परिवर्तन अनुभव होगा और वे अच्छा व्यवहार करेंगे। "मैं जानता हूं कि मैं क्या कह रहा हूं। मैं काठियावाड़ (सौराष्ट्र)का हूं। वह प्रान्त डाकुओंके लिए बदनाम रहा है। मैं जानता हूं कि डाकू भो सुधर सकते हैं।" परन्तु यह मान लेना मनपसन्द इच्छा करना है कि नोआखालीके लोगोंने उस साहसका विकास कर लिया है। "इसलिए वर्तमान उदाहरणमें मैं यह कहुंगा कि शान्तिका अर्थ यह भी होना चाहिये कि जान-मालकी उचित सुरक्षा हो। इन्हीं शर्तों पर शरणार्थियोंको लौट आनेके लिए कहा जा सकता है।"

कलकत्तेके मित्रोंमें से एकने शिकायत की कि पुलिसका व्यवहार न्यायपूर्ण नहीं है। गांधीजीने उनसे कहा, मैंने पहले कहा है कि अंग्रेजों और उनकी सिखायी हुई सेना और पुलिस पर आधार रखनेका स्वाधीनताके साथ मेल नहीं बैठता। अब मैं एक कदम और आगे बढ़कर कहुंगा कि इस मनोवृत्तिका मेल लोकतंत्रके साथ भी नहीं बेठता। "लोकतंत्रमें यदि आप किसी गुंडेको सरकारका मुखिया बना लेते हैं, तो आप अपने कियेका फल पाते हैं। उसका एकमात्र उपाय यह है कि मतदाताओंको शिक्षा दी जाय और जरूरत हो तो सत्याग्रहके द्वारा उनका हृदय-परिवर्तन किया जाय। हमें सदा सुसंगत रहना चाहिये । यदि बिहारमें लोकतंत्र अच्छा है, तो बंगालमें भी अच्छा होना चाहिये । इसलिए मुझे लोकप्रिय, निर्वाचित मंत्रियोंके पास जाना चाहिये, क्योंकि वे मेरे मंत्री हैं। यदि वे असफल होते हैं, तो उन्हें बदलनेके लिए लोकमत तैयार करना चाहिये । यही लोकतंत्र है।" परन्तु बिहार हो या बंगाल, लोगोंको आत्मरक्षाकी कला

सीखनी होगी—चाहे वह हिंसक हो या अहिंसक । हर हालतमें सेना और पुलिस पर निर्भर रहनेकी वृत्ति मिटनी चाहिये । इस वृत्तिसे हमारा पतन होगा।

एक और मुलाकातीने पूछा: केन्द्रीय अंतरिम सरकार बिहारकी तरह बंगालके मामलेमें हस्तक्षेप क्यों नहीं कर सकती ? इसके विपरीत, यदि प्रान्तीय स्वशासनकी बिना पर अंतरिम सरकार एक प्रान्तमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती, तो दूसरे प्रान्तमें कैसे कर सकती है, जैसा पंडित नेहरू और डॉ. राजेन्द्रप्रसादने किया है?

गांधीजीने उत्तर दिया कि पंडित नेहरू अंतरिम सरकारके उपाध्यक्ष होनेके साथ साथ कांग्रेसके भी बड़े नेता हैं। केन्द्रीय मंत्रि-मंडलके उपाध्यक्षके नाते वे संविधानकी चारदीवारीके भीतर ही काम कर सकते हैं। संविधान उन्हें बंगालके प्रान्तीय स्वशासनमें हस्तक्षेप करनेकी इजाजत नहीं देता, क्योंकि वहां लीगी सरकार सत्तारूढ़ है । परन्तु बिहारमें पंडित नेहरू और डॉ. राजेन्द्रप्रसादकी हैसियत और जिम्मेदारी कांग्रेस-जनकी है, क्योंकि बिहारमें सरकार कांग्रेसकी है। बिहारमें पंडित नेहरू और डॉ. राजेन्द्रप्रसादने कांग्रेसजनोंकी हैसियतसे कार्रवाई की है।

आग्रही प्रश्नकर्ताने पूछा : क्या बिहारको अहिंसासे नियंत्रणमें नहीं रखा जा सकता था ? कांग्रेसी मंत्रियोंने वहां सेनाका खुले हाथों क्यों उपयोग किया ?

गांधीजीने उत्तर दिया: अवश्य ही बिहारको अहिंसासे नियंत्रणमें रखना संभव होना चाहिये था। परन्तु बिहारमें संगठित हिंसाके उस पाठसे, जो उसे भूतकालमें विशेषतः अगस्त १९४२ के बादसे मिला था, मामला बिगड़ चुका था। “मुझे १९४२ के संग्रामकी खूबियां मालूम हैं। लोग सरकारकी सिंहके जैसी हिंसासे दबे नहीं थे। फिर भी हम अपनी भूलोंके प्रति अपनी आंखें बन्द नहीं कर सकते। हमें या तो अधिक अच्छे रूपमें कार्य करना सीखना होगा या दण्ड भुगतनेके लिए तैयार रहना होगा।”

इसके बाद गांधीजीसे यह प्रश्न पूछा गया: क्या धर्म-परिवर्तनके मामलेमें सख्त रवैया अख्तियार करके आप एक विशेष कौमके साथ एकरूप नहीं हो रहे हैं? आपके इस रुखका

मेल आपके इस दावेके साथ कैसे बैठ सकता है कि आप सब धर्मोंको समान समझते हैं? गांधीजीने उत्तर दिया: स्वयं मुझे तो इसकी परवाह नहीं कि कौन व्यक्ति किस धर्मका पालन करता है । जहां भीतरी और स्वाभाविक प्रेरणा हो वहां मुझे धर्म-परिवर्तनके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहना है। परन्तु ऐसा धर्म-परिवर्तन सामूहिक पैमाने पर हो ही नहीं सकता; और अपनी जान-मालको बचाने या सांसारिक लाभके लिए तो हरगिज नहीं हो सकता। नोआखालीमें जो कुछ हुआ है वह तो सभी धर्मोंका निषेध और उनकी विडम्बना है।

अन्तमें प्रश्नकर्ताने बंगालमें फैली हुई इस भावनाका उल्लेख किया कि भारतकी स्वतंत्रताके लिए बंगालका "बलिदान किया जा रहा है" । गांधीजीने उत्तर दिया: यह तो उल्टी दृष्टि हुई। बंगाल सदा स्वतंत्रताकी लड़ाईमें आगे रहा है। "बंगाल आज भी आगे है, क्योंकि बंगाल बंगाल है। यह उसका गौरवपूर्ण सौभाग्य है।" बंगालने ही तो बंकिमचन्द्र और टागोरको जन्म दिया तथा चटगांव शस्त्रागार पर धावा करनेवाले वीरोंको जन्म दिया, भले हो मेरी नजरमें इन वीरोंका कार्य कितना ही गलत रहा हो। बंगालको अब इससे ऊंचे दर्जेके साहसका परिचय देना है। "यदि बंगाल इस नाजुक मौके पर सुन्दर रीतिसे अपने धर्मका पालन करे, तो वह भारतको बचा लेगा। इसीलिए मैं अपने सारे प्रेमपात्रों और प्रिय वस्तुओंको छोड़कर आज बंगाली बन गया हूं। मैंने नोआखालीमें इतना विनाश देखा है कि रोते रोते मेरी आंखें फूट जायं। पर जो घटनाएं हुई हैं उनके लिए मैं एक भी आंसू नहीं बहाऊंगा । हमें अभी लम्बी मंजिल तय करनी होगी।"

सुबहकी सैरमें शरत् बोस भी शरीक थे। गांधीजी बोले : मैं महसूस करने लगा हूं कि मेरे शान्ति-मिशनके लिए यदि मुस्लिम कार्यकर्ता आगे नहीं आयें, तो अकेले हिन्दू ही इस कामको कर सकते हैं। ऐसे मुट्ठीमर कार्यकर्ता भी अगर सच्चे हों, तो वे बाजी पलट सकते हैं । एक ही शर्त है कि स्थानीय हिन्दू ईमानदारीसे अपना फर्ज अदा करें । मैं उनसे कमसे कम यह आशा रखता हूं कि वे अपने बीचसे अस्पृस्यताके अभिशापका काला मुंह कर दें । अन्यथा उन्हें अपनी असली स्थिति कभी प्राप्त नहीं होगी।

*

नोआखालीमें हिन्दू नेताओंको यह समझानेमें गांधीजीको काफी परिश्रम करना पड़ा कि पूर्व बंगालकी अल्पसंख्यक जातिको एक ही निश्चित स्थान पर केन्द्रित करनेकी और उसके योजनाबद्ध स्थानान्तरकी मांग भ्रमपूर्ण है। इस प्रश्नकी विस्तृत चर्चा तब हुई जब प्रान्तीय हिन्दू महासभाके अध्यक्ष एन. सी. चटर्जीके नेतृत्वमें एक शिष्ट-मण्डल कुछ दिन बाद ५ दिसम्बरको गांधीजीसे मिलने आया। गांधीजीने उन्हें बताया कि सुरक्षाकी जो भावना इस प्रकार पैदा करनेकी कोशिश की जाती है, वह मृग-मरीचिका सिद्ध होगी; क्योंकि केन्द्रित आबादीको अधिक संख्यावाले लोग हमेशा दबा सकते हैं । यह प्रस्ताव अव्यावहारिक है । बंगाल सरकार इसकी अनुमति नहीं देगी । "आप अपनेको सुहरावर्दीकी जगह रख कर देखिये। क्षणभरके लिए कल्पना कीजिये कि वे शरारत पर तुले हुए हैं। तब यदि उनका बस चले तो वे ऐसी बात नहीं होने देंगे । इसका अर्थ यह होगा कि आप उनसे लड़ाई लड़ना चाहते हैं। वे ऐसा किसी कीमत पर नहीं होने देंगे। नोआखालीका मुस्लिम मानस इसे सहन नहीं करेगा। इसका नतीजा यह होगा कि संघर्ष चिरस्थायी हो जायगा।" अधिकसे अधिक यह फल होगा कि देश सदाके लिए ऐसे विरोधी दलोंमें बंट जायगा, जिनके बीच एक प्रकारकी अस्थायी सशस्त्र सन्धि होगी। "चाहे वे बहुत हों या थोड़े, बंगालके हिन्दुओंको वीरताकी कला सीखनी ही होगी । उनमें एकके अल्पमतमें भी जीवित रहनेकी शक्ति होनी चाहिये, अन्यथा पूर्व बंगालमें उनके लिए कोई आशा नहीं रह जायगी। उन्हें कभी लाचारी महसूस नहीं करनी चाहिये। . . . साहसका आधार संख्या पर नहीं होता।"

"यदि मुसलमान उचित व्यवहार न करें तो क्या होगा ?"

"तब हिन्दुओंको मरनेके लिए तैयार रहना चाहिये, परन्तु कायर नहीं बनना चाहिये। यही एक हल है, जो काम दे सकता है।"

हम उस युक्तिसे परिचित हैं, जो कलाकार कभी कभी काममें लेते हैं। वे किसी चित्रके छिपे हुए दोषोंका पता लगानेके लिए उसे उल्टा करके देखते हैं। गांधीजीने इसी युक्तिका उपयोग करके नोआखालीमें अलग निश्चित स्थानोंमें हिन्दुओंको एकसाथ बसानेके प्रस्तावकी निस्सारता हिन्दू महासभाके मित्रोंको समझाई। उन्होंने उल्टा उदाहरण लिया। अगर यह बात

बंगालके लिए ठीक है, तो बिहारके लिए भी ठीक होनी चाहिये । इसके विपरीत, यदि उसे बिहारमें नहीं लागू किया जा सकता, तो नोआखालीके हिन्दुओंके उत्तम हितमें उसे बंगालमें भी लागू नहीं किया जा सकता। "मान लीजिये, बिहारके मुसलमान बिहारमें कोई मुस्लिम बस्ती खड़ी करना चाहते हैं, तो बिहारकी हिन्दू जनता उसे एक छिपा खतरा ही समझेगी। हिन्दू कुछ भी कहें, मैं जानता हूं कि अधिकारी मुस्लिम अल्पमतकी सुरक्षाकी गारंटी नहीं दे सकेंगे । इसी प्रकार अलग बस्तियां खड़ी करना पूर्व बंगालके हिन्दुओंके लिए लाभदायक नहीं हो सकता। बंगाल सरकार इसका विरोध करेगी, क्योंकि यह एक प्रकारसे इस बातको स्वीकार करना होगा कि अल्पसंख्यक जातिकी रक्षा तब तक नहीं हो सकती जब तक कि वह बाकी लोगोंसे लड़ाई ठान कर अपने हो बल पर जिन्दा न रहे । जो सरकार ऐसी बात मान लेती है, वह स्वयं अपनी निन्दा करती है और अयोग्य ठहरती है।" इसके सिवा, ऐसी मांग पेश करके आप लगभग यह स्वीकार करते हैं कि मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी मांग तर्कशुद्ध है; क्योंकि पाकिस्तान बड़े पैमाने पर मुसलमानोंकी एक "अलग बस्ती" के सिवा और क्या है ? यदि स्थानान्तर करना ही पड़े तो वह व्यवस्थित और सम्पूर्ण होना चाहिये । आपके प्रस्तावका तर्कसंगत परिणाम अन्तमें आबादियोंका तबादला ही होगा । इससे आपकी अन्तिम स्थिति पहलोसे भी बुरी हो जायगी । अत: जब तक सहयोगकी कोई भी आशा है तब तक उसका विचार नहीं करना चाहिये।

गांधीजीके निर्णयकी बुद्धिमत्ता जल्दी ही सिद्ध हो गई | मुस्लिम "आबादियां" खड़ी करनेकी जो योजनाएं "दो राष्ट्रों" के सिद्धान्तके कुछ हिमायती बिहारमें बना रहे थे, उसके गम्भीर फलितार्थोंकी चर्चा इस पुस्तकके तीसरे भागमें की गई है।

एन. सी. चटर्जी बोले, अब तक तो आपकी सलाह किसीने मानी हो ऐसा लगता नहीं। गांधीजीने उत्तर दिया, यदि एक भी आदमी अपने स्थान पर टिका रहे और अहिंसक साहसके साथ मर जाय, तो एकके अनेक हो जायंगे । इस पर हिन्दू महासभाके नेताने उत्तर दिया, आपकी योजना साधारण मनुष्यके बूतेसे बाहर है । गांधीजीने कहा, पूर्व बंगालमें हिन्दू धर्मकी रक्षा करनेका और कोई उपाय नहीं है; इसीलिए मैं अपने बताये इस हलका आग्रह रखता हूं।

गांधीजीसे भेंट करनेवालोंने उनकी कृपाके लिए उन्हें धन्यवाद दिया। गांधीजीने उत्तर दिया, इसमें कृपाकी कोई बात नहीं है। यदि कृपा हुई हो तो मुझ पर हुई है । "मेरा अपना सिद्धान्त असफल हो रहा है। मैं यह सहन नहीं कर सकता । मैं असफल होकर मरना नहीं चाहता।"

फिर कुछ रुककर बोले, "परन्तु ऐसा हो भी सकता है।"

हिन्दू नेताओंके चले जानेके बाद गांधीजी बोले, संभव है मुझे नोआखालीमें कई वर्ष ठहरना पड़े । अलबत्ता, वे लोग मुझे मार डालें तो दूसरी बात है । मैं इसके लिए भी तैयार हूं । परन्तु मैं मानता हूं कि वे मेरी मौत नहीं चाहते, क्योंकि वे अपने दिलकी गहराईमें जानते हैं कि मैं मुसलमानोंका दोस्त हूं । एक मित्र-मंडलीको, जो गांधीजीसे श्रीरामपुरमें महीनेके अन्तिम दिन मिली, उन्होंने अधिक समझाया, यदि नोआखालीमें हिन्दू और मुसलमान प्रेमपूर्वक भाइयोंकी तरह साथ नहीं रह सकते, तो वे हिन्दुस्तानमें कहीं भी साथ नहीं रह सकेंगे; और इसका अनिवार्य परिणाम होगा पाकिस्तान । "भारतका विभाजन होगा; और यदि भारतका विभाजन हो जाता है, तो वह सदाके लिए मुसीबतमें फंस जायगा । इसलिए मैं कहता हूं कि यदि भारतको अखंड रहना है, तो हिन्दुओं और मुसलमानोंको भाई-भाईकी तरह प्यारसे मिलजुल कर रहना चाहिये, न कि रक्षाके लिए अथवा बदलेके लिए संगठित शत्रुओंकी छावनी बताकर। इसीलिए मैं अलग बस्तियां बनाकर रहनेकी नीतिके विरुद्ध हूं। समस्याको हल करनेका एक ही उपाय है और वह है अहिंसा। मैं जानता हूं कि मेरी आवाज आज अरण्य-रोदनके समान है। परन्तु मैं फिर कहता हूं कि सत्य, अहिंसा, साहस और प्रेमके सिवा भारतके लिए उद्धारका और कोई मार्ग नहीं है। इस उपायकी परिणाम-कारिताका प्रत्यक्ष प्रमाण देनेके लिए ही मैं यहां आया हूं। यदि नोआखाली हाथसे चला गया, तो भारत भी चला जायगा।"

चौथा अध्याय
सूक्ष्म परिवर्तन

१

नोआखालीके ध्येयके प्रति सर्वत्र सहानुभूति पैदा हो गई थी। भारत भरमें लोग रुपये और साधनोंकी सहायता देनेको उत्सुक थे। पंजाबसे मुसलमानोंकी अहमदिया जमातने पांच हजार रुपयेका दान भेजा। उनकी संस्थाके मंत्रीने दानकी रकम भेजनेके साथ अपने पत्रमें गांधीजीको लिखा: "मुझे इस सम्बन्धमें यह बताना है कि इस्लाम, एक उसूलके नाते, वर्ग या धर्मकी परवाह किये बिना सभी दुखियों और दलितोंकी सहायता और मुक्तिका पक्षपाती है। और हम . . . इसे अपना पवित्र कर्तव्य समझते हैं कि दुखी कोई भी हों, उनके कष्ट-निवारणके लिए हम भरसक सहायता और सहयोग दें ।" एक और चेक ६५० रुपयेका आसामसे आया। चेकके साथ उन हिन्दू स्त्रियोंमें, जिन्हें दंगोंमें हानि पहुंची थी, बांटनेके लिए दो सौ जोड़े शंखकी चूड़ियोंके और आधा सेर सिन्दूर भी आया। दानदाताओंमें ग्यारह मुसलमान थे और एक यूरोपियन था।

गांधीजीको समस्या दो तरहकी थी। इस बातका खतरा था कि उपद्रव-पीड़ित शरणार्थियोंमें सार्वजनिक दान पर निर्भर रहनेकी मनोवृत्ति पैदा हो जायगी। इससे उन्हें बचाना था। साथ ही इस खतरेसे भी सावधान रहना जरूरी था कि पीड़ितोंकी आवश्यकताओंकी देखभालका भार जनताके उठा लेने पर कहीं अधिकारी इस खयालसे शिथिल और आत्म-संतोषी न बन जायं कि सब कुछ ठीक चलता है। शरणार्थी-छावनियोंका बना रहना अधिकारियोंके लिए सिरदर्द था, कलंक तो था ही। परन्तु सुरक्षाकी स्थिति पैदा करनेके जोरदार उपाय अपनाने, निराश्रितोंको पुनर्वासकी सुविधाएं देने और उन्हें घर लौट जानेकी प्रेरणा देनेके बजाय, जैसा कि उन्हें करना चाहिये था, अधिकारियोंने छावनियोंमें मुफ्त राशन बन्द करनेकी धमकी देकर निराश्रितोंको वहांसे जबरदस्ती निकाल देनेकी कोशिश की। गांधीजीको लगा कि यह अनुचित

है। जब तक गांवोंमें सुरक्षाका वायुमंडल पैदा न हो जाय तब तक सरकारकी ओरसे मुफ्त कष्ट-निवारणकी व्यवस्था जारी रहनी चाहिये ।

सार्वजनिक धर्मार्थ संस्थाओंका मामला दूसरी तरहका था। गांधीजीने उनसे कहा, लोगोंसे यह साफ साफ कह देना आपका काम है कि वे गरीब हों या अमीर, उन्हें सरकारसे या अन्य किसीसे दान स्वीकार करना अपनी प्रतिष्ठाके खिलाफ समझना चाहिये। जिन लोगोंने अपना सर्वस्व खो दिया है उनका सरकार पर अधिकार है और सरकारको उनके लिए अन्न, वस्त्र, मकान और दवा-दारू जैसी जीवनकी अत्यावश्यक वस्तुओंकी व्यवस्था करनी ही चाहिये। परन्तु यदि प्रत्येक स्वस्थ पुरुष, स्त्री या बच्चा अपनी शक्तिके अनुसार मेहनत न करके ये चीजें स्वीकार करे, तो यह समाजको लूटने जैसा होगा । आपको सरकारसे कहना चाहिये कि जो काम आप कर सकते हैं वह सरकार आपको दे। यदि आप लोग श्रमके प्रति अरुचि रखना छोड़ दें और भाग्यके आकस्मिक परिवर्तनोंके अनुकूल बन जायं, तो आपको वह निर्भयता प्राप्त करनेमें बड़ी मदद मिलेगी, जो पूर्व बंगालमें अल्पसंख्यक जातिके जिन्दा रहनेकी एक जरूरी शर्त है।

नोआखालीमें लगभग ३० कष्ट-निवारण संस्थाएं और आधा दर्जन डॉक्टरी मिशन काम कर रहे थे। इनके अलावा, एक गांवमें एक कार्यकर्तावाली गांधीजीकी योजनाके अनुसार लगभग २० केन्द्र तो थे ही। सभीको गांधीजीका स्थायी आदेश था कि वे सत्य और अहिंसाको हमेशा सर्वप्रथम स्थान दें। उनकी सारी प्रवृत्तियां प्रामाणिक, खुली और असंदिग्ध होनी चाहिये। कोई बात गुप्त नहीं होनी चाहिये। उन्हें कोई बात ऐसी नहीं करनी चाहिये जिससे बहुसंख्यक समुदायके लोगोंमें घबराहट पैदा हो या अधिकारियोंको संदेहका उचित कारण मिले । जब एक डॉक्टरी मिशनने अपने दवा-दारूके कामके सिलसिलेमें उद्धार और कष्ट-निवारणका काम करनेका प्रस्ताव सामने रखा, तो गांधीजीने उसे अस्वीकार करके कहा कि यह तो गलत नामसे काम करना होगा। इसी प्रकार गांधीजीने एक सेविकाकी इस योजनाको रद्द कर दिया कि उनकी देखरेखमें स्त्रियों और लड़कियोंमें शारीरिक प्रशिक्षण और कवायदकी तालीम शुरू की जाय, यद्यपि वे स्त्रियोंके शारीरिक प्रशिक्षण और कवायदके विरुद्ध नहीं थे। एक और कार्यकर्ताने गांधीजीसे पूछा, क्या " रक्षणात्मक हेतु " के लिए "संगठन" का उपयोग करनेकी इजाजत है ?

गांधीजीने एक परचे पर लिख कर जवाब दिया: "रक्षणात्मक और आक्रमणात्मकका भेद बिलकुल अर्थहीन और अविश्वसनीय है। आप दुविधामें नहीं रह सकते। या तो आप घृणाको अपना सकते हैं या प्रेमको।"

भारतके सारे भागोंसे व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा ऐसी प्रार्थना की गई थी कि उन्हें नोआखाली आने दिया जाय और उनके (गांधीजीके) मार्गदर्शनमें सेवाकार्य करने दिया जाय। गांधीजीका तर्क यह था कि उनकी योजनाका मुख्य आधार ईश्वरके प्रति सजीव श्रद्धा रखनेसे प्राप्त होनेवाले व्यक्तिगत साहसका परिचय देना है, इसलिए बड़ी संख्या न केवल अनावश्यक है बल्कि सफलतामें बाधक भी हो सकती है। इसलिए उन सबको नोआखाली आनेसे गांधीजीने रोक दिया। एकमात्र अपवाद उन्होंने आजाद हिन्द फौजके एक दलके लिए किया। सरदार पटेल, जो सदा जागरूक रहते थे, नोआखालीमें खड़ी हो रही परिस्थितिको अधिकाधिक बेचैनीके साथ देख रहे थे। शायद उन्हें गांधीजीकी व्यक्तिगत सुरक्षितताकी भी चिन्ता थी। इसलिए जब आजाद हिन्द फौजके एक दलके नायक सरदार निरंजनसिंह गिल उनके पास यह प्रस्ताव लेकर पहुंचे कि वे गांधीजीके मातहत सेवाकार्य करनेके लिए अपने आदमियोंका दल लेकर नोआखाली जाना चाहते हैं, तो सरदारने उसका स्वागत किया । बहादुर, निहत्थे सिक्खोंके उपद्रव-पीड़ित हिन्दू जनताके बीच रहनेसे उसमें अहिंसक साहस उत्पन्न होनेकी संभावना थी। आजाद हिन्द फौजने नेताजी सुभाष बोसके नेतृत्वमें वीरता और देशभक्तिकी एक सुन्दर परम्पराका निर्माण किया था। जब वे फौजमें थे तब उन्होंने अपने भीतरसे सम्प्रदायवादको बिलकुल निकाल फेंका था। उनके एक घोषणा-पत्रमें कहा गया था, "हमने आजाद हिन्द फौजमें काम किया था और हमें यह कह सकनेका आनन्द है कि हमने जाति, धर्म या प्रान्तका सारा भेदमाव भुला दिया था। हम सबके लिए 'जयहिन्द' का एकमात्र सूत्र था। उन दिनोंकी याद अब तक बनी हुई है।" उनके अन्तिम रूपसे आत्म-समर्पण करनेके पहले नेताजीने उन्हें बिदाईके संदेशके रूपमें कहा था कि भारत लौकर उन्हें अपने आपको अहिंसाके सिपाही बना लेना चाहिये और गांधीजीके आदेशों पर चलना चाहिये।

गांधीजीने आजाद हिन्द फौजके दलकी सेवाएं इस शर्त पर स्वीकार कीं कि वे पहले मुख्यमंत्री शहीद सुहरावर्दीसे नोआखालीमें काम करनेकी लिखित रूपमें अनुमति प्राप्त कर लें। मुख्यमंत्री पहले तो राजी नहीं हुए। उन्होंने कर्नल जीवनसिंहसे, जो इस संबंधमें उनसे मिले थे, कहा: मेरे लिए आजाद हिन्द फौजवालोंको इजाजत देना बहुत कठिन है, क्योंकि मुसलमान पहले ही मेरी आलोचना कर रहे हैं कि मैं बाहरवालोंको बंगालमें काम करनेकी इजाजत देता हूं। टिपरा और नोआखालीके विधान-सभाके कुछ मुसलमान सदस्योंका एक पत्र पढ़कर उन्होंने सुनाया, जिसमें गांधीजी पर यह दोषारोपण किया गया था कि वे राजनीतिक हेतुसे नोआखालीमें अपना निवास-काल बढ़ा रहे हैं। मुख्यमंत्रीने यह भी कहा, मैं विधान-सभाके मुस्लिम लीगी सदस्योंके समर्थनके कारण मुख्यमंत्री बना हूं। वे ही मुझे सत्तारूढ़ रख रहे हैं। मैं उनकी इच्छाओंके विरुद्ध कैसे काम कर सकता हूं ? आजाद हिन्द फौजके आदमियोंने बिहारमें जाकर मुसलमान पीड़ितोंमें काम क्यों नहीं किया ? किन्तु कुछ चर्चाके बाद सुहरावर्दीने उनकी कार्य-योजना स्वीकार कर ली। उस समय मुस्लिम लीगकी नीति सिक्खोंको राजी कर लेनेकी थी, ताकि वे उसकी “समूह-रचना” की योजनामें शामिल हो जायं। मुस्लिम लीगकी कल्पना अथवा कैबिनेट-मिशनकी १६ मई, १९४६ की योजनाके अनुसार उत्तर-पश्चिममें “मुस्लिम प्रदेश ” (मुस्लिम झोन) नहीं बनाया जा सकता था और पंजाबका विभाजन अनिवार्य हो जाता, यदि पंजाबके सिक्ख संविधान-सभामें विभाग (सेक्शन) से अलग रह जाते। इसलिए मुख्यमंत्री उन्हें अनावश्यक रूपमें विरोधी नहीं बनाना चाहते थे।

आजाद हिन्द फौजके नायकने १००० व्यक्तियोंके लिए व्यवस्था करनेकी मांग गांधीजीसे की थी। गांधीजीने उसे काटकर १०० कर दिया। उनकी वास्तविक संख्या ५० से अधिक कभी नहीं हुई। इस दलमें पूर्व बंगालका एक मुसलमान, पंजाबका एक मुसलमान और दक्षिण भारतका एक गैर-सिक्ख भी था। अन्तमें आजाद हिन्द फौजके अधिकांश आदमी वापस भेज दिये गये। एक छोटीसी टोली कर्नल जीवनसिंहके मातहत गांधीजीके श्रीरामपुर शिविरको और उनकी एक गांवसे दूसरे गांवकी पैदल यात्राके दिनोंमें लगनेवाले शिविरको संभालती रही। जब

मार्च १९४७ में गांधीजी बिहार चले गये तब इन लोगोंको भी वापस भेज दिया गया। अकेले जीवनसिंह गांधीजीके दलके लोगोंके साथ नोआखालीमें काम करनेके लिए रह गये ।

गांधीजीको यह आशा थी कि चूंकि इन लोगोंने लड़ाईके मैदानमें अपना पौरुष सिद्ध करनेके बाद स्वेच्छासे शस्त्र-प्रयोग छोड़ दिया था, इसलिए वे वीरोंकी अहिंसाका बहुत सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं। सरदार उनके खर्चके लिए जरूरी रुपया या तो कांग्रेसके कोषसे या किसी और जरियेसे जुटा देनेको तैयार थे। परन्तु गांधीजीका आग्रह था कि आर्थिक सहारेके लिए आजाद हिन्द फौजके दलको न तो कांग्रेसके कोष पर और न निजी साधनों पर—इसमें मेरे पास जो सार्वजनिक पैसा है वह भी शामिल है—ही निर्भर रहना चाहिये; बल्कि उनका आधार हिन्दू और मुसलमान दोनोंके खुले सार्वजनिक सहारे पर होना चाहिये। अहिंसाकी शक्तिका निर्माण रूपयेकी शक्ति पर नहीं, परन्तु सभी कौमोंकी श्रद्धा और विश्वास पर हो सकता है। इसमें आक्रमणकारियोंकी कौम भी शामिल है। कांग्रेसकी ओरसे आर्थिक सहायता मिलनेका सन्देह भी मेरी योजनाके लिए घातक सिद्ध होगा। हमें तो सीज़रकी पत्नीकी तरह सन्देहसे परे रहना चाहिये।

आश्वासनको और भी पक्का करनेके लिए गांधीजीने मुख्यमंत्री सुहरावर्दीको लिखा कि आजाद हिन्द फौजके लोग मेरे साथ इसी शर्त पर रह सकते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों उन्हें अपना मित्र मान लें । मैं और किसी शर्त पर उन्हें अपने साथ नहीं रख सकता । इसलिए अगर आप सचमुच उनकी प्रवृत्तिको पसन्द करते हैं, तो आजाद हिन्द फौजके आदमियोंकी फंडकी अपील पर अपनी स्वीकृतिके चिह्नके रूपमें आप कमसे कम एक रुपया तो भी दीजिये। सरदार पटेलको उन्होंने लिखा:

> मेरा यह विश्वास अनुभवके फलस्वरूप दिनोंदिन दृढ़ होता जा रहा है कि रुपयेकी बुनियाद पर बनाई गई इमारत ताशके महलकी तरह ढह जाती है। इसलिए आप रुपयेमें अपना विश्वास रखना छोड़ दीजिये। यह निहायत जरूरी है कि मेरे साथकी बातचीतमें उन्होंने (सरदार गिलने) जो कुछ स्वीकार किया है, उससे उन्हें जरा भी इधर-उधर नहीं

होना चाहिये। मैंने पक्का निश्चय कर लिया है कि जिस क्षण मुझे पता लग जायगा कि इसमें जरा-सी भी अशुद्धता है, उसी क्षण मैं इस सारे मामलेसे निकल जाऊंगा। मैं जिस काममें लगा हुआ हूं, वह बहुत नाजुक है। वह मेरे जीवनका सबसे बड़ा काम भी हो सकता है। [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, ३० दिसम्बर १९४६]

कुछ दिन बाद उन्होंने सरदारको फिर लिखा: "रुपयेको अपना देवता बनाकर हम ईश्वरको पदच्युत कर देते हैं।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, ६ जनवरी १९४७]

*

धीरे-धीरे और निश्चित रूपमें गांधीजीका खमीर काम करने लगा। श्रीरामपुरके ६ सप्ताहके अपने निवासके अन्तमें गांधीजीने अनेक लोगोंके हृदयोंको जीत लिया था । जब वे सुबह और शामकी सैरके लिए बाहर निकलते थे, तो मुसलमान पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंकी टोलियां अपने झोंपड़ोंके सामने उन्हें सलाम करनेके लिए फलोंकी भेंट लिये इकट्ठी हो जाती थीं । उन्होंने स्वाभाविक रूपमें यह मान लिया था कि गांधीजी हममें से ही एक हैं और उनका हमारे साथ सामान्य मानवताका ऐसा नाता जुड़ा हुआ है, जो जाति और धर्मके सारे भेदोंसे परे है। यह कायापलट मुसलमानों तक ही सीमित नहीं था । हिन्दुओंमें भी गांधीजीके प्रेमके सन्देशके कारण नये प्राणोंका संचार होने लगा था । ४ दिसम्बरकी प्रार्थनासे कुछ पहले लगभग ६०० हिन्दू नर-नारियों और बालकोंका एक जुलूस पहुंचा। ये लोग आसपासके गांवोंसे ६ मील चल कर खोल और करतालके साथ नाम-संकीर्तन करते हुए आये। वह दृश्य ऐसा था जो किसीके भी हृदयको आनन्दित कर सकता और ऊंचा उठा सकता था। परन्तु गांधीजी विचारमें पड़ गये कि यह नाम-संकीर्तन ये लोग हृदयसे कर रहे हैं या केवल मुखसे। "कोई तोता भी अपने मालिकसे जो कुछ उसने सीखा है उसे दोहरा सकता है । सुरक्षित अवस्थामें रहते हुए जब हम भगवानकी स्तुति गाते हैं तब उसमें कोई खूबी नहीं होती। स्तुति तो तभी वास्तविक होती है जब वह भय और संकटके समय की जाती है।" [प्रार्थना-प्रवचन, ४ दिसम्बर १९४६]

दिसम्बरके तीसरे सप्ताहमें एक संवाददाताने अपने पत्रको यह समाचार भेजा, “गांधीजीके नोआखालीमें सतत बने रहनेका परिणाम यह आ रहा है कि धीरे धीरे परन्तु स्थिर रूपमें उपद्रव-पीड़ित लोगोंमें फिरसे विश्वास पैदा हो रहा है। निराश्रित लोग अब अपने घरोंको लौट रहे हैं।” [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, २१ दिसम्बर १९४६] एक और संवाददाताने समाचार भेजा, “साम्प्रदायिक समस्याको हल करनेकी महात्माजीकी पद्धति अलौकिक सिद्ध हुई है। इसके पूरे परिणाम सामने आनेमें देर लग सकती है । जब आत्मासे अपील की जाती है, तो हमेशा देर लगती है; परन्तु यह उपाय सदा अधिक विश्वस्त और अधिक स्थायी होता है । . . . यह कोई ऊपरसे थोपी हुई शान्ति नहीं, परन्तु हृदयमें उत्पन्न की हुई शान्ति है।” [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, २४ दिसम्बर १९४६]

इस परिवर्तनके उदाहरण-स्वरूप राजाजीके दो पत्र थे। गांधीजीके श्रीरामपुर रवाना होनेसे एक दिन पहले १९ नवम्बरको राजाजीने एक पत्रमें मुझे लिखा: “बापू कब वापस आ रहे हैं? वहां इतने लम्बे समय तक रहनेसे क्या लाभ ? . . . जो कुछ लाभ हो सकता है वह पहले ही हो चुका है । कम खानेसे क्या लाभ होनेवाला है? यह खतरनाक है।” दो सप्ताह बाद उन्होंने गांधीजीको लिखा:

> मैं उन समाचारोंको चुपचाप देखता और पढ़ता रहा हूं, जो आपके वहांके कामके बारेमें छपते हैं। अखबारी समाचारोंमें तो बहुत कुछ नहीं होता, परन्तु थोड़ी कल्पना-शक्तिके साथ विचार करनेसे उनके भीतर बहुतसी बातें दिखाई देती हैं। मैं आपसे सहमत हूं कि आप जो काम कर रहे हैं, वह सब प्रकारसे महान है और कोई भी अन्य वस्तु इसमें बाधक नहीं होनी चाहिये। मैं कुछ दिनसे इस पर विचार करता रहा हुं। आपके नाम लिखा मेरा पत्र गलत था। मेरा खयाल है कि कुछ बातोंमें आप रचनात्मक अहिंसाका पहले-पहल ही प्रयोग कर रहे हैं। जीत आपकी होगी। और वह अत्यन्त मूल्यवान होगी । . . . मुझे आशा है कि आपके नये अनुभवसे विचार और कार्यकी सर्वथा नई दिशाएं प्रगट होंगी और आप पहलेसे अधिक अनुभव-सम्पन्न होकर लौटेंगे । ईश्वरने चाहा तो हमारी

समस्याएं हल भी हो सकती हैं। मेरा प्रेम और सम्पूर्ण विश्वास। [राजाजीका पत्र गांधीजीको, ३ दिसम्बर १९४६]

किन्तु गांधीजीकी दृष्टिमें तो "किया हुआ किंचित् कार्य" "न किये हुए अपार कार्य" का प्रतीक था और उसका स्मरण करानेवाला था। जब श्रीरामपुरके निवास-कालके अन्तमें किसीने उनसे पूछा कि आपके यहां रहनेका क्या परिणाम निकला, तो उनका उत्तर यह था कि कोई ठोस चीज तो मैं नहीं दिखा सकता । "परन्तु अहिंसा तो अक्सर अदृश्य रूपमें ही काम करती है।"

गांधीजीके नोआखालीसे चले जानेके बहुत दिन बाद एक गरीब बूढ़ा मुसलमान एक दिन सतीशचन्द्र दासगुप्तसे उनकी सुबहकी सैरके समय मिला। उसने सलाम करके उनसे पूछा, "गांधी बाबा" नोआखाली कब वापस आयंगे ? सतीशबाबूने उत्तर दिया, "किसी समय वे जरूर आयंगे, अच्छा।" उस मुसलमान जिज्ञासुने फिर पूछा, "लेकिन कब आयंगे?" और फिर निश्वास लेकर कहा, "वे यहां होते तो कमसे कम वे तो हमारी चिन्ता करते। हमारे दुःखोंको अनुभव करनेवाला दूसरा यहां कौन है !"

२

गांधीजी एकाकी रहनेके लिए बहुत उत्सुक थे, लेकिन बिलकुल अकेले रह नहीं सके। उनकी छोटीसी कुटिया एक अगम्य-से स्थानमें थी। वहां आजाद हिन्द फौजके स्वयंसेवकोंने बहुतसी तख्तियां लगा दी थीं, तो भी मिलने आनेवाले लोग घने जंगलमें अक्सर कुटियाका रास्ता भूल जाते थे। मैं कमसे कम १२-१५ बार रास्ता भूला होऊंगा ! फिर भी वह कुटिया एक चुम्बककी तरह न केवल आसपासके प्रदेशके निवासियोंके लिए, बल्कि भारतके सुदूर स्थानोंके और विदेशोंके लोगोंके लिए भी आकर्षणका केन्द्र बन गई। अखबारोंके संवाददाताओंकी एक फौज कलकत्तेसे उनके साथ हो गई थी। उनमें से कुछ लोग गांधीजीके साथ श्रीरामपुर तक गये थे। गांधीजीको विज्ञापन पसन्द नहीं था, परन्तु वे संवाददाताओंको साथ आनेसे रोक नहीं सकते थे। वे इतना ही कर सकते थे कि उनकी संख्याको कम करनेके लिए कठौर नियम बना दें। गांधीजीने

उन्हें कड़ी सूचना दे दी थी कि आप मेरे यजमानों पर अथवा गांवके लोगों पर भी भार न बनें और अपना प्रबन्ध स्वयं ही कर लें। यह प्रबन्ध उन्होंने कर लिया। बादमें जब गांधीजीके स्टेनोग्राफरको उन्हें छोड़ कर जाना पड़ा तब संवाददाताओंमें से दोने—

यू. पी. आई. वाले शैलेनने और 'दि हिन्दू' वाले रंगास्वामीने प्रेमपूर्वक उनका टाइप करनेका काम संभाल लिया।

जो लोग गांधीजीको ढूंढ़ते ढूंढ़ते उनके निवास-कालके अन्तमें श्रीरामपुर आ पहुंचे थे, उनमें मों. रेमन्ड काटियर भी थे। ये एक फ्रेन्च पत्रकार थे और हिन्द-चीन जा रहे थे। गांधीजीने अपने लंदनके मैट्रिक्युलेशनके लिए दूसरी भाषाके तौर पर फ्रेन्च पढ़ी थी और उन्हें इस बातका बड़ा गर्व था कि उन्होंने विक्टर ह्यूगोके 'ला मिज़रेबल्स' नामक उपन्यासको सारा मूल रूपमें पढ़ा था। उन्होंने फ्रेन्च आगन्तुकका अभिवादन फ्रेन्च भाषामें "आप कैसे हैं" कहकर किया और फिर जोरसे हंस कर कहा कि मेरा फ्रेन्चका सारा भंडार समाप्त हो गया है !

मों. कार्टियरने उनसे पूछा, यूरोपकी स्थितिके बारेमें आपका क्या खयाल है? गांधीजीने उत्तर दिया, मुझे उस पर बड़ा दुःख होता है। राजनीतिक लोग बातें तो शान्तिकी कर रहे हैं, परन्तु तैयारी लड़ाईकी कर रहे हैं। पिछले युद्धके दुष्परिणामोंसे उनका भ्रम दूर हुआ नहीं दीखता। जब पिछला युद्ध आरम्भ हुआ था तब मैंने कहा था कि यदि मानव-जाति अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ोंको निबटानेकी पद्धति नहीं बदलेगी, तो यूरोपियन सभ्यताका नाश निश्चित है। इस संबंधमें उन्हें हिटलरके नाम, अंग्रेज जातिके नाम और जापानियोंके नाम लिखे खुले पत्रोंका स्मरण हो आया। उन्होंने कहा, युद्धमें हारे हुए राष्ट्रोंसे जो बदला लिया जा रहा है वह राक्षसी है। "यदि हिंसा पर अवलम्बित रहनेकी यह मनोवृत्ति बनी रही, तो संसार अपना नाश कर लेगा।"

मों. कार्टियर बीचमें बोले, "पर हम तो हिंसाकी सन्तान हैं।"

गांधीजीने उत्तर दिया, "हिंसाकी सन्तान आत्महत्या कर लेगी और नष्ट हो जायगी, यदि वह हिंसासे मुंह नहीं मोड़ लेगी।"

अवश्य ही इसका उपाय यह है कि नई दुनियाके लिए नये प्रकारकी शिक्षा हो, परन्तु वह हिटलर और मुसोलिनीने दी वैसी न हो। "उन्होंने उस कामको केवल सम्पूर्ण बनाया, जो अमेरिका और इंग्लैंडने लड़ाईके उद्देश्यकी पूर्तिके लिए किया था। युद्धका काला मुंह करनेके लिए उस ढंगकी शिक्षासे काम नहीं चलेगा।"

सों. कार्टियरने फिर पूछा, यदि फ्रान्स नाजी सेनाओंके विरुद्ध अपना बचाव न करता, तो वह जिन्दा ही कैसे रह सकता था? गांधीजीने उत्तर दिया, लेकिन उसके लिए मैजिनो लाइनसे भी आपको बहुत लाभ नहीं हुआ । हिटलरने उसे बेकार कर दिया था | मों. कार्टियरने कहा, दोष सिद्धान्तका नहीं था। मैजिनो लाइनमें यंत्रकलाकी एक त्रुटि रह गई थी और सैनिक व्यूह-रचनाके निष्णातोंने उसके पतनका कारण इस त्रुटिको ही बताया था।

गांधीजीने जवाब दिया, "हो सकता है। परन्तु इससे भी आगे एक और गहरी त्रुटि है, जो मैजिनो लाइनके समूचे तत्त्वज्ञानमें रही मूलभूत त्रुटि है। जब तक आपके पास हिंसाकी हिटलरसे बढ़ी-चढ़ी शक्ति न हो, आप विजय-लाभ नहीं कर सकते। परन्तु ज्यों ही आप ऐसा करते हैं जीत हिटलरवादकी होती है और हिंसाको बढ़ी-चढ़ी हिंसासे मिटानेकी सारी योजना व्यर्थ हो जाती है। अहिंसासे ही हिटलरवादको अथवा अन्य किसी भी तरहकी हिंसाको जीता जा सकता है। यदि मैं पेरिसवासी होता और जर्मन लोग मेरे नगर पर आक्रमण करते, तो मैं पेरिसवालोंमें ऐसा जोश पैदा करता कि अपने शहरकी रक्षामें एक एक आदमी अपने प्राण न्योछावर कर देता। परन्तु यह रक्षा गत महायुद्धमें उन्होंने की वैसी नहीं होती, बल्कि अहिंसा द्वारा हिंसा पर विजय प्राप्त करनेके लिए आवश्यक उच्चतर कोटिकी हिम्मत दिखा कर की गई रक्षा होती। मैं नोआखालीमें उसी हिम्मतका विकास करनेकी कोशिश कर रहा हूं। मुझे सफलता कहां तक मिलेगी, यह मैं नहीं जानता।"

बड़े दिन पर एक ईसाई मित्र फ्रेन्ड्स सर्विस यूनिटकी एक महिला-सदस्यकी ओरसे बड़े दिनका उपहार गांधीजीके लिए लाये। यह सैनिकका थैला था, जिसमें सिगरेट, मोजे, ताश, कुछ नोट-पेपर, तौलिये, साबुन वगैरा चीजें थीं ! इससे गांधीजीको विनोदकी सामग्री मिल गई। सिगरेट

पंडित नेहरूके लिए रख लिये गये, जो दो दिन बाद आनेवाले थे। दूसरी चीजें 'प्रेमचिह्न' के रूपमें उनकी मंडलीके दूसरे आदमियोंको अलग अलग छावनियोंमें भेज दी गईं।

गांधीजीके कठोर संयमने उन्हें दूसरोंके प्रति, जो इस मामलेमें उनका अनुसरण नहीं कर सकते थे, असहिष्णु नहीं बनाया था। वे न तो कभी किसीके दोष देखते थे, न किसीके बारेमें जांच-पड़तालकी वृत्ति रखते थे। उनकी तेज आंखें देखतीं सब कुछ थीं, परन्तु किसीका काजी कभी नहीं बनती थीं। जो लोग गांधीजीसे स्नेह रखते थे उन्हें यदि संयम-पालनमें गांधीजीके सहयोगकी जरूरत होती तो वे सहयोग देते थे; परन्तु उनके जीवनमें हस्तक्षेप नहीं करते थे। उदाहरणके लिए, गांधीजी स्वयं संयमकी दृष्टिसे चाय या कॉफी नहीं लेते थे और यह भी मानते थे कि ये चीजें स्वास्थ्यके लिए हानिकारक हैं। इन दोनोंके विरुद्ध उन्होंने जोरदार लेख भी लिखे थे। परन्तु जो लोग चाय-कॉफीके बिना रह नहीं सकते थे, उन्हें वे चाय-कॉफी पिलाते भी थे। एक अवसर पर रेलयात्रामें वे खुद बाहर जाकर अपने साथियोंके लिए, जब वे सो ही रहे थे, रेल्वेकी चायकी दुकानसे चायका ट्रे ले आये थे। उनका लक्ष्य सदा यह रहता था कि संबंधित व्यक्तिसे उसकी दुर्बलता छुड़वाई जाय । परन्तु इसमें प्रेमके सिवा और कोई दबाव नहीं रहता था, यद्यपि प्रेमका दबाव और भी प्रबल होता था, क्योंकि उसमें न तो कठोरता होती थी और न दमन होता था। ऐसा प्रेम मनुष्यको ऊंचा उठाता है । जब कोई व्यक्ति यह अनुभव करता है कि दूसरा उसका न्यायाधीश बन रहा है तब वह अपना बचाव करने लगता है। गांधीजी ऐसा कभी नहीं होने देते थे।

उसी दिन बादमें एक पुरानी अनुशीलन पार्टी—आतंकवादी संस्था—के कुछ सदस्य गांधीजीसे दोपहर बाद मिलने आये। वे अपनी सेवाएं गांधीजीको देना चाहते थे। उनमें से एक त्रैलोक्य चक्रवर्ती महाराज कहलाते थे। उन्होंने गांधीजीसे कहा, हम नहीं जानते कि लोगोंको जिस भयंकर भयने इस समय जकड़ रखा है, उसके निवारणका उपाय उस पद्धतिसे कैसे खोजा जाय जिसके हम जीवनभर आदी रहे हैं। इसलिए हमें लगता है कि आपका युग आ गया है और हमारा युग चला गया है। हमारा युग केवल आपके नये युगका पुरोगामी था।

एक और आगन्तुकने गांधीजीसे पूछा, हिन्दुओंमें आत्मरक्षाकी शक्ति इस प्रकार कैसे संगठित की जाय कि मुसलमानोंकी भावनाको हिन्दुओंके विरुद्ध उभाड़े बिना संगठन सफल हो जाय ? गांधीजीने उत्तर दिया, हिंसक पद्धतिसे कोई भी संगठन किया जायगा तो उसके परिणामस्वरूप दोनों समुदायोंके बीच छोटे पैमाने पर शास्त्रास्त्रकी होड़ लगेगी। यह चीज अन्तमें भारतके लिए नाशकारी होगी। बंगालने हिंसाकी पद्धति आजमा कर देख ली, परन्तु वह साधारण लोगोंको प्रभावित नहीं कर सकी । इसके विपरीत, पिछले २५ वर्षोंमें मेरी देखरेखमें कांग्रेसने अहिंसाका जो पालन किया है वह पालन कितना ही लंगड़ा-लूला क्यों न हुआ हो, फिर भी उससे सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रका साहस बढ़ा है। इसलिए मैं तो अहिंसक मार्गसे संगठन करनेकी पद्धतिकी ही सिफारिश कर सकता हूं।

बादमें उन्होंने सायंकालकी प्रार्थनामें परोपकार पर प्रवचन करके इस विषयको आगे बढ़ाया । उसमें श्रोताओंको सेंट पॉल (कोरिन्थियन्स १, १३) के प्रसिद्ध भजन समझाये, जिनमें वे कोरिन्थियाके निवासियोंसे कहते हैं कि स्वर्गकी सारी नियामतें, उदाहरणके लिए, वाणीकी शक्ति, भविष्य-वाणीकी शक्ति, चिकित्साकी शक्ति आदि मूल्यवान हैं, परन्तु मैं तुम्हें एक ऐसा मार्ग बता सकता हूं जो और सब मार्गों उत्तम है, क्योंकि वह सबको उपलब्ध है—वह मार्ग है परोपकार अथवा प्रेमका । सब कोई धर्मोपदेशक, पैगम्बर या गुरु नहीं बन सकते, परन्तु अपने जीवनमें प्रेमकी शक्तिका प्रदर्शन तो सभी लोग कर सकते हैं:

> मैं उन सब वाणियोंमें भले ही बोलूं, जिनका प्रयोग मनुष्य और देवदूत करते हैं; परन्तु यदि मुझमें परोपकारकी भावना नहीं है, तो मैं ध्वनि उत्पन्न करनेवाले घंटों या मंजीरोंसे बेहतर नहीं हूं। मुझमें भविष्य-वाणी करनेकी शक्ति हो, मुझसे कोई रहस्य छिपा न हो, कोई ज्ञान मेरे लिए गहरा न हो; मुझमें ऐसी अटल श्रद्धा हो कि मैं पहाड़ोंको हिला दूं; फिर भी यदि मुझमें परोपकारकी भावना नहीं है तो कुछ नहीं है। मैं गरीबोंको भोजन देनेके लिए अपने सर्वस्वका ही दान क्यों न कर दूं; धर्मके पालनके लिए भले ही में जिन्दा ही जल जाऊं; परन्तु यदि मुझमें समभावका, उदारताका अभाव है, तो इनका कोई महत्त्व नहीं है। समभाव धैर्यवान होता है, दयालु होता है; समभावमें असूया और ईर्ष्याके लिए

कोई स्थान नहीं होता; समभाव कभी विकृत या अहंकारी नहीं होता; वह कभी घृष्ट नहीं होता; वह अपने अधिकारोंका दावा नहीं करता; उसे कभी उत्तेजित नहीं किया जा सकता; हो चुकी बात पर वह विचार नहीं किया करता; वह गलत काम करनेमें आनन्द नहीं लेता, बल्कि सत्यकी विजयसे प्रसन्न होता है; वह अन्त तक टिका रहता है; वह विश्वास करता है, आशा रखता है और कष्ट सहन करता है। ऐसा समय आयेगा जब हम भविष्य-वाणीसे ऊपर उठ जायंगे, हमारा जिह्वासे बोलना बन्द हो जायगा, ज्ञानका लोप हो जायगा; परन्तु समभाव कभी समाप्त नहीं होगा। हमारा ज्ञान, हमारी भविष्य-वाणी सत्यकी झांकियां मात्र हैं; और जब मुक्तिका समय आयेगा तब ये सब झांकियां लुप्त हो जायंगी । (जब मैं बालक था तो बालककी तरह बातें करता था, बालक जैसी ही मेरो बुद्धि और मेरे विचार थे; परन्तु जब मैं मनुष्य बना तबसे उन बालोचित रीतियोंसे ऊपर उठ गया।) इस समय हम दर्पणमें एक धुंधला प्रतिबिम्ब देखते हैं; फिर हमें प्रत्यक्ष दर्शन होंगे; इस समय मुझे ज्ञानकी केवल झांकियां होती हैं; फिर मैं ईश्वरको वैसे ही पहचान लूंगा जैसे उसने मुझे पहचान लिया है। इस बीच श्रद्धा, आशा और समभाव तीनों बने रहते हैं; परन्तु उन सबमें श्रेष्ठ समभाव है।

दूसरे दिन ढेरों डाक आई और उसमें बड़े दिनके उपहारोंमें बाइबलके एक सुन्दर संस्करणको प्रति भी आई। उसके मिलते ही गांधीजीका चेहरा चमक उठा और थोड़ी देर तक वे पूजाके भावसे बाइबलके पन्ने पलटते 'रहे। थोड़ी ही देर बाद रामगंज शान्ति-समितिके मंत्री आ पहुंचे । वे खबर लाये कि शरणार्थियोंको जो चावल बांठा जा रहा है वह बहुत ही खराब है। वे जो नमूना लाये थे उसकी गांधीजीने परीक्षा कराई । पकाने पर यह पाया गया कि वह चावल खानेके लायक नहीं है। एक और नमूना भी, जो उसी समय रामगंज अस्पतालके उच्चाधिकारीको भेजा गया था, इसी तरह "मनुष्यके खानेके सर्वथा अयोग्य" पाया गया। गांधीजीने यह सलाह दी कि जो चावल दिया जाता है वह सारा इसी प्रकारका हो, तो उसे लेनेसे इनकार कर देना चाहिये । परन्तु ऐसा करनेसे पहले शरणार्थियोंको अधिकारियोंके पास जाना चाहिये, उनकी कठिनाई समझनेका प्रयत्न करना चाहिये और उनसे अच्छा चावल मांगना चाहिये। सिर्फ यही रवैया

अहिंसाके अनुकूल है। यदि सरकार उनके राशनका पूरा चावल खाने जैसा न दे सके, तो जितना उपलब्ध हो उतना ही स्वीकार कर लेना चाहिये—यदि उससे प्राणरक्षा हो सके; और सरकारको स्थितिमें सुधार करनेके लिए एक पखवाड़ेका समय देना चाहिये। यदि इसके बाद भी स्थितिमें सुधार न हो, तो फिर राशन बिलकुल न लेनेकी बात होगी। परन्तु अभी उसका समय नहीं आया है।

३

श्रीरामपुरसे डेढ़ मील दूर मधुपुर गांवमें इंडियन मेडिकल एसोसियेशनने एक चिकित्सा-केन्द्र खोला था। रोगियोंको रखनेके अस्पतालके उद्‌घाटनके अवसर पर गांधीजीको वहां प्रार्थना-सभा करनेके लिए निमंत्रण दिया गया था। गांधीजीने निमंत्रण स्वीकार किया और इस अवसरका लाभ उठाकर उनके सामने प्राकृतिक चिकित्साका अपना दर्शन प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया, मेरा वर्षोंका यह अनुभव है कि ईश्वरसे बड़ा कोई चिकित्सक नहीं है। प्रकृतिके नियमोंका भंग करने पर ही मनुष्यको शरीर और मनके रोग होते हैं। सामान्यतः चिकित्सक लोग मनुष्यके शरीर पर ही ध्यान देते हैं और उसके मन और आत्माकी उपेक्षा करते हैं। इसका परिणाम बुरा होता है। आपको तीनोंके ही स्वास्थ्यकी चिन्ता करनी चाहिये। नोआखालीमें मुख्य रोग भयका है। एक पामरताकी भावना पैदा हो गयी है। जिससे न केवल लोगोंकी बुद्धिशक्ति और इंद्रियां ही शिथिल हो गई हैं, बल्कि एक स्वस्थ साधारण जीवनकी स्थिति फिरसे उत्पन्न करनेके समस्त प्रयत्नोंमें बाधा खड़ी हो गई है। आपका काम यह है कि आप इस भयको दूर करनेके लिए अपने जीवनमें वह अहिंसक साहस दिखायें और दूसरोंमें उत्पन्न करें, जो ईश्वरमें अटल श्रद्धा रखनेसे मनुष्यमें आता है—न कि अपने भौतिक शरीरको देवतुल्य बनायें।

मैंने सुना है कि मुस्लिम ग्रामवासी हिन्दू डॉक्टरोंके पास नहीं जाते हैं। मैं स्थानीय मुसलमानोंसे कहना चाहता हूं कि यह गलत है। डॉक्टरी पेशेमें मनुष्य मनुष्यमें कोई भेद नहीं माना जाता। जो डॉक्टर नोआखालीमें काम कर रहे हैं, उन्हें मेरी सलाह है कि वे विदेशी दवाइयों पर आधार न रखें। गांवोंमें गुणकारी जड़ी-बूटियां विपुल मात्रामें मिलती हैं। आयुर्वेदिक और

यूनानी वैद्य और हकीम उनका खूब उपयोग करते हैं। क्या पाश्चात्य शिक्षा पाये हुए डॉक्टरोंको इसी तरह सस्ती दवाइयोंका उपयोग नहीं करना चाहिये ? दृष्टान्तके रूपमें गांधीजीने प्रसिद्ध बंगाल केमिकल एंड फार्मास्युटिकल वर्क्सके संस्थापक सर प्रफुल्लचन्द्र रायका उल्लेख किया। वे स्वयं अपने ही बनाये हुए इस कारखानेकी अनेक दवाओंका उपयोग नहीं करते थे। जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो उन्होंने व्यंग्यपूर्वक उत्तर दिया, ये दवायें "शिक्षित मूर्खों" के लिए हैं। इनका उपयोग करके मैं मूर्खोंकी संख्या बढ़ाना नहीं चाहता !

१३ दिसम्बरको श्रीरामपुरके आसपासके गांवोंसे लगभग १०० कार्यकर्ता गांधीजीसे सलाह लेने आये। वे अपना एक 'रक्षीदल' संगठित करना चाहते थेगांधीजीको रक्षीदल नाम नहीं जंचा। दूसरेका "रक्षक" बननेका दावा कौन कर सकता है? कोई १० वर्षका बच्चा हो, नौजवान लड़की हो या वयस्क पुरुष हो, सबको अपनी अपनी रक्षाकी कला सीखनी होगी। यदि आपका यह खयाल हो कि आप केवल हिंसाके द्वारा ही अपनी और दूसरोंकी रक्षा कर सकते हैं, तो आपको युद्धकी कला और शस्त्रोंका प्रयोग सीख लेना चाहिये । परन्तु ऐसे साहसमें मैं आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता । इतना ही नहीं, यह मेरा सदाका अनुभव रहा है कि जो लोग तलवारसे दूसरोंकी रक्षा करने चले थे, वे अन्तमें स्वयं अत्याचारी बन गये। मेरी योजनामें अनेक लोगोंसे थोड़ोंकी रक्षा करनेके लिए एक गांवमें बहुत आदमियोंकी जरूरत नहीं होती । एक-दो आदमी काफी हो सकते हैं। यदि वे अपने कर्तव्य-पालनसे विचलित न हों और अपने हृदयोंमें रोष न रख कर अपने प्राण न्योछावर कर दें, तो कदाचित् उनके उदाहरणसे दूसरोंको भी अहिंसक साहस दिखानेकी प्रेरणा मिलेगी; और इस प्रकार वे या तो अपने उत्पीड़कोंके हृदय पिघला देंगे या अहिंसक ढंगसे अपने स्वाभिमान और प्रतिष्ठाकी रक्षा करते हुए मर जायंगे। इसलिए कार्यकर्ताओंको मेरी सलाह है कि वे "रक्षक" न बनकर लोगोंके सेवक बन जायं।

शरणार्थियोंके अपने गांवोंमें लौट जानेके संबंधमें एक स्थानीय कांग्रेसी कार्यकर्ताने एक दिलचस्प सुझाव दिया। वह यह था कि उन लोगोंमें फिरसे आत्म-विश्वास और शक्ति पैदा करनेके लिए अपने अपने घरोंमें अलग रहनेके बजाय उन्हें अपने अपने गांवोंमें एक दो चुनी हुई बाड़ियोंमें एकसाथ रहना चाहिये, एकसाथ खाना चाहिये और एकसाथ काम करना चाहिये और

सामुदायिक पद्धतिसे अपने खेतोंमें खेती करनी चाहिये और उसी पद्धतिसे अपनी फसलोंकी कटाई और उनका उपभोग करना चाहिये । इसके लिए गांधीजीको एक अपील निकालनी चाहिये, जिसमें देशके विभिन्न भागोंमें बिखरे हुए शरणार्थियोंसे अपने गांवोंमें लौट जानेके लिए कहा जाय और नौजवानोंको स्वयंसेवक बन कर शरणार्थियोंके बोच रहनेके लिए कहा जाय। गांधीजीने उत्तर दिया, सुझाव अच्छा है, अगर इस पर अमल किया जा सके। परन्तु मुझे भय है कि यह व्यावहारिक सिद्ध नहीं होगा । "यदि शरणार्थियोंमें सहयोगकी आवश्यक भावना हो, तो यह संभव होगा । परन्तु यह धीरे धीरे बढ़नेवाला पौधा है और **व्यक्तिगत साहस सहयोगसे भी नहीं आता** । वह तो आता है तब अपने आप ही आता है, क्योंकि वह एक ऐसा गुण है जिसका पुरस्कार वह स्वयं ही है। इसलिए यह सिद्धान्त बिलकुल सही है कि ऐसे स्वयंसेवक होने चाहिये, जो प्रत्येक पीड़ित गांवमें जायं । आपने देखा होगा कि मैं स्वयं ऐसा ही करता रहा हूं और मैंने इसका प्रारम्भ कर दिया है। जो लोग मेरे साथ सेवाग्रामसे यहां आये हैं, वे भी यही कर रहे हैं। यह देखना है कि उन पर जो महान विश्वास किया गया है, उसके योग्य वे सिद्ध होते हैं या नहीं । यह बात तो मेरे लिए भी कही जा सकती है। फर्क इतना ही है कि मैं किसीका अनुयायी नहीं हूं, परन्तु इस कल्पनाका जन्मदाता हूं। इसलिए आपके ध्यानमें कोई ऐसे स्वयंसेवक हों जिनमें ये आवश्यक गुण हों, तो उनके नाम और पते मेरे पास आप भेज दीजिये।" [गांधीजीका पत्र टिपरा रेस्क्यू, रिलीफ एण्ड रिहेबिलिटेशन कमेटीके उपाध्यक्ष आशुतोष सिनहाको, २७ नवम्बर १९४६]

उन्होंने समझाया कि मैं सार्वजनिक अपील नहीं करना चाहता, क्योंकि विज्ञापनके उत्तरमें सही प्रकारके पुरुष और स्त्रियां नहीं आयेंगी । "वे उच्च कोटिकी योग्यतावाले विश्वसनीय और उतने ही साहसी और . . . अंहिंसासे परिपूर्ण—अर्थात् मुसलमानोंके लिए आदर रखनेवाले—व्यक्ति होने चाहिये । यदि वे अविश्वासके साथ अपना यह कार्य आरम्भ करेंगे, तो यह खेदकी बात होगी। सच्चे साहसका आधार विश्वास पर होता है और विश्वास ही उसकी पक्की बुनियाद होता है।"

इसके अलावा, यदि मैं ऐसे स्वयंसेवकोंको आने दूं, जो मेरी उपस्थितिके आकर्षणसे आकर्षित होकर नोआखालीमें मर जायं, तो इससे अनुचित उत्तेजना पैदा होगी और अधिकारियों

तथा स्थानीय मुसलमानोंमें अनावश्यक खलबली मच जायगी । किसी व्यक्तिसे अहिंसक कार्य करानेके लिए पहले उसे बिलकुल निश्चिन्त कर देना पड़ता है । हमारी तरफसे बिलकुल सही व्यवहार होगा, तो स्थानीय मुसलमानों और बंगाल सरकारको अपनी प्रतिष्ठाका खयाल रहेगा। "बंगाल सरकार जो कुछ कर रही है उसे मैं ध्यानसे देख रहा हूं। लोगोंको अपने गांवोंमें लौट जानेके लिए **विवश नहीं किप्रा जा सकता**। मेरी रायमें ऐसा प्रयोग विनाशकारी होगा।"

पूरे हो रहे वर्षके आखिरी दिन दो मित्रोंने गांधीजीके सामने एक दुविधा रखी, जो उन्हें और नोआखालीके पीड़ित समुदायको हर जगह सता रही थी । मुसलमान कहते थे कि वे शरणार्थियोंका अपने गांवोंमें फिरसे स्वागत करनेंको तैयार हैं, बशर्ते कि वे उपद्रवोंस पैदा हुए फौजदारी मुकदमे वापस ले लें। हिन्दू शरणार्थियोंको डर था कि यदि वे मुकदमे वापस लेनेको तैयार न हुए, तो उन्हें शान्तिसे गांवोंमें रहने नहीं दिया जायगा। मुकदमोंको आगे बढ़ानेका मतलब मुसीबत मोल लेना होगा । ऐसी स्थितिमें कार्यकर्ता और उपद्रव-पीड़ित लोग क्या करें ? गांधीजीने कार्यकर्ताओंसे कहा, जिन लोगोंने अपराध किये हैं उनके सामने दो ही रास्ते हैं। वे अपराध स्वीकार करके इस आधार पर अपने आचरणको उचित बता सकते हैं कि जो कुछ उन्होंने किया वह दूसरोंकी सलाहसे केवल पाकिस्तानकी स्थापनाके लिए किया; उसके पीछे उनका कोई निजी हेतु नहीं था। और इसका परिणाम वे भुगत लें। अथवा वे पश्चात्ताप करें और प्रायश्चित्तके तौर पर कानूनकी सजाको स्वीकार करें। परन्तु यह कहना तो निरर्थक है कि दोनों कौमोंके बीच फिरसे अच्छे संबंध स्थापित होनेकी सुविधा पैदा करनेके लिए "समझौते" के तौर पर मुकदमे वापस ले लिये जायं। केवल सजासे बचनेके लिए अपने दुष्कृत्योंको स्वीकार करना कोई स्वीकार करना नहीं है। उसमें कोई पश्चात्ताप नहीं है। यदि उन्हें वास्तवमें अपने कियेका पश्चात्ताप है, तो साहसपूर्वक दंडका सामना करना चाहिये। "मैं जानता हूं कि यदि मुकदमे आगे बढ़ाये गये, तो आप लोगोंको मुसीबतोंका सामना करना होगा। फिरसे आगजनी और हत्याकांडका आरंभ हो सकता है और मुकदमोंके अन्तमें अपराधियोंको निर्दोष सिद्ध करके मुक्त भी कर दिया जा सकता है। इससे प्रतिशोधकी वृत्ति भी शायद मड़क सकती है। परन्तु कार्यकर्ताओंको इन सब बातोंका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिये । डरकर कोई

समझौता नहीं होना चाहिये। आपका काम ग्रामवासियोंको वीर और साहसी बनाना है, न कि कायर बनाना। आप उनकी जान भले न बचा सकें, परन्तु अहिंसक ढंगसे अपनी जान देकर आप उन्हें यह तो सिखा ही सकते हैं कि अपनी प्रतिष्ठा और अपने धर्मकी रक्षा कैसे की जाती है। उस सूरतमें लोग यदि अहिंसक ढंगसे अपनी रक्षा न कर सकें, तो दूसरोंको मार कर वे मर सकते हैं। परन्तु कार्यकर्ता तो अपना कर्तव्य पूरा कर चुके होंगे।"

कुछ मुसलमानोंने गांधीजीसे पूछा, "क्या आपका यह खयाल नहीं है कि अहिंसा और दोस्तीका यह तकाजा है कि मुसलमानोंके विरुद्ध दायर किये गये मुकदमे वापस ले लिये जायं या छोड़ दिये जायं?"

गांधीजीने उत्तर दिया, मुझे नहीं लगता कि हवामें बहुत अहिंसा है। परन्तु अहिंसक आचरण भी कानूनको अपना काम करनेसे नहीं रोक सकता। **किसी भी हालतमें भयभीत और पीड़ित पक्षकी ओरसे अहिंसक आचरण नहीं हो सकता, जब तक कि अपराधी अपने अपराधोंको प्रकट न कर दें और उनके लिए पश्चात्ताप न करें**। लेकिन सच तो यह है कि अपराधियोंकी तरफसे कोई पश्चात्ताप नहीं हो रहा है, बल्कि वे तो फरार हैं। उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। साथ ही मैं इसके पक्षमें हूं कि जिन लोगोंके बारेमें झूठी शिकायतें करनेकी बात सिद्ध हो जाय, उन्हें कड़ी सजा दी जाय।

कुछ समय बाद जिस क्षेत्रमें मुझे रखा गया था वहांके मुसलमानोंने शिकायत की कि छुआछूत मिटानेके लिए हम जो अन्तर्जातीय भोज संगठित कर रहे हैं उनमें उन्हें नहीं बुलाया जाता। उनकी दलील यह थी कि हरिजनोंके सम्बन्धमें अस्पृश्यता छोड़ दी जाय और मुसलमानोंके सम्बन्धमें रखी जाय, यह नहीं हो सकता। सिद्धान्तके रूपमें उनका तर्क निर्दोष था। परन्तु मैंने सोचा कि मेरे लिए गांधीजीकी सलाह ले लेना बेहतर होगा। उनके उत्तरसे मुझे मालूम हुआ कि सत्याग्रहके सजीव धर्मका पालन करनेमें एक सत्याग्रहीको कितना जागरूक और सावधान रहना पड़ता है और उसके सच्चे आचरणके लिए कितनी वैज्ञानिक निश्चितताकी जरूरत होती है। गांधीजीने हमें बार बार बताया था कि हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नकी जड़ अस्पृश्यतामें

है और हिन्दू धर्मकी छुआछूतकी भावनाकी उन्होंने घोर निन्दा की थी। उनके आश्रममें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और हरिजन सब किसी भेदभावके बिना एक ही भोजनालयमें एकसाथ भोजन करते थे। परन्तु उन्होंने समझाया कि मुसलमानोंके लिए ऐसी मांग रखनेका और सताये हुए हिन्दुओंके लिए उसे माननेका यह मौका नहीं है। अभी कुछ दिन पहले ही तो मुसलमानोंने उनका जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन किया है और उन्हें जबरदस्ती अपने साथ बैठा कर निषिद्ध भोजन भी कराया है। इन पीड़ितोंको पहले साहसी बनना सीखना चाहिये, तब कहीं वे उदार बन सकते हैं। किसी वास्तविक अथवा संभाव्य धमकीसे डर कर किसी बातको मान लेना सहिष्णुता नहीं, कायरता है।

नोआखालीमें गांधीजीके मिशनके समाचार लेनेके लिए जो संवाददातादल आया हुआ था, उसने एक और स्थान पर अपने शिविरमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए सहभोज रखा था। इससे कुछ फिरसे बसाये गये शरणार्थियोंको घबराहट हुई और उन्होंने कहा, अगर हम मुसलमानोंके साथ खाना स्वीकार कर लें, तो फिर मुसलमान हमसे कह सकते हैं कि हमें कलमा भी पढ़ना चाहिये और अपनी लड़कियां भी उन्हें देनी चाहिये। गांधीजीने उन्हें समझानेकी कोशिश की कि हिन्दुओंमें खाने-पीनेके बारेमें छुआछूतका जो पुराना रिवाज चला आया है, वह अब समयके अनुकूल नहीं रहा। उसे अनिश्चित काल तक जारी नहीं रखा जा सकता। अब समय आ गया है कि हिन्दू उसे छोड़ दें। परन्तु मैं मानता हूं कि आपका डर निराधार नहीं है। अतः मैं आपके लिए कोई नियम नहीं बनाऊंगा, परन्तु आप पर ही छोड़ दूंगा कि आप जैसा चाहें स्वयं निर्णय कर लें। इसके फलस्वरूप जिस गरीब आदमीके मकानमें संवाददाता-दलकी छावनी थी वहां सहभोज नहीं रखा गया, परन्तु जहां गांधीजी ठहरे हुए थे और जहां उनकी उपस्थितिके कारण लोगोंका साहस ऊंचे दर्जेका था उस स्थान पर रखा गया। साथ ही, हिन्दुओंको पदार्थ-पाठ सिखानेके लिए गांधीजीने अपने दलकी एक महिलाको उस सहभोजमें शरीक होनेके लिए भेज दिया।

दो दिन बाद मुसलमानोंकी एक सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने उनसे कहा, मैं और मेरे साथी तो यह नहीं मानते कि छूनेसे कोई भ्रष्ट हो जाता है और मुझे किसी भी जाति या धर्मवालेके

साथ खानेमें जरा भी संकोच नहीं है। परन्तु मुसलमान भाइयोंको चाहिये कि वे उन लोगोंको बर्दाश्त कर लें, जो अभी तक इस मामलेमें अपना संकोच नहीं मिटा सके हैं। "मैं इस प्रथाको गलत समझता हुं; समय पाकर यह मिट जायगी। परन्तु तब तक मुसलमानोंको यह समझ लेना चाहिये कि एक-दूसरेके साथ खाना परस्पर प्रेमके लिए कोई महत्त्वकी बात नहीं है । इससे जहां कहीं आपको सच्चा प्रेम मिले उसे पहचाननेमें आपके लिए बाधा नहीं आनी चाहिये। यह वस्तु अपने आपमें दोनोंके बीचकी खाईको पाटनेमें सहायक सिद्ध होगी।"

इस प्रकार एक निष्णात डॉक्टरकी तरह गांधीजी हर बीमारकी बीमारीको देखकर अपना निदान बदल देते थे। उनकी अहिंसा कोई जड़ या कठोर वस्तु नहीं थी। वह एक विकासशील सजीव वस्तु थी और परिस्थितियोंके अनुसार उसमें आवश्यक परिवर्तन करनेकी जरूरत रहती थी।

४

गांधीजी श्रद्धालु और प्रार्थना-परायण मनुष्य थे। श्रद्धा और प्रार्थना उनके कार्यके साधन, उनकी सत्यकी शोधके हथियार थे। एक बार उन्होंने कहा, "जीवन बड़ी पेचीदा चीज है। और सत्य तथा अहिंसा हमारे समक्ष ऐसी समस्याएं प्रस्तुत करते हैं, जिनका विश्लेषण नहीं किया जा सकता और जिनके विषयमें कोई निर्णय नहीं हो पाता । मनुष्य धैर्यपूर्वक प्रयत्न करे और मौन प्रार्थना करे, तो ही सत्यकी और उसके प्रयोगकी पद्धतिकी—अर्थात् सत्याग्रहकी अथवा आत्मबलकी खोज कर सकता है।" [यंग इंडिया, १ जून १९२१, पृ० १७४]

परमावस्था "प्रार्थना और स्तुतिके अपूर्ण प्रभाव" से परे होती है । उसमें द्वैत अथवा पृथक् अस्तित्वकी सारी भावना मिट जाती है। जिस मनुष्यने वह स्थिति प्राप्त कर ली है, वह विश्वका संचालन करनेवाले नैतिक नियमका साधन बन जाता है। उसके मनमें बुरा विचार आ ही नहीं सकता अथवा किसीको हानि पहुंचानेकी इच्छा उसके मनमें पैदा हो ही नहीं सकती । जो कुछ नैतिक नियमके अनुकूल नहीं है, वह उसके पास तक नहीं फटक सकता । ऐसे मनुष्यके लिए

प्रेम "प्रकाश-स्तंभ और आनन्द श्रेयस्कर" बन जाता है। प्रार्थना उस स्थिति तक पहुंचनेका एक साधन है।

अन्तर्यामी, कालातीत, निराकार तत्त्वका शान्त चिन्तन उत्तम प्रार्थना है। परन्तु सभी प्राचीन और अर्वाचीन लोगोंने इस बातकी साक्षी दी है कि "मनोविज्ञानकी दृष्टिसे किसी प्रकारके भक्तिभावके द्वारा तैयारी किये बिना तथा समय समय पर कुछ नहीं तो अमुक प्रकारकी याचना करनेकी आवश्यकता अनुभव किये बिना चिन्तन करना मानवके लिए लगभग असंभव है।" [आल्डस हक्सले, 'दि पेरेनियल फिलॉसॉफी', लन्दन, १९४६, पृ० २५१]

इस सन्दर्भमें याचना शुद्धताके लिए और सतत उद्योगशील बने रहनेका बल प्राप्त करनेके लिए ही हो सकती है, ताकि "ईश्वरकी इच्छाके अनुसार काम करनेके सिवा" [आल्डस हक्सले कृत 'दि पेरेनियल फिलॉसॉफी', लन्दन, १९४६ में उद्‌धृत सेन्ट फ्रेंकोइस दि सेलका उद्धरण, पृ० २५३] और कोई इच्छा मनुष्यमें बाकी न रहे । और याचना उसी प्रकार "अपने पड़ोसीके प्रेमका साधन और उसकी अभिव्यक्ति" [आल्डस हक्सले, 'दि पेरेनियल फिलॉसॉफी', लन्दन, १९४६, पृ० २५१] है जैसे पूजा "ईश्वरके प्रेमका साधन और उसकी अभिव्यक्ति है—यह ऐसा प्रेम है जो परम तत्त्वके एकत्वके ज्ञानमें चरम सीमाको पहुंचता है और वह ज्ञान चिन्तनका फल है।" [वही]

ईश्वरीय आशय कभी बदला नहीं जा सकता। परन्तु ईश्वर जड़-चेतन सबमें विद्यमान है, इसलिए प्रार्थनाका अर्थ है हमारे भीतर "जो ईश्वरीय तत्त्व है उसे जगानेका प्रयत्न करना।" [हरिजन, १९ अगस्त १९३९, पृ० २३६] गांधीजी कहते थे, "इसलिए आप प्रार्थनाका वर्णन इस तरह कर सकते हैं कि वह सर्वव्यापी ईश्वरीय तत्त्वमें समा जानेकी एक सतत लालसा है।" [वही]

नास्तिक लोग ईश्वरके अस्तित्वसे इनकार करते हैं, परन्तु सत्यसे इनकार नहीं करते । इसलिए गांधीजी इस निर्णय पर पहुंचे कि "यह कहनेके बजाय कि ईश्वर सत्य है मुझे यह कहना चाहिये कि सत्य ही ईश्वर है।" [यंग इंडिया, ३१ दिसम्बर १९३१, पृ० ४२८] यह बड़े महत्त्वकी बात नहीं है कि कोई अपनेको नास्तिक कहता है या किसी न किसी रूपमें ईश्वरकी कल्पना करता है । "यदि आप ईश्वरको सामने नहीं लायंगे तो मुझे कोई शंका नहीं कि आप किसी न किसी ऐसी

चीजको सामने लायंगे, जो अन्तमें ईश्वर ही सिद्ध होगी; क्योंकि सौभाग्यसे इस विश्वमें ईश्वरके सिवा और कुछ नहीं है।" [प्रभु और राव, 'माइण्ड ऑफ महात्मा गांधी', मद्रास, १९४६, पृ० ४१] गांधीजीने कहा था: इसलिए सब कुछ अपने स्वभाव, परम्परा अथवा बौद्धिक रचना पर निर्भर करता है। एक मनुष्य ईश्वरको व्यक्ति मानकर पूज सकता है, दूसरा शक्ति मान कर और तीसरा सत्य अथवा नियम मान कर उसकी पूजा कर सकता है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता । "केवल इतना ही याद रखनेकी जरूरत है कि सब शक्तियोंमें ईश्वर परम शक्ति है । अन्य सब शक्तियां भौतिक हैं। परन्तु ईश्वर ही वह प्राणभूत शक्ति अथवा आत्मा है, जो सर्वव्यापक है और इसीलिए मानवके ज्ञानक्षेत्रसे परे है।" [हरिजन, १८ अगस्त १९४६, पृ० २६७]

शंकाशील व्यक्ति पूछ सकता है, "परन्तु प्रार्थना की ही क्यों जाय ? क्या ईश्वर अपना कर्तव्य-पालन कर सके इसके लिए उसे प्रार्थनाकी आवश्यकता होती है?"

गांधीजी उत्तर देते हैं, "नहीं "। ईश्वरको उसके कर्तव्यका स्मरण करानेकी जरूरत नहीं, जब कि मनुष्यको है। प्रार्थनाका अर्थ है "सत्यकी भावनासे परिपूर्ण होनेकी उत्कट इच्छा । यह इच्छा चौबीसों घंटे विद्यमान रहनी चाहिये । परन्तु हमारी आत्माएं इतनी निस्तेज हैं कि उनमें दिन-रात यह जागृति नहीं रह सकती । इसलिए हम इस आशासे थोड़ी देरके लिए प्रार्थना करते हैं कि ऐसा समय कभी आयेगा जब हमारा सारा आचरण एक सतत प्रार्थनाका रूप ले लेगा।" [गांधीजी, 'सत्याग्रह आश्रमका इतिहास', अहमदाबाद, १९५५, पृ० ३७] प्रार्थना "हृदयकी एक खोज है, . . . नम्रताकी पुकार है, . . . आत्मशुद्धिका आह्वान है।" [हरिजन, ८ जून १९३५, पृ० १३२] "यदि आप सत्यके सागरको छाती पर तैरना चाहते हैं, तो आपको शून्यवत् बनना पड़ेगा।" [यंग इंडिया, ३१ दिसम्बर १९३१, पृ० ४२८]

हम विश्वास करें या न करें, ईश्वर निश्चित रूपसे है ही। "परन्तु ईश्वरका साक्षात्कार केवल विश्वाससे अनन्त गुनी बड़ी वस्तु है। . . . मनुष्य प्राय: तोतेकी तरह ईश्वरका नाम रटता है। . . . सत्यान्वेषकमें वह सजीव श्रद्धा होनी चाहिये, जो न केवल उसके अपने हृदयसे परन्तु दूसरोंके हृदयोंसे भी तोतेकी तरह रामनाम रटनेके असत्यको निकाल दे।" [हरिजन, ५ मई १९४६, पृ०

११३] यह श्रद्धा सतत अभ्याससे ही आ सकती है। “यह कथन सभी शास्त्रोंके लिए सही है; तब समस्त शास्त्रोंके भी शास्त्रके लिए तो यह कितना अधिक सत्य होना चाहिये ?” [वही] इसीलिए प्रार्थना और ध्यानकी जरूरत है।

ध्यानका अर्थ है अपने “आराध्यके सिवा और सब पदार्थोंके प्रति मनकी आंखें और कान बन्द कर लेना।” [हरिजन, १८ अगस्त १९४६, पृ० २६५] गांधीजी कहते थे, इसलिए यह कहा जा सकता है कि प्रार्थना करते समय मनुष्य “अपने ही श्रेष्ठ स्वरूप” [वही, पृ० २६७] की, ईश्वरीय तत्त्वकी, अन्तर्यामी सत्यकी, सारे प्राणियोंमें बसे हुए सत्यकी पूजा करता है। “प्रार्थनीके समय हमारी वाणी हमारे ही लिए होती है और हमारी नींद उड़ाना उसका उद्देश्य होता है। हममें से कुछ लोग बुद्धिसे ईश्वरको जानते हैं। . . . किसीने उसे प्रत्यक्ष देखा नहीं है। हम प्रार्थनाके द्वारा उसका साक्षात्कार करना चाहते हैं, उसके साथ एकाकार होना चाहते हैं।” [गांधीजी, ‘सत्याग्रह आश्रमका इतिहास’, अहमदाबाद, १९५५, पृ० ३६]

इस प्रकार प्रार्थनाका अर्थ प्राकृतिक दृष्टिसे भी समझाया जा सकता है। उसके परिणाम किसी अलौकिक हस्तक्षेप द्वारा प्राप्त नहीं होते, परन्तु स्वाभाविक मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा प्राप्त होते हैं। प्रार्थवा सामान्य अर्थमें याचना करना नहीं है, परन्तु “कुम्भकारके दैवी हाथोंमें मिट्टीका लोंदा बन जानेकी . . . तीव्र लालसा है,” [यंग इंडिया, १७ नवम्बर १९२१, पृ० ३७७] अपनी इच्छा, बुद्धि और शरीर सत्यकी शक्तिको अथवा अन्तर्यामी ब्रह्मको अर्पण कर देना है। “मनुष्य केवल अपने विचारोंका परिणाम है। जैसा वह सोचता है वैसा ही बन जाता है।” [गांधीजी, 'एथिकल रिलीजन', मद्रास, १९२२, पृ० ६२]

गांधीजीने यह सिखाया था कि प्रार्थनाका फल किसी “बाहरी प्रमाणमें न खोज कर उन लोगोंके बदले हुए आचरणमें और चरित्रमें खोजना चाहिये, जिन्होंने अपने भीतर ईश्वरकी वास्तविक उपस्थितिका अनुभव किया है।” [यंग इंडिया, ११ अक्तूबर १९२८, पृ० ३४०-४१] ईश्वर कभी मूर्त रूपमें हमारे सामने नहीं आता, परन्तु कर्मके रूपमें आता है।” [हरिजन, १० दिसम्बर १९३८, पृ० ३७३] “ईश्वरको ईश्वर नामका अधिकारी बननेके लिए हृदयका स्वामी होना चाहिये

और उसका परिवर्तन करना चाहिये। उसे अपने भक्तके छोटेसे छोटे कार्यमें प्रकट होना चाहिये।" [यंग इंडिया, ११ अक्तूबर १९२८, पृ० ३४०] "मैंने न ईश्वरको देखा है, न उसे जाना है। मैंने तो ईश्वरमें संसारकी श्रद्धाको ही अपनी श्रद्धा बना लिया है और चूंकि मेरी श्रद्धा अमिट है इसलिए मैं उस श्रद्धाको ही अनुभवके समान मानता हूं।" [गांधीजी, 'आत्मकथा, भाग – २', अहमदाबाद, १९२७, पृ० ६२]

और यह प्रमाण सभी देशोंके पैगम्बरों और ऋषियोंकी अविच्छिन्न शृंखलाके अनुभवोंमें मिलता है और वह अनुभव किसीको भी, जो उसकी शर्तें पूरी कर दे, प्राप्त हो सकता है। इसलिए वह वैज्ञानिक प्रमाणकी कसौटीमें पूरा उतरता है। कोई इसे केवल "अन्ध-विश्वास" कह कर अस्वीकार कर दे, तो इसमें उसीकी हानि है। "ईश्वर तो अप्रसन्न नहीं होगा। परन्तु मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूं कि जो मनुष्य प्रार्थना नहीं करता, वह अवश्य घाटेमें रहता है।" [हरिजन, १८ अगस्त १९४६, पृ० २६७] "राजनीतिक क्षितिजमें मेरे सामने निराशा ही निराशा छायी होने पर भी मेरी शान्ति कभी नष्ट नहीं हुई। . . . वह शान्ति . . . प्रार्थनासे मिलती है।" [यंग इंडिया, २४ सितम्बर १९३१, पृ० २७४] "जब इस अन्यन्त व्यापक संसारमें कोई सहायता और आश्वासन देनेवाला नजर नहीं आता, तब ईश्वरका नाम हमें शक्ति देता है और सारी . . . निराशाको भगा देता है। आकाशमें बादल छाये हों तो भी ईश्वरकी हार्दिक प्रार्थना करनेसे वे सब बिखर जाते हैं।" [हरिजन, १ जून १९३५, पृ० १२३] "जब हम सारी आशायें छोड़कर बैठ जाते हैं, सर्वथा निराधार बन जाते हैं, तब कहीं न कहींसे मदद आ पहुंचती है, ऐसा मेरा अनुभव है।" [गांधीजी, 'आत्मकथा, भाग – १', अहमदाबाद, १९२७, पृ० १७५]

परन्तु ईश्वर हमारे हृदयोंकी निर्मम खोज करता है। "वह हमें और हमारे हृदयोंको स्वयं हमसे भी ज्यादा अच्छी तरह जानता है । वह हमारे शब्दों पर ध्यान नहीं देता, क्योंकि वह जानता है कि हममें से कुछ जानकर और कुछ अनजाने जो भी जबान पर आता है बोल देते हैं।" [यंग्र इंडिया, ५ मार्च १९२५, पृ० ८१] और इसलिए वह हमारी "हर विनती संपूर्णतः" हरिजन, २३ मार्च १९४०, पृ० ५५] पूरी नहीं करता। वह "अहंकारियोंकी या जो उसके साथ सौदा करते हैं उनकी प्रार्थनाएं कभी पूरी नहीं करता । . . . यदि आप उससे सहायता चाहते हैं तो उसके सामने

बिलकुल खुला मन लेकर जाइये, मनमें कुछ भी दुराव या चोरी रखे बिना जाइये और इस बातका जरा भी भय अथवा शंका न रखिये कि आप जैसे पतितकी सहायता वह कैसे कर सकता है। . . . तब आप देखेंगे कि आपकी सारी प्रार्थनाएं पूरी की जाती हैं। . . . यह मैं स्वयं अपने अनुभवसे कह रहा हूं। मैं इस कठोर यातनासे गुजरा हूं |" [यंग इंडिया, ४ अप्रैल १९२९, पृ० १११] परन्तु ईश्वर हमारा उद्धार हमारी अपनी शर्तों पर नहीं, बल्कि उसकी अपनी शर्तों पर करने आता है। वह हमारी पूरी पूरी परीक्षा लेता है। "वह इस लोकमें और परलोकमें सबसे कठोर काम लेनेवाला स्वामी है । जैसा व्यवहार हम अपने पड़ोसियों—मनुष्यों और पशुओं—के प्रति करते हैं, वैसा ही ईश्वर हमारे साथ करता है।" [यंग इंडिया, ५ मार्च १९२५, पृ० ८१]

तो क्या जब ईश्वर हमारी प्रार्थना स्वीकार कर लेता है तब वह अपना नियम भंग करता है?

गांधीजीने कहा, "नहीं ।" यह प्रश्न तभी उठता है जब हम ईश्वरकी कल्पना मनुष्यके रूपमें करते हैं। "मैं ईश्वरको व्यक्ति नहीं मानता। सत्य मेरे लिए ईश्वर है और ईश्वरका नियम तथा ईश्वर उसी अर्थमें अलग अलग वस्तुएं अथवा तथ्य नहीं हैं, जिस अर्थमें सांसारिक राजा और उसके नियम भिन्न होते हैं । ईश्वर एक कल्पना है, एक विचार है, स्वयं एक नियम है . . . इसलिए यह कल्पना नहीं की जा सकती कि वह नियमको तोड़ता है।" [हरिजन, २३ मार्च १९४०, पृ० ५५] जब हम व्यक्तिके रूपमें ईश्वरका वर्णन करते हैं तब "हम केवल मानव-भाषाका प्रयोग करते हैं और उसे सीमित करनेकी कोशिश करते हैं। अन्यथा वह और उसका नियम सर्वत्र शासन करता है और सब वस्तुओंका संचालन करता है।" [वही]

इससे मनुष्यकी स्वतंत्र इच्छा और स्वतंत्र निर्णयका प्रश्न पैदा होता है । गांधीजी मानते हैं कि "हम जितनी स्वतंत्र इच्छाका उपभोग करते हैं वह किसी जहाजकी छत पर बेठे हुए मुसाफिरोंकी भीड़में से एक मुसाफिरकी स्वतंत्र इच्छासे भी कम है।" [वही] हमारा प्रारब्ध हमारे साथ जुड़ा रहता है। पर इससे भाग्यवादी होनेकी जरूरत नहीं । "मनुष्य इस अर्थमें अपने भाग्यका स्वयं विधाता है कि वह अपनी स्वतंत्रताके उपयोगका ढंग चुननेके लिए स्वतंत्र है ।

परन्तु परिणाम उसके नियंत्रणमें नहीं होते ।" [वही] कर्म और उसके फल—घटनात्मक जगतकी अन्य सब बातोंकी तरह—कार्य-कारणके नियमके अधीन होते हैं; परन्तु आत्मा प्रकृतिका भाग नहीं है, वह अविनाशी और नित्य है। इसलिए वह इन नियमोंसे बंधी हुई नहीं है।

गांधीजीने कहा है कि जो कुछ अच्छा है उस सबका योग ईश्वर है। परन्तु इसी कारण उसकी या तो व्याख्या नहीं हो सकती अथवा परस्पर विरोधी व्याख्या हो सकती है और अन्तमें "नेति, नेति" कहकर ही उसकी व्याख्या हो सकती है। यह कथन इस बातका सूचक नहीं है कि ईश्वरका स्वरूप परस्पर विरोधी है, परन्तु यह बताता है कि ईश्वरकी विभूतियां अनन्त हैं तथा जो शब्दों और विचारोंकी पहुंचसे भी परे है उसका वर्णन करनेमें वाणीकी अपनी मर्यादायें हैं । ईश्वरके ज्ञान-स्वरूपमें सारे विरोध शान्त हो जाते हैं और भव्य संगीतकी एकरागतामें लीन हो जाते हैं। गांधीजी कहते हैं:

> मेरे लिए ईश्वर सत्य और प्रेम है; ईश्वर नीति और सदाचार है; ईश्वर अभय है । ईश्वर प्रकाश और जीवनका स्रोत है और फिर वह इन सबसे ऊपर और परे है । ईश्वर अन्तःकरणकी प्रवृत्ति है। ईश्वर नास्तिकोंका नास्तिकवाद भी है । . . . वह वाणी और बुद्धिसे परे है। . . . जिन्हें मूर्त स्वरूपमें उसकी उपस्थितिकी आवश्यकता है, उनके लिए वह साकार ईश्वर है । जिन्हें उसका स्पर्श चाहिये, उनके लिए वह शरीरधारी है । वह पवित्रतम सत्त्व-स्वरूप है। जिनमें श्रद्धा है उनके लिए वह केवल **सत्-स्वरूप** है। मनुष्य जिस प्रकार उसकी शरणमें जाता है उसी प्रकार वह मनुष्यको फल देता है। वह हमारे भीतर भी है और ऊपर तथा परे भी है। . . . वह अत्यन्त क्षमावान है। वह सहनशील है, परन्तु भयंकर भी है। . . . उसके सामने अज्ञानका बहाना नहीं चलता। और साथ ही वह सदा क्षमाशील है, क्योंकि वह हमें सदा पश्चात्तापका मौका देता है। वह सबसे बड़ा लोकतंत्रवादी है, क्योंकि वह बुराई और भलाईमें चुनाव करनेकी हमें "पूरी स्वतन्त्रता" देता है। वह सबसे बड़ा अत्याचारी भी है, क्योंकि वह अक्सर हमारे मुंहका प्याला छीन कर तोड़ देता है और हमें स्वतन्त्र इच्छाशक्ति देनेके बहाने हमें इतनी अल्प छूट देता है,

मानो हमारे साथ खिलवाड़ कर रहा हो। . . . इसलिए हिन्दू धर्म कहता है कि यह सब उसकी लीला है। [यंग इंडिया, ५ मार्च १९२५, पृ० ८१]

श्रद्धा बुद्धिसे परे है । गांधीजीने बलपूर्वक कहा है कि पूर्ण श्रद्धाको अनुभवका अभाव भी नहीं खटकता । क्या इससे श्रद्धाकी यथार्थता अथवा मूल्य कम हो जाता है? क्या भौतिकशास्त्री अथवा गणितशास्त्री ऐसी संख्याओंका उपयोग नहीं करते, जो बुद्धिग्राह्य अंकोंमें व्यक्त नहीं की जा सकतीं, परन्तु प्रतीकों द्वारा ही प्रगट की जा सकती हैं? क्या इस कारणसे "बुद्धिक लिए अगम्य संख्याएं" कम वास्तविक हो जाती हैं? भौतिक-विज्ञान और गणितशास्त्रके संपूर्ण अनुसंधानके लिए ये संख्यायें अनिवार्य साधन होती हैं। इसी प्रकार आध्यात्मिक अनुसन्धानोंके लिए श्रद्धा एक अत्यावश्यक साधन है।

गांधीजीसे पूछा गया: परन्तु जिनमें श्रद्धा नहीं है और इसलिए जो प्रार्थना नहीं कर सकते उनका क्या ? उन्होंने उत्तर दिया: "नम्र बनिये। जब तक आप शून्यवत् नहीं बन जाते तब तक आप ईश्वर अथवा प्रार्थनाका अर्थ नहीं जान सकेंगे ।" [हरिजन, १९ अगस्त १९३९, पृ० २३८] और शून्यवत् बननेका उपाय यह है कि आप भगवानकी सृष्टिमें छोटेसे छोटे जीवकी सेवामें लीन हो जाइये।

५

उपरोक्त निरूपण गांधीजी द्वारा प्रतिपादित "प्रार्थना-शास्त्र" की रूपरेखा है। परन्तु वे विशुद्ध विज्ञानसे संतुष्ट नहीं होते थे। विज्ञानका संबंध सामाजिक समस्याओंके साथ जोड़ा जाना चाहिये और उनका हल उसे निकालना चाहिये। इसके लिए गांधीजीने सामूहिक प्रार्थनाकी कार्य-पद्धतिका प्रयोग किया। ज़िराल्ड हर्ड कहता है कि भौतिक शास्त्र, प्राणिशास्त्र और वैयक्तिक मनोविज्ञानके "क्षेत्र " का उत्तरोत्तर बढ़नेवाला अध्ययन यह बताता है कि प्रार्थनाके प्रश्नके प्रति "वैयक्तिक अथवा परमाणुवादी दृष्टि " आंशिक और अपूर्ण है और इस अपूर्णताकी पूर्ति होनी चाहिये । "मानव पर उसके आसपासकी परिस्थितियोंके प्रभावका अध्ययन करनेवाला शास्त्र (एकोलॉजी) लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। इस शास्त्रका अध्ययन करनेके लिए

धार्मिक दृष्टिसे एकत्र होनेवाले लोगोंका समूह निश्चित रूपसे एक आवश्यक घटक है।" इसलिए "उपासना तथा धार्मिक समूहकी एकताके व्यावहारिक प्रश्नके रूपमें समूह-मनोविज्ञानकी लगभग उपेक्षित और महत्त्वपूर्ण समस्याका अध्ययन करने और उसके सम्बन्धमें प्रयोग करने" का बड़ा महत्त्व है। "इसके लिए हमें संख्या और गुणवत्ताके बीच तथा उत्कटता और समूहके बीचके सम्बन्धोंका अभ्यास करना चाहिये।" [आल्डस हक्सले, 'दि पेरेनियल फिलॉसॉफी', लन्दन, १९४६, पृ० २१६]

गांधीजीने कहा, "सामूहिक प्रार्थना सामान्य उपासनाके द्वारा मूलभूत मानव-एकताकी "स्थापना करनेका एक साधन है।" [हरिजन, ३ मार्च १९४६, पृ० २६] यह प्रार्थना उनकी अहिंसक सामूहिक कार्य-पद्धतिका एक अविभाज्य अंग बन गई। चूंकि समूह व्यक्तियोंसे बनता है, इसलिए यह निर्विवाद है कि जिसने अकेले कभी प्रार्थना न की हो उसके लिए सामूहिक उपासनाका कोई अर्थ नहीं हो सकता। परन्तु साथ ही वैयक्तिक प्रार्थना पंगु ही रहेगी, यदि उसके फलस्वरूप सामूहिक उपासनाके द्वारा समूहके साथ एकता स्थापित करनेकी लगन मनुष्यमें पैदा न हो। अन्तमें तो सफलता नेताकी शुद्धता और श्रोताओंकी श्रद्धा पर निर्भर करेगी। "मैं ऐसे दृष्टान्त जानता हूं, जिनमें श्रोता श्रद्धालु थे और नेता दंभी था। ऐसी घटनाएं तो होती ही रहेंगी। परन्तु सत्य सूर्यके समान असत्यके अन्धकारके बीच ही अपंना प्रकाश फैलाता है।" [हरिजन, २१ जुलाई १९४६, पृ० २२९]

नोआखाली में गांधीजीके सामने प्रश्न यह था कि जिनकी नैतिक हिम्मत टूट गई थी उनके लिए जीवनका नया आधार कैसे रचा जाय और जो धर्मान्धता, धार्मिक कट्टरता उपद्रवोंका मूल कारण थी उसका विष कैसे उतारा जाय । सर्वजातीय स्वरूपकी सामूहिक सार्वजनिक प्रार्थना, जिसमें सब लोग शरीक हो सकें, स्वयं एक प्रकारकी शिक्षा थी। गांधीजी सामूहिक प्रार्थनाका उपयोग दंगोंके शिकार बने लोगोंमें ईश्वरके प्रति सजीव श्रद्धासे उत्पन्न होनेवाली वीरता पैदा करनेमें और अत्याचार करनेवालोंको सहिष्णुता, न्याय-परायणता तथा भ्रातृभावका पाठ पढ़ानेमें करते थे।

गांधीजी उनसे सत्यके उस सूर्यकी बात कहते थे, "जो दिन-प्रतिदिन पृथ्वीको हर्ष और जीवन प्रदान करनेवाले भौतिक सूर्यसे कहीं अधिक शक्तिशाली और स्थायी है।" सत्यके लिए किसी सजावटकी जरूरत नहीं है। उसमें घटा कर या बढ़ा कर कहनेकी भी गुंजाइश नहीं है। यह तो बालकोंके खेलसे भी ज्यादा निरर्थक चेष्टा होगी, "जिसमें वे अपनी हथेलियोंसे आंखोंको ढंक कर सूर्यको छिपा देनेमें मिलनेवाली भ्रामक सफलता पर प्रसन्न होते हैं। जो लोग अपने प्रत्येक कार्यमें, फिर वह कितना ही छोटा क्यों न हो, सत्यका आचरण करते हैं, उन्हें कभी भी पछताना नहीं पड़ता। वह समय पाकर अवश्य फलदायी सिद्ध होता है। यह समय कितना ही लम्बा दिखाई दे, परन्तु तुलनामें वह कमसे कम होता है। जिनमें यह सजीव श्रद्धा होती है, वे कभी किसी चीज या व्यक्तिसे नहीं डरते। उनका सत्य उनकी रक्षा और उनका कवच होता है। उनकी श्रद्धा उनकी अजेय ढाल है।"

नोआखालीके लोगोंसे गांधीजी ईश्वरकी सहायताकी बात कहते थे, जिसके बिना बलवानोंका बल बेकार हो जाता है। एक अमेरिकन हब्शी और फ्रेंड्स सर्विस यूनिटके सदस्य, प्रोफेसर स्टुअर्ट नेल्सनने गांधीजीके कहने पर ३ दिसम्बरकी सायं-प्रार्थनामें एक अंग्रेजी भजन सुनाया था। वह वॉट्सका प्रसिद्ध भजन था "ओ गॉड, अवर हेल्प इन एजेज़ पास्ट"—है ईश्वर, तू युग युगमें हमारा सहायक रहा है। उसे अपने प्रवचनका आधार बनाकर गांधीजीने बताया कि किस प्रकार इस भजनमें प्रकट किया गया भाव वही है, जो गजेन्द्र और उसके शत्रु ग्राहकी पौराणिक कथा-संबंधी सूरदासके विख्यात भजनमें व्यक्त किया गया है। "उसमें उसी ईश्वर पर सारा आधार रखा गया है, जो ऐसे समय—जब दुनियाकी कोई सहायता हमें काम नहीं देती—हमारी शक्तिका स्रोत बनता है। मानवकी सारी शक्ति क्षणिक है। सच्ची सुरक्षा तभी होती है जब हम पूरी तरह ईश्वर पर आधार रखते हैं:

तेरे सिंहासनकी छायामें
रहे सुरक्षित संत सदा;
केवल तेरा सबल बाहुबल
मिले सुरक्षा हमें सदा।

नोआखालीमें आज हम सबको यही पाठ सीखनेकी बड़ी जरूरत है।”

एक और अवसर पर गांधीजीने ईशोपनिषद्का पहला मंत्र 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' प्रवचनके लिए ले लिया, जिसमें कहा गया है कि विश्वमें जो कुछ है उसमें ईश्वर व्याप्त है और ईश्वरमें ही उसका अस्तित्व है। गांधीजीने समझाया : इसलिए किसीको किसी चीज पर अपना अधिकार नहीं समझना चाहिये । जो कुछ अपने पास है वह सब पहले हमें उस विश्वात्माको अर्पण कर देना चाहिये और फिर अपनेको उसकी सेवाका योग्य साधन बनानेके लिए जितनेकी आवश्यकता हो उतना उससे प्रसादीके रूपमें लेकर उसका उपयोग करना चाहिये । तब कोई किसीके धनका लोभ नहीं करेगा अथवा किसीके धनका अपहरण करना नहीं चाहेगा—भले फिर वह धन जीवनके रूपमें हो अथवा धर्मके रूपमें । जो व्यक्ति इस सत्यमें विश्वास रखता है और उसके अनुसार आचरण करता है, वह सर्वथा निर्भय रहेगा और पूर्ण शान्ति और निश्चिन्ततासे जीवन व्यतीत करेगा। “गीताके दूसरे अध्यायके अन्तिम श्लोकोंमें भी यही बोधपाठ दिया गया है। उनमें स्थितप्रज्ञके लक्षणोंका वर्णन किया गया है, जिसने ज्ञान सिद्ध कर लिया है और अपनी इन्द्रियोंको संपूर्णतया वशमें कर लिया है। इसके लिए जीवनका निर्माण निर्भयताकी शिला पर करना पड़ता है।”

गांधीजीकी प्रार्थनामें मुस्लिम, पारसी और बौद्ध धर्मग्रन्थोंके वचनोंका भी पाठ होता था। ये वचन आश्रमकी प्रार्थनामें स्वयं इन धर्मोंके अनुयायियोंके सुझाव पर सम्मिलित किये गये थे। ईश्वर एक है और लोग उसे किसी भी नामसे पुकारें, इससे उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। ७ दिसम्बरकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने श्रोताओंके सामने एक मुसलमानका लेख पढ़नेकी सिफारिश की, जिसमें लेखकने ठीक ही कहा था कि ईश्वर-परायण मनुष्य अपने स्वाभिमान अथवा धर्मके खातिर मृत्युसे या सम्पत्तिकी हानिसे कभी नहीं डरता । “ईश्वरने हमें जीवन दिया है, तो उसे ले लेनेका भी उसे अधिकार है।” यह शिक्षा विश्वव्यापी है और हिन्दू और मुसलमान सब पर लागू होती है। जो ईश्वरकी ही शरण लेते हैं, उनका सब डर दूर हो जाता है। स्थायी शान्ति और मित्रता तभी होगी जब सारी जातियां ईश्वरके पवित्र भयके सिवा और किसीका भय न मानेंगी।

एक और अवसर पर उन्होंने बंगालके मुख्यमंत्रीके पिता अब्दुल्ला सुहरावर्दीकी एक पुस्तकसे, जिसमें पैगम्बर मोहम्मदके वचन दिये हुए थे, सभामें पढ़कर सुनानेके लिए यह अंश पसन्द किया: "नीयतसे अमलका फैसला होगा । वह आदमी सच्चे ईमानवाला नहीं है, जो अपने भाईके लिए वही न चाहे जो वह अपने लिए चाहता है।" गांधीजीने इसकी टीका करते हुए कहा, यदि मनुष्य इस नसीहत पर चले, तो सारे झगड़े मिट जायं; और "मतभेद तथा धार्मिक श्रद्धाके भेद होते हुए भी हम अच्छे पड़ोसियोंकी तरह रह सकते हैं।"

१० दिसम्बरकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने सब धर्मोंकी मूलभूत एकताको फिर अपने भाषणका विषय बनाया। उन्होंने कहा: हर धर्ममें आध्यात्मिक अनुभवका एक समान कोश है, जो सारी दुनियाके मनुष्यों पर लागू होता है। आंखोंको जो भी भेद दिखाई देते हैं, वे देशकालके अनुसार विशेष परिस्थितियोंसे मर्यादित विशेष आवश्यकताओंके परिणाम हैं। "वास्तवमें संसारमें जितने मनुष्य हैं उतने ही धर्म हैं; क्योंकि किन्हीं भी दो मनुष्योंकी आवश्यकताएं बिलकुल एकसी नहीं होतीं। फिर भी सब धर्मोंकी मूलभूत एकता ऐसी वस्तु है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। किसी पेड़के एक ही तना होता है, परन्तु शाखाएं अनेक और पत्ते असंख्य होते हैं। कोई दो पत्ते पूरी तरह एकसे नहीं होते। यही बात धर्मकी है।"

गांधीजीने आगे कहा: आजके संसारमें धर्मोंका जो स्वरूप है, उसमें कोई भी धर्म दोषोंसे पूरी तरह मुक्त नहीं है। इस्लामने संसारको इतिहासके कुछ उत्तमसे उत्तम पात्र भेंट किये हैं; परन्तु मुसलमानोंके आचरणमें ऐसी कई अवांछनीय बातें घुस गई हैं, जो इस्लामकी बुनियादी शिक्षाके विपरीत जाती हैं। इसी प्रकार ईसाई राष्ट्र दावा तो उस गुरुका अनुसरण करनेका करते हैं, जिसने मानव-जातिको अपने शत्रुओंसे भी प्रेम करना सिखाया | परन्तु वे एक ही पीढ़ीमें दो बड़े जागतिक युद्धोंके लिए जिम्मेदार हैं। हिन्दू धर्मका आधार तो प्राणिमात्रकी एकताके सिद्धान्त पर है, परन्तु उसने धर्मके नाम पर तथाकथित अछूतों पर सदियोंसे घृणित अन्याय होने दिया है । यदि भारतके हिन्दू और मुसलमान केवल अपने अपने धर्मके सिद्धान्तों पर चलें और अपने हृदयोंसे जान-मालकी हानिका डर निकाल दें, तो बातकी बातमें भारतकी शकल बदल जाय। मैं पुनः दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि सुधरे हुए सामाजिक संबंधोंको निर्भयताकी चट्टान पर रखे गये

चरित्रके आधार पर खड़ा करना चाहिये। परस्पर विश्वास पैदा करनेका इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

१७ दिसम्बरकी प्रार्थना-सभा दंगोंमें नष्ट कर दिये गये एक मकानके सामने की गई थी । गांधीजीके प्रवचनका विषय यह था कि व्यक्तिके प्रतिदिनके कामोंमें सत्य और अहिंसाका पुट रहेगा, तभी ये दोनों बड़े कार्योंमें भो प्रगट होंगे। उन्होंने अपने श्रोताओंसे यह विचार मनसे हटा देनेको कहा कि जो बात एक आदमी कर सकता है वह सतत प्रयत्न करने पर भी दूसरा हर आदमी नहीं कर सकता। परन्तु ऐसी सब बातोंमें यह याद रखना बुद्धिमानी होगी कि मनुष्यका काम केवल प्रयत्न करना है, परन्तु सफलता ईश्वरकी कृपासे ही मिल सकती है।

एक और अवसर पर गांधीजीने कहा कि सच्ची वीरता नकल करनेसे या किसी निश्चित नियमका यांत्रिक पालन करनेसे उत्पन्न नहीं हो सकती; वह तो अपने अपने धर्मका पालन करनेसे ही आती है; दूसरे शब्दोंमें, अपनी अन्तरात्माकी आवाज सुननेसे और जो बात उसे जंचे वही करनेसे आती है। परन्तु यह कैसे जाना जाय कि जिसे हम अन्तरात्माकी आवाज समझते हैं, वह शैतानकी आवाज नहीं है? इसकी कसौटी यह है कि जिन विद्वानों और सत्पुरुषोंने द्वेष और आसक्तिसे सम्पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ली है, उनके सन्देश और आचरणके साथ इस आवाजका मेल बैठना चाहिये। उसके बाद भी हमें कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिये, जो हृदय और बुद्धि दोनोंको स्वीकार न हो।

गांधीजीने एक बार अहिंसाकी व्याख्या यह की थी: अहिंसा "परम शुद्धि" अर्थात् आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकारकी शुद्धि है। नोआखालीमें निराश्रितोंके पुनर्वास-कार्यमें लगे हुए कार्यकर्ताओंकी सभामें उन्होंने कहा, ग्रामजनोंके सेवकका मुख्य धर्म आत्मशुद्धि है। आज तो हमारे गांव ग्राम्यक्षेत्रके सड़े हुए फोड़ोंकी तरह हैं। जब अंग्रेजोंने पहले-पहल भारतमें अपने पैर जमाये थे उस समय उनका विचार ऐसे शहर खड़े करनेका था, जहां सारे धनी लोग खिंच कर चले आयें और देशका शोषण करनेमें उनकी सहायता करें। इन शहरोंको कुछ अंशोंमें सुन्दर इसलिए बनाया गया कि थोड़ेसे सौभाग्यशालियोंके लिए वहां सब तरहकी सुविधाएं प्राप्त हों जायं

और गांवोंके करोड़ों लोग घोर अज्ञानमें सड़ते रहें। आज गांवोंमें पीनेका स्वच्छ पानी कहीं नहीं मिलता, वहांकी सड़कें बहुत बुरी हालतमें हैं, नहरें मिट्टीसे भर गई हैं, ग्रामीणोंकी शिक्षाकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जाता और उनके मन अन्धकारमें डूबे हुए हैं। हर गांवमें सब तरहकी बीमारियां फैली रहती हैं, जो रोकी जा सकती हैं। हर गांवमें ऐसे धूर्त मौजूद हैं, जो ग्रामवासियोंका शिकार करनेमें लगे रहते हैं । कार्यकर्ताओंको मन और शरीरके इस भयंकर रोगकी शुद्धिका कार्य अपने हाथमें लेना चाहिये। भारतमें मानव-शक्तिकी कमी नहीं है। आवश्यकता सही दिशामें मिलकर सामूहिक प्रयत्न करनेकी है। उस स्थितिमें बुरे लोगोंको पनपनेका वातावरण नहीं मिलेगा । जब सहयोगी प्रयत्नोंके द्वारा दरिद्रता और अज्ञानका नाश हो जायगा तब लोगोंमें फिरसे प्रेम, मेलजोल और भाईचारेके संबंध स्थापित हो जायंगे। में इसी उद्देशयसे नोआखाली आया हूं और इसकी सिद्धिके लिए मुझे प्राण भी देने पड़ें तो मुझे उसकी परवाह नहीं है।

इस तरह गांधीजी अपने प्रवचनोंके लिए दिन-प्रतिदिन ऐसे छोटे-छोटे सामान्य विषय चुनते थे, जिनका साधारण लोगोंके दैनिक अनुभवसे संबंध होता था; इनके द्वारा वे लोगोंको गहरे आध्यात्मिक सत्यों और अहिंसा अथवा प्रेमकी शक्ति समझाते थे । ऊपर ऊपरसे देखनेवाले लोगोंको गांधीजीके ये प्रार्थना-प्रवचन कभी कभी मामूली दिखाई देनेवाली बातोंसे सम्बन्धित चर्चाकी तथा तत्कालीन महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंसे सम्बन्धित युग-प्रवर्तक निर्णयोंकी चर्चाकी विचित्र खिचड़ी जैसे मालूम होते थे। परन्तु गांधीजीकी दृष्टिमें तो बड़ी और छोटी बातोंका कोई अन्तर ही नहीं था। रसायनशास्त्रमें कोई पदार्थ यदि पानी है, तो उसका प्रत्येक कण (मोलेक्यूल) H_2O – अर्थात् दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सिजन – के सूत्रके अनुसार होना चाहिये, अन्यथा वह पानी नहीं है। इसी प्रकार सत्याग्रहमें सत्याग्रहीके प्रत्येक कार्यमें, फिर वह उसके व्यक्तिगत आचरणसे संबंध रखता हो अथवा सार्वजनिक आचरणसे, सत्यका पुट रहना चाहिये। उसके छोटेसे छोटे काममें सत्य अथवा ईश्वर-परायणता प्रकट होनी चाहिये। गांधीजीने कहा, इससे उलटे यदि कोई सत्याग्रहकी शक्ति अथवा आत्मबलकी साधना करनेकी आकांक्षा रखता है, तो उसे धूलमें सोनेके कणोंकी खोज करनेवाले व्यक्तिकी तरह जीवनकी छोटीसे छोटी बातोंमें उसको खोज करनी चाहिये। गांधीजीका कहना था कि, मैं कोई ऐसा महात्मा नहीं हूं कि दूसरा

कोई मेरे जैसा कभी बन ही नहीं सकता। मेरा जीवन कई ऐसी बातोंसे बना है, जो अपने आपमें मामूली हैं और जिन्हें साधारण व्यक्ति भी कर सकता है। इसलिए जो कुछ मैंने प्राप्त किया है, वह अन्य सब लोग भी प्राप्त कर सकते हैं। सामूहिक अहिंसाका पालन ही अनियंत्रित पशुबलकी चुनौतीका एकमात्र परिणामकारी उत्तर है; और वह उत्तर आज दिया जा सकता है।

पांचवां अध्याय
'करो या मरो' का प्रयोग

१

गांधीजीके श्रीरामपुर चले जानेके बाद उनके दलके लोग सतीशचन्द्र दासगुप्तकी संस्थाके कार्यकर्ताओंके साथ उपद्रव-पीड़ित क्षेत्रमें अपने लिए चुने हुए अलग अलग गांवोंमें जाकर बैठ गये। सतीशचन्द्र दासगुप्तकी देखरेखमें काजिरखिलमें एक छावनी शुरू की गई। उसके मुख्य व्यवस्थापक चारुचन्द्र चौधरी थे और उसमें गांधीजीकी 'एक गांवमें एक कार्यकर्ता' वाली योजनाके अनुसार लगभग २० उपकेन्द्र थे। विभिन्न घटकोंके साथ पत्रवाहकों द्वारा नित्य नियमित सम्पर्क रखा जाता था।

हमारे अपने अपने स्थानोंमें बस जानेके बाद तुरन्त ही हमें गांधीजीसे "करो या मरो" के पाठकी एक तेज खुराक मिली—जब हम एकके बाद एक बीमार पड़ गये। बटलरको, जिसने अपने ग्रन्थ 'इरेवॉन' में बीमारोंको जेलखानेमें और अपराधियोंको अस्पतालोंमें रखा है, गांधीजीमें एक समान-धर्मी तथा उत्साही समर्थक मिला होता। 'इरेवॉन' के लेखककी तरह गांधीजी भो बीमारीको अपराध मानते थे। इसके लिए न तो वे अपनेको क्षमा करते थे, न दूसरोंको। जब पूनाके आगाखां महलमें "भारत छोड़ो" संग्रामके दिनोंमें गांधीजी मलेरियाके आक्रमणसे खूब अशक्त हो गये थे, उसके बाद उन्होंने अपने नजरबन्द साथियोंसे कहा था, "मैंने सारा आत्मविश्वास खो दिया है। इससे सिद्ध होता है कि ईश्वरके साथ मैं एकराग नहीं बन पाया हूं। मैं तुम लोगोंका पथप्रदर्शक होने योग्य नहीं हुं।" और उन्होंने सबके सामने यह गंभीर प्रस्ताव रखा कि तुम सब अपने अपने रास्ते जाओ, क्योंकि मैं स्वयं अब टूट चुका हूं और तुम लोगोंकी निष्ठाका नैतिक अधिकार खो चुका हूं ! नोआखालीमें अपने दलके लोगोंको उनके नियत स्थानों पर भेजनेसे पहले उन्होंने वह चेतावनो दुहराई: "सेनामें जो सैनिक अपने पैरोंकी देखभाल नहीं करता

और पैरोंमें घट्टे पड़ने देता है, उसे नौकरीसे हटा दिया जाता है या सजा दी जाती है। अहिंसाके सैनिकसे तो इससे कहीं अधिककी आशा रखी जाती है।"

पहले एक अवसर पर बंगालके गांवोंमें एक महीनेसे अधिक पैदल चलकर मैंने लगभग ७०० डोबों (पोखरों) का आलंकारिक भाषामें "पानी" कहा जानेवाला अद्‌भुत तत्त्व चखा था और मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ा था। इसलिए मुझे अपने पर बड़ा भरोसा हो गया था कि मैं बीमार नहीं पड़ूंगा। परन्तु भाग्यकी विडम्बनासे अपने गांवके लिए रवाना होनेसे पहले मैं मलेरिया बुखारका शिकार बन गया। जब मैं सन्निपातमें पड़ा हुआ था, चारुने मुझे बताये बिना मेरी बहन सुशीलाको सूचना दे दी और गांधीजीको मेरी देखभालके लिए उसे भेजनेको लिख दिया । गांधीजीने शायद सोचा हो कि मैंने उसकी सेवा मांगी है । दूसरे दिन मुझे उनके अपने अक्षरोंमें यह पत्र मिला:

> तुम्हें अपने गांव नहीं जाना है। जिन्हें गांवोंमें जाना है, उन्हें करने या मरनेका निश्चय करके जाना होगा। वहां यदि वे बीमार हो जायं तो या तो उन्हें अच्छा हो जाना चाहिये या वहीं मर जाना चाहिये। तभी उनके जानेका कोई अर्थ होगा। व्यवहारमें इसका अर्थ यह है कि बीमारीकी हालतमें या तो उन्हें घरेलू दवाइयोंसे या प्रकृतिके पंच तत्त्वोंके इलाजसे सन्तोष करना होगा। सुशीलाकी डॉक्टरी सेवाएं हमारे दलके सदस्योंके लिए उपलब्ध नहीं मानी जातीं। उसकी सारी सेवाएं तो पूर्व बंगालके ग्रामवासियोंके लिए पहले ही गिरवी रख दी गई हैं। अपने गांवमें ही उसके लिए पूरा काम है। . . .
>
> गांवोंमें जिनोंकी तरह रहनेसे काम नहीं चलेगा । वहां हमें हथिनीकी-सी सावधानी और बुद्धिमानीसे रहना और चलना सीखना होगा । तभी हममें वहां रहनेकी योग्यता आयेगी। बंगालके गांवोंमें रहनेके लिए विशेष क्षमता चाहिये । हम सबको अपने भीतर वह क्षमता बढ़ानी होगी । तुम्हें और मुझे वह परीक्षा पास करनी पड़ेगी।

मैंने दो दिन बाद ही मलेरियासे किसी तरह पिंड छुड़ा लिया और गांवमें मेरी नियुक्ति एक तरहसे रद्द कर देनेकी "सजा" कम कर दी गई अथवा शायद केवल मुलतवी की गई !

उसके बाद जल्दी ही मेरी बहनको और फिर कनु गांधीको मलेरियाकी दीक्षा मिली और हरएकको बारी बारीसे गांधीजीकी कड़वी दवाकी खुराक भी मिली। हम जल्दी ही निष्णात बन गये और हम अपने आपको "दीक्षित" समझने लगे । हमें आशा हो गई कि अगर हम संसारके सभी रोगकृमियों और रोगोंके स्वर्ग बंगालसे बचकर यदि निकल आये, तो हम अवध्य बननेकी आशा रख सकेंगे; ज्ञात-अज्ञात सभी रोगोंसे सुरक्षित रहनेकी अपेक्षा रख सकेंगे !

मेरी बीमारीके दिनोंमें गांधीजीने अपने अन्तिम पत्रमें मुझे लिखा : "जब अच्छे हो जाओ तब मेरे पास आ जाना। तब में 'करो या मरो' का अर्थ और ज्यादा समझाऊंगा।" तदनुसार ज्यों ही मैं बिस्तर छोड़ सका, मैं श्रीरामपुर गया। उनके निवास-स्थान राजबारी जानेके रास्ते पर मैं उनसे मिला । वे सुबह घूमने निकले थे। उनके रास्तेमें एक छोटासा सूखा खाल पड़ता था, जिस पर एक ही लट्ठेका 'शंका' (पुल) बनाया गया था। गांधीजी इन पुलोंको "निर्माण-कलाका आश्चर्य" कहते थे । ये पुल पूर्व बंगालकी विशेषता हैं । वे बहुत कलापूर्ण होते हैं, किन्तु पार करनेमें अत्यन्त खतरनाक होते हैं । रातकी ओससे भीग कर प्रातःकाल वे चिकने बन जाते हैं और उन्हें पार करनेमें संतुलन-कलाकी बड़ी जरूरत रहती है । गांधीजी किसीकी मददके बिना यह पराक्रम करनेका आग्रह रखते थे, परन्तु ७८ वर्षकी आयुमें २० वर्षके नौजवानकी फुर्ती बतानेमें वे असमर्थ रहते थे। इसलिए निर्मल बोसके कंधेका सहारा लेकर ही वे गिरनेसे बचते थे। ऐसे संकटके समय गांधीजीकी मदद करनेके लिए वे सदा तैयार रहते थे। कुछ दिन बाद हमने अखबारोंमें यह पढ़ा:

> गांधीजी खतरनाक ग्रामीण 'शंको' अथवा बांसके संकरे पुलोंको पार करनेके लिए संतुलन रखनेका कठोर अभ्यास कर रहे हैं। . . . छह दिनों तक वे इसमें असफल रहे और उन्हें हर बार दूसरोंकी सहायता लेनी पड़ी । परन्तु यह कहकर कि "मुझे अकेले ही यह पुल पार करना चाहिये" शान्त संकल्पके साथ उन्होंने अपना अभ्यास जारी रखा। . . . सातवें दिन बहुतोंको आश्चर्यमें डालते हुए गांधीजी उस सुपारीके पेड़के तनेसे बने पुलको पार करनेमें सफल हुए। लेकिन उनका दिनमें ४ बार पुर पार करनेका दैनिक अभ्यास चल रहा है। वे कहते हैं, "मुझे तभी विश्वास होगा जब मैं इतनी पूर्णता सिद्ध कर लूं कि

इस किस्मके इससे भी लम्बे पुलोंको पार कर सकूं।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, ११ दिसम्बर १९४६]

उस दिन गांधीजीने मुझसे दिल खोल कर बातें कीं और मेरे सामने अपना मन उंड़ेल दिया। उनके उपदेशोंके बावजूद पूर्व बंगालसे शरणार्थियोंका निष्क्रमण जारी था। हर जगह सेना और पुलिसके अधिकाधिक संरक्षणकी मांग की जाती थी। इसके विपरीत, गांधीजीको सूर्यके प्रकाशकी भांति स्पष्ट लगता था कि लोग यदि स्वाधीनताका मूल्य करते हों, तो उन्हें अपनी रक्षाके लिए पुलिस या सेना पर बिलकूल विश्वास नहीं रखना चाहिये । पुलिस और सेनाके संरक्षणका स्थान ले सके, ऐसी दूसरी क्या चीज हो सकती थी? गांधीजीने लोगोंके सामने बलवानोंकी अहिंसा रखी । यह एक अनोखा सुझाव था और इससे वे लोग और भी उलझनमें पड़ गये। गांधीजी इसके लिए उन्हें दोष भी कैसे दे सकते थे ? क्या उन्होंने अपने ही सम्बन्धमें बहादुरोंकी अहिंसाका प्रयोग करके दिखाया था ? उन्होंने 'न्यू टेस्टामेंट' के नॉक्स द्वारा किये गये अनुवादके एक अंशका हवाला दिया । वह अंश कुछ दिन पहले जिला-मजिस्ट्रेट श्री मैकिनर्नीने उन्हें पढ़कर सुनाया था:

> उस समय ईसाने अपने शिष्योंको उत्तर देते हुए उनसे कहा: ईश्वरमें श्रद्धा रखो । मैं तुमसे 'आमीन' कहता हूं । जो कोई इस पहाड़से कहेगा कि तू यहांसे हट जा और समुद्रमें गिर जा और अपने हृदयमें सन्देह नहीं रखेगा, बल्कि यह विश्वास रखेगा कि जो कुछ वह कहता है वह अवश्य किया जायगा, तो वैसा होकर ही रहेगा। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि तुम प्रार्थनाके समय जो चीजें ईश्वरसे मांगते हो, वे तुम्हें मिलेंगी ऐसा विश्वास रखो; और वे तुम्हारे पास अवश्य आयेंगी ।

उन्होंने कहा, क्या मुझमें वह सजीव श्रद्धा है और वह हृदय है, जो सन्देह नहीं रखता? मैं इस बरबाद हुए गांवमें अकेला रहने आया हूं; परन्तु जैसा मैं हृदयसे चाहता था, सब लोगोंका साथ पूरी तरह छोड़कर मैं अकेला रहनेमें भी सफल नहीं हो सका हूं । मैं अपनी ईश्वर-श्रद्धाकी परीक्षा करना चाहता हूं। मुझे मौतका डर क्यों होना चाहिये ?

कलकत्ता विश्वविद्यालयके डॉ. अमिय चक्रवर्ती कष्ट-निवारण तथा पुनर्वास-कार्यके संबंधमें गांधीजीसे मिलने आये थे। उनसे गांधीजीने कहा : "में एक धधकती हुई आगके बीचमें पड़ा हूं और जब तक वह बुझ नहीं जायगी तब तक यहांसे नहीं हटूंगा । दंगोंमें बुरी तरह पीड़ित हुए नर-नारियोंके लिए इन भागोंमें जीवन जीने लायक बनना ही चाहिये। संगठनका कार्य जारी रहना चाहिये और शारीरिक तथा नैतिक दोनों प्रकारका उद्धार-कार्य होना चाहिये।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, ८ दिसम्बर १९४६]

डाक्टर चक्रवर्तीने गांधीजीसे पूछा, अपराधियोंके साथ किस तरह पेश आना चाहिये, जिससे उनका विरोध मिट जाय ? "उन्हें अपने दृष्कृत्योंके लिए कोई पश्चात्ताप नहीं है; इतना ही नहीं, वे धमकियां दे रहे हैं और अपने दृष्कृत्योंके लिए आनन्द प्रकट कर रहे हैं।"

गांधीजीने उत्तर दिया, उनके रवैयेका सामना करनेका एक ही उपाय है; वह यह कि उनके सामने न झुक कर हम उनके बीचमें रहें और अपनी सत्यकी भावनाको बनाये रखें।

> भलाईके साथ ज्ञानका मेल होना चाहिये। कोरी भलाईसे बहुत लाभ नहीं होता । मनुष्योंको सूक्ष्म विवेक-शक्तिका वह गुण बनाये रखना चाहिये, जो आध्यात्मिक साहस और चरित्रके साथ साथ चलता है। संकटकी स्थितिमें मनुष्यको यह जानना चाहिये कि कब बोला जाय और कब मौन रहा जाय, कब कर्म किया जाय और कब कुछ भी न किया जाय। ऐसी परिस्थितिमें कर्म और अकर्म एक-दूसरेके विरोधी होनेके बजाय एकरूप हो जाते हैं।

मैं प्रकाशके लिए अपने अन्तरको टटोल रहा हूं। मेरे चारों ओर अन्धकार छाया हुआ है। परन्तु मैं तो सत्यके मार्गदर्शनमें ही कार्य करूंगा या नहीं करूंगा। मैं देखता हूं कि इन करुण परिस्थितियोंमें जो धीरज और कार्य-पद्धति चाहिये, वह मेरे पास नहीं है—कष्ट और बुराई अक्सर मुझे दबा लेते हैं और मैं मन ही मन घुटता रहता हूं। इसलिए मैने अपने मित्रोंसे कह दिया है कि वे मुझे सहन कर लें और इस समय विवेक-बुद्धि जो मार्ग उन्हें बताये उसके अनुसार काम करें या न करें। आजकी स्थितिमें विवेक-बुद्धि और समझदारीकी बड़ी जरूरत है। यह अंधकार दूर

होगा; और यदि मुझे प्रकाश दिखाई देगा तो उन्हें भी दिखाई देगा, जिन्होंने बंगालमें हालके सम्प्रदायवादका करुण नाटक खेला है।

जीवनका नया आधार यहांके गांवोंमें रचना होगा, जहां हिन्दू और मुसलमान अपने पूर्वजोंकी भूमि पर साथ साथ रहे हैं, साथ साथ उन्होंने कष्ट सहन किये हैं तथा भविष्यमें भी जहां उन्हें साथ साथ ही रहना होगा । इसलिए सम्प्रति मैं बंगाली और नोआखालीका बाशिन्दा बन गया हूं। नोआखालीके लोगोंके बीच रहने, उनके सुख-दुःखमें हिस्सेदार बनने तथा दोनोंको मिलानेके लिए अथवा इस प्रयत्नमें मर मिटनेके लिए मैं यहां आया हूं। [वही]

डॉक्टर चक्रवर्तीने सुझाया कि गांधीजीके उन साथियोंकी, जो भिन्न भिन्न गांवोंमें उस समय अलग अलग काम कर रहे हैं, रिपोर्टोंको इकट्ठा करके उनका समन्वय किया जाय, ताकि साथी कार्यकर्ताओंको पूर्व बंगालमें बलवानोंकी जिस अहिंसाका विकास और प्रयोग हो रहा है उसकी कार्य-पद्धति पर नया प्रकाश प्राप्त हो सके। गांधीजीने उत्तर दिया, अभी इसका समय नहीं आया है। वे ऐसे वायुमंडलमें गये हैं, जो अभी तक सहायक नहीं बना है और जहां लोग अभी तक असन्तुष्ट हैं। "वे किसी पुरानी लकीर पर नहीं चल रहे हैं, बल्कि एक पन्थहीन वनमें यात्रा कर रहे हैं। वे लोग वहांकी भाषा नहीं जानते और स्थानीय समस्याओंसे परिचित नहीं हैं। मैं स्वयं नहीं जानता कि मेरा अगला कदम क्या होगा और मैं उन लोगोंका मार्गदर्शन नहीं कर सकता । ठक्कर बापा जैसे मंजे हुए और नितान्त स्वार्थ-रहित कार्यकर्ता भी वहां काम तो कर रहे हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। उन्होंने अपने जीवनमें पहले कभी ऐसा नहीं किया था। परन्तु मुझे आशा है कि हमारे लिए जो आवश्यक अव्यवस्था आज है, उसमें से व्यवस्थाका जन्म होगा। तब आप और मैं जो कुछ करना चाहते हैं वह होगा और हमारे भावी कार्यकर्ताओंके लिए वह अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध होगा।"

डॉक्टर चक्रवर्तीने कहा, "यही हमारे सब लोगोंका और विदेशी कार्यकर्ताओंका भी खयाल है। नोआखाली आज एक प्रयोगशाला बन गई है, जहां एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग चल रहा है।

यहांका उपाय दुनियामें जहां कहीं समुदायों और राष्ट्रोंके बीच झगड़े पैदा होंगे और शान्तिपूर्ण समझौतेके लिए नई कार्य-पद्धतिकी जरूरत होगी वहां लागू किया जा सकेगा।"

गांधीजी बोले, लन्दनसे भी मेरे पास इसी आशयका पत्र आया है। "इससे हमारी जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। हमारे कार्यसे सचाईकी आवाज उठनी चाहिये। मेरे लिए तो यदि यह कार्य पार पड़ जाता है, तो यह मेरे जीवनका सबसे श्रेष्ठ कार्य होगा। मुझे पूर्व बंगालकी भूमि पर और यहांके लोगोंके पास आना पड़ा है। सबसे पहले व्यक्ति, जिनसे मैंने इसका जिक्र किया, जवाहरलाल थे। एक क्षणके लिए भी हिचकिचाये बिना उन्होंने उत्तर दिया: 'हां, आपका स्थान वहीं है। यद्यपि यहां दिल्लीमें हमें आपकी बड़ी आवश्यकता है, फिर भी नोआखालीमें हमें आपकी अधिक आवश्यकता है।' मैंने उनसे पूछा, 'कब जाऊं?' उन्होंने उत्तर दिया, 'ज्यों ही आपको वहां जाने जैसा लगे।' दो दिनमें मैं नोआखालीके लिए रवाना हो गया।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, ९ दिसम्बर १९४६]

तारे आकाशमें अब भी चमक रहे थे और श्रीरामपुर गांवमें शान्ति छाई हुई थी। वह नये दिनकी प्रतीक्षा कर रहा था। ऐसे समय प्रात:कालकी प्रार्थनाके बाद गांधीजी अपना काम करने बैठे । बादमें यह वर्णन करते हुए कि गांधीजीने सुबहका समय कैसे बिताया, डॉक्टर चक्रवर्तीने लिखा, "वे सफेद चादर ओढ़े हुए थे। उनका ललाट चमक रहा था और वे एक लालटेनकी रोशनीमें लिख रहे थे। ७ बजे बाद वे गांवमें सुबहकी सैर करने निकले। वे खतरनाक पुलोंको और सुबहकी ओससे भीगी हुई घासवाली गलियोंको पार करते चल रहे थे। वे खेतोंमें काम करने जा रहे मुसलमान किसानोंको सलाम करते थे।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, ८ दिसम्बर १९४६]

एक सप्ताहके बाद जब मैं गांधीजीसे मिला तो वे बोले, "मैं अभी तक प्रकाशकी खोज कर रहा हूं ।" कागजके एक पुरजे पर उन्होंने यह जोड़ा, "मैं देख रहा हूं कि मुझमें आवश्यक कुशलता नहीं है। मुझे अभी तक अहिंसाकी कुंजी नहीं मिली है। यहां मैं एक विराट् यज्ञ करने आया हूं, परन्तु इस भगीरथ कार्यके लिए मेरी अयोग्यता पग पग पर प्रकट होती है । किन्तु अब भागना तो हो ही नहीं सकता । और भाग कर जाऊं भी कहां ? सफलता या असफलता हमारे

हाथमें नहीं है। हम अपना फर्ज अच्छी तरह अदा कर दें तो काफी है। मैं कोई प्रयत्न बाकी नहीं छोड़ रहा हूं । हमारा काम केवल प्रयत्न करना है। अन्तमें तो वही होगा जो प्रभु चाहता है।" [हरिजन, १२ जनवरी १९४७, पृ० ४९०]

एक और मित्रसे उन्होंने कहा, "मैं बंगालसे हार कर नहीं लौटना चाहता । जरूरत हुई तो मैं किसी हत्यारेके हाथों मरना अधिक पसन्द करूंगा। परन्तु मैं ऐसी स्थिति पैदा नहीं करना चाहता, उसकी इच्छा तो मुझे है ही नहीं ।" [वही, पृ० ४९०-९१] और उन्होंने स्पष्ठ कर दिया कि अपने साथियोंसे भी वे यही आशा रखते हैं। कुछ समय बाद जब मैं अनजाने अपने कामके सिलसिलेमें एक कठिन स्थितिमें फंस गया और मुश्किलसे जान बचाकर निकला तब उन्होंने लिखा : "मैंने शुरूसे ही कहा है कि यह बहुत ही खतरनाक काम सिद्ध होगा । इससे अधिक खतरनाक काम हमारे जीवनमें नहीं आनेवाला है । हमें अपने आपको पूरी तरह ईश्वरके चरणोंमें रख देना चाहिये। उसीकी इच्छा पूरी होगी। . . . तुम्हें अनावश्यक रूपसे खतरेमें कूद नहीं पड़ना है; परन्तु स्वाभाविक रूपमें जो भी खतरा सामने आ जाय उसका अचल बनकर सामना करना है। इस प्रकार यदि हम सब नष्ट हो जायं, तो भी मैं कोई परवाह नहीं करूंगा।" [वही, पृ० ४९१]

एक और पत्रमें उन्होंने यह लिखा, "मेरी बात तो यह है कि मैं अपने आपको अधिकाधिक ईश्वरके हाथोंमें सौंप रहा हूं।"

२

जब हम अपने अपने गांवोंमें रहने गये उस समय नोआखाली फटे हुए ज्वालामुखीसे बहकर निकलनेवाला गरम लावा ही था। गांधीजीके दलमें हम सात जन थे—अम्तुस्सलाम, जो गांधीजीके आश्रमकी एक मुसलमान बहन थीं और गांधीजीकी दत्तक पुत्री बन गई थीं; सुशीला पै, जो बंबई विश्वविद्यालयकी स्नातिका और गांधीजीके सचिव-मंडलकी एक सहायिका थीं; कनु गांधी गांधीजीके पोते और उनकी पत्नी आभा गांधी; प्रमुदास, जो गांधीजीके दलमें कार्याक्य-सहायकका काम करनेवाले एक नवयुवक थे; और मैं व मेरी बहन डाक्टर सुशीला नय्यर। हम क्रमश: सिरंदी, कारपाड़ा, रामदेवपुर, हैमचर, पारकोट, भटियालपुर और चांगीरगांवमें नियुक्त

किये गये । इन गांवोंमें से अधिकांशको पूरी तरह अथवा आंशिक रूपमें छोड़कर हिन्दू निवासी चले गये थे। जो हिन्दू भाग कर नहीं गये थे, वे जबरन् मुसलमान बना लिये गये थे। स्त्रियां जिस अग्नि-परीक्षासे गुजरी थीं उसके बारेमें वे हमारे सामने जबान खोलनेका साहस नहीं कर पाती थीं। केवल अपने घरोंके भीतरी भागमें गुप्त रूपमें ही वे हमें अपने कष्ट सुना पाती थीं। हिन्दू विवाहिता स्त्रीका सुहाग-चिह्न—सिन्दूरकी बिन्दी अपने ललाट पर लगानेमें भी उन्हें डर लगता था। उनके हाथोंमें शंखकी चूड़ियां भी नहीं थीं—यह एक और शुभ चिह्न है, जो बंगालमें तमाम विवाहिता हिन्दू स्त्रियां उसी तरह धारण करती हैं जैसे पश्चिममें स्त्रियां विवाहकी अंगूठी हाथमें पहनती हैं। जिन लोगोंने उनका धर्म-परिवर्तन किया था उन्होंने या तो ये चूड़ियां जबरदस्ती उनके हाथोंसे निकाल ली थीं या फोड़ दी थीं। कुछ स्त्रियोंने डरके मारे अपनी चूड़ियां स्वयं निकाल डाली थीं। उनके चेहरे पिचके हुए थे और पीले पड़ गये थे और उनकी आंखोंमें भयसे त्रस्त बने हुएं पशुकी वेदना समायी हुई थी।

पुरुषोंका साहस भी भयके कारण टूट गया था। अपने गांवके पास जिस पहले हिन्दूसे मैं मिला, उसने मुसलमान साथियोंके बीच मुझसे कहा, ये (जो मुसलमान वहां मौजूद थे) हमारे "सच्चे" उद्धारक और रक्षक हैं; सुरक्षा फिरसे स्थापित करनेके लिए अब इस बातकी जरूरत है कि मियां साहब गुलाम सरवर रिहा होकर लौट आयें ! नोआखालीके दंगोंके पीछे इसी आदमीका सक्रिय हाथ था। लेकिन इसके दो घंटे बाद घर पर अकेलेमें मिलने पर उसी हिन्दुने मुझसे कहा: "उन लोगोंके बीच आप मुझसे और क्या कहनेकी आशा रख सकते थे?" बादमें स्थानीय मुसलमान अक्सर इस आदमीके और अपने दो और पिट्ठुओंके प्रमाणको अपनी निर्दोषताके प्रमाणपत्रके रूपमें पेश किया करते थे। उत्तरमें (नाम बताये बिना) मैं उनसे वही कहा करता था जो एकांतमें इन तीनमें से एक हिन्दूने मेरे सामने स्वीकार किया था। उसके बाद आम तौर पर ज्यादा बहस नहीं होती थी।

हमने स्थानीय मुसलमानोंसे जान-पहचान बढ़ानेमें विलम्ब नहीं किया। गांधीजीका नाम आम तौर पर "खुले प्रवेशपत्र" का काम करता था। वे अपराधियोंको दंड दिलानेकी अपेक्षा उन्हें सुधारनेके पक्षमें थे तथा पुलिस और सेनाके संरक्षण पर आधार रखनेका उन्होंने खुले तौर पर

विरोध किया था; इन बातोंसे कुछ हद तक मुसलमानोंका खुला विरोध कम हो गया था, यद्यपि सारा सन्देह दूर नहीं हुआ था। उन्हें इस बातका भी डर था कि हमारे साथ कोई शरारत की गई, तो उन्हें आफतमें फंसना पड़ेगा। इससे भी हमारी कुछ हद तक रक्षा होती थी।

किन्तु जैसा मेरे अपने अनुभवसे सिद्ध हुआ, अकस्मात् होनेवाली घटनाओंके विरुद्ध कोई गारंटी नहीं थी । अपने गांवमें बसनेके दूसरे ही दिन मैं और मेरा साथी शामके समय अपनी बाड़ीके खुले मैदानमें प्रार्थनाके लिए बैठे थे कि पासवाली एक मुस्लिम बाड़ीसे संकटकी पुकार आती सुनाई दी । हम सहायता करनेके लिए तुरन्त निकल पड़े । हमने रास्ता बतानेके लिए एक स्थानीय हिन्दूको साथ ले लिया। रास्तेमें हम एक दूसरी मुस्लिम बाड़ीमें से गुजरे । यहां भी हमने देखा कि स्त्रियां और बच्चे घबराहटमें दौड़कर घरोंके अन्दर जा रहे थे। हमने उन्हें आश्वासन दिया। उस बाड़ीका एक मुसलमान नौजवान हमारे साथ हो गया। रास्तेमें एक खाल पड़ता था। लेकिन उस पर पुल नहीं था, इसलिए हम उसे चलते हुए पार करके उपद्रवके स्थान पर पहुंचे। किसी आदमीने दोस्ताना ढंगसे हमें लौट जानेकी सलाह दी । उसने कहा कि आगे बढ़नेकी जरूरत नहीं है।

बादमें हमें मालूम हुआ कि वह बुरा स्थान माना जाता था । वह फरार और बदमाश लोगोंका अड्डा था। अनजान लोगोंका वहां जाना पसन्द नहीं किया जाता था, क्योंकि वहांके लोगोंको भय था कि वे आकर उनकी अनेक बातें जान लेंगे । हमारा पथप्रदर्शक तो दोस्ताना चेतावनी पाते ही दूरदर्शिता दिखाकर चुपकेसे खिसक गया था । अंधेरा हो चुका था । सब जगह लोग ताड़के सूखे पत्तोंके पूले जला कर बाहरसे घुस आनेवालोंकी तलाश कर रहे थे। हम भी इस खोजमें शामिल हो गये । परन्तु हमींको बाहरका समझ लिया गया था, यद्यपि उस समय हमें इसका पता नहीं चला ! खोज पूरी होने पर हम चलने लगे, तो हमसे रुकनेको कहा गया। हमसे पूछताछ की गई । हमें तो अब भी कोई सन्देह नहीं था, इसलिए प्रश्नोंका जितना अच्छा उत्तर हम दे सकते थे देनेकी हमने कोशिश की। तब मेरे पीछेसे कोई आया और मेरे कानमें कह गया कि "डरकी कोई बात नहीं है।" तभी हमें पहले-पहल शंका हुई कि दालमें कुछ काला है।

जब हम उस खालमें पहुंचे, जिसे हमने बाड़ीमें घुसते समय पार किया था, तो एक दयालु-सा दिखाई देनेवाला अनजान मुसलमान आया और उसने हमसे रुक जानेको कहा । उसने कहा कि आप यहीं ठहरिये। मैं थोड़ी देरमें आता हूं। फिर आप मेरे साथ साथ चलिये। बाड़ीसे आनेवाली जोरकी आवाजें हम सुन सकते थे । वहां गरमागरम बहस हो रही थी, परन्तु वहांकी बोली न जाननेके कारण हम कुछ अनुमान नहीं कर सके कि मामला क्या है । जो मुसलमान भाई कुछ देरमें लौट आनेका वचन देकर गया था, वह असलमें हमारा रास्ता साफ करने गया था । कारण, एक अज्ञात मुस्लिम दल घातक हथियार लिये हुए उस बाड़ीसे निकल पड़ा था और आगे चलकर सड़क पर उसने हमारा रास्ता रोक रखा था। उसका रवैया धमकी भरा था। एक बड़ा-सा तगड़ा मुसलमान, जिसके लम्बे बाल कंन्धों पर झूल रहे थे और जो "जनूनी मुल्ला" जैसा दिखाई देता था, हमारे सामने आया और गालियां देने और लाठी हिलाने लगा। उसने मेरे साथीकी छाती पर लाठीका सिरा टिका दिया। मैं अपने साथीको एक तरफ घकेल कर उसके सामने खड़ा हो गया । परन्तु वही भला मुसलमान, जो पहले बीचमें आया था, सामने आ गया और कुछ दूसरे लोगोंकी सहायतासे उसने उस धर्मान्ध मुसलमानको पकड़कर हटा दिया।

आगे चलकर एक मुस्लिम बाड़ीमें हमें फिर रोका गया। हाटका दिन होनेसे वहां आसपासके गांवोंके लगभग ४० आदमियोंकी भीड़ जमा हो गई थी। ये लोग शोरगुलसे आकर्षित होकर आ गये थे। यहां २-३ आदमियोंने बारी बारीसे कोई घंटे भर हमसे पूछताछ की। उनमें से एक समुद्री मल्लाह था और जहाज पर मल्लाहका काम कर चुका था। दूसरा बंबईमें सोडा-वाटरकी दुकानका मालिक था। उस समय तक मुसलमानोंकी एक छोटीसी टोली, जिसके साथ हमने उसी दिन प्रातःकाल मित्रता की थी, घटना-स्थल पर आ पहुंची और उसने हमारी मुक्तिके लिए आग्रह किया। उनमें और हमें रोकनेवाले लोगोंमें बहस शुरू हो गई। लगभग एक घंटे तक दोनों दलोंके बीच बहस चलती रही, परन्तु वे किसी निर्णय पर नहीं पहुंचे। कभी वह बिलकुल बन्द हो जाती और थोड़ी देर बाद फिर पूरे जोरोंसे छिड़ जाती। इस बीच जिस बाड़ीमें हमें पहले रोक कर रखा गया था उसके निवासियोंमें आपसमें इस बात पर गरमागरम बहस छिड़ गई कि हमसे पिंड कैसे छुड़ाया जाय । एक वर्ग तुरन्त हमारा काम तमाम कर देनेके पक्षमें था। दूसरा

वर्ग चाहता था कि हमारी मुशकें बांध कर हमें थानेमें ले जायं । तीसरा वर्ग इस बातके पक्षमें था कि जब तक हमारी किस्मतका फैसला न हो जाय तब तक हमें किसी गुप्त स्थानमें नजरबन्द रखा जाय। परन्तु उनके किसी नतीजे पर पहुंचनेसे पहले बाहरकी मंडलीकी, जो हमारे प्रति मित्रताका भाव रखती थी, संख्यामें कम होते हुए भी जीत हुई और लगभग आधी रातको हमें अपनी छावनीमें सुरक्षित पहुंचा दिया गया।

दूसरे दिन सुबह हम फिर अपने साहसके स्थान पर पहुंचे और पिछली रात हमें पकड़नेवाले लोगोंसे फिर मिले । हमने उन्हें हमारा मिशन समझाया । उन्होंने हमसे खूब माफी मांगी और हमारे काममें सहयोग देनेका वचन दिया । उन्होंने हमसे कहा कि अन्तमें उनका सन्देह इस बातसे दूर हुआ कि हमने उनके पूछताछ करने पर किसी भी तरहका डर या घबराहट नहीं दिखाई और उनके प्रश्नोंका उत्तर सीधा, पूरा और साफ साफ दिया और कोई टालमटोल नहीं की ।

कुछ समय बाद हमसे पूछताछ करनेवालोंमें से एक आदमी, जिसने उस अवसर पर हमारे साथ बहुत तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया था, नारियल तोड़ते समय पेड़ परसे फिसल पड़ा । उसकी टांगें और शरीर बुरी तरह छिल गये और उसके घावोंमें पीब पड़ गया। मैंने अपने साथी डॉक्टर चन्द्रशेखर भौमिकको, जो मेरे बंगाली दुभाषियेका और छावनीके डॉक्टरका काम करते थे, उसके इलाजके लिए भेजा । बादमें मुझे मालूम हुआ कि यह आदमी उपद्रवके दिनोंमें उस भले डॉक्टरकी हत्याके लिए एक 'दाव' (हंसिया) लेकर आया था। इलाजसे वह अच्छा हो गया और हमारा मित्र बन गया। उसने अक्तूबरके दंगोंके बारेमें हमें बहुमूल्य जानकारी दी, जो हमारे कार्यमें बड़ी सहायक सिद्ध हुई।

जब हम अपने अपने गांवोंमें पहुंचे थे तब हालकी घटनाओंके बारेमें मुसलमानोंमें आम तौर पर विरोधी भावना थी। खास तौर पर शुरूमें हिन्दुओंके अधिक निष्क्रमणको रोकनेकी घबराहट भरी चिन्ता भी मुसलमानोंमें थी, क्योंकि निष्क्रमण जारी रहनेसे सरकारके सुरक्षा-उपायोंके अधिक कड़े होनेकी संभावना थी। इसके अलावा, जो हिन्दू चले गये थे वे अपने आश्रय-

स्थानोंसे अपराधियोंके खिलाफ शिकायतें दायर कर सकते थे और उन्हें फंसा सकते थे। अगर उन्हें समझा-बुझा कर वापस गांवमें लाया जा सकता और वे मुसलमानोंके बीच रहने लगते, तो मुसलमान सुरक्षित हो जाते ! शरणार्थियोंकी अपने घरोंको लौटनेकी अनिच्छाको स्थानीय मुसलमानोंने शिकायतकी चीज भी बना लिया था।

प्रौढ़ और वृद्ध मुसलमान अतीतकी घटनाओंके लिए हार्दिक दुःख प्रकट करते मालूम होते थे; और कभी कभी तो वे उस जमानेको रोते रोते याद करते थे, जब हिन्दू और मुसलमान भाई-भाईकी तरह साथ रहा करते थे । जो कुछ हुआ था उसके लिए वे "सिरफिरे नौजवानों" और उनके "नये नये उसूलों" को दोषी बताते थे । वे कहते थे, इस इलाकेमें ऐसी बातें पहले कभी सुनी ही नहीं गई थीं। खुदा जाने इस दुनियाका क्या होनेवाला है ! जिन लोगोंने दंगोंमें सचमुच भाग लिया था, वे तो कहते थे कि "कुछ" हुआ ही नहीं ! १०-१२ वर्षके छोकरोंकी जबान पर भी यही रटा-रटाया असत्य होता था । सामुदायिक पैमाने पर असत्यका आचरण करनेका तथा एक पूरीकी पूरी भावी पीढ़ीको असत्यका मानस निर्माण करनेकी तालीम देनेका यह लगभग संपूर्ण प्रयोग था । मैं जहां रहता था उस स्थानके बुजुर्गोंको एकत्र करके मैंने उन्हें समझाया कि नोआखालीमें गांधीजीके ठहरनेका उद्देश्य क्या है । उन्होंने सहयोग देनेका वचन दिया। एक छोटीसी समिति बना दी गई । उसने हालकी घटनाओंकी निदाका प्रस्ताव पास किया । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे लूटी हुई जायदाद और भगाई हुई स्त्रियोंको वापिस उनके घरोंमें पहुंचानेकी भरसक कोशिश करेंगे, बरबाद किये हुए घरोंको फिरसे बनानेमें सहायता देंगे और मुस्लिम लीगके नामसे जो "चंदा" जबरन् वसूल किया गया था उसे वापस दिलवायेंगे तथा आवश्यकता हुई तो अपने प्राण देकर भी भविष्यमें अल्पसंख्यक समुदायके लोगोंके जीवन, सम्मान और धर्मकी रक्षा करेंगे।

कुछ समय बाद एक बदमाशने मेरे गांवमें एक छोटी लड़की पर बलात्कार करनेका प्रयत्न किया । वह मुश्किलसे १२-१४ बरसकी रही होगी और अपने घरमें अकेली थी। अपराधीने कुछ नमक मांगनेका बहाना किया और जब वह लड़की नमक लानेके लिए अन्दर गई तो वह भी उसके पीछे पीछे झोंपड़ोमें घुस गया और दरवाजा बन्द कर लिया । लड़कीने अपने बापको

बुलानेकी धमकी दी, जो बाहर खेतमें काम कर रहा था । बदमाशने उसके गले पर छुरी रख दी। लेकिन लड़की निडरतासे चिल्लाई, बाप आ गया और आक्रमणकारी भाग गया । मामला मुस्लिम बुजुर्गोंकी उस समितिके सामने रखा गया, जो हमारे पहुंचनेके बाद रची गई थी । उन लोगोंने अपराधीकी ऐसी पिटाई की कि उसकी सार-संभालके लिए मुझे अपना डॉक्टर भेजना पड़ा ! उस समितिने कई छोटे छोटे और दो महत्त्वपूर्ण मामलोंमें भी नुकसानकी भरपाई करवाई थी। परन्तु आगे चलकर परिस्थितियां फिर बदलीं और वह समिति निष्क्रिय बन गई।

हमने वीरान बने हुए हिन्दू घरोंमें जाना शुरू किया। वे गरीब और छोटे लोगोंके थे। उनमें चौकीदार, माली, धोबी और उनके परिवार रहते थे । जब हम उनके निकट जाते तो अनजान लोगोंको देखकर बच्चे अपने घरोंमें दौड़ जाते। उनके माता-पिताने हमें बताया कि कुछ ही समय पहले तक वे सब मुस्लिम पोशाक पहना करते थे। एक मौलवी रोज उन्हें नमाज सिखाने आया करता था। उन्होंने शिकायत की, "हम तो आतंककी स्थितिमें रहते हैं।"

"तुम कभी रामनाम लेते हो?"

"लेनेका साहस नहीं होता।"

"अपने घरोंके भीतर एकान्तमें भी नहीं?"

"नहीं । आप नहीं जानते हम पर क्या क्या बीती है। हमारा दुनियामें कोई सहायक नहीं है। हम सर्वथा निस्सहाय हैं।"

"तो आजसे ही रामनाम लेना शुरू करो और उस सहायककी सहायता मांगो, जो कभी धोखा नहीं देता । अभी—यहीं रामनाम शुरू कर दो।"

वे सहमत हो गये। जब रामधुनके संगीतने जोर पकड़ा, तो वे आसपासके वातावरणको भूल गये। उनके मुख-मंडल पर नया प्रकाश फैल गया। क्षणभरके लिए उन्हें "निर्बलके बल राम" मिल गये।

दूसरा कदम दो गांवोंके सब लोगोंको एक स्थान पर इकट्ठा करके हरि-कीर्तन करनेका था। यह और अधिक सफल सिद्ध हुआ और दंगोंके बाद पहली बार उस क्षेत्रमें फिरसे शंखध्वनि सुनाई दी। लगभग ३०-४० पुरुषों, स्त्रियों, लड़कों और लड़कियोंने उसमें भाग लिया। स्त्रियोंको अकेले बाजार पार करके आनेमें डर लगता था, इसलिए उनके लिए पहरेकी व्यवस्था करनी पड़ी ! गांधीजीका एक चित्र फूलों और हरे पत्तेवाली डालियोंसे सजाकर एक छोटी मेज पर रखा गया। सनकी डंडियों पर रंगीन कागज चिपकाकर एक छोटासा कलापूर्ण मंडप भी उन लोगोंने बना लिया था। उसके सामने अगरबत्तियां जलाई गईं। उन्हें इसी बातका खेद था कि कीर्तनके बाद प्रसाद बांटनेके लिए उनके पास मिठाइयां नहीं थीं। मैंने यह कहकर उन्हें सान्त्वना देनेका प्रयत्न किया कि ईश्वरके नामको मीठा बनानेकी जरूरत नहीं है। एक भला मुसलमान, जिससे हमने पहले दिन परिचय किया था, आकर हमारे साथ हरि-कीर्तनमें शरीक हो गया। उसने लोगोंको साहस दिलाया और उनसे कहा कि डर कर धर्म-परिवर्तन करना सच्चे धर्मका मजाक है।

इस कीर्तनका विचित्र परिणाम हुआ। स्थानीय मुसलमानोंने उस पर आपत्ति की । उन्होंने कहा कि शंखध्वनिसे उनकी स्त्रियां डर गईं हैं ! हम एक स्थानीय चायकी दुकानमें एक लम्बी मैली-सी मेजके चारों तरफ बैठकर मोमबत्तियोंके धुंधले प्रकाशमें उनसे मिले। उनके चेहरों पर मित्रताके भाव नहीं थे। वे लगभग ४० आदमी थे । चन्द बुजुर्ग आदमियोंके सिवा बाकी सब नौजवान थे। उन्होंने पूछा, इन सब बातोंका क्या मतलब है? इससे पहले किसोने शंख बजानेकी हिम्मत नहीं की थी। क्या हिन्दू बदलेकी भावनासे मुसलमानोंको मारनेकी तैयारी कर रहे हैं?

मैंने उनसे पूछा, क्या आप यह चाहते हैं कि आपके हिन्दू भाई आपके बीच इस तरह हमेशा भयभीत बने रहें ? “क्या इन भागोंमें शंख बजाना हिन्दुओंकी दैनिक धार्मिक विधिका नियमित अंग नहीं है? और मुसलमानोंका यहां भारी बहुमत होते हुए भी शंख बजानेसे यदि मुस्लिम स्त्रियां डर सकती हैं, तो आपके बीच रहनेवाले उन मुट्ठीभर हिन्दुओंका क्या हाल होता होगा, जो दंगेके सारे त्रासोंमें से गुजरे हैं? और फिर भी आप उन पर यह दोष लगाते हैं कि वे अपने घरोंसे भाग गये और वापस नहीं आ रहे हैं ! ”

वे चौंके और झिझके । बोले : परिस्थितिमें सचमुच कोई खराबी नहीं है । बात इतनी ही है कि हिन्दू बेकार घबरा रहे हैं। केवल मियां साहब गुलाम सरवर ही सुरक्षाका भाव और आत्म-विश्वास फिरसे स्थापित कर सकते हैं; लेकिन अफसोसकी बात तो यह है कि वे जेलमें हैं ! वे निर्दोष होते हुए भी द्वेषके शिकार बन गये हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनोंके वे सच्चे रक्षक थे। "पीर साहब" (गुलाम सरवर) ने तो असलमें हिन्दू-मुसलमानका भेद किये बिना अपनी ही जेबसे जरूरतमन्दोंकी मदद की थी और गोहाटी (आसाम) से पेशावर (उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त) तक हजारों लोग उनकी बड़ी इज्जत करते हैं ! मैंने उन लोगोंको बताया कि दिल्लीकी केन्द्रीय सरकारके सैनिक सूचना-विभागने यह रिपोर्ट भेजी थी कि गुलाम सरवर सारे उत्पातकी जड़ था। परन्तु उन्होंने विरोध करते हुएं कहा कि इस इलाकेमें तो "कुछ हुआ ही नहीं।" न तो हत्यायें हुईं, न घरोंमें आग लगाई गई और न हिन्दू घरोंमें कोई लूटपाट हुई ! मैंने बाजारकी बरबाद हुई दुकानोंकी कतारकी कतार उन्हें दिखाई। वे बोले, जब ये बातें हुईं तब मियां साहब शाहपुरमें मौजूद नहीं थे। यह सब काम बाहरवालोंका—गुंडोंका था ! मैंने पूछा, मियां साहब उस समय कहां थे? वे कारपाड़ामें प्रतीक्षा कर रहे थे कि रायसाहब राजेन्द्रलाल चौधरीका कटा हुआ सिर उनके सामने लाया जाय? उन्होंने कहा, कारपाड़ाके बारेमें हमें कुछ मालूम नहीं है ! मैंने पूछा, जिन लड़कियोंको भगा कर ले जाया गया था और जिनका अब तक पता नहीं है, उनका क्या? उन लोगोंने उत्तर दिया, **अगर यह बात सच है** तो बड़ी शर्मकी बात है। परन्तु हम **सचमुच** उनके बारेमें कुछ नहीं जानते !

मैंने उनसे कहा, जहां तक मियां साहबकी रिहाईका संबंध है, इसका फैसला बंगालका मुस्लिम लीगी मंत्रि-मंडल करेगा। परन्तु आपको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि जब तक आप यह मानते रहेंगे कि "कुछ हुआ ही नहीं" तब तक आप यह आशा नहीं रख सकते कि शरणार्थी अपने घरोंको लौट आयंगे। अगर आप शरणार्थियोंके लौटनेके बारेमें गंभीर हैं, तो आपको कमसे कम लूटी हुईं सम्पत्ति और भगाई गई लड़कियोंको वापस करवा देना चाहिये। उन्होंने कहा कि शरणार्थी जब लौटकर आयें तभी तो सम्पत्ति उन्हें लौटाई जा सकती है, अन्यथा चीजें किसे लौटायी जायं? मैंने सुझाया कि आधी रातको किसी चुनी हुई बाड़ीके पीछे अथवा

मस्जिदमें चोरीका माल रख दिया जाय। उसके बाद हम वहां जायंगे, उसकी फेहरिस्त बना लेंगे और मालिकोंको लिख देंगे कि वे आकर अपना माल संभाल लें ! उन्होंने इस सुझावको टाल दिया और बातचीतको इस दिशामें मोड़ दिया कि सेना और पुलिस निर्दोष मुसलमानोंको "तंग कर रही है।" मैंने उनसे कहा कि निर्दोष लोगोंकी रक्षा करना आपका और हमारा दोनोंका काम है, परन्तु आपका मौजूदा रवैया बदलना चाहिये। इससे न तो आपकी सहायता होती है, न "पीर साहब" की, जिनकी रिहाई आप चाहते हैं; और न शरणार्थियोंके घर लौटनेमें इससे कोई मदद मिलती है। आपको अपने दिल साफ करके अपने प्रति ईमानदार बन जाना चाहिये।

बातचीत जोर-जोरसे और देर तक होतो रही । एक समय जो नौजवान हमारे पीछे खड़े थे वे ऊब कर विद्रोह करते दिखाई दिये और हमें लगा कि झगड़ा शुरू हो जायगा। बीचमें किसीने खड़े होकर मेजके दोनों सिरों पर जलती हुई मोमबत्तियां बुझा दीं और दुकानमें लगभग अंधेरा हो गया। मुझे कहना चाहिये कि यह मुझे और मेरे साथीको पसन्द नहीं आया। परन्तु बुजुर्गोंने गरम मिजाजवाले नौजवानोंको डांट दिया। अन्तमें सब इस बात पर सहमत हो गये कि मुसलमानोंको चाहिये कि वे हिन्दुओंको अपने धार्मिक विधि-विधान किसी रोकटोक या डरके बिना करनेका प्रोत्साहन दें और उस पर एतराज न करें। उस रात ८ बज कर ४७ मिनिट पर चन्द्र-ग्रहण शुरू होनेवाला था। यह सोचकर कि हमारा सनातनी यजमान हमारी प्रतीक्षा करेगा और ग्रहण आरम्भ होनेके बाद भोजन नहीं करेगा, हमने मंडलीसे विदा ली और हम घर लौट आये।

*

जिन शरणार्थियोंको अपने गांवोंमें वापस लाया गया था, उन्हें एक सप्ताहका राशन दिया गया था। लौटने पर उन्हें विनाशका जो दृश्य देखनेको मिला वह अवर्णनीय था। घर सब खंडहर बन गये थे। कहीं कहीं उन पर छतें, दरवाजोंके किवाड़ या खिड़कियोंकी चौखटें तक नहीं थीं। बाड़ियों के चौकमें कूड़ा-कचरा और मलबा, टूटे-फूटे मिट्टीके बरतन, रजाइयों और फठे हुए मैले कपड़ोंके टुकड़े बिखरे पड़े थे। नारियलकी खोपड़ियां और उनकी चोटियोंके ढेर और जंग

चढ़ी हुईं पेटियां, जिनके भीतरका सामान दंगोंके दिनोंमें तोड़कर लूट लिया गया था, जहां तहां पड़ी थीं। घरोंके पिछवाड़े और आसपासकी जगहमें घास और दूसरी वनस्पति अत्यधिक बढ़ गई थी, जो नोआखालीमें हर चीजको निगल जाती है। लम्बी उपेक्षाके कारण तथा पिछली बरसातमें सर्वत्र पानी घूम जानेके कारण तालाब घास और बेलोंसे भर गये थे, उनकी पालें टूट गई थीं और रास्तों व पगडंडियोंकी दुर्दशा हो गई थी। फलके बगीचे तथा नारियल और सुपारीके बाग फलविहीन बन गये थे।

कुछ समयसे हमने अपनो बाड़ीमें सफाईका काम शुरू किया था। प्रारम्भमें मेरा साथी चौकको रोज बुहारा करता था। बादमें उसे जाना पड़ा इसलिए कई दिन तक चौकमें झाड़ू नहीं लगी। एक दिन सुबह मैने ही चौकमें झाड़ू लगा दी। दूसरे दिन बाड़ीके लोगोंने जल्दी उठकर मुझसे पहले झाड़ू लगा दी। मैं आत्म-संतोषी बन गया। दो दिन बाद फिर वही हाल हो गया जो पहले था। इससे मैंने एक मूल्यवान पाठ सीखा। दूसरे दिनसे मैं फिर झाड़ू लगाने लगा और जब दूसरे लोग मुझे छुट्टी देनेके लिए इस काममें शरीक हुए, तो मैं बाड़ीके दूसरे हिस्सेमें चला गया और उसे भी साफ कर दिया। मैंने रोज यह क्रम जारी रखा। जब दूसरे आदमी शरीक हो जाते तो मैं और आगे बढ़ जाता । थोड़े ही दिनोंमें सारी बाड़ीकी शकल ही बदल गई। जंगल साफ कर दिया गया, तालाबोंकी पालोंकी मरम्मत हो गई, पगडंडियां साफ-सुथरी बन गईं। खाईवाली टट्टियां बना दी गईं। पड़ोसके गांवोंसे आनेवाले लोगों पर इस परिवर्तनका बड़ा असर हुआ । उन्होंने हमसे अनुरोध किया कि इसी ढंग पर उनके गांवोंमें भी काम शुरू किया जाय। मैंने उनसे कहा, आप सफाईके साधन लेकर आइये और पहले हमारे साथ एक सप्ताह काम करके अपनी लगनका प्रमाण दीजिये। उन्होंने ऐसा ही किया। अवधिके अन्तमें हम अपने गांवसे लगे हुए एक गांवमें सफाईका कार्यक्रम शुरू करनेके लिए गये। मैंने गांवके लोगोंसे कहा कि आवश्यक साधन-सामग्रीके साथ वे एक जगह इकट्ठे हो जायं और ऐसे स्थल चुन लें जहां विभिन्न योजनायें आरम्भ करनी हैं। जब हम प्रारम्भिक जांचके लिए वहां गये तो उन्होंने न केवल स्थल चुननेका काम कर लिया था, बल्कि जिन लोगोंने हमारे यहां तालीम पाई थी उनकी मददसे सफाईका काम भी शुरू कर दिया था और काफी काम पूरा भी कर लिया था! हमने उन्हें अपनी

योजनाओंके अमलकी देखरेख करनेके लिए और सबकी भलाईके अन्य कार्य हाथमें लेनेके लिए एक स्थानीय पंचायत स्थापित करनेमें मदद की। जो खाईकी टट्टी न बनवाये अथवा उसका ठीक तरहसे उपयोग न करे, उसके लिए जुर्माना रखा गया। खाईकी टट्टियोंसे बादमें खोद कर खाद निकाल ली गई और जब लोगोंके सामने अनाजकी कमीका खतरा पैदा हुआ तब तरकारियां उगानेमें उसका उपयोग किया गया।

इस प्रकार जहां भी लोग अपने घरोंको लौट आनेके लिए तैयार हुए वहां स्थानीय लोगोंके सामूहिक श्रमदानसे उनकी बाड़ियां साफ कर दी गईं। इसके फलस्वरूप वे इतनी साफ-सुथरी दिखाई देने लगीं कि विनाश और बरबादीके दृश्यके बजाय घर लौटनेवालोंको वहां एक सुखद स्वागतका दृश्य देखनेको मिला।

इस गांवमें सफाईका कार्यक्रम आरम्भ कर देनेके कुछ ही दिन बाद जिला-मजिस्ट्रेट अतिरिक्त जिला-मजिस्ट्रेट तथा स्पेशियल रिलीफ कमिश्नरके साथ मेरा शिविर देखने आये। रास्तेमें वे इस गांवसे गुजरे। कुछ ही सप्ताह पूर्व पिछली मुलाकातमें उन्होंने जो कुछ देखा था उससे बिलकुल दूसरी ही तरहका वह गांव उन्हें दिखाई दिया। न केवल आसपासका वातावरण ही भिन्न दिखाई दिया, बल्कि वहांके निवासी भी भिन्न दिखाई दिये। निराशा और उदासीनताके स्थान पर उनकी आंखोंमें आत्म-विश्वास और आशाकी चमक दिखाई पड़ती थी। इस कायापलटका आगन्तुकों पर इतना असर हुआ कि उन्होंने सुझाया कि मुझे अपने इस प्रयोगका विस्तार करके उनके कष्ट-निवारण कार्यकी योजनाके साथ उसे जोड़ देना चाहिये। यह योजना उन्होंने उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रमें दोनों कौमोंके गरीबोंका कष्ट दूर करनेके लिए आरम्भ की थी। मैंने अपने प्रयोगको इस शर्त पर आजमाना स्वीकार किया कि वह पूरी तरह हमारे ही निर्देशन और नियंत्रणमें चलाया जायगा और उसमें कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं होगा। शिविरकी ओरसे एक अवैतनिक मार्गदर्शक दे दिया और कुछ शिक्षित युवकोंको हमने दूसरे लोगोंके सामने उदाहरण उपस्थित करनेके लिए श्रमदानी बननेको तैयार कर लिया। हमने स्त्रियों, लड़कों और लड़कियोंको भी घरोंसे बाहर निकलकर स्वावलम्बनके इस प्रयोगमें भाग लेनेके लिए समझा लिया। स्त्रियां अपने घरोंसे निकलनेमें डरती थीं। हमने उनसे कहा कि वे अपनी ही बाड़ियोंमें

जंगल साफ कर लें। हमने बच्चोंको छोटी छोटी टोकरियां दे दीं, जिन्हें वे आसानीसे उठा सकते थे, और एक कतारमें खड़े रहकर तालाबसे मिट्टी और घास टोकरियोंमें भरकर एकके बाद दूसरेको पहुंचानेकी तालीम दे दी। इसके फलस्वरूप उनका काम भी लगभग बड़ोंके बराबर हो जाता था। मजदूरीकी दर बड़ोंके लिए १४ आने और छोटोंके लिए १० आने रोज थी (बादमें वह घटाकर क्रमशः १२ आने और ८ आने कर दी गई।) मार्गदर्शकको रोजका एक रुपया मिलता था। कुछ फावड़े, टोकरियां, झाड़ू और 'दाव' स्पेशियल रिलीफ कमिश्नरने उधार दे दिये थे।

यह काम १९ फरवरी, १९४७ से १७ मार्च, १९४७ तक चला और ४ गांवोंमें किया गया। इसके बाद वह पुनर्वास-अधिकारियों द्वारा एकदम बंद कर दिया गया। श्रमके मानव-दिनोंकी संख्या पहले सप्ताहमें २९३ से बढ़कर तीसरे सप्ताहमें ११०७ हो गई। इस अवधिमें जो काम हुआ, उसमें ये बातें शामिल थीं: (१) २९ तालाबोंसे घासफूस हटाया गया; (२) ९ तालाबोंकी पालों और पानीके किनारे तक ले जानेवाली सीढ़ियोंकी मरम्मत की गई; (३) १४ बाड़ियोंमें खाईकी टट्टियां बनाई गई और जंगल साफ किया गया; और (४) ३०० गज सड़कोंकी और उनसे मिलानेवाली पगडंडियोंकी मरम्मत की गई तथा २०० गज जीपकी सड़क एक गांवके दो भागोंको जिला बोर्डकी सड़कसे मिलानेके लिए बनाई गई। इसके सिवा, एक गांवके लोगोंने अपने श्रमदानसे आगामी वसन्तोत्सव मनानेके लिए एक मैदानको साफ करके समतल बना दिया। श्रमके मानव-दिनोंकी कुल संख्या २०४३ और मजदूरीकी रकम १४२६ रुपये १० आने हुई।

हमारे मार्गदर्शक और श्रमदानियोंने कोई ९० रुपयेसे कुछ ऊपरकी अपनी कमाई कामके अन्तमें सफाईके साधन खरीदनेके लिए हमें दे दी। इस पूंजीके आधार पर हमने बादमें एक बहु-प्रयोजन कृषि और ग्राम-सुधार सहकारी समितिकी स्थापना की। दो महीने बाद जब गांधीजीके बिहार चले जाने पर नोआखालीकी स्थिति बिगड़ी तब स्थानीय मुसलमानोंने हिन्दू काश्तकारोंका बहिष्कार कर दिया। उस समय यह समिति न होती तो हम बहिष्कारके सामने टिक नहीं सकते थे।

*

करतखिल नामके पड़ोसी गांवमें पुनर्वास-कार्य देरसे आरम्भ हुआ था। उस कार्यके उद्‌घाटनके समय एक अन्तर्जातीय भोजका आयोजन किया ग्या। सत्ताधारियोंने शरणार्थियोंको मुफ्त अनाज वगैरा बांटनेके लिए मजिस्ट्रेटके अधिकार देकर एक स्पेशियल रिलीफ कमिश्नर नियुक्त किया था। इस अवसर पर वह भी मौजूद था। जब यह सहभोज हो रहा था तब मुसलमानोंका एक जुलूस मुस्लिम लीगके नारे लगाता हुआ वहांसे निकला। इससे सारे लोगोंमें घबराहट फैल गई। जुलूसका एक व्यक्ति एक मालीके घरमें घुस गया और उसने मालीके छोटेसे लड़केको पीट दिया। उस समय घरमें और कोई नहीं था। आक्रमणकारीका पता नहीं चल सका। मैं कुछ दूर तक जुलूसके पीछे पीछे गया। उनमें मैंने पुरानी चायकी दुकानवाली मंडलीके कुछ आदमियोंको देखा, जिनसे मैंने दोस्ती कर ली थी । उन्होंने कहा कि हमारा शरारत करनेका कोई इरादा नहीं है। जब मैं लौटा तो अन्तर्जातीय भोज अभी चल ही रहा था। मैंने एकत्रित लोगोंसे हाथ उठाकर यह बतानेको कहा कि जुलूससे और नारों वगैराके लगनेसे उनमें से कितने लोग घबराये नहीं थे। जवाबमें पुरुषोंके ५ और स्त्रियोंके सिर्फ ३ हाथ उठे !

मुझे बड़ा दुःख हुआ। रातभरके आत्म-निरीक्षण और प्रार्थनाके बाद दूसरे दिन सुबहसे मैंने सामूहिक रूपमें उनसे रामनामका जप आरम्भ करा दिया। यह काम मैंने अपनी ही बाड़ीसे आरम्भ किया। पहले तो मैं एक एक बाड़ीके लोगोंको अलग अलग एकत्र करके उन्हें रामनामकी महिमा समझाया करता था। बादमें सब बाड़ियोंके लोग अपने विनष्ट मन्दिरके सामने एकत्र होने लगे। मैं उनसे जो कुछ कहता था उसका सार यह था: अगर आपकी ईश्वरमें सजीव श्रद्धा है और आप सदा ईश्वरसे डर कर चलते हैं, तो आपको और किसीका डर नहीं लगेगा। मृत्युका डर मानवको कायर बना देता है। परन्तु क्या कोई ऐसा मनुष्य है, जो जन्म लेकर मृत्युसे बच सका हो ? इसी तरह क्या किसीको दो बार मृत्यु आती है? तब इन दोमें से कौनसी बात अधिक अच्छी है—अपने सम्मान और धर्मकी रक्षा करते हुए वीरोंकी तरह गुंडेकी छुरीका सामना करना अथवा दीर्ध पीड़ा और कष्ट भोगनेके बाद बीमारी, बुढ़ापे और रोगसे मरनेके लिए ही थोड़े दिनका कायरतापूर्ण जीवन-दान प्राप्त करना ? यदि आप सचमुच ईश्वरको पिता मानते हैं, तो उसके

बुलाने पर आपको उससे मिलनेमें डरना क्यों चाहिये ? क्या आपका यह विश्वास नहीं है कि उसकी मर्जीके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता ? और इस बातका दृष्टान्त देनेके लिए मैने उन्हें वह किस्सा सुनाया, जो स्वर्गीय मौलाना शौकतअली अकसर सुनाया करते थे : यरवडा जेलमें फांसीकी सजा पाया हुआ एक कैदी था। उसे अपनी पत्नीसे बहुत प्रेम था, परन्तु निराधार ईर्ष्याके वश होकर उसने पत्नीकी हत्या कर डाली थी। बादमें उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। फांसीके पहले रातभर वह अपनी काल-कोठरीमें नाचता और प्रेमगीत गाता रहा:

कर ले तू सिंगार चतुर अलबेली,
साजनके घर जाना होगा।

दूसरे दिन वह प्रियतमासे मिलनेकी आशा और आह्लादमें डूब कर फांसी पर चढ़ गया। यदि आपका सचमुच यह विश्वास है कि ईश्वर आपका मित्र और रक्षक है, तो आपको उसके मिलनसे आनन्द होगा और मृत्युका डर नहीं लगेगा। तोप या बन्दूकसे आपको भयभीत क्यों होना चाहिये? तोप-बन्दूकसे केवल मौत ही होती है । परन्तु यह काम तो लाठीकी चोट या ईंटसे भी हो सकता है। उनका शिकार होनेवाला मनुष्य एकसे मरे या दूसरेसे, उसमें क्या फर्क पड़ता है? मैंने उनसे कहा: मान लीजिये कि जब आप रामधुन गानेमें लीन हों, तब गुंडोंका झुंड लाठियां और छुरे लेकर आप पर टूट पड़े और स्त्रियां तथा बच्चे डरके मारे दुबक जाने या इधर-उधर भगदड़ मचानेके बजाय अपने गानेमें तल्लीन रहें और अन्य सब बातोंको भूल जायं, तो गुंडोंको लगेगा कि हथियारोंसे भी अधिक बड़ी कोई शक्ति है और जिनके पास वह शक्ति होती है बे मृत्युके मुंहमें भी निर्भय रहते हैं। इससे गुंडे स्तब्ध हो जायंगे। स्त्रियोंको दूसरे भी "अबला" समझते हैं और वे स्वयं भी अपनेको अबला ही समझती हैं। शारीरिक अर्थमें यह सच है । परन्तु अनादि कालसे स्त्रियोंके हाथों घरोंमें माता, पत्नी और भगिनीके रूपमें सत्याग्रह अथवा कष्ठ-सहनका शास्त्र रहा है। पुरुषोंको यह भ्रम हो सकता है कि उन्हें अपने बाहुबल पर भरोसा रखना चाहिये, यद्यपि व्यवहारमें कमसे कम नोआखालीमें तो बाहुबलकी निःसारता सिद्ध हो चुकी है । परन्तु स्त्रियोंके पास तो ईश्वरके सिवा और कोई आधार नहीं है । "इसलिए रामनामका अर्थ आप स्त्रियोंके लिए जीवनका सर्वस्व होना चाहिये । यदि आप सचमुच रामनामको हृदयांकित कर लें

और वह सदा आपके समक्ष सजीव बना रहे, तो आप देखेंगी कि भविष्यमें गुंडोंके सामने आप नहीं कांपेंगी, बल्कि गुंडे आपके सामने भयसे कांपेंगे।"

ये अन्तिम शब्द मेरे मुंहसे बिना प्रयत्नके निकल गये। इसके लिए मैंने पहलेसे कोई विचार या चिन्तन नहीं किया था और वे मुझ पर हावी होकर मुंहसे निकल पड़े थे । मैं स्वीकार करता हूं कि मैं सोचने लगता, तो शायद ये शब्द कहनेमें मुझे संकोच होता।

आरम्भमें स्त्रियोंको घरोंसे बाहर लानेका या घूंघट छोड़कर क्रमबद्ध पंक्तियोंमें पुरुषोंके आमने-सामने सीधे खड़े होकर तालसहित ऊंची आवाजमें बिना किसी घबराहट, संकोच या भयके रामधुन गानेके लिए समझानेका काम आसान नहीं था। परन्तु धीरे धीरे उन्हें अभ्यास हो गया। शुरू शुरूमें पहले पुरुष गाते थे और स्त्रियां उनका अनुसरण करती थीं । थोड़े समय बाद यह व्यवस्था उलट दी गई। स्त्रियां पहले गाती थीं और पुरुष उनका अनुसरण करते थे।

हमारा रामधुनका कार्यक्रम इस प्रकार था। हमारी अपनी बाड़ीमें ज्यों ही प्रातःकालकी घंटी बजती, हम रामधुन गाने लगते। घंटीका यह संकेत पड़ोसके गांवको मिल जाता था। इसके बाद हमारा एक छोटासा दल रास्ते भर तालसहित रामधुन गाता हुआ वहां जाता था। ज्यों ही हम वहां पहुंचते घंटी दुबारा बजायी जाती और उससे तीसरे गांवको संकेत मिल जाता । फिर हम अधिक बड़ी मंडलीके साथ तीसरे गांव जाते । लौटते समयका उपयोग छोटे लड़कों और लड़कियोंको भजन और मंत्र सिखानेमें किया जाता । बादमें ये भजन और मंत्र सभी समारोहोंमें उनकी नियमित प्रार्थनाके अंग बन गये। रामधुनके बाद वे सब बिखर जाते और अपनी अपनी बाड़ियोंमें सफाईके काममें लग जाते । सफाई-काम हमारे कार्यक्रमका अत्यावश्यक अंग था । उसके बाद मैं और मेरे डॉक्टर साथी बीमारों और पीड़ितोंको देखने जाते। उस समय हम अपने साथ जानेवाले लड़कों और लड़कियोंको रोगीकी सेवा करनेकी थोड़ी तालीम देते थे और स्वास्थ्य व सफाईके प्रारंमभिक नियमोंकी शिक्षा देते थे। तीसरे पहर हम सब एक स्थान पर एकत्र होकर घंटे भर तकली-उपासना करते थे। उस समय पूर्ण मौन रखा जाता था । रामनामके बाद इससे उपद्रव-पीड़ित लोगोंको मानसिक दृष्टिसे पुनः स्वस्थ बनानेमें सबसे अधिक सहायता मिलती थी।

सच तो यह है कि इसके बिना रासनाम अपूर्ण ही रहता। हम सदा ही भयग्रस्त शरणार्थियोंको निर्भयताके उपदेश नहीं देते रह सकते थे और न उन्हें सदाचारका ही उपदेश सदा देते रह सकते

थे । परन्तु इस बुनियादी सृजनात्मक प्रवृत्तिने उनकी निराशा और भयको दूर करनेमें जादूका काम किया । इससे उनके मन अपनी विपत्तिको भूल जाते थे और स्वावलम्बनके प्रयत्नका रास्ता मिल जानेसे उनकी निराशाकी भावना मिट जाती थी। परन्तु इसका अधिक वर्णन हम आगे करेंगे।

*

बीच बीचमें छोटे छोटे अवसरोंसे छोटे पैमाने पर लोगोंकी श्रद्धाकी परीक्षाएं होती रहती थीं । स्त्रियोंने और हमारे छोटे छोटे लड़कों और लड़कियोंने भी यह प्रतिज्ञा की कि बे मृत्युका डर छोड़ देंगे और अंधेरी रातमें अकेले किसी भी जगह, जहां उन्हें भेजा जायगा, बिना लालटेनके चले जायंगे। मैंने अपनी बाड़ीकी दो लड़कियोंको हमारे पड़ोसवाले गांवमें भेजा । उन्हें एक बिजलीका टॉर्च दिया गया था, परन्तु यह कह दिया गया था कि इसे काममें वे तभी लें जब उन्हें सचमुच डर लगे । मैंने उनके पीछे पीछे चुपकेसे नजर रखनेके लिए एक साथी-कार्यकर्ताको भेजा था । रास्ता सुपारीके एक घने बागमें से होकर जाता था, जहां दोपहरको भी सूर्यकी किरणें मुश्किलसे प्रवेश कर पाती थीं । पहले दिन एक मुस्लिम जुलूसके चिल्लानेसे गांवकी एक स्त्री इतनी डर गई थी कि उसने भाग कर पासकी एक बाड़ीमें शरण ली और रातमें डरके मारे उसे तेज बुखार हो आया। ये लड़कियां उस स्त्रीको देखने गई और उसे ढाढ़स बंधाया। वह स्त्री उनके साथ हमारे यहां आई। उसने हमसे कहा कि मैंने भी डर छोड़नेकी प्रतिज्ञा ली है। मैं अब पिछले दिनकी तरह फिर कभी नहीं डरूंगी। उस समय रातके साढ़े दस बजे थे। मैंने लड़कियोंसे उस स्त्रीको वापस बाड़ीमें पहुंचा आनेको कहा । परन्तु उसने अकेले और बिना लालटेनके लौटनेका आग्रह किया।

कुछ समय बाद सिन्दूरपुर गांवसे एक शिष्ट-मण्डल आया, जहां एक दिन पहले डकैती हुई थी। मंडलके सदस्य अकेले अपने गांव वापस जानेमें डर रहे थे, क्योंकि अंधेरा हो रहा था।

वे किसीका साथ चाहते थे। "बहुत अच्छा, तुम्हें साथ मिल जायगा।" हमारी बाड़ीकी दो छोटी लड़कियां उनके साथ जानेको तैयार हो गईं। उसके बाद उन लोगोंने किसीका साथ नहीं मांगा और अकेले लौट गये।

हमारी बाड़ीकी एक वयोवृद्ध विधवा ठाकुर मां (दादी मां) कहलाती थी। उसने शामके बाद कफिलातली, जो बहुत अरक्षित समझा जाता था, अकेली जाकर मुसलमानों तकमें सनसनी पैदा कर दी। जब वह कारपाड़ा गांवसे गुजरी, तो मुसलमानोंने आपसमें कहा "अरे, यह तो भटियालपुरकी है। अब समझमें आता है !" कारपाड़ामें ही कुछ महीनों पहले रायसाहब राजेन्द्रलाल चौधरीके परिवारकी हत्याकी भयंकर घटना हुई थी। उस महिलाकी कुछ कुछ नेपाली सूरत-शकल होनेके कारण कुछ लोग कहने लगे, "नहीं, नहीं, वह तो नेपाली है ।" उसने पलट कर जवाब दिया, "१५ दिन हमारी बाड़ीमें आकर रह जाओ, तो तुम सब नेपाली बन जाओगे।" उसके बाद वह हम लोगोंमें नेपाली मांके नामसे प्रसिद्ध हो गई।

एक और अवसर पर मैं एक ऐसे उपद्रवी नेतासे मिलने गया, जो फरार था और अपने गुप्त स्थानसे गुंडोंको संगठित टोलियां भेज भेज कर पड़ोसमें इतना आतंक फैला रहा था कि लोग उसके नामसे ही पीले पड़ जाते थे और थर्राने लगते थे । जब मोगारपाड़ा गांवको दो छोटी लड़कियोंको यह मालूम हुआ कि मैं उससे मिलने गया हूं, तो उसकी बाड़ीका रास्ता पूछती पूछती वे अंदर चली आईं, जहां हम बातें कर रहे थे। उनमें से एकके मामाकी गोपाइरबागके हत्याकाण्डमें गुंडोंकी टोलीके इस नेताने हत्या कर दी थी। उस लड़कीने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं किसी दिन जाकर उसके मुंह पर यह कहूंगी कि तुम मेरे मामाकी तरह मेरा भी गला काट सकते हो, पर मैं न तो तुम्हारे सामने कांपूंगी और न तुम्हारे सामनेसे भागूंगी।

मैंने उनसे पूछा, "क्या तुम इस स्थानको जानती हो?"

"हां, यह कासिमकी बाड़ी है।"

"तुम कासिमको जानती हो? कभी देखा है उसे?"

"नहीं।"

"तो लो यह है," मैंने अपने पास ही बेठे हुए आदमीको बताते हुए कहा। "अब तो तुम्हें विश्वास हुआ कि यह तुम्हारे और मेरे जैसा ही आदमी है और सींग-पूंछवाला कोई राक्षस नहीं है?" दोनों लड़कियां हंस दीं।

कासिम भी हंस दिया।

मैंने कासिमसे पूछा, "तुम इन लड़कियोंको जानते हो?"

"नहीं।"

मैंने बड़ी लड़कीकी तरफ इशारा करके कहा, "इनमें से एकका मामा उन लोगोंमें से था, जो गोपाइरबागके हत्याकांडमें मार डाले गये थे। वह तुमसे यह कहने आई है कि तुम उसका गला काट सकते हो, लेकिन वह न तो तुम्हारे सामने कांपेगी और न तुम्हारे सामनेसे भागेगी।"

जब मैंने ये शब्द कहे तों उस छोटी लड़कीने सिर हिला दिया और कासिम एक बेचैन, सूखी हंसी हंस कर रह गया।

कुछ महीने बाद मई १९४७ में इस आदमीकी संगठित की हुई टोलियोंमें से एकने कई डाके डाले। अन्तमें वे करतखिल आये, उन्होंने एक परित्यक्त बाड़ीके पेड़ोंसे सारे पके नारियल तोड़ लिये, कच्चे नारियलोंकी गोठ उड़ाई और नारियलकी खोपड़ियोंका ढेर छोड़ कर चले गये। इसका उत्तर हमने रातका पहरा संगठित करके दिया। मैंने करतखिलके तमाम पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंको उस विनष्ट मंदिरके सामने एकत्र किया, जहां रोज रामधुन गाई जाती थी। मैंने उनसे पूछा, "अब मुझे बताइये कि आपमें से कितने लोग रातके पहरेमें भाग लेनेको तैयार हैं?" लगभग सभी स्त्रियोंने अपने हाथ उठाये । पुरुषोंमें से तीनने नहीं उठाये। मैंने सुझाया और मेरे सुझावका जोरकी हंसीके साथ स्वागत किया गया कि जो पुरुष रातके पहरेमें शरीक होनेको तैयार नहीं हैं, वे बच्चोंको और घरके दूसरे कामकाजको संभाल लें और स्त्रियोंको रातके पहरेके लिए मुक्त कर दें। तब मैंने स्त्रियोंसे पूछा, क्या आप अपने रातके पहरे पर जानेको तैयार हैं?

उन्होंने उत्तर दिया, "हां, लेकिन आपके साथ।"

"देखिये, यह ठीक बात नहीं है। आपने तो कहा था कि ईश्वरमें हमारा विश्वास है।"

"हां, हमारा विश्वास है कि ईश्वर आपको बल देगा। आप हमें छोड़ कर नहीं जायंगे।"

"आप मुझमें कैसी श्रद्धा रखती हैं, यह मुझे उस प्रदर्शनसे मालूम हुआ है, जो आपने अपनी ईश्वर-श्रद्धाका अभी किया है। जब मैं अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता, तो किसीके प्राणोंकी रक्षाकी गारंटी कैसे दे सकता हूं ? मुझमें कोई गुण हो तो यही है कि मेरी यह श्रद्धा है कि यदि कर्तव्य-पालनमें हमारी मृत्यु हो जाय, तो वह हमारे लिए उत्तम बात होगी। इस श्रद्धाकी भी परीक्षा होनी अभी बाकी है। मैंने जो कुछ आपसे कहा है—और आपकी मुझ पर श्रद्धा हो तो आप मेरी बात मान लीजिये—उसके बाद अब मुझे बताइये कि मेरे बिना आपमें से कितनी बहनें आनेको तैयार हैं? "

उत्तरमें एकके बाद एक उठे हुए हाथ गिरने लगे और अन्तमें केवल सात रह गये। उनमें से एक बहन बोली, "सच बात यह है कि हमें मौतका इतना डर नहीं जितना बेइज्जतीका है।" मैंने उनसे कहा कि जिस स्त्रीको मरनेका डर न हो, उसकी कोई बेइज्जती नहीं कर सकता। उन्होंने कहा, आपकी बात सही है। मैंने ७ में से एक बहनको चुन कर उससे पड़ोसके गांवमें अकेली जानेको कहा। वह क्षणभर तो हिचकिचाई, फिर उसने गहरी सांस ली और "'भगवान !' कहकर मुट्ठियां भींच कर अंधेरे और कीचड़में चल पड़ी। बाकीकी बहनें भी एकके बाद एक उसके पीछे हो लीं। उसके बाद वे नियमित रूपसे रातके पहरेमें शरीक होतीं। मुझे एक भी अवसर ऐसा याद नहीं आता जब मैंने पिछली या अगली रातको उनमें से किसीका दरवाजा खटखटाया हो और उसने आनाकानी की हो या हिचकिचाहट बताई हो।

थोड़े ही समय बाद एक संकट खड़ा हुआ। एक दिन जब उनमें से एक स्त्री अपने सुपारीके बागमें अकेली थी, वहांका एक मशहूर बदमाश अचानक उसके पास आ पहुंचा और बुरी नीयतका संकेत करने लगा। इस पर वह अपने घरमें दौड़ गई और सारी बात उसने अपने बापसे कही। जब यह समाचार मेरे पास पहुंचा तो मैंने गुंडेके पास सन्देश भेजा कि अगर उसने तुरन्त इसके लिए क्षमा-याचना नहीं की, तो मामला जिल्ला-अधिकारीके पास भेजना पड़ेगा।

मेरा उस आदमीसे कुछ और अपराधोंमें वास्ता पड़ चुका था। उसने मुझसे माफी मांगनेकी बात कही। मैंने उससे कहा, तुम यदि सच्चे दिलसे कह रहे हो, तो तुम्हें शिकायत करनेवालेका समाधान करना चाहिये। चूंकि तुम्हारा अपराध एक स्त्रीके प्रति है, इसलिए तुम्हें स्त्रियोंके न्यायालयके सामने हाजिर होना पड़ेगा और उनका निर्णय स्वीकार करना होगा। साथ ही मामलेकी खबर मैंने स्थानीय यूनियन बोर्डके अध्यक्षकी पंचायतको भी कर दी। वहां तीसरे पहर ४ बजेकी पेशी मुकर्रर हुई। स्त्रियोंके न्यायाल्यका समय २ बजेका था। नोआखालीमें एक विनोद चलता है कि नोआखालीकी घड़ीमें तीन ही घंटे बजते हैं—सकाल, दुपुर और बिकाल (सुबह, दोपहर और शाम) । इसलिए दोनों न्यायालयोंका समय शामका ही कर दिया गया और दोनोंकी बैठक ६ बजे हुई। स्त्रियोंके न्यायालयकी बैठक पहले हुई ।

वह एक महान दिवस था। उस क्षेत्रके इतिहासमें पहली बार कोई बदमाश केवल स्त्रियोंके बने न्यायालयके सामने उपस्थित होने जा रहा था। अगस्त १९४६ की 'सीधी कार्रवाई' के बाद किसीको इस पर विश्वास ही नहीं हो सकता था। पिछली रातको भारी वर्षा हुई थी, इसलिए कीचड़ ही कीचड़ हो गया था और खाल पानीसे उमड़ पड़े थे। फिर भी १०० से अधिक स्त्रियां और लड़कियां आसपासके चार गांवोंसे चलकर आईं। उनमें से कुछ कमर तकके गहरे पानीमें चलकर आई थीं। स्त्रियोंके न्यायालयमें किसी पुरुषको आनेकी इजाजत नहीं थी। मुझे और मेरे बंगाली दुभाषियेको कृपा करके आने दिया गया। अपराधीने यह वचन दिया था कि वह सारी बात साफ साफ कह देगा और माफी मांग लेगा। परन्तु ऐन मौके पर उसके साहसने साथ नहीं दिया और वह डांवाडोल होने लगा। तब मैं सभासे चला गया और स्त्रियोंको उसके साथ निबटनेके लिए छोड़ दिया। वे उसके भीतर ईश्वरका भय पैदा करनेमें सफल हुईं। १५ मिनिटके भीतर उसने अपने अपराधका पूरा स्पष्ट इकरार कर लिया, शिकायत करनेवाली स्त्रीको 'माता' कहकर संबोधित किया, उससे क्षमा-याचना की और जो भी सजा उसे दी जाय उसे स्वीकार करनेकी तैयारी बताई। उसकी पिछली करतूतोंको देखते हुए कुछ स्त्रियोंको उसके पश्चात्ताप पर शंका हुई। वे चाहती थीं कि उसे ऐसी सजा दी जाय, जो लोगोंके समक्ष "उदाहरण" प्रस्तुत करे। परन्तु अन्तमें उन्होंने यह निर्णय किया कि उसे मुस्लिम पंचायतके फैसले पर छोड़ दिया

जाय। पंचायतका आग्रह था कि और बातोंके साथ उसे जूते मारनेकी सजा दी जाय। परजन्तु स्त्रियोंने उसके स्वेच्छापूर्वक दोष स्वीकार करने और आत्म-समर्पण कर देनेकी बातका खयाल करके ऐसी सजा न देनेकी सिफारिश की; इसलिए सजाको इस तरह बदल दिया गया कि वह भविष्यमें नेकचलन रहनेके लिए सौ रुपयेका मुचलका लिख दे, शिकायत करनेवाली महिलासे सार्वजनिक रूपमें क्षमा-याचना करे और स्थानीय रिवाजके अनुसार पश्चात्तापके चिह्नके रूपमें जमीन पर नाक लगड़े । यह सब वहीं सबके समक्ष कर दिया गया।

स्त्रियोंको इससे सन्तोष हुआ और वे अभियुक्तके सुधारमें माताकी-सी दिलचस्पी दिखाने लगीं। उन्होंने उससे कहा, जैसे तुमने हमसे क्षमा मांगी है वैसे ही हृदयसे ईश्वरसे क्षमा-याचना करो, तो ईश्वर तुम्हें अपना चरित्र सुधारने और सन्मार्ग पर चलनेमें अवश्य सहायता देगा।

इसके बाद हमारे चार गांवोंमें इस प्रकारकी दूसरी कोई बड़ी घटना नहीं हुई। परन्तु यह तो हम कहानीसे आगे निकल रहे हैं।

*

गांधीजीके मार्गदर्शन, निर्देशन और नियंत्रणमें सारे गांधी-शिविरोंमें जो कार्य चलाये जा रहे थे, उनके मूलभूत नमूनेके रूपमें उपर्युक्त वर्णनको थोड़े-बहुत परिवर्तनके साथ स्वीकार किया जा सकता है। इसके सिवा, अत्येक शिविरने स्थानीय परिस्थितियों, केन्द्रके मुख्य कार्यकर्ताके व्यक्तित्व तथा जिन लोगोंके बीच उसे काम करना पड़ता था उनके स्वभावके अनुसार अपनी स्वतंत्र प्रवृत्तियां तथा विशिष्टतायें बढ़ा ली थीं। हम सब साधारण मिट्टीके बने हुए नर-नारी थे। एक अभूतपूर्व परिस्थितिमें अहिंसाकी शक्ति अथवा आत्मबलका जो अनोखा प्रयोग गांधीजीने आरंभ किया था, उसके लिए हम लोग बहुत ही अकुशल और अपूर्ण साधन थे। हमारी मुख्य पूंजी गांधीजीके व्यक्तित्वके प्रति हमारी गहरी प्रीति और निष्ठा और उनके आदर्शोंमें हमारी श्रद्धा थी। हममें उनके जैसी तपस्याकी शक्ति नहीं थी। वह शक्ति जो पांच यम-नियमोंके सतत और एकाग्र अभ्याससे ही आती है। हम अपने लिए इतना ही दावा कर सकते थे कि हम सबको अपनी त्रुटियोंका अच्छी तरह भान था और हम यथाशक्ति उनकी आज्ञाओंका सच्चे दिलसे और

सैनिककी आज्ञा-परायणतासे शब्द और भावता दोनोंमें पालन करनेका प्रयत्न करते थे। इतने पर भी इस प्रयोगके कुछ परिणाम आश्चर्यजनक आये और इसका हमें पर्याप्त अनुभव हुआ कि जो महान सिद्धान्त उन्होंने हमें सिखाया उसके थोड़ेसे पालनसे भी क्या क्या सिद्ध किया जा सकता है। जब तक वे जीवित रहे तब तक उनको उत्पन्न की हुई अध्यात्म-शक्तिसे चलनेवाले सभी यंत्रोंके लिए वे 'केन्द्रीय डायनेमो' का काम देते रहे। आज वही अध्यात्मशक्ति उन सब लोगोंकी विरासत है, जो उनके बताये हुए मार्ग पर चलनेकी श्रद्धा और आंतरिक लगन रखते हैं।

३

गांधीजीके श्रीरामपुर शिविरसे दो मील दक्षिण-पूर्णमें चांगीरगांव था। यहीं मेरी बहन डॉक्टर सुशीला रखी गई थी। अपने अधिकांश साथियोंकी तरह वह भी एक उपद्रव-पीड़ित परिवारकी मेहमान बन कर रहती थी। वह अपने गांवमें एक बंगाली सहयोगीको लेकर २३ नवम्बरको पहुंची । शेष कहानी उसकी डायरीके अंशत: सम्पादित और संक्षिप्त किये हुए नीचेके अंश सुन्दर ढंगसे कहते हैं:

"नांव कोई डेढ़ मील दूर ठहर गई। जहां मैं रहनेवाली थी उस बाड़ीके एक लड़केके साथ मैं आगे आगे चली। लड़केने मुझे बताया कि उसके चाचा . . . अभी तक रामगंजमें रहते हैं, क्योंकि उन्हें यह धमकी दी जाती है कि लौटोगे तो जानसे मार दिये जाओगे। . . . कुछ हिन्दू और एक-दो मुसलमान आये और मुझसे बातें करने लगे। हिन्दुओंने कहा कि १३ अक्तूबरको रविवारके १२ बजे उन पर घातक हथियारोंसे लैस दो ढाई सौ मुसलमानोंकी भीड़ने हमला किया था। . . . लगभग ७०० मन धान . . . जला दिया गया था। . . . घरके एक बूढ़ेने . . . भीड़से याचना की कि धानको न जला कर वे ले जायं और अपने ही लोगोंको दे दें। जवाबमें उसकी पीठ पर लाठीका एक वार किया गया था। . . . गांवमें १५०० मन धान जलाया गया था। . . . मैंने जले हुए धान और जले हुए घरोंके अवशेष देखें। . . . सारे मन्दिर नष्ट कर दिये गये थे और स्त्रियोंके शरीर परसे शंखकी चूड़ियां तथा सिन्दरकी बिंदी हटा दी गई थीं। पुरुषोंको नमाज पढ़नी पड़ती थी। वे सब अभी तक बहुत ज्यादा डरे हुए थे। . . ."

२४ नवम्बर, १९४६

“हम कुछ मुसलमानोंसे मिले। उन्होंने कहा, हम अमन चाहते हैं। जो कुछ हुआ वह कुछ बदमाशोंका काम था। . . . उपद्रवोंमें गांववालोंका कोई हाथ नहीं था। मैंने उनसे पूछा, क्या आपने लोगोंको मुसलमान बनाया है ? उन्होंने कहा, “हां, मगर जबरदस्ती नहीं ।” इस पर उस घरकी स्त्रियां बाहर निकल आईं और एक बूढ़ी महिला आंसू बहाती हुई चिल्लाई, ‘क्या तुमने हमारी शंखकी चूड़ियां नहीं तोड़ीं, हमारा सिन्दूर नहीं मिटाया और हमारे देवताओंकी मूर्तियां नष्ट नहीं कीं? तुम्हारे दुष्कृत्योंके विरुद्ध मेरा हृदय ईश्वरसे पुकार करता है।‘ . . . मैंने मुसलमान भाइयोंसे कहा कि ऐसे धर्म-परिवर्तनको स्वेच्छापूर्ण कहना गलत है। . . . मुसलमानोंने स्वीकार किया कि गलत और अनुचित बात तो हुई थी। . . . मुझे बादमें बताया गया कि जिन मुसलमानोंने हमसे बातें की थीं, उनमें से अधिकतर बदमाश थे।”

२५ नवम्बर, १९४६

“ ‘क’ एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा भला आदमी था। मुझे बताया गया कि उसने अपने पड़ोसके एक परिवारको बचाया था। . . . वह थोड़ेसे मुसलमानोंके साथ मुझसे मिलने आया। उन सबने कहा कि हम चाहते हैं कि शरणार्थी लौट आयें। मैंने उन्हें गांधीजीका विचार समझाया . . . और ‘क’ से पूछा: क्या आप आवश्यक गारंटी देनेको तैयार हैं? उसने कहा, मैं कुछ और मुसलमानोंको आपसे बात करनेके लिए लाऊंगा। कुछ समय बाद लगभग ५० मुसलमान आये। . . . वे सब बोले कि हम अमन चाहते हैं। . . . जो कुछ हुआ बुरा हुआ। . . . आइंदा ऐसा नहीं होगा। मैंने उनसे कहा कि अगर आपके दिल सचमुच बदल गये हैं, तो आपको चोरीका माल वापस करवाना होगा और गुंडोंको सजा दिलानी होगी। इसका कोई साफ जवाब नहीं मिला। लौटनेवाले शरणार्थियोंकी सुरक्षाकी जमानत देनेके बारेमें मुसलमानोंने अलग सलाह-मशविरा किया और छह नाम पेश किये . . . और बदलेमें छह हिन्दुओंके नाम मांगे। हिन्दुओंके नाम दे दिये गये। इस बीच मैं एक रोगीको देखने चली गई। जब में लौटी तो १२ नामोंकी सूची मुझे

दिखाई गई । मुझे बताया गया कि छहमें से चार मुसलमान उपद्रवोंके दिनोंमें गुंडोंके मुखिया रहे थे। . . .

"जब तीसरे पहर मैं बापूसे मिलने गई, तो वे मौन पाल रहे थे। उन्होंने पर्चे पर लिख दिया कि जब तक अपराधी लोग साफ साफ अपना दोष स्वीकार न कर लें और आगेसे ऐसी बातें कभी न करनेका वचन न दें, तब तक उन्हें समितिमें नहीं लेना चाहिये। यह स्वीकार किया गया कि समिति दूसरे दिन एक बजे श्रीरामपुरमें बापूसे मिलने आयेगी।"

२६ नवम्बर, १९४६

"श्रीरामपुरकी दिशामें मैं तेजीसे गई, ताकि चांगीरगांवकी शांति-समितिके सदस्योंके वहां रहते मैं पहुंच जाऊं। लेकिन वे लोग आये ही नहीं थे।"

२७ नवम्बर, १९४६

"सुबह ऐसे कुछ रोगियोंको देखने श्रीरामपुर गई, . . . जिन्हें बापू मुझे दिखाना चाहते थे। . . . तीसरे पहर ४ बजे चांगीरगांव लौटी। कुछ हिन्दू घरोंको . . . जाकर देखा। वे आगजनीसे तो बच गये थे, परन्तु घरवाले लूट लिये गये थे और जबरन् मुसलमान बना लिये गये थे। उन्होंने कहा, हम बिलकुल लाचार थे। इतनी बड़ी संख्याके मुसलमानोंके सामने हम क्या कर सकते थे? दो दिन तक स्त्रियां और बच्चे जंगलमें भाग कर छिपे रहे थे। हमने उन्हें समझाया कि जिसने मृत्युका डर छोड़ दिया है, वह बड़ीसे बड़ी मुसीबतोंकी भी परवाह नहीं करता। उसे बुराईका प्रतिकार करनेके लिए ईश्वरके सिवा और किसीसे सहायता नहीं मांगनी चाहिये । गांधीजीने हमें बताया है कि ईश्वरने सीता और द्रौपदीकी सहायता कैसे की। उन सबने कहा, हम आइंदा नहीं डरेंगे।"

२८ नवम्बर, १९४६

"स्त्रियां दूसरे दिन मुझसे मिलने आईं। इससे पहले उन्हें घरसे निकलनेका साहस नहीं होता था।

"यह पूछने पर कि शान्ति-समितिके लोग निश्चित कार्यक्रमके अनुसार गांधीजीके पास क्यों नहीं गये, मुझे बताया गया कि वे अभी तक आपसमें और यूनियन शान्ति-समितिके साथ सलाह-मशविरा कर रहे हैं। संदिग्ध मुसलमानोंमें से एकने मुझसे पूछा, क्या अपना अपराध स्वीकार करनेवाले लोग गिरफ्तार किये जायंगे ? मैंने उन लोगोंसे कहा कि हम आपको गिरफ्तार करानेमें कोई भाग नहीं लेंगे। . . . इससे अधिक हम कुछ नहीं कह सकते ।

"मैंने कुछ बीमारोंको देखा। साढ़े नौ बजे 'ख' के साथ मासिमपुर गांवमें गई। 'ख' एक मुसलमान था, जो मुझे अपने घर ले जानेको आया था। वह बुद्धिसाली आदमी था और मालूम होता था कि वह वर्तमान राजनीतिके बारेमें बहुत-कुछ जानता है। . . . वह इस बातसे सहमत था कि हिन्दू-मुसलमानोंकी लड़ाई कोई सही हल नहीं है । उसने कहा: मैंने अपने स्थानमें कुछ हिन्दुओंके प्राण बचाये हैं। मैंने पूछा, मुसलमान बनानेके पहले या बादमें ? उसने कहा, मुसलमान तो इसलिए बनाना पड़ा कि उनकी जान बचाई जा सके । मैंने उनसे पूछा कि अगर फिर यहां दंगा हो तो क्या मुझे भी अपना धर्म बदलना पड़ेगा ? उसने कहा : नहीं, आपकी बात दूसरी है। मैंने उसे यह समझानेकी कोशिश की कि मैं और लोगोंसे भिन्न नहीं हूं; जो नियम मुझ पर लागू होता है, वही औरों पर भी लागू होता है।

" 'ख' मुझे एक हिन्दू बाड़ीमें ले गया। . . . वहां केवल एक हिन्दू परिवार था, बाकी सब भाग गये थे। एक स्त्री बुखारमें पड़ी थी। वह और दूसरी स्त्री मुझसे चिपट गईं, वे जानना चाहती थी कि उन्हें क्या करना चाहिये। मैंने उनसे कहा, अगर तुममें काफी साहस आ सके, तो तुम्हें यहां ठहरना चाहिये; अन्यथा चले जाना चाहिये। मैंने अहातेमें बैठे हुए मुसलमानोंसे बात की। उन सबने मुझे यकीन दिलाया कि यह परिवार उनके बीच 'बिलकुल सुरक्षित' है।

"रास्तेमें एक आदमीने 'ख' से कहा कि वह मुझे एक और रोगीके घर ले जाय, जिसकी हालत बड़ी गंभीर है। रोगीके घर पहुंचनेके लिए हमें कुछ दूर नावसे जाना पड़ा। जब मैंने नावमें प्रवेश किया, तो एक बूढ़ा आदमी दौड़ता हुआ आया । वह मुझसे बात करना चाहता था। मुझे बताया गया कि वह गांवका एक प्रभावशाली व्यक्ति है। उसने कहा कि जो कुछ हुआ बहुत बुरा

हुआ, परन्तु वह ईश्वरकी मर्जी थी। मैंने उससे कहा कि बुरे कामोंकी जिम्मेदारो ईश्वर पर डाल कर उससे बचना ठीक नहीं है। उसने पूछा, नहीं तो बड़े बड़े जमींदारोंकी हत्या और लूटको कैसे समझाया जा सकता है। वे अपनी रक्षा कर सकते थे, परन्तु ईश्वरकी मर्जी कुछ और हो थी। मैंने उससे कहा, वे अपनी रक्षा नहीं कर सके, क्योंकि पुलिसने अपना फर्ज अदा नहीं किया। ठीक उसी समय एक बच्चा दौड़ता हुआ आया । मेरे साथी और बंगाली दुभाषिये उपेनबाबूने कहा: "मान लो, यह बच्चा पानीमें गिर जाता है। तुम उसे बचानेके लिए पानीमें कूद पड़ोगे या चुपचाप खड़े रहोगे और यह कहोगे कि ईश्वरकी ऐसी ही मर्जी है?' उसने उत्तर दिया, 'अवश्य ही हम उसे बाहर निकालेंगे।' मेरे साथीने पलट कर कहा, 'तब तुम्हें बुराईका विरोध करनेकी भी कोशिश करनी चाहिये । यदि लगातार प्रयत्न करने पर भी सफलता न मिले, तो ही तुम कह सकते हो कि ईश्वरकी यही मर्जी है।' बूढ़ा मान गया।

"बीमारके घर पहुंच कर मैंने देखा कि एक युवक चिथड़ोंमें लिपटा हुआ फर्श पर पड़ा है। उसे १३ दिनसे लगातार बुखार आ रहा था। उसे अर्ध-सन्निपात था। वह बोल नहीं सकता था और कोई चीज निगलनेमें उसे कठिनाई होती थी। . . . मैंने उसकी जीभ देखनेके लिए चम्मच मांगा। एक सुन्दर चांदीका चम्मच लाया गया। मुझे आश्चर्य हुआ कि चांदीका चम्मच कहांसे आया होगा ! खैर, बीमारको देखने और उसकी सार-संभालके बारेमें सूचनाएं देनेके बाद मैं चांगीरगांव लौट आई।

"इस बीमारके घर जाते समय रास्तेमें हमें एक मुसलमानके घरसे होकर गुजरना पड़ा। वहां मुझे लगभग १५ वर्षका एक किशोर दिखाया गया। उन्होंने कहा कि यह हिन्दू घरानेका लड़का है। हिन्दू लोग कलकत्ते भाग गये थे। एक-दो दिन पहले वह बिलकुल अकेला ही लौट आया है। मैंने उससे पूछा, तुम हिन्दू हो या मुसलमान ? उसने कोई जवाब नहीं दिया। उसके चारों तरफ बौठे हुए मुसलमानोंने कहा कि वह हिन्दू है। तब उस लड़केने भी कहा कि वह हिन्दू है। मैंने उससे पूछा, क्या तुम्हें मुसलमान बना लिया गया है ? फिर उसने जवाब नहीं दिया। दूसरोंने कहा, 'हां।' मैंने उसका मुसलमानी नाम पूछा। उसने कहा, मैं तो भूल गया हूं। मैंने उससे मिलने आनेको कहा। 'क' ने कहा, मैं कल उसे लाऊंगा। परन्तु वह लाया नहीं। मुसलमानोंने

मुझे विश्वास दिलाया कि वे लड़केके हितैषी हैं। परन्तु मुझे इसमें सन्देह हुआ कि वहां सब कुछ ठीक है।

"मैं २ बजे बाद घर लौटी। बापूका पत्र आया हुआ था। मुझे श्रीरामपुर बुलाया था। . . . मैं पौने चार बजे श्रीरामपुर चली गई। रास्तेमें मैंने एक मुसलमानको सड़क पर रोते-चिल्लाते देखा। मैंने उससे पूछा, क्या हुआ ? उसने कहा, मुझे समाचार मिला है कि कलकत्तेमें मेरे लड़केको छुरा मार दिया गया है।"

२९ नवम्बर, १९४६

"श्रीरामपुरसे चांगीरगांव लौटते समय मेरी टांगें भारी मालूम हुईं। घर पहुंचकर मैंने तापमान देखा। १०१ डिग्रो था और जल्दी ही लगभग १०४ तक पहुंच गया। यह एक विचित्र अनुभव था कि मैं एक अनजान जगहमें मित्रों और संबंधियोंसे दूर बीमार पड़ी थी और पासमें कोई डॉक्टरी अथवा सेवा-शुश्रूषाकी सहायता नहीं थी। मैंने अपने कम्पाउन्डरसे कुनैनके इन्जेक्शन देनेको कहा। ३-४ दिनमें मैं फिर खड़ी हो गई।"

३० नवम्बर, १९४६

"प्रात:काल लगभग २५ रोगियोंको देखा। 'क' नारायणपुरसे आया। मुझे बापूका एक पत्र मिला। खाना खानेके बाद मैं श्रीरामपुर गई। 'क' हमारे साथ था। उसने कहा कि उसने मुसलमान आक्रमणकारियोंका मुकाबला किया था, परन्तु बेकार रहा। जो कुछ हुआ उसके लिए उसे 'बड़ा दुःख' था। परन्तु मुस्लिम लोगका इसमें कोई दोष नहीं था । यह गुंडोंका काम था। मैंने उसे समझाया कि भले मुसलमान गुंडोंको बेकार बना सकते हैं।"

१ दिसम्बर, १९४६

"सुबह श्रीरामपुरमें बीमारोंको देखा । ११ बजे चांगीरगांव लौट आई। मुझे फिर अपनी टांगें भारी मालूम हुईं। ज्वर चढ़ रहा था। रास्तेमें मुझे एक बूढ़ी मुस्लिम महिलाने रोक लिया। वह जानना चाहती थी कि देशमें से अमन क्यों चला गया और वह कैसे वापस आ सकता है।

मैंने उससे कहा कि नोआखालीके मुसलमान पागल हो गये थे। इतनेमें मुसलमानोंकी एक छोटीसी भीड़ इकट्ठी हो गई। उन लोगोंने मंजूर किया कि कुछ मुसलमान पागल हो गये थे, परन्तु फिर कभी ऐसा नहीं होगा। आगे चल कर एक और मुसलमानने, जो पाठशालाका शिक्षक था, मुझे रोक लिया। उसने कहा, मैं खिलाफत आन्दोलनके सिलसिलेमें जेल गया था और कांग्रेसी रहा था। अब मुस्लिम लीगी हूं। . . . उसने अपने घरोंको न लौटनेवाले हिन्दुओंको कायर बताया। मैंने उसे उनके डर और अविश्वासके कारण समझाये और उससे कहा कि तुम्हें मुसलमानोंको समझा कर हिन्दुओंका सच्चा डर दूर कराना चाहिये।"

२ से १९ दिसम्बर, १९४६

"१ से ५ दिसम्बर तक मैं बुखारमें पड़ी रही और बाहर न जा सकी । परन्तु जो बीमार मेरे घर पर आये उन्हें देखा।

"दो आदमी, एक हिन्दू और एक मुसलमान, मासिमपुरसे ४ तारीखको मुझसे मिलने आये। दो दिन पहले एक चाचा और भतीजा—दोनों हिन्दू—राजशाही (उत्तर बंगाल) के लिए रवाना हुए थे। उनके साथ दो मुसलमान थे। वे भी राजशाही जाना चाहते थे। चारोंके बीच यह समझौता हुआ कि हिन्दुओं पर अगर मुसलमान हमला करें तो मुसलमान हिन्दुओंको बचायेंगे और मुसलमानों पर हिन्दू हमला करें तो हिन्दू मुसलमानोंको बचायेंगे। दो मुसलमान मल्लाह थें। ये लोग लगभग १० बजे रातको रवाना हुए, क्योंकि कुछ स्थानीय मुसलमानोंने सलाह दी थी कि रातसे पहले रवाना न हों। ११ बजे रातको उन पर लगभग २५ मुसलमानोंने, जो बुर्के पहने हुए थे, हमला कर दिया। चाचाको पीट कर उससे ३२५ रुपये छीन लिये गये । एक मल्लाहने उनका विरोध किया। उसे भी पीटा गया। बदमाश लोग सारा सामान लेकर चम्पत हो गये । उसमें मुसलमान मुसाफिरोंकी दो पेटियां भी थीं।

"मैंने चाचाको बुलाया। वह पुलिसमें रिपोर्ट नहीं करना चाहता था। उसने कहा, 'मैं अपना रुपया तो खो ही चुका हूं; अब अपनी जान भी गंवा दूंगा।' मैंने उसे बहुत समझाया। अन्तमें उसने कहा, कल सुबह रिपोर्ट कर दूंगा। परन्तु बादमें मुझे मालूम हुआ कि वह राजशाही चला गया।

. . . मुझे गुप्त रूपमें बताया गया कि जो बूढ़ा मुझसे मासिमपुरमें मिला था और जिसने कहा था कि सारा उपद्रव ईश्वरकी मर्जीसे हुआ था, उसका लड़का भी उस टोलीमें था जिसने नाव पर हमला किया था।

"८ दिसम्बरको जब मैं चांगीरगांव आ रही थी, मुझे श्रीरामपुरका एक मौलवी मिला। उसने कहा कि जब गुंडे आये तो हम सब हक्केबक्के रह गये। हमें सूझा ही नहीं कि हम क्या करें। अब हममें समझ आ गई है और ऐसी घटनाएं फिर कभी नहीं होंगी। मैंने उससे बातें कीं और भले मुसलमानोंका कर्तव्य समझाया। वह मुझे अपने घरके भीतर ले गया और परिवारकी स्त्रियोंसे मेरा परिचय कराया। उसकी बातचीत और सूरत-शकलसे वह भला आदमी मालूम हुआ | बादमें वह मेरे साथ गांधीजीके पास गया और बोला, मैं आसपासके गांवोंके तमाम मुसलमानोंकी एक सभा बुलाऊंगा और आपको भी उसमें बुलाऊंगा। एक दिन नियत किया गया। परन्तु फिर कुछ नहीं हुआ। बादमें मैंने सुना कि वह फरार आदमी था और उस पर गम्भीर अभियोग लगे हुए थे; और वह फिर फरार हो गया था।

"मैं हरिश्चर, नारायणपुर, लावटोली और मदारटोली गांवोंमें गई। हरिश्चरमें १२ दिसम्बरको एक घटना हो गई। २ स्त्रियां और २ लड़के एक हरिजन-घरमें सो रहे थे। उस गांवमें एकमात्र यही हिन्दू घर था। आधी रातके करीब कुछ मुसलमानोंने खिड़की खोल कर अन्दर घुसनेका प्रयत्न किया । भीतरसे स्त्रियोंने शोर मचा दिया और आक्रमणकारी भाग गये। . . . सुझसे कहा गया कि उस टोलीका नायक पहचान लिया गया था। हरिश्चरके मुसलमानोंने सजाके तौर पर उसको १०० जूते लगाये और उस पर १०० रूपया जुर्माना किया। हिन्दू परिवारको फिर नहीं सताया गया।

"चांगीरगांवमें मेरे यजमानका धान चुरा लिया गया। 'क' चारों ओर घूमा, चोरका पता लगा लिया और उसे बुरा-भला कहा। मुझे लगता है कि मेरे यजमानके नुकसानकी क्षतिपूर्ति की जायगी। स्थानीय मुसलमानोंने धानके चोर पर ६० रुपयेका जुर्माना किया है।

“उत्तर चांगीरगांवमें, जहां मैं ठहरी हुई हूं, लौट कर आनेवाले परिवारोंका हिंसाब इस प्रकार है। जो अभी तक नहीं आये हैं, उनमें से बहुतसे नोआखालीके बाहर चले गये हैं । इसलिए उनके लौटनेमें अधिक देर लगेगी:

परिवारोंकी कुछ संख्या	७६
जो गये ही नहीं	१९
जो लौट आये हैं	२२
जो अभी लौटने बाकी है	३५
इनमें से: कलकत्तेमें	१३
टिपरामें	९
मधुपुरमें	१
चंडीपुरमें	१२

चंडीपुर और मधुपुरवाले जल्दी ही लौट रहे हैं। ग्राम-पाठशालाके शिक्षकने १ जनवरीसे पाठशाला शुरू करनेका वचन दिया है।

“१९ दिसम्बरको मदारटोलीका एक हरिजन चांगीरगांव आया । उसने हमसे अपने गांव चलनेका अनुरोध किया। . . . २० अक्तूबर, १९४६ को वहां मुसलमानोंकी एक भीड़ इकट्ठी होकर गई थी। उसने हिन्दुओंको यह चुनौती दी थी कि सबको इस्लाम कबूल करना होगा और गायका मांस खाना होगा। इस पर लगभग तमाम हिन्दू फरीदगंज भाग गये थे और अपने घरोंकी देखभाल करनेके लिए एक बूढ़ेको छोड़ गये थे। दूसरे दिन कोई २०० आदमियोंकी टोलीने आकर घरोंको लूट लिया और उनमें आग लगा दी। . . .

“हम मदारटोली गये और बीमार लोगोंको देखा। एक प्रतिष्ठित दिखाई देनेवाला मुसलमान आया और हमसे बातें करने लगा। उसने कहा, जो कुछ हुआ सचमुच बहुत बुरा हुआ। अब आइन्दा हम ऐसी घटनाएं कभी नहीं होने देंगे। . . .

"हमने ३ बजे मदारटोली गांव छोड़ दिया। लौटते हुए रास्तेमें हम एक जमींदारके घर गये। . . . यहां हमें तीन मुसलमान मिले। . . . उन्होंने मुस्लिम दंगाइयोंकी करतूतोंकी स्पष्ट शब्दोंमें निन्दा की। एक मुसलमान बोला, मैंने जमींदारके सोनेके बरतन और गहने अपने घरमें छिपा कर रख लिये थे और सब मालिकोंको लौटा दिये हैं। इस किस्सेको समर्थन मिला। . . . हमें बताया गया कि जमींदारका परिवार भाग गया था, परन्तु जमींदारके मुसलमान किसानोंने घरकी रक्षा की। वे तीन दिन तक लड़ते रहे, परन्तु अन्तमें दबा दिये गये। . . . उनमें से कइयोंको चोटें आईं, पंरन्तु कोई मारा नहीं गया।

"मदारटोलीके रास्तेमें हमें एक बूढ़ा मुसलमान मिला, जिसने कहा कि हिन्दुओं और मुसलमानोंको दोस्त बनकर रहना चाहिये। . . . थोड़ी दूर आगे चलने पर हमें दो नौजवान मुसलमान मिले। वे जरा अशिष्टतासे पेश आये। उन्होंने जानना चाहा कि हम कहां जा रहे हैं। मेरे बंगाली साथीने उनसे कहा कि हम मदारटोली जा रहे हैं। तब उन्होंने पूछा कि हम वहां क्यों जा रहे हैं। मेरे साथीने जवाब दिया, 'अपनी आंखोंसे वहांकी हालत देखने जा रहे हैं।' 'वहां क्या देखना चाहते हैं?' उन्होंने पूछा। मुझे बुरा लगा और मैंने उत्तर दिया, 'आपकी मेहरबानीकी निशानियां देखने जा रहे हैं।' वे बोले कि वहां देखनेकी कोई चीज नहीं है; हमने तो कुछ नहीं देखा। . . .

"लौटते समय यूनियन बोर्डके एक मुसलमान सदस्यने हमें बुलाया। वह हमें अपने घर ऐसे बीमारको दिखाने ले गया, जिसे वह निमोनियाका बीमार समझता था । हम गये और दो बीमारोंको देखा। उसने गांधीजीके मिशनकी खूब तारीफ की। मैंने उससे कहा, आपने मुझे जो बच्चा दिखाया है उसे कमसे कम तीन महीने तक इलाजकी जरूरत है। वह जानना चाहता था कि मैं यहां तीन महीने तक रहूंगी या नहीं। मैंने कहा कि मैं नहीं जानती । . . . अमन कायम होते ही मैं चली जाऊंगी। उसने कहा, अमन हर हालतमें जल्दी ही कायम हो जायगा।"

*

ठक्करबापा “उपेक्षित और दलित-पीड़ित लोगों” के बेली थे। वे स्वयं एक संस्था थे। गांधीजीके साथ वे नोआखाली गये थे और चार मंडलमें हरिजन-क्षेत्रके बीचोंबीच हैमचरमें उन्होंने अपना शिविर लगाया था। वे आयुमें गांधीजीके बराबर ही थे और उन्हींकी तरह आयु बढ़नेके साथ साथ नौजवान होते जा रहे थे । मानवताकी सेवाके लिए अथक परिश्रम करना उनके जीवनका अभिन्न अंग बन गया था। उनकी सादी आदतों, समभाव, गौरव तथा चरित्र-बलका स्थानीय मुसलमान बुजुर्गों पर गहरा असर पड़ा; और उनके शानत और स्थिर दिमाग तथा निश्चितताकी उत्कट लगनके कारण—जो उन्हें भारत सेवक समाजमें काम करनेसे प्राप्त हुई थी—उन्हें सरकारी अधिकारियोंका आदर प्राप्त हो गया। अधिकारियोंने उनकी तथ्यों और आंकड़ोंकी जबरदस्त सामग्रीके कारण जल्दी ही उनका आदर करना सीख लिया। २७ नवम्बरकी बापाकी डायरीसे उनकी कार्य-पद्धति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है:

> २१ तारीखके बादसे शामके अपने प्रार्थना-प्रवचनोंमें मैं इस बातकी जरूरत पर जोर देता रहा हूं कि जिन बदमाशोंकी तरफसे लोगोंको रोज डराया-धमकाया जाता है, उनके सतत भयको वे दूर कर दें। . . . यद्यपि ३०० से ज्यादा घर लूटे और जलाये गये थे और स्थानीय गुंडोंके नाम सब सम्बन्धित लोगोंको मालूम हैं, फिर भी डरके मारे लक्ष्मीपुर थानेमें अब तक एक भी इजहार नहीं दिया गया। . . . परिगणित जातियोंके परिवारोंकी संख्या लगभग ४०० है और मुसलमानोंकी केवल १०० । मुसलमानोंमें कुछ दंगाई भी हैं, जो लूटके मालसे अमीर बन गये हैं। . . . आज ही ३-४ आदमी अपनी शिकायतें पेश करनेके लिए लक्ष्मीपुर गये हैं। . . .
>
> मैंने लूटी और जलायी हुई ३५२ जायदादोंके आंकड़े इकट्ठे किये हैं। उनका मूल्य लगभग ५४५७७४ रुपये होता है।
>
> मुझे सूचना मिली है कि पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टने पुलिस थानोंमें एक गश्तीपत्र भेजा है कि नोआखाली जेल भर गई है, इसलिए अब ज्यादा गिरफ्तारियां न की जायं । अगर

यह अफवाह सही है और स्थानीय गुंडे गिरफ्तार नहीं किये जाते, तो अधिक कुछ भले ही न हो किन्तु आगजनी और शायद लूटके मामले जरूर अधिक होंगे।

मैंने सशस्त्र पुलिस अथवा सेनाकी सहायताके बिना अपनी छावनी यहां लगाई है और आगे भी इसी तरह मैं अपना काम जारी रखूंगा। यहांके लोग सेनाके दस्तोंकी मांग कर रहे हैं । परन्तु मैंने उनसे कह दिया है कि इसके लिए वे आग्रह न करें और डर छोड़ कर अपने ही पैरों पर खड़े हों। कल रातको ही साहस करके उन्होंने पुलिसकी सहायताके बिना मेरी छावनीके सामने बड़ी संख्यामें एकत्र होकर भजन-कीर्तन किया है।

जब तक गांधीजी नोआखालीमें रहे तब तक और उसके कुछ समय बाद भी ठक्करबापा अपने स्थान पर बने रहे । जब उनके संस्था-सम्बन्धी कर्तव्यने उन्हें दिल्ली वापस बुला लिया तब भी वे उसी उत्साह और निष्ठाके साथ वहांसे नोआखालीकी सेवा करते रहे।

सुशीला पै का शिविर कारपाड़ामें था । वह भयंकर स्मृतियोंवाले रायसाहब राजेन्द्रलालके विनष्ट घरकी लगभग छायामें ही था। यह शिविर खास तौर पर स्त्रियोंमें साहसका संचार करनेवाला केन्द्र बन गया। सुशीला बहन अध्यापिका बन गईं और नित्य अपने क्षेत्रकी स्त्रियों और नौजवान लड़कियोंकी प्रार्थनाएं और सभाएं करके उनका डर मिटाने लगीं। उनकी कोशिशके परिणामस्वरूप स्थानीय पाठशाला, जो दंगेके दिनोंमें बन्द हो गई थी, फिर शुरू हो गई । उन्हें स्थानीय साप्ताहिक हाट भी फिरसे शुरू करानेमें सफलता मिल गई । औरोंको प्रोत्साहन देनेके लिए उन्होंने स्वयं एक दुकान लगा ली। उनसे न केवल हिन्दू बल्कि मुसलमान भी प्रेम और आदरके साथ पेश आने लगे। मुसलमान उनके पास सहायता और सलाहके लिए आने लगे और अपने झगड़ोंमें उनसे बीच-बचाव भी कराने लगे।

संगठन करने, रचनात्मक कार्य चलाने तथा सांस्कृतिक प्रवृत्तियोंका संचालन करनेमें कुशल कनु गांधी तथा कुदरती कलात्मक प्रतिभावाली उनकी पत्नी आभा गांधी—जो स्वयं बंगालकी पुत्री थीं—दोनों अपने केन्द्रोंमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचकी दीवारें तोड़ने और उन्हें मित्रता तथा भ्रातृभावके सामान्य बन्धनमें बांध कर एक करनेमें बहुत हद तक सफल हुए।

सुचेता कृपलानीने अपने आसपास फैली हुई गरीबी और निराश्रितताकी स्थितिको दूर करनेमें अपनी आयोजन-शक्तिका उपयोग किया। सिंहनी जैसी साहसी होनेके कारण वे अपने महायोद्धा पति आचार्य कृपलानीकी तरह स्थानीय बदमाशोंके भय, आदर और घृणाकी पात्र बन गईं । इस मामलेमें शायद आजाद हिन्द फौजवाले कर्नल जीवनसिंह ही सुचेताजीकी बराबरी कर सकते थे । वे अपनी सफेद दाढ़ी और पगड़ीधारी कद्दावर शरीरके साथ रायपुरके उपद्रव-ग्रस्त प्रदेशमें ऐसे घूमते थे, जैसे बौनोंमें कोई भीमकाय पुरुष घूमता हो !

नोआखालीमें काम करनेवाले कार्यकर्ताओंके दलमें साधन बोस भी एक थे । उन्होंने अपनी नम्रता, त्याग और शुद्धतासे एक विशेष स्थान बना लिया था । सेवानिष्ठ और धार्मिक स्वभावके होनेके कारण वे स्त्रियोंमे संगठनका काम करनेके लिए विशेष योग्य थे। उनके केन्द्रका यह एक प्रमुख लक्षण बन गया था। उन्होंने गांधीजीकी मृत्युके बाद भी नोआखालीसे बाहर जाना स्वीकार नहीं किया और वहीं काम करते करते ६ वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो गई । देहान्त तक वे गांधीजीके "करो या मरो" के मंत्रका पूर्ण रूपसे पालन करते रहे।

इन कार्यकर्ताओंने अपने अपने शिविरोंके भीतर और आसपास साहस, आत्म-निर्भरता और आशाका वातावरण पैदा करनेमें सहायता दी और बंगाल सरकारकी रुक रुक कर चलनेकी नीति, स्थानीय मुसलमानोंके दबे हुए वैरभाव और मुस्लिम लीगके असन्तोषजनक रवैयेके बावजूद वे उपद्रवके शिकार बने हुए लोगोंको अपने पुराने घरोंमें फिरसे बसानेका काम शुरू करा सके। परन्तु ये लोग बहुत थोड़े थे और दूर दूर बिखरे हुए स्थानों पर बैठे थे और समयका प्रवाह तेजीसे उनके खिलाफ होता जा रहा था। नोआखालीका समूचा चित्र अन्धकारमय ही बना रहा।

छठा अध्याय
अंधकारके साथ संघर्ष

१

सरकार द्वारा प्रेरित शान्ति-समितियोंकी नवजात योजना असफल सिद्ध हुई। बंगाल सरकारके श्रममंत्री शमसुद्दीन अहमद २७ नवम्बरको "चार दिन बाद" लौट आनेका वचन देकर कलकत्ते चले गये। यह निर्णय किया गया था कि एक संसदीय सचिव पूरे अधिकारों सहित नोआखालीमें रहेगा और मंत्रीकी अनुपस्थितिमें उनका काम करेगा । परन्तु वह भी "आंखोंकी तकलीफ" के कारण मंत्रीके साथ ही चला गया। दोनोंमें से कोई नहीं लौटा। उसके बाद परिस्थिति बिगड़ने लगी।

जो शान्ति-समितियां बनाई गई थीं वे नाममात्रको काम करती रहीं; और शुरूमें उन्होंने कुछ उपयोगी कार्य किया भी। एक स्थिति ऐसी आई थी जब सर्वत्र यही छाप पड़ी थी कि बंगाल सरकार सच्चे दिलसे नोआखालीमें कुछ काम करना चाहती है। तब जो लोग उपद्रवोंमें शरीक थे उनकी तरफसे शान्ति-समितियोंमें घुसनेकी बड़ी स्पर्धा हुई, ताकि वे न्यायसे बचनेके लिए वहां एक आश्रय-स्थान बना लें। परन्तु जब उन्हें पता चला कि सरकारका ऐसा कोई इरादा नहीं है, तो इस बातमें उनकी दिलचस्पी खतम हो गई । जब एक शान्ति-समितिने गिरफ्तारी करने लायक अवांछनीय व्यक्तियोंकी एक सर्व-सम्मत सूची पेश की, तो अधिकारियोंने उनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की। थानेदारने प्रथम जानकारीकी रिपोर्ट दर्ज करनेसे इनकार कर दिया। एक थानेमें ११०० बयान दाखिल किये गये थे। उनमें से थानेके रजिस्टरमें केवल १५० ही दर्ज किये जानेकी रिपोर्ट मिली थी। एक और थानेमें जब भी कोई शिकायत दर्ज कराई जाती थी, थानेदार मुस्लिम लीगकी स्थानीय संस्थाको उसकी सूचना दे देता था और वहांसे वह सूचना जिस व्यक्ति या व्यक्तियोंके खिलाफ शिकायत होती उनके पास कुछ ही घंटोंमें पहुंच जाती थी। इसके फलस्वरूप शिकायत करनेवाले लोग प्रतिशोधकी धमकियोंके शिकार बन जाते थे।

निजी कष्ट-निवारण संस्थाओंके लिए भी काम करना आसान नहीं था। एक ही उदाहरण लीजिये। २६ नवम्बरको श्रीमती अशोक गुप्त, जो अखिल भारतीय महिला परिषद्की एक समाज-सेविका और बंगाल सरकारकी सिविल सर्विसके एक अफसरकी पत्नी थीं, सेनाके पहरेमें कष्ट-निवारण कार्यके लिए भीतरी प्रदेशमें जा रही थीं। उनके साथ २१ स्वयंसेविकाएं और ४ स्वयंसेवक थे। तब उन्हें एक दलने रोक दिया, जिसमें स्वयं बंगाल सरकारके श्रममंत्री, उनके संसदीय सचिव और बंगाल विधान-सभाका एक स्थानीय मुसलमान सदस्य भी शरीक थे। संसदीय सचिवका ऐसा खयाल मालूम हुआ कि महिला कार्यकर्तियां अपने साथ सेनाका पहरा तो रख सकती हैं, परन्तु पुरुष स्वयंसेवकोंको वे साथ नहीं ले जा सकतीं। उसने और विधान-सभाके सदस्यने तो स्वयंसेविकाओंके साथ आये हुए सैनिकों पर भी रोब गांठना चाहा।

३ दिसम्बरको गांधीजीने श्रममंत्री अथवा संसदीय सचिवके लौटनेकी व्यर्थ प्रतीक्षा करनेके बाद बंगालके मुख्यमंत्रीको एक पत्र भेजा, जिसमें बिगड़ती हुई परिस्थितिकी तरफ उनका ध्यान खींचा गया:

> जो समितियां बनाई जा रही हैं वे किसी न किसी कारणसे ठीक तरहसे काम करती दिखाई नहीं देतीं। अभी तक वे विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकी हैं। मेरी तमाम कोशिशोंके बावजूद लोगोंकी हिजरत जारी है और बहुत थोड़े लोग अपने गांवोंको लौट कर आये हैं। उनका कहना है कि अपराधी लोग अभी तक स्वतंत्रतासे घूमते हैं; कुछको तो शान्ति-समितियोंमें भी स्थान मिल जाता है। बोच बीचमें अब भी हत्याकी और आगजनीकी वारदातें होती रहती हैं; भगाई हुई स्त्रियां अभी तक भी सब लौटाई नहीं गई हैं। . . . जलाये हुए घर फिरसे नहीं बनाये जा रहे हैं और सामान्यतः सद्भावके वातावरणका अभाव है। . . . इस बातका खयाल किये बिना कि स्वयंसेवक किस संगठनके हैं, उन पर पाबंदियां लगाई जा रही हैं। गैरकानूनी कार्रवाइयों पर प्रतिबन्ध लगानेकी बात तो मैं समझ सकता हूं, परन्तु और कोई प्रतिबन्ध अवांछनीय होगा।

गांधीजीको अभी अभी एक पत्र मिला था। उसमें से एक घटनाका, जो पहली दिसम्बरको हुई थी, ब्योरा देते हुए उन्होंने लिखा कि लगभग ३५० की एक मुस्लिम भीड़ने एक हिन्दू गांव पर हमला किया। उसने १५ घर लूट लिये और ३ व्यक्तियोंको घायल कर दिया, जिनमें से २ स्त्रियां थीं। एक और रिपोर्ट इस प्रकार थी: "फरीदगंज क्षेत्रके कुछ भागोंमें और चांदपुर थानेके कुछ हिस्सोंमें भी हिन्दुओंको अपने अपने स्थान पर पुनः बसानेका काम अभी संभव नहीं है। चांदपुर थानेके कुछ भागोंमें भी यही स्थिति है। . . . सारे सब-डिविजनमें हिन्दुओंका आर्थिक बहिष्कार जारी है । मुसलमान मल्लाह हिन्दुओंको अपनी नावमें बैठा कर नहीं ले जाते। हिन्दुओंको अपना धान कटवानेके लिए मुसलमान मजदूर नहीं मिल रहे हैं। चांदपुर सब-डिविजनमें अधिकांश मुसलमान हिन्दू दुकानदारोंसे कोई चीज नहीं खरीदते। सारे सब-डिविजनमें हिन्दू मछुओंको मछलियां नहीं पकड़ने दी जातीं। . . . कभी उन्हें पीटा जाता है और कभी उनके जाल छीन लिये जाते हैं।"

गांधीजीने पत्रके अन्तमें लिखा था: "यह पूरी सूची नहीं है। मुझे मालूम नहीं कि जो दुष्टता की गई है उसकी आपको पर्याप्त कल्पना है या नहीं।"

उधर २ दिसम्बरको लिखा मुख्यमंत्रीका जो पत्र आया—उनका यह पत्र और गांधीजीका पत्र आपसमें टकरा गये—उसमें और बातोंके अलावा यह भी लिखा था:

> बंगालके हिन्दू-मुसलमानोंमें अमन कायम करानेकी आपकी इच्छाकी मैं बहुत कदर करता हूं। . . . (लेकिन) मुसलमानोंको ऐसा लगता है कि अगर आप अच्छा भाईचारा कायम करानेका अपना उद्देश्य पूरा करनेकी सचमुच इच्छा रखते हैं, तो उसका सच्चा क्षेत्र बिहार होना चाहिये। आपके नोआखालीमें रहनेसे आपके बहुतसे स्वयंसेवकोंको प्रमाण गढ़ लेनेका और आपके सामने उन्हें पेश करनेका और स्थानीय मुसलमानोंको—खास करके स्थानीय मुस्लिम लीगी नेताओंको सतानेका प्रोत्साहन मिला है। इससे भविष्यमें आपसी विश्वास पैदा होनेकी संभावना नहीं रहेगी। . . .

सेना और पुलिस गांवोंमें फैल गई हैं और आपने उनकी ज्यादतियोंके किस्से जरूर सुने होंगे। मुसलमानोंकी विवेकहीन गिरफ्तारियां हुई हैं, उन पर हमले हुए हैं, उनकी स्त्रियोंके साथ छेड़छाड़ और बलात्कार हुए हैं, उनके घर लूट लिये गये हैं और एक प्रकारका आतंक-राज्य फैल गया है। . . . हिन्दू संगठनकी सहायतासे तमाम महत्त्वपूर्ण मुसलमानोंको गुनहगारोंके रूपमें फंसाया जा रहा है। इनमें यूनियन बोर्डके अध्यक्ष, जिलाबोर्डके सदस्य, कर्जका निबटारा करनेवाले बोर्डोंके सभापति, जिला स्कूल बोर्डोंके सदस्य, मौलवी, मौलाना, शिक्षक, मुख्य शिक्षक और विधान-सभाके सदस्य तक शामिल हैं। सच तो यह है कि प्रतिष्ठित समझे जानेवाले सभी लोग उनमें हैं। . . . हेतु इसका बहुत स्पष्ट है। और वह है कानूनके द्वारा बदला लिया जाय और बदला भी बेगुनाहोंसे लिया जाय। . . . अगर आप सचमुच मित्रभाव और पारस्परिक सहिष्णुता चाहते हैं, तो इस प्रकारका कानूनी उत्पीड़न बन्द होना चाहिये।

कटु सत्य तो यह था कि बहुत "प्रतिष्ठित" व्यक्तियोंने ही—जिनमें मौलवी, मौलाना, शालाके शिक्षक, मुख्य शिक्षक, विधान-सभाके सदस्य, यूनियन बोर्डोंके अध्यक्ष और सच पूछा जाय तो जिन वर्गोंके लोग मुख्यमंत्रीके कथनानुसार प्रतिष्ठित समझे जा सकते हैं वे सब शामिल थे—दंगोंसे पहले, दंगोंके दिनोंमें और दंगोंके बाद गैर-कानूनी प्रवृत्तियोंमें भाग लिया था। यदि सेना और पुलिसने दुराचरण किया तो मंत्रि-मंडलको उनके खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिये थी; आखिर तो वे सरकारके नौकर थे। परन्तु यहां तो मुख्यमंत्री महोदय उपद्रव-पीड़ित लोगोंको ही अपने शक्तिशाली तथा सुस्थित उत्पीड़कोंके विरुद्ध कानूनकी शरण लेनेके लिए दोष दे रहे थे और उस बातको गांधीजीसे अपना नोआखालीका मिशन बंद करनेकी मांगका बहाना बना रहे थे !

मुख्यमंत्रीके अगले पत्रमें नोआखाली चित्रमें से बिलकुल निकल गया था। वह बिहारकी घटनाओंके विवरणसे ही पूरी तरह भरा था !

२५ नवम्बरको एक पत्रकार-सम्मेलनमें जिन्नाने सुझाव दिया कि प्रांतीय और केन्द्रीय दोनों सरकारोंको "आबादीकी अदला-बदली" का प्रश्न तुरन्त हाथमें लेना चाहिये, ताकि ऐसी "घटनाएं फिरसे न हो सकें, जिनमें छोटे अल्पसंख्यक समुदायोंको भारी बहुसंख्यक समुदायोंने कत्ल कर दिया था।" इसके बाद यह देखा गया कि बंगाल सरकारने बिहारसे आनेवाले शरणार्थियोंको बंगालके सरहदी जिलोंमें बसानेके विशेष कदम उठाना शुरू कर दिया। क्या यह इस बातका संकेत था कि नोआखालीमें अल्पसंख्यकोंको फिरसे बसानेके बारेमें बंगाल सरकारकी नीतिमें भी वैसा ही परिवर्तन हो रहा था ? और क्या पूर्व बंगालसे बंगालके श्रममंत्रीका चला जाना इस परिवर्तनका ही द्योतक था ?

१५ दिसम्बरको हिन्दू महासभाके एक स्थानीय नेता मनोरंजन चौधरीने, जो सरकारकी योजनाके अनुसार शान्ति-समितियां रचनेमें सक्रिय भाग ले रहे थे, गांधीजीकी अनुमतिसे शमसुद्दीन अहमदको यह पत्र भेजा:

> शान्ति-समितियां संगठित करनेके लिए हम जो सभाएं करते हैं, उनमें मुझसे प्रश्न किये जाते हैं और उन कड़े उपायोंका कारण पूछा जाता है, जो बंगाल सरकार शरणार्थियोंके घरोंको फिरसे बंधवानेके पहले या गांवके उनके घरोंको फिरसे रहने लायक बनानेके पहले ही तथाकथित शरणार्थी-छावनियोंमें उनका राशन बन्द करके आजमा रही है, जब कि दूसरी ओर वही सरकार बिहारके शरणार्थियोंका प्रेमसे स्वागत कर रही है और उन्हें बिहार वापस भेजनेके बजाय बंगालमें बसा रही है। . . . बंगालकी सरकार बंगालमें पुलिसके निरीक्षणमें रहनेवाले लोगोंको, जरायम पेशा कानूनके अनुसार संदिग्ध व्यक्तियोंको और मशहूर गुंडोंको गिरफ्तार करनेके लिए भी तैयार नहीं है। आपके जानेके बाद उसने एक तरहसे सब गिरफ्तारियां बन्द कर दी हैं। नतीजा यह है कि बदमाश लोग अब भी लोगोंको आतंकित करते हैं और अपना गैर-कानूनी काम जारी रखते हैं, जैसा कि प्रतिदिन होनेवाली छुटपुट घटनाओंसे पता लगता है। ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर मैं सन्तोषजनक रीतिसे नहीं दे पाता। . . . स्थिति ही ऐसी है, इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि आप मंत्रि-मंडलके और मुस्लिम लीग संगठनके अपने साथियोंसे

सलाह करके मुझे अपना विचारपूर्ण उत्तर दें कि जो शरणार्थी बिहारसे आ रहे हैं उनके बारेमें और जो एक तरहसे नोआखालीके गांवोंसे लगभग उखड़ गये हैं उनके बारेमें आपकी निश्चित नीति क्या है।

यह पत्र डॉक्टर अमिय चक्रवर्तीके साथ रूबरू देनेके लिए भेजा गया था । उन्होंने कलकत्तेसे लिखा: "मुझे स्वीकार करना चाहिये कि मंत्री महोदय बहुत ही उदासीन थे और यदि अशिष्टता नहीं तो उपेक्षाका भाव उन्होंने जरूर दिखाया। . . . बात बातमें उन्होंने कहा कि बिहारमें जो कुछ हो रहा है उसकी तुलनामें बंगालकी स्थिति किसी गिनतीमें नहीं है। उन्होंने बिहारका उल्लेख आत्म-सन्तोष और औचित्यकी भावनासे किया। . . . बिहारके उल्लेखमें ग्लानि और पीड़ाका भाव न होकर विजयका माव था।" [डॉ. अमिय चक्रवर्तीका पत्र गांधीजीको, २० दिसम्बर १९४६]

डॉक्टर चक्रवर्ती जो पत्र लाये थे, उसके बारेमें मंत्री महोदयने कहा कि उसकी चर्चा मंत्रि-मंडलकी विशेष बेठकमें की जायगो और सोच-विचार कर उसका उत्तर डाकसे भेजा जायगा। अभी तो मैं इतना ही कह सकता हूं कि "बंगाल सरकारने उस नीतिको बदला नहीं है, जो पुनर्वासके बारेमें मैंने अपनायी है। . . . रही बात मेरी, तो मेरे नोआखाली वापस जानेमें व्यक्तिगत और दूसरी कठिनाइयां बाधक हैं। इसलिए मैं ठीक तारीख नहीं बता सकता कि कब नोआखाली जा सकता हूं।" [शमसुद्दीन अहमदका पत्र मनोरंजन चौधरीको, २० दिसम्बर १९४६]

मुख्यमंत्रीके २ दिसम्बरके और उसके बादके पत्रके उत्तरमें गांधीजीने ५ दिसम्बरको लिखा:

मैं देखता हूं कि आपने . . . जो सलाह मुझे कई बार दी है वही इस बार भी दोहराई है—कि मेरा स्थान नोआखालीके बजाय बिहारमें है। . . . यदि मुझे लगा कि बिहारमें मेरी उपस्थितिकी जरा भी जरूरत है, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मुझे वहां जानेके लिए आपके प्रोत्साहनकी कोई जरूरत नहीं होगी। . . . क्षमा करिये . . . मैं आपके वक्तव्योंको वेदवाक्य नहीं मानता । एक कारण तो यही है कि आपको घटनाओंका प्रत्यक्ष

ज्ञान नहीं है। **मेरा सुझाव है कि दोनों सरकारोंकी अनुमतिसे नोआखाली और बिहार दोनोंके उपद्रवोंकी जांच करनके लिए एक निष्पक्ष कमीशन नियुक्त कर दिया जाय**। (मोटे टाइप मैंने किये हैं)

२२ दिसम्बरको एक और पत्रमें गांधीजीने लिखा: "मेरा अनुरोध है कि आप मुझे यह बतायें कि नोआखालीमें मेरा रहना आपको बुरा क्यों लगता है और मैं आपसे यह भी कहता हूं कि आप जिला-मजिस्ट्रेट और पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टको हिदायत कर दें कि वे मेरी गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखें और आप इन सज्जनोंको यह भी बता दें कि मैं क्या भूल करता रहा हूं।"

गांधीजीको अपने सारे जीवनमें इस बातका सदा सन्तोष रहा था कि जिन लोगोंके सिद्धान्तों और नीतिका उन्हें विरोध करना पड़ा था, उनका भी स्नेह और विश्वास आम तौर पर उनके प्रति बना रहा था। परन्तु यहां वह सन्तोष उन्हें धोखा देता मालूम हो रहा था। उन्हें विशेष कष्ट तो मुख्यमंत्रीके पत्रोंकी बढ़ती हुई कटुतासे हो रहा था। २४ दिसम्बरको उन्होंने बहुत विचार, गहरी प्रार्थना और आत्म-निरीक्षणके बाद मुख्यमंत्रीको एक निजी पत्र भेजा। उसमें उन्हें "मेरे प्यारे शहीद" के नामसे संबोधित किया और नीचे हस्ताक्षर किये "तुम्हारा बापू"।

> तुम्हें याद होगा कि फरीदपुरमें हमारा सुखद मिलन हुआ था। उस समय देशबन्धु चित्तरंजन दास सशरीर वर्तमान थे । अगर मुझे ठीक याद है, तो तुम अकेले ही मेरे सामने बैठकर लगनसे कात रहे थे, हालांकि तुम्हारा तार समान या बारीक नहीं निकल रहा था। और फिर अगर मुझे ठीक याद है, तो जब मैंने तुम्हारे लिए दूरकी मोहब्बतको बतानेवाला कोई विशेषण लगाया तो तुमने मेरी भूल सुधार कर यह कहा था कि तुम खुदको मेरा बेटा समझते हो । मैं अब भी यही सोचना चाहूंगा कि तुम वही शहीद हो और इस बातका गर्व अनुभव करना चाहूंगा कि मेरा बेटा बंगालका मुख्यमंत्री बन गया है। . . .
>
> काश, तुम बिहारकी अपेक्षा बंगालको अपने दिमागमें अधिक रखो। मान लो कि बिहार प्रान्तीय मुस्लिम लीगकी रिपोर्टोंमें जो कुछ कहा गया है वह सब सच है। . . . बंगालके बिहारकी तरह ही बुरा होनेके लिए ईश्वरको धन्यवाद देकर तुम अपने आपको

सन्तुष्ट करना तो नहीं चाहोगे। . . . मालूम होता है कि तुम्हें बिहारकी निर्दयताओंकी जो कहानियां बताई गई हैं, उन्हें तुमने सच मान लिया है। . . . मैं तुम्हारे सामने स्पष्ट स्वीकार करता हूं कि इन समाचारों पर मुझे विश्वास नहीं होता। यदि वे किस्से ५० फीसदी भी सही हों, तो जीवन मेरे लिए भारस्वरूप बन जायगा। . . . तुम्हें जानना चाहिये कि यहां रहते हुए भी प्रोटीन और चरबीसे रहित भोजन करनेका नियम बनाकर तथा यह सूचना देकर कि वहांकी स्थिति नहीं सुधरी तो मैं पूर्ण उपवास करूंगा, मैं बिहारकी घटनाओं पर असर डाल सका हूं। . . .

यद्यपि मैंने सार्वजनिक रूपमें नहीं कहा है, और आशा है कि मुझे कभी कहना नहीं पड़ेगा, फिर भी बंगालके इस भागमें स्थिति बिलकुल अच्छी नहीं है । शरणार्थियों पर अब भी भय छाया हुआ है । शरणार्थियोंको राशन बन्द करनेकी धमकियां नहीं देनी चाहिये। उन्हें अपने घरोंको लौट आनेकी प्रेरणा देनेके लिए दूसरे कई मानवतापूर्ण मार्ग हैं । अगर तुम सचमुच चाहते हो कि वे लौट आयें, तो तुम्हें उन्हें ठीक भोजन, गरम कपड़े और अच्छे मकान देने चाहिये। . . . अगर पैसेके अभाव या काफी कार्यकर्ताओंके अभावके कारण तुम ऐसा नहीं कर सकते, तो यह बिलकुल उचित और सम्मानपूर्ण होगा कि तुम ऐसी घोषणा कर दो और परोपकारियोंको आवश्यक व्यवस्था करने दो। देशमें काफी ऐसे कार्यकर्ता हैं, जो इस पुकारका उचित उत्तर देंगे। तुम अकेले इस कामको नहीं निबटा सकोगे। और यदि तुम यह काम सचमुच करना चाहते हो, तो तुम्हें किसी जिम्मेदार मंत्रीको भेजना चाहिये, जिसका एकमात्र काम इस सार्वजनिक कर्तव्यकी ओर ध्यान देना ही हो। इसमें तुम मुझे एक तत्पर, इच्छुक और— मुझे आशा है कि—सक्षम सहायक पाओगे।

परन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। गांधीजीके ये शब्द ऐसे व्यक्तिको लिखे गये थे, जिसका मन पूर्वाग्रह और गहरे सन्देहसे कठोर हो गया था। बिहारने बातको और भी बिगाड़ दिया था। परन्तु जो लोग बंगालके मुख्यमंत्रीकी प्रतिक्रियाको प्रत्यक्ष जाननेकी स्थितिमें थे, उन्होंने बादमें इस बातकी साक्षी दी कि यह गांधीजीके इस श्रद्धापूर्ण कार्यका ही परिणाम था, जिससे शहीदमें

परिवर्तनका प्रारम्भ हुआ और जिसने आठ महीने बाद उनका कायापलट करके सबको आश्चर्यचकित कर दिया। (देखिये खण्ड - ३, अध्याय – १६)

अब गांधीजी क्या करें ? बेशक यह सच था कि जो कुछ बिहारमें हुआ वह बर्बरतापूर्ण था और कड़ीसे कड़ी निन्दाके योग्य था। परन्तु उन्होंने अपने मनमें तर्क किया, मैं दूरसे भी बिहारमें अपना व्यक्तिगत प्रभाव डाल सकता हूं । बिहारके मंत्री मेरे मित्र हैं। मेरी बातका उन पर वजन पड़ता है । मेरे आंशिक उपवासका और पूरे उपवासकी चेतावनीका जादूका-सा असर हुआ है। वहां जाकर मैं इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता। परन्तु नोआखालीके मामलेमें मैं यह शस्त्र नहीं आजमा सकता, क्योंकि यहां मुस्लिम लीग और मुसलमानोंका एक बड़ा वर्ग मुझे इस्लामका दुश्मन समझता है। मैंने अभी तक उनका विश्वास प्राप्त नहीं किया है। यदि इन लोगोंको खुश करनेके लिए मैं अपनी विवेक-बुद्धिके विरुद्ध बिहार चला जाऊं और नोआखालीकी स्थिति बिगड़ जाय, तो बिहार पर उसका बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ेगा और वहांका मेरा मिशन पहलेसे ही खतरेमें पड़ जायगा । उससे बिहारके मुसलमानोंकी सुरक्षाके लिए गंभीर खतरा पैदा हो सकता है। इसके विपरीत, यदि मैं नोआखालीकी गड़बड़ीको दूर कर सकूं, तो उससे बिहारकी स्थिति अपने आप सुधर जायगी। नोआखाली और बिहार दोनोंको पीड़ित करनेवाला रोग एक ही है । अगर एक जगह उसका इलाज हो जाय तो दूसरी जगह वह अपने आप हो जायगा। एक स्थानसे दूसरे स्थान पर दौड़धुप करनेसे किसीको भी लाभ नहीं होगा । परन्तु आजके जहरीले वायुमंडलमें बहुतसे मुसलमान इस बातको नहीं समझते । वे समझते हैं कि मुझे अपने सहधर्मी नोआखालीके हिन्दुओंकी जितनी चिन्ता है, उतनी हिन्दुओंके हाथों पीड़ित बिहारके मुसलमानोंकी नहीं है। मुख्यमंत्रीके पत्रोंमें इसी भावनाकी प्रतिध्वनि थी। परन्तु चूंकि उन पत्रोंमें प्रत्यक्ष अतिशयोक्तियां और असत्य बातें भरी थीं, इसलिए अपने पक्षको उन्होंने कमजोर ही बनाया था और नोआखालीके बारेमें उनकी अस्थिर नीतिके कारण स्वयं बिहारके मुसलमानोंके लाभके लिए भी गांधीजीका नोआखाली छोड़ना असंभव हो गया था। बंगालके मुख्यमंत्री नोआखालीकी सारी चिन्तासे उन्हें मुक्त करके किसी भी समय बिहार भेज सकते थे। इसके बजाय वे खुद गांधीजीके वहां जानेके मार्गमें मुख्य रुकावट बन गये थे।

एक संसदीय सचिव हमीदुद्दीन, जो गांधीजीके साथ नोआखाली गये थे, और भी आगे बढ़ गये। उन्होंने कलकत्तेसे एक अखबारी वक्तव्य निकाला, जिसमें उन्होंने कहा:

> मि. गांधीका बिहार जानेका इरादा नहीं है। . . . अगर कोई यह समझे तो क्या गलत होगा कि मि. गांधी नोआखालीमें सिर्फ इसलिए हैं कि वहांकी घटनाओं पर संसारका सारा ध्यान आकर्षित करें और बिहारकी घटनाओंको पृष्ठभूमिमें रखनेके लिए वहांकी घटनाओंको बढ़ा-चढ़ा कर बतायें? . . .
>
> क्या मि. गांधी बाहरसे बड़ी संख्यामें आये हुए स्वयंसेवकोंके जरिये अपना संगठन पूरा करना चाहते हैं? . . . मि. गांधी निराश्रितोंको अपने घरोंमें लौटनेकी सलाह देते समय बहुत आसानीसे बाहरसे आये हुए तमाम स्वयंसेवकों और स्वयंसेविकाओंको नोआखालीसे चले जानेके लिए कह सकते हैं। . . .
>
> मि. गांधी रोज शामको प्रार्थना-सभाएं करते हैं और प्रार्थनाके बाद कभी कभी भाषण भी देते हैं। . . . वहांके हिन्दुओंके लिए अब और उपदेशों या शिक्षाकी जरूरत नहीं मालूम होती और मुसलमानोंको तो ऐसी जरूरत कभी थी ही नहीं । जब हिन्दू समझ जायेंगे कि उनके तथाकथित मित्रोंका शरारतभरा प्रचार उनके लिए अधिक विपत्ति और कष्टका कारण बन गया है, तो वे सच्चे ढंगसे विचार करने लग जायंगे। बाहरी प्रचारसे मुक्त होकर वे अपने मुसलमान भाइयोंमें विश्वास रखने लगेंगे, जिनके साथ वे सदियोंसे शान्तिपूर्वक रहते आये हैं। [हमीदुद्दीन अहमदका वक्तव्य, 'आजाद', १४ दिसम्बर १९४६]

संसदीय सचिवने इस बातसे भी इनकार कर दिया कि नोआखालीमें हिन्दुओंका बलात् धर्म-परिवर्तन किया गया था। उनके कथनानुसार जिनका धर्म-परिवर्तन हुआ भी था वह वास्तवमें "धर्म-परिवर्तन था ही नहीं" ! अन्तमें उन्होंने सछाह दी: "अब गांधीजीको नोआखालीसे चले जाना चाहिये और अपना मूल्यवान समय और शक्ति बिहारके पीड़ितोंके लिए नहीं तो किसी और कामके लिए खर्च करना चाहिये।"

गांधीजी जिसे एक मित्र समझते थे उसकी ऐसी बातोंसे उन्हें गहरी चोट लगी। उन्होंने संसदीय सचिवको लिखा :

आपके पत्रने मुझे स्तब्ध कर दिया है, क्योंकि आपने मुझ पर यह छाप डाली थी कि आपने मेरी ईमानदारीको पूरी तरह महसूस कर लिया है और मुझे जिलेके न सिर्फ हिन्दू निवासियोंके लिए बल्कि मुस्लिम निवासियोंके लिए भी उतना ही उपयोगी माना है। . . . मैं नहीं जानता, इस बीच ऐसी क्या बात हो गई, जिससे मैं आपकी निन्दाका पात्र बन गया। आप मुझे . . . नोआखाली छोड़कर बिहार या और कहीं जानेको सलाह क्यों देते हैं? . . .

क्या आप ऐसा नहीं मानते कि आपने मेरे प्रति जो अपार आदर दिखाया, उसके बाद हुए परिवर्तनों और उनके कारणोंकी जानकारी पानेकी तथा आपकी ओरसे मैत्रीपूर्ण व्यक्तिगत पूछताछकी आशा रखनेका मुझे अधिकार था ? . . . आपको अपने लेखमें ही इस बातका उचित कारण मिल जायगा कि बिहारकी अपेक्षा नोआखालीमें रहनेकी मेरी अधिक इच्छा क्यों है। . . . जिस स्थानमें मेरे वचनों पर दिखाये गये विश्वासकी अधिकसे अधिक जोरदार घोषणा भी इतनी अल्पजीवी हो सकती है—जैसी कि आपके मामलेमें—उसे छोड़कर अन्यत्र मैं अहिंसाकी परिणामकारिता और सत्यताकी कसौटी कैसे कर सकता हुं? . . .

मेरे पास यह सिद्ध करनेके लिए निश्चित प्रमाण हैं कि जिन हिन्दू शरणार्थियोंने व्यक्तिगत साहसकी इतनी कमी दिखाई, वे अपने घरोंको लौट जानेके लिए राजी क्यों नहीं होते । आप जिन शांति-समितियोंको बननेकी स्थितिमें छोड़ गये थे, वे ठीक काम नहीं कर रही हैं । . . . मैं लीगी मंत्रि-मंडलके खातिर, जिसकी कार्यक्षमता और भलाईमें मैं आपके बराबर ही दिलचस्पी रखता हूं, आपसे यह विश्वास करनेका अनुरोध करता हूं कि मैं पूर्व बंगालमें लीग पर दोषारोपण करनेकी गरजसे नहीं आया हूं । मैं यहां इसलिए आया हूं कि अपने आचरणसे लीगका आत्म-सन्तोष दूर कर दूं और उसके अपने लिए

तथा भारतके लिए ठोस काम करनेका उससे आग्रह करूं। [गांधीजीका पत्र हमीदुद्दीन अहमदको, २७ दिसम्बर १९४६]

यह परोक्ष आक्षेप कि गांधीजी अपने "संगठनको पूर्ण बनाने" के लिए बाहरसे असंख्य स्वयंसेवक मंगानेकी कोशिश कर रहे हैं, सबसे अधिक निर्मम प्रहार करनेवाला था, क्योंकि वह उतता ही असत्य था। गांधीजीने इसका विरोध करते हुए कहा: "मैं बाहरसे असंख्य स्वयंसेवक नहीं लाया हूं। मैं आपको बता दूं कि मेरे ध्येयकी पूर्तिके लिए मुझे अपने सिवा यहां किसी भी स्वयंसेवककी जरूरत नहीं है । अगर आप सचमुच यह समझते हैं कि उनके यहां रहनेसे नोआखालीकी शांतिको खतरा है, तो सरकार इतना ही कह दे कि वे नोआखालीके लिए खतरा हैं और उन्हें चले जानेकी नोटिस दे दे । मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि एक शब्द भी बोले बिना वे इस जिलेसे चले जायंगे। . . . आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वे सब मुझे प्रिय हैं . . . **परन्तु अपने इस मिशनमें मुझे अपने किसी साथीकी जरूरत नहीं हैं; क्योंकि सफलताके लिए शीघ्रसे शीघ्र उपाय है ईश्वरके सिवा अन्य किसीका संरक्षण या सहयोग न लेना। अहिंसाके कार्यकी मेरी यही कल्पना है** । मुझे आशा है कि सरकार कोई कार्रवाई करनेसे पहले अपनी पसंद या भरोसेका कोई अधिकारी मुझसे या मेरे साथियोंसे यह जान लेनेके लिए यहां भेजेगी कि वे किस प्रकारका काम नोआखालीमें कर रहे हैं। उनका जीवन खुली पुस्तक है। उनके कामोंके बारेमें कोई बात गुप्त अथवा छिपी नहीं है।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

इस वचनसे उन्होंने केवल अपने आपको और "अपने साथियोंमें से एकको ही, जिसका नाम मैं अभी जाहिर करना जरूरी नहीं समझता?" अलग रखा । वह उनकी पोती मनु गांधी थी, जिसे उन्होंने अपवादके रूपमें अपने नोआखालीके "करो या मरो" वाले साहसमें सम्मिलित होनेकी और अपने साथ रहनेकी अनुमति दी थी, जब कि अपने दूसरे सब साथियोंको उन्होंने उपद्रव-पीड़ित गांवोमें अलग अलग कामों पर भेज दिया था। (देखिये अध्याय-११)

एक शिकायत संसदीय सचिवने (और आम तौर पर मुसलमानोंने) यह की थी कि नोआखालीमें हताहतोंके जो अतिशयोक्तिपूर्ण आंकड़े अखबारोंमें छपे थे उनका गांधीजीने खंडन नहीं किया था। उनकी शिकायत थी कि इन खबरोंके कारण ही बिहारके दंगे हुए। यह धारणा पूरी तरह सही नहीं थी, परन्तु इस बातसे मुस्लिम भावनाको बड़ा आघात लगा | गांधीजी दुविधामें पड़ गये । अगर वे नोआखालीके बारेमें सम्पूर्ण सत्य कहते, तो उन्हें बंगाल सरकार नोआखालीमें जिस ढंगसे काम कर रही थो उसके बारेमें कुछ साफ साफ बातें कहनी पड़तीं । उससे स्थितिके सुधरनेमें कोई मदद नहीं मिलती । इसलिए गलतफहमी पैदा होनेका खतरा उठाकर भी उन्होंने चुप रहना पसन्द किया। उन्होंने अपने जीवनमें पहले भी कई बार ऐसा किया था और बादमें उनके विरोधियोंने इसके लिए उन्हें धन्यवाद दिया था। [इस सम्बन्धमें आर्यसमाजियोंका उदाहरण उल्लेखनीय था। मुसलमानों द्वारा किये गये आक्षेपोंके विरुद्ध आर्यसमाजियोंका बचाव करते हुए गांधीजीने आर्यसमाजियोंके कुछ सिद्धान्तों तथा कार्योंके बारेमें अपना प्रामाणिक मत व्यक्त किया था, जिससे आर्यसमाजी उन पर बहुत ज्यादा क्रुद्ध हो गये थे। गांधीजीने आर्यसमाजियोंके स्पष्ट रूपमें अन्यायी प्रहारों पर ध्यान देनेसे इनकार कर दिया, क्योंकि बात यह थी कि वे (गांधीजी) जो कुछ कहते उसका विरोधी लोग उनके विरुद्ध गोला-बारूदकी तरह उपयोग करते थे । इससे भी अधिक उल्लेखनीय उदाहरण यह था: गांधीजीने "भारत छोड़ो" आन्दोलनके दिनोंमें हुई जनताकी हिंसाके बारेमें अपनी राय बतानेसे साफ इनकार करके कहा था कि जब तक मैं इतनी ही स्वतंत्रतासे सरकारकी 'सिंहके जैसी' हिंसाके बारेमें अपनी राय प्रकट न कर सकूं तब तक जनताकी इस हिंसाके बारेमें भी नहीं करूंगा।]

संसदीय सचिवके नाम लिखे गांधीजीके पत्रमें यह भी कहा गया था, "आप यह भी कहते हैं कि 'अगर उन्होंने (गांधीजीने) घटनाओंके सच्चे स्वरूपके बारेमें कोई वक्तव्य निकाला होता, तो शायद वातावरण बहुत कुछ साफ हो जाता । इस मामलेमें उनके चुप रहनेसे बहुतोंके मनमें शंकाएं उठती हैं।' यह परोक्ष आक्षेप आप क्यों करते हैं, जब आपको अच्छी तरह मालूम है कि मैं बंगाल सरकारकी ओरसे जो कुछ किया गया है और किया जा रहा है, उसकी प्रशंसामें

बोलनेकी स्थितिमें नहीं हूं? अगर आप इस बातका ध्यानसे अध्ययन करनेका कष्ट करेंगे, तो मुझे बोलनेके लिए प्रेरित करनेके बजाय मेरे संयमकी आप कदर करेंगे।”

पत्रके अन्तमें कहा गया था: “आपको मेरे पास आनेका, मेरे साथ घंटा आधा घंटा बितानेका और मेरे खिलाफ आपने जो इलजाम तैयार किये हैं उन पर मुझसे जिरह करनेका कष्ट उठाना चाहिये। आपके पत्रकी तरह यह खुला पत्र नहीं है। मैंने सिर्फ आपके लिए लिखा है—यह आशा रख कर कि शायद एक ऐसे हितैषीका, जो अपना मत बदलनेके लिए तैयार है, पत्र होनेके कारण यह आपको अपील करे।”

मुख्यमंत्रीसे की गई इससे पहलेकी अपीलकी तरह यह भी बहरे कानों पर पड़ी। संसदीय सचिवने जो सन्देश भेजा, उसमें यह बहाना उठाया गया था कि नोआखालीके हिन्दुओंको शांति-समितियोंके बारेमें “कुछ उत्साह नहीं है” और वे शान्ति-समितियोंमें “हमारे कुछ उत्तम कार्यकर्ताओंको लेने” पर एतराज करते हैं। इसलिए मैंने शान्ति-समितियोंके बारेमें सारीआशा छोड़ दी है और उनके कामकाजमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं रह गई है।

ऐसा ही २५ दिसम्बरका मुख्यमंत्रीका पत्र था। उन्होंने गांधीजीको लिखा, मुझे अफसोस है कि अभी मैं किसी मंत्रीको नोआखाली नहीं भेज सकता, क्योंकि कलकत्तेमें “बहुतसा प्रशासनीय” कार्य करना है। आपको कोई शिकायत मिले और आप स्थानीय अफसरोंका ध्यान उस ओर खींचें, तो मुझे “बेशक . . . कोई आपत्ति नहीं होगी !”

इस प्रकार गाड़ी बिलकुल रुक गई । अगर गांधीजी नोआखाली ठहरनेका निश्चय करते, तो वे भीतर ही भीतर घुटते रहनेके लिए स्वतन्त्र थे।

२

नोआखाली और बिहारके लिए एकसे कार्यक्षेत्रवाली जांच-समिति नियुक्त करनेका गांधीजीका सुझाव लीगको पसन्द नहीं आया। कांग्रेस और मुस्लिम लीगके संबंध बिगड़ते गये। नोआखालीके उपद्रव-पीड़ित समुदायकी निराशा गहरी बनती गयी और उसका सबसे बड़ा कारण नोआखालीके विषयमें बंगाल सरकारकी नीति थी।

दो सामाजिक कार्यकर्ताओंका अनुभव उपद्रव-पीड़ित गांवोंके वायुमंडलका ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता था। २८ दिसम्बरको मारवाड़ी रिलीफ सोसायटीका एक कार्यकर्ता गोपीनाथपुर नामक गांवमें गया। वहां स्थानीय लोगोंने हरि-कीर्तनका कार्यक्रम रखा था। "उन्होंने कहा कि स्थानीय मुसलमानोंके रोक देनेके कारण उन्होंने हरि-कीर्तनका कार्यक्रम छोड़ दिया है। मैंने उनसे कहा कि जिन लोगोंने रोका है, उनके नाम मुझे बताओ। वे बताना नहीं चाहते थे। . . . वे बोले . . . हमें इस गांवमें अपने दिन बिताने हैं। . . . (अगर हम हरि-कीर्तन करते हैं) तो हमारे घर नष्ट कर दिये जायंगे।" [लक्ष्मीपुरमें काम कर रही मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीके संचालक मानकरण शर्माका पत्र सुधामय घोषको, ३ जनवरी १९४७] ५ दिन बाद यह कार्यकर्ता फिर वहां गया: "उन्होंने (मुसलमानोंने) मुझे रास्तेमें रोक लिया और मुझ पर गालियोंकी वर्षा की। . . . उन्होंने कहा . . . जो कोई हरि-कीर्तन करनेका साहस करेगा उसे हम पीटेंगे। मैंने कहा, 'मैं जरूर उन्हें (स्थानीय हिन्दुओंको) राम और कृष्णका नाम लेनेके लिए बुलाऊंगा।' उन्होंने कहा, 'पाकिस्तानमें तुम्हें भगवान (ईश्वरका हिन्दू नाम) का नाम नहीं लेना चाहिये।' . . . मुझे खाली हाथ लौटना पड़ा ।" [वही]

बंगाल मेडिकल काउन्सिलके एक रजिस्टर्ड सदस्य डॉ. वरदरंजन पिल्ले उपद्रव-पीड़ित गांवोंमें डाक्टरी सहायताका काम कर रहे थे । २ जनवरी, १९४७ की सुबह वे एक साथीको लेकर चांदपुरसे गंदमारा गांव गये। उन्हें एक स्थानीय मुसलमानने सन्देश भेजा था कि वहां हैजा फैल गया है। वहां पहुंचने पर न तो वह मुसलमान उन्हें मिला और न कोई हैजेका बीमार ही मिला:

> इसलिए हमने कुछ और बीमारोंको देखने और दवा देनेका निश्चय किया। मुस्लिम लीगके मुस्लिम नेशनल गार्डके स्वयंसेवकोंने हमें स्वेच्छासे पहुंचा देनेका प्रस्ताव किया। परन्तु बीमारोंके पास ले जानेके बजाय वे हमें अपने मदरसेमें ले गये। वहां हमें लगभग १०० गांववालोंने घेर लिया । मुबारक अली नामक एक हकीमने हमसे जिरह की कि हम कौन हैं और क्यों आये हैं। हमें सूचना दी गई कि जब तक हम उनको यह सन्तोष न दिला दें कि हम कौन हैं तब तक हमें वापस नहीं जाने दिया जायगा। मैंने उन्हें बंगाल मेडिकल काउन्सिलका अपना रजिस्टर्ड नंबर दिया। लेकिन उनका समाधान नहीं हुआ। उन्होंने

कहा, हम नहीं मान सकते कि दो निहत्थे हिन्दू हमारे बीच आ सकते हैं । उन्होंने हमारे दवाओंके थैलेकी और औजारोंकी पेटीकी तलाशी ली और मेरी जेब-डायरी छीन ली ।. . . फिर भी जब उन्हें सन्तोष नहीं हुआ, तो वे हमें . . . अपने स्थानीय मुखियाके पास ले गये। हमने उनसे यूनियन बोर्डके अध्यक्षको बुलानेके लिए कहा । . . . उन्होंने यह कह कर इनकार कर दिया कि . . . वह हमारा दुश्मन है। . . . तब हमने उनसे कहा कि हमारी शनाख्तके लिए पुलिसको बुला लिया जाय । उन्होंने यह बात भी नहीं मानी। . . . अन्तमें उन्होंने फैसला किया कि अगर हम सच्चे हैं . . . तो हमें उनके लीगके मंत्रीके पास चांदपुर जाना चाहिये। . . . अपनी सचाई साबित करनेके लिए हम सहमत हो गये। . . . हम . . . दो लीगी स्वयंसेवकोंके साथ . . . चांदपुरके लिए रवाना हुए। . . . उन्होंने मुख्य सड़क छोड़ दी । . . . हम छह बजे शामको चांदपुर पहुंचे । हम लीगके मंत्रीसे मिले। . . . हमने उससे पूछा कि हमसे जिरह करनेकी उसे क्या सत्ता है। . . . हम सब-डिविजनल अफसरके पास गये । लीगके स्वयंसेवक गायब हो गये; एस. डी. ओ. के सामने नहीं गये । एस. डी. ओ. ने हमारे नाम लिख लिये और हमें सूचना दी कि जल्दी ही मैं जांच करूंगा। [डॉ. वरदरंजन पिल्लेकी रिपोर्ट, ४ जनवरी १९४७]

सरदार पटेलको बड़ी चिन्ता हो रही थी । उन्हें नोआखालीसे कुछ घबराहट भरा एक तार मिला था। उसका उल्लेख करते हुए उन्होंने मुझे एक पत्रमें लिखा: "तुम्हारी तरफसे कुछ भी जानकारी मिलना कठिन है। मुझे मालूम नहीं कि बापू क्या कर रहे हैं । लेकिन अगर तारमें बताये गये तथ्य सच हों, तो पता नहीं बापूके इन सारे भगीरथ प्रयत्नोंका क्या परिणाम हुआ। बिहारमें उत्पातके पहले सप्ताहके बाद व्यवस्था फिरसे स्थापित हो गई और तबसे वहां बिलकुल शान्ति है । . . . इसके सिवा, कष्टनिवारणका सारा काम मुस्लिम लीगको सौंप दिया गया है और अलीगढ़, सीमाप्रान्त तथा पंजाबसे बहुतसे कार्यकर्ता आ गये हैं। . . . नोआखालीमें ऐसा मालूम होता है कि जब तक लीगसे आदेश न मिलें तब तक स्थानीय मुसलमान मदद देना मंजूर नहीं करेंगे । यह बड़ी कठिन परिस्थिति है। और हमें दोनोंके बीचका संघर्ष मिटानेके लिए कुछ न

कुछ करना पड़ेगा। **दोनों स्थानोंमें हमारी एकसी नीति होनी ही चाहिये** ।" [सरदार पटेलका पत्र प्यारेलालको, १६ दिसम्बर १९४६] (मोटे टाइप मैने किये हैं।)

इस प्रकार बिहार और नोआखालीकी एक-दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रही और उसका अखिल भारतीय परिस्थिति पर बड़ा हानिकारक प्रभाव पड़ा । नवम्बर १९४६ के अंतिम सप्ताहमें हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमें इस बात पर बड़ा असन्तोष व्यक्त किया गया था कि जब जब मुस्लिम लीग आक्रामक कार्रवाई करती है तभी ब्रिटिश सरकार उसके साथ अधिकाधिक रियायतें करनेका आग्रह करती है। एक पक्षकी ओरसे धमकी बताने पर सरदार पटेलने भी उत्तेजित होकर कहा कि "तलवारका जवाब तलवारसे दिया जायगा"। गांधीजीको यह पसन्द नहीं आया। परन्तु पीड़ितोंको अथवा जो उनके तत्त्वज्ञानको नहीं मानते थे उन्हें गांधीजी क्या सान्त्वना दे सकते थे? वातावरण अतिशय गंभीर था। संविधान-सभाका अधिवेशन ९ दिसम्बरको रखा गया था, परन्तु लीग अब भी उसका बहिष्कार कर रही थी। एक अफवाह ऐसी उड़ी कि वह दिन नोआखालीके मुसलमान विरोध-दिवसके रूपमें मनायेंगे। इससे वहांके आम लोगोंके सामने अक्तूबरकी घटनाओंका दृश्य खड़ा हो गया। गांधीजी पर आरोप लगाया गया कि वे नोआखालीमें व्यापक रूपमें सत्याग्रह करनेकी गुप्त योजना बना रहे हैं। यह निरी मूर्खताकी बात थी। परन्तु नोआखालीके विशिष्ट वायुमंडलमें कोई उड़ती हुई चिनगारी भी आग भड़का सकती थी। गांधीजीके यह समझानेका प्रयत्न करनेसे कोई काम नहीं हुआ कि सत्याग्रह चीज ही ऐसी है, जिसमें गुप्तता नहीं हो सकती; उनके नोआखालीमें ठहरनेका एकमात्र उद्देश्य दोनों समुदायोंमें हार्दिक एकता स्थापित करना है। यह उद्देश्य गुप्त योजनावाले सत्याग्रहसे पूरा नहीं हो सकता।

नोआखालीमें गांधीजीकी सतत उपस्थिति वहांके हिन्दुओं और मुसलसानोंके बीच शान्ति तथा मीठे सम्बन्ध स्थापित करनेमें विघ्नरूप सिद्ध हो रही है और गांधीजीका इरादा बंगालकी मुस्लिम लीगी सरकारको बदनाम करनेका है—इस आशयके पत्र गांधीजीको मुसलमानोंकी ओरसे मिलने लगे और इसी आशयके लेख और टिप्पणियां मुस्लिम लीगके अखबारोंमें छपने लगीं। इससे गांधीजीको कष्ट होता था। वे तो साम्प्रदायिक मेलजोल पुनः स्थापित करनेमें बंगाल

सरकारको मदद देनेके लिए वहां थे। सरकार भी इसके लिए चिन्तित होनेका दावा करती थी। इसलिए उसे गांधीजीके सहयोगका स्वागत करना चाहिये था और पूर्व बंगालमें हृदयोंकी एकता कायम करनेमें उसका उपयोग करना चाहिये था । उनकी उपस्थितिसे सरकारको तभी परेशानी हो सकती थी जब उसके दावे झूठे होते या उसे गांधीजीकी सचाईमें सन्देह होता । उन्होंने सरकारसे यहां तक कह दिया था कि वह अपने पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टसे उनकी गलती समझानेको कह सकती है, यदि उसे उनकी भूलका विश्वास हो। परन्तु किसीने एक शब्द भी नहीं कहा !

क्या गांधीजी यह समझ नहीं सकते थे कि जब बंगाल सरकार उनके मिशनके प्रति सहानुभूति प्रगट करती थी तब वह केवल शिष्टाचार ही दिखाती थी; वह दिलसे ऐसा नहीं मानती थी ? गांधीजी ऐसा माननेसे इनकार करते थे। वे सरकारके शब्दों पर पूरा विश्वास करते थे। यह धोखा खाना नहीं था, परन्तु सच्चा हार्दिक विश्वास था—ऐसा विश्वास जिससे विश्वास पैदा होता है । अगर उसमें कोई खतरा था तो उसे उन्होंने आंखें खोल कर उठाया था । विरोधीको सच्चे हृदयसे श्रेय देकर—वह श्रेय जिसका विरोधी हमेशा पात्र नहीं होता था—वे अक्सर उसे अपने ऊंचे प्रमाणपत्रके अनुसार जीवन बितानेको प्रेरित करते थे।

सत्याग्रहकी कार्य-पद्धति आत्मामें छिपे हुए असत्यको धो डालती है या उसे खोल देती है। बंगाल सरकारको या तो अपनी घोषित नीति पर अमल करना था या खुले तौर पर उसे छोड़ देना था। मुख्यमंत्रीने “बाहरी संस्थाओं” पर आरोप लगाया था कि वे निराश्रित लोगोंको अपने घरोंमें लौटनेसे रोक रही हैं और इस बिना पर उन्हें नोआखालीसे हट जानेको कहा था। यह तो तर्कका मनमाना विपर्यास था। निराश्रितोंके अपने घरोंमें लौट आनेके मार्गमें सच्ची रुकावट बंगाल सरकारकी नीति ही थी । यह सच है कि अगर गांधीजी और वे कार्यकर्ता, जो उनके साथ अथवा बादमें नोआखाली आये थे, वहांसे हट जाते और स्थानीय हिन्दुओंको उनके पूर्व-उत्पीड़कोंके आसरे छोड़ आते, तो हिन्दू “लाचार होकर उनके वश हो जाते”—जैसा कि चटगांव विभागके कमिश्नर श्री बैरेटने बादमें बंगाल सरकारको अपनी गुप्त रिपोर्टमें कहा था; और नोआखालीको स्मशानकी शांति प्राप्त हो जाती। गांधीजीकी अहिंसा इसके पक्षमें नहीं थी।

उन्होंने एक प्रार्थना-प्रवचनमें कहा: मेरे पास अन्यत्र करनेके लिए काफी काम है । संविधान-सभामें मेरी सहायताकी आवश्यकता है। यदि नेताओंको मुझसे सलाह-मशविरा करनेके लिए इतनी दूर नोआखाली आनेका कष्ट न करना पड़े, तो मुझे अच्छा लगेगा। परन्तु मुझे विश्वास है कि नोआखालीमें मैंने जो काम हाथमें लिया है, वह सारे भारतके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इतना ही नहीं, अगर मैं यहां अपने मिशनमें सफल हो जाऊं तो संसारकी भावी शान्ति पर उसका गहरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता । मेरी जगह कोई और होता तो वह समय देख कर चलनेके लालचमें पड़ जाता और मुस्लिम लीगकी भावनाको सन्तुष्ट करनेके लिए अपने अन्त:करणकी आवाजके खिलाफ बिहार चला जाता । मैं अनेक राजनैतिक कार्यकर्ताओंको जानता हूं, जो यह देखकर कदम उठाते हैं कि दूसरे लोग उनके कामोंके बारेमें क्या कहेंगे या सोचेंगे । लेकिन मैं दूसरी तरहका मनुष्य हूं। में भी किसी कार्यको आरंभ करनेसे पहले उस विषयके पक्ष-विपक्षको ध्यानपूर्वक तौल लेता हूं। परन्तु जब एक बार निश्चय कर लेता हूं और मुझे यह तसल्ली हो जाती है कि सत्य और अहिंसाकी दृष्टिसे वह सही है, तो फिर मैं आगा-पीछा सोचे बिना उसमें कूद पड़ता हूं और मेरे कार्यों और प्रामाणिकताको अपने लिए स्वयं बोलने देता हूं।

परन्तु यहां नोआखालीमें ऐसा मालूम होता था कि उनके कार्य और प्रामाणिकता स्वयं नहीं बोल रहे थे । उन्होंने अपने एक साथीको समझाया, “मनोविज्ञानका मेरा ज्ञान मुझे बताता है कि अगर हमारे कामों या शब्दोंका दूसरों पर हमारे आशयके विपरीत असर पड़ता हो, तो उसका कारण हमें अपने भीतर ही ढूंढ़ना होगा।” उन्होंने कहा कि मैं अपने आपको घोर अन्वकारसे घिरा हुआ पाता हूं । बाह्य परिस्थितियोंने मुझे कभी नहीं दबाया है, परन्तु जिस अन्धकारने मुझे आज घेर रखा है वह ऐसा है जैसा मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था । मैं देखता हूं कि मेरो अहिंसा हिन्दू-मुस्लिम संबंधोंके बारेमें काम नहीं दे रही है। “जब मैने नोआखालीकी घटनाओंके बारेमें जाना, तो इस बातकी मुझे जोरोंसे प्रतीति होने लगी। जबरदस्ती किये गये तथाकथित धर्म-परिवर्तनोंने और बंगाली बहनोंके संकटने मुझे गहरा आघात पहुंचाया। लेखनी या वाणीसे मैं कुछ नहीं कर सकता था। मैंने अपने मनमें तर्क किया कि मुझे घटना-स्थल

पर रह कर उस सिद्धान्तके सत्य होनेकी परीक्षा करनी चाहिये, जिसने मुझे टिकाये रखा है और जीवनको जीने लायक बनाया है। जैसा आलोचक अक्सर कहते रहे हैं, यह कमजोरोंका शस्त्र है या सचमुच बलवानोंका शस्त्र है? यह प्रश्न मेरे भीतर तब उठा जब मैंने उस व्याधिका कोई तैयार इलाज नहीं पाया, जिसका एक प्रत्यक्ष लक्षण नोआखाली था। इसलिए और सब कामकाज छोड़ कर मैं जल्दीसे यह पता लगानेके लिए नोआखाली चला आया कि मैं कहां खड़ा हूं।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, ४ दिसम्बर १९४६]

गांधीजी निश्चित रूपसे जानते थे कि अहिंसा सम्पूर्ण अस्त्र है। वे कहते थे कि यदि यह अस्त्र मेरे हाथोंमें काम नहीं देता, तो दोष मेरा ही होना चाहिये; मेरी कार्य-पद्धतिका दोष होना चाहिये। "दूर बेठ कर मैं अपनी भूलका पता नहीं लगा सकता था। इसलिए मैं उसका पता लगानेके प्रयत्नमें यहां आ गया हूं। अतः जब तक मुझे प्रकाश न दिखाई दे तब तक मुझे स्वीकार करना चाहिये कि मैं अंधकारमें हूं।" [वही]

सरदार पटेलको इस समय उन्होंने एक पत्र लिखा था। उसमें उनके अन्तर्द्वन्द्वका सजीव चित्र उपस्थित होता है:

> यह पत्र में सुबह तीन बजे बिस्तर पर लेटे लेटे लिखवा रहा हूं। दातुन-पानी तो चार बजे होगा। फिर सुबहकी प्रार्थना। इस तरह क्रम चलता है। . . .
>
> शरीर काम देता है। फिर भी मेरी पूरी परीक्षा हो रही है। मेरी अहिंसा और सत्य दोनों मोती तौलनेके कांटेसे भी कहीं अधिक नाजुक कांटे पर चढ़े हुए हैं। . . . वह ऐसा कांटा है जो बालके सौवें भागके वजनकी भी परीक्षा कर सकता है। अहिंसा और सत्य तो अपूर्ण हो ही नहीं सकते। परन्तु मेरी, जो इनका प्रतिनिधि बना हूं, अपूर्णता सिद्ध होनी होगी तो हो जायगी। लेकिन वह सिद्ध हो उससे पहले मैं इतनी आशा तो जरूर रखता हूं कि ईश्वर मुझे इस दुनियासे उठा लेगा और दूसरे किसी अधिक योग्य साधनसे यह काम लेगा। . . .

यहांका मामला कठिन है। सत्य कहीं ढूंढ़े नहीं मिलता । अहिंसाके नाम पर हिंसा होती है। धर्मके नाम पर अधर्म हो रहा है। परन्तु सत्य और अहिंसाकी परीक्षा तो ऐसी परिस्थितियोंमें ही हो सकती है नमैं यह समझता हूं, जानता हूं, इसीलिए यहां पड़ा हूं । यहांसे मुझे बुलाना मत । मैं कायर बनकर भागूं तो मेरा दुर्भाग्य । अभी तक तो मैं हिन्दुस्तानके ऐसे लक्षण नहीं देखता। मुझे तो यहां करना है या मरना है । . . . [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, २५ दिसम्बर १९४६]

फिर नोआखालीसे आये तारका, जो सरदारने भेजा था, उल्लेख करके गांधीजीने आगे लिखा:

तुमने जो तार भिजवाया उसे निकम्मा समझना। यहां अतिशयोक्तिका पार नहीं है। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि लोग जान-बूझ कर अतिशयोक्ति करते हैं। वे जानते ही नहीं कि अतिशयोक्ति क्या होती है ! जैसे हरी घास और वनस्पतियां चारों ओर उगती और फैलती हैं, वैसे ही मनुष्यकी कल्पना यहां उड़ती है। . . . मेरी सलाह है कि तुमने तार भेजनेवालेको कोई जवाब न दिया हो, तो अब जवाब देना कि सब बातोंका सबूत भेजो तो शायद केन्द्रीय सरकार कुछ कर सके, यद्यपि उसे इसका (प्रान्तीय स्वायत्त शासनमें हस्तक्षेप करनेका) अधिकार नहीं है। उन्हें यह भी लिखना कि तुम्हारे पास गांधीजी हैं; वे तुम्हारे साथ न्याय न करें, ऐसा नहीं हो सकता। लेकिन वे तो सत्य और अहिंसाके दूत कहे जाते हैं। इसलिए संभव है कि उनसे तुमको निराशा हो। लेकिन अगर गांधीजी तुमको निराश कर दें, तो हम लोग, जो उनके हाथ नीचे तैयार हुए हैं, तुम्हें कैसे सन्तोष दिला सकेंगे? लेकिन हम जितना हमसे बनेगा उतना करेंगे। किसीसे तुम ऐसा न कहना कि गांधीजी वहां हैं इसलिए हमें कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं है। बल्कि उनसे कहना कि गांधीजीके वहां रहते हुए भी हमसे कुछ पूछना हो तो पूछ सकते हो : हमारा धर्म है कि उनका विरोध करके भी लोगोंको दिया जा सके तो न्याय दें। यह शिक्षा भी तो उन्हींकी दी हुई है न?

इसके बाद गांधीजीने पत्रमें बिहारके दंगों पर बिहार मुस्लिम लीगकी रिपोर्टका उल्लेख किया है: "उसमें उल्लिखित आधी बातें भी सच हों, तो वह बहुत भयंकर है। मेरे मनमें जरा भी शंका नहीं है कि एक दिनकी भी देर किये बिना एक निष्पक्ष जांच-कमीशन, जिसके बारेमें कोई भी आपत्ति न उठा सके, नियुक्त किया जाना चाहिये। आरोपोमें जितनी भी सचाई हो उसे साफ साफ और नम्रतापूर्वक मान लेना चाहिये और बाकी बातें जांच करनेवाले न्यायाधीशको सौंप देनी चाहिये। तुम इसकी चर्चा मंत्रि-मंडलके अपने मुस्लिम लीगी साथियोंसे भी कर सकते हो।"

एक और मित्रको गांधीजीने लिखा: "जाने हुए हत्यारे और अपराधी आजाद घूमते हों, तो भी लोगोंको निर्भय होकर इधर-उधर जाना-आना और सुरक्षितता अनुभव करना सीखना चाहिये। जब तक हम यह सबक नहीं सीख लेंगे तब तक हमारी लाचारी कभी दूर नहीं होगी। यह हिंसा बनाम अहिंसाका प्रश्न नहीं हैं। कोई सैनिक भारी संख्याके सामने अपने हथियारोंका उपयोग करते हुए और बहादुरीसे लड़ते हुए मर सकता है। परन्तु अहिंसाके सैनिकको निहत्था होने पर भी ऐसी स्थितिमें वीरतापूर्वक मृत्युका सामना करके अपनी तेजस्विताका प्रमाण देना होता है। . . . दुर्बलोंकी अहिंसाको अहिंसाका नाम देकर हम उस शक्तिको लज्जित करते हैं, जो अहिंसामें है। दुर्बलोंकी अहिंसा कायरोंकी युकति है। क्या अब तक भारतने मुझसे यही सीखा है?" [गांधीजीका पत्र छोटुभाई पुराणीको, २२ दिसम्बर १९४६] फिर उन्होंने एक भयंकर शंका प्रगट करके मनका बोझ हलका किया, जो उन्हें सताने लगी थी: कहीं मैंने भी तो अनजाने "कायरोंकी युक्ति" का ही प्रयोग करना नहीं सीखा है और दूसरोंको सिखाया है? अगर ऐसी बात हो तो मेरे सामने जो संकट उपस्थित है उसमें मेरी अहिंसाकी प्रकट असफलताका एक स्पष्टीकरण शायद यह हो सकता है। आत्म-परीक्षण करनेके लिए उन्होंने कड़ी कसौटियां अपने पर लागू करना शुरू कर दिया। उनमें से कुछ बड़ी थीं, कुछ छोटी और कुछ तो अलौकिक-सी थीं । वे कम खाते थे और क्या खाते हैं उसकी परवाह नहीं करते थे । वे कम सोते थे और कामकी बढ़ती हुई मात्राको स्वयं ही निबटानेके लिए यंत्रकी भांति सतत काम करते रहते थे। उनका तर्क यह था कि ऐसा किये बिना सचिवोंकी सहायता न लेनेका कोई अर्थ नहीं रह जाता। सचमुच स्वास्थ्यको गंभीर हानि पहुंचाये बिना इस तनावके सामने टिके रहनेकी अपनी शक्तिको वे अपनी

अनासक्ति और ईश्वर-विषयक श्रद्धाका प्रमाण मानते थे। "जो प्रभुकी सेवा करेंगे उनमें नई शक्ति आ जायगी: उन्हें . . . थकावट नहीं लगेगी; उन्हें मूर्च्छा . . . नहीं आयेगी ।" गांधीजीका तत्त्वज्ञान यह था कि हम कामसे नहीं मरते, बल्कि समता अथवा अनासक्तिके अभावसे हमारे भीतर उत्पन्न होनेवाली अशांति और तनावके कारण मरते हैं। जिस व्यक्तिने अपनी इन्द्रियोंका पूरा संयम साध लिया है और वह निर्विकार अवस्था प्राप्त कर ली है, जो ईश्वरमें सजीव श्रद्धा रखने और अपने अन्तरसे "प्रेमके सिवा और सबको" निकाल देनेसे आती है, उसे कोई थकान नहीं होगी और उस आदर्श यंत्रकी तरह—जिसमें से सब प्रकारका धर्षण दूर कर दिया गया है—उसकी कोई घिसाई नहीं होगी। "जब मनुष्य सृष्टिके साथ एकरूप हो जाता है तब वह प्राणिमात्रकी सेवामें रत हो जाता है। वह सेवा ही उसका आनन्द और वही उसका मनोरंजन बन जाती है। भगवानकी सृष्टिकी सेवा करते हुए उसे . . . कभी थकावट नहीं होती।" [यंग इंडिया, २० दिसम्बर १९२८, पृ० ४२०]

गांधीजी दिनोंदिन अधिक निश्चित बनते गये और दूसरोंसे भी निश्चितताका पालन कराने लगे। उन्होंने अपनेको और अपने साथियोंके छोटेसे परिवारको अपनी आध्यात्मिक प्रयोगशालामें अनुसंधानका साधन बना लिया और अपने आसपासके नैतिक वायुमंडलमें होनेवाले अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तनोंको भी समझ लेनेकी असामान्य मानसिक शक्तिका विकास कर लिया। गुप्त असत्य या अशुद्धिका संकेत भी उन्हें तपे हुए लाल लाल लोहेकी तरह जलाने लगा। अपने साथियोंके असत्य, कर्तव्य-विमुखता या अपूर्णताको वे अपनी ही त्रुटि मानते थे। मनु गांधीके आ जानेके बादसे तो शिविरमें तूफान ही आ गया था। (देखिये अध्याय-११) उनकी जगह और कोई होता तो उसे तुच्छ वस्तु कहकर टाल देता या बहुत मामूली-सी तरकीबसे उसे दबा देता। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कोई चीज उनके ध्यानसे बचती नहीं थी, किसी बातको वे दरगुजर नहीं करते थे। युक्लिडकी सीधी रेखासे वे खुद या उनके साथी जरा भी हटते, तो अविरत शोध करके उसका मूल कारण खोजे बिना वे नहीं रहते थे। एक दिन उन्होंने अपने एक साथीका चेहरा बदला हुआ देखा और अपनी डायरीमें उसका उल्लेख किया। दूसरे दिन उस भाईने उन्हें एक पत्र लिखा। वह उनसे विदा लेनेकी भूमिका थी। कुछ दिन बाद वही कार्यकर्ता उनसे कहे बिना

शिविरसे चम्पत हो गया। उसने सोचा कि इतनी छोटी बातमें उन्हें क्यों कष्ट दिया जाय। परन्तु गांधीजीने इसे बहुत गंभीर बात मानी और बादमें बोले कि इससे मुझे क्षणभरमें पता लग गया कि मेरे आसपास किस तरहकी बातें चल रही हैं। एक विश्वस्त साथीने दूसरे साथीसे एक बात कही। बादमें गांधीजीने उससे इस सम्बन्धमें पूछा तो उसने इनकार कर दिया। गांधीजीको इससे गहरी वेदना हुई। एक और अवसर पर उन्हें क्रोध आ गया। इससे वे तब तक बेचेन रहे जब तक उन्होंने शामकी प्रार्थना-सभामें अपनी भूल और "नितान्त अयोग्यता" स्वीकार नहीं कर ली। उस रातको वे ३-१५ बजे उठ गये और प्रार्थनाके समय तक काम करते रहे। उस दिनकी उनकी डायरीमें यह लिखा हुआ है: "मेरे सामने जो ढेरों समस्याएं हैं, उन्हें मैं कैसे निबटाऊंगा? मेरे चारों ओर आग धधक रही है। . . . ईश्वरकी कृपा है कि आज मेरा मौन दिवस है।" [गांधीजीकी डायरी, २३ दिसम्बर १९४६] इसके बाद नंदीग्रामके शरणार्थियोंको उन्होंने जो सलाह दी थी उसका उल्लेख है: "उनसे मैंने कहा कि शरणार्थी-छावनीके व्यवहारके विरोधमें भूख-हड़ताल न छेड़ें और अधिकारियोंके सामने प्रयत्न करनेका मुझे मौका दें।" डायरीमें आगे लिखा है: अब्दुल्ला (पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट) मुझे दो छपे हुए विज्ञापन दे गये, (जो गांधीजीके मिशनके विरोधी मुस्लिम वर्गकी तरफसे छापे गये थे।) उनमें मुझे नोआखालीसे बाहर निकाल देनेकी मांग की गई थी।" इसके बाद दूसरी बातें हैं। उनसे गांधीजीका वही घड़ी-घड़ी और पल-पलक चलनेवाला आत्मपरीक्षण और आत्म-ताड़ना प्रगट होती है। उनमें से कुछ बातें ये हैं:

१३ दिसम्बर, १९४६

> बी. को लिखा कि अस्पृश्यता-निवारणका काम केंचुएकी चालसे हो रहा है। . . . जो कार्यकर्ता इस महान कार्यको करना चाहता है, उसे मूर्तिमन्त कर्तव्य बन जाना चाहिये। . . .
>
> "शामके भोजनमें एक खाखरा, जो दो तोला जौके आटेका था, लिया . . . बादमें थोड़ासा गुड़ लिया । इससे भूख मिट गई।

१४ दिसम्बर, १९४६

रातमें २॥ बजे उठ गया। खुजली पर गंधकका मरहम लगाया। फिर रामनाम लेकर सो गया।

१५ दिसम्बर, १९४६

“न्यायमूर्ति डी. और उनकी पत्नी मिलने आये। उनसे कहा कि सर्वस्वका त्याग किये बिना नोआखालीमें काम करना असंभव है।

१६ दिसम्बर, १९४६

एस. और उनके मित्र नोआखालीमें मेरे साथ काम करनेकी इच्छासे आये हैं। उनसे कहा कि जब तक मैं स्वयं अंधकारसे घिरा हुआ हूं तब तक यह संभव नहीं । वे जाकर पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट अब्दुल्लाको अपने आगमनकी खबर दें। मेरे पास उनके लिए न तो जगह है, न कोई सुविधा ।

२१ दिसम्बर, १९४६

प्रातःकालीन प्रार्थनाके बाद प्रार्थना-प्रवचनोंकी रिपोर्टोंको जांचने-सुधारनेका काम किया । तब तक सुबहकी सैरका समय हो गया । मामूलीसे दुगुनी दूर चला । ४० मिनट लगे; किन्तु थकान मालूम नहीं हुई। . . . दोपहरका खाना खाते समय सुहरावर्दीको पत्र लिखवाया। बिड़लाका आदमी कलकत्तेसे कुछ फल लाया। उसे समय देना पड़ा । इससे कातनेके लिए बहुत थोड़ा समय बचा। इस कारण अतिशय दुःख हुआ।

२२ दिसम्बर, १९४६

१।। बजे रातको जाग गया। प्रार्थनाके समय तक काम किया।

२६ दिसम्बर, १९४६

सब कुछ उलटा चलता दीख रहा है । चारों ओर झूठ ही झूठ है।

१ जनवरी, १९४७

१२ बजे रातको जाग गया। मनुसे एक घंटे बातें कीं। ३। से प्रार्थनाके समय तक चिट्ठियां लिखीं और बंगालीका अभ्यास किया। सुबह ६। बजे सो गया और चार-पांच मिनटकी बहुत मीठी झपकी ली। उसके बाद बहुत ताजा हो कर उठा। . . . और पत्र लिखे। . . . पत्र लिखाते लिखाते फिर आंख लग गई।

२ जनवरी, १९४७

रात २ बजेसे जाग रहा हूं। ईश्वरकी दया ही मुझे टिकाये हुए है। मैं देख सकता हूं कि मुझमें कहीं न कहीं कोई गंभीर दोष है, जो इन सब बातोंका कारण है । मेरे चारों ओर घोर अंधकार है। ईश्वर मुझे इस अंधकारसे निकाल कर अपने प्रकाशमें कब लेगा ?

उन्होंने अपनी जागरूकता दुगुनी कर दी । वे अज्ञात समुद्रमें नाव चला रहे थे और मानो घड़ी-घड़ीमें उसकी गहराईको नाप रहे थे। लोग आकर उनसे पूछते थे, हम आपकी क्या सहायता कर सकते हैं? गांधीजी उनसे कहते थे, मैं कोई सलाह नहीं दे सकता, क्योंकि मैं स्वयं अंधेरेमें मार्ग खोज रहा हूं। मुझे ऐसा लगता है कि मैं अकेला ही यहां आता तो शायद मेरे मिशनके लिए ज्यादा अच्छा होता । तब मेरे विरुद्ध की गई अज्ञानपूर्ण आलोचनासे मैं बहुत-कुछ बच जाता। मुझे पूरी तरह अपने आपको ईश्वरके हाथोंमें सौंप देनेके लिए अकेला रहनेकी ही जरूरत है । इसलिए मेरा सुझाव है कि लोगोंको मेरे मिशनमें सहायक होनेके बारेमें कुछ पूछनेके लिए मेरे पास नहीं आना चाहिये, पथ-प्रदर्शनके लिए तो मुझ पर निर्भर रहना ही नहीं चाहिये । इसके सिवा, किसी भी आलोचनाकी गुंजाइश न रखनेके लिए जो लोग नोआखालीमें काम करनेको बहुत उत्सुक हैं उन सबको लीगके मंत्रि-मंडलसे लिखित अनुमति प्राप्त कर लेनी चाहिये, उसके सामने अपनी योजनाएं रख देनी चाहिये और मंत्री स्वीकार करें तभी काम शुरू करके उनके आदेशोंकी चारदीवारीके भीतर ही रहना चाहिये। यह सुझाव मैं इसलिए दे रहा हूं कि मुस्लिम लीग मुझे अपना दुश्मन समझती है । अगर लोग मेरी मदद करनेको आयंगे तो उन पर सन्देह किया जायगा और यह समझा जायगा कि लीगकी शक्तिको नष्ट करनेके लिए मैंने उन्हें बाहरसे

बुलाया है। मैंने सबको स्पष्ट कर दिया है कि बंगालमें मुस्लिम लीगके राज्यको चुनौती देने अथवा किसी भी तरह बंगालके लीगी मंत्रि-मंडलको कमजोर बनानेका मेरा कोई इरादा नहीं है। मैं अपने जीवनकी सबसे गंभीर जिम्मेदारी लेकर नोआखाली आया हूं। यही मुस्लिम समुदाय है जो किसी समय मेरा दोस्त था । परन्तु अब वह मुझे अपना कट्टर दुश्मन समझता है। मैं अपने कामोंसे यह साबित कर देना चाहता हूं कि मैं उनका दुश्मन नहीं, दोस्त हूं। "इसीलिए मैंनें नोआखालीको अपने जीवनके सबसे गंभीर प्रयोगका केन्द्र चुना है, जहां मुसलमानोंका निर्णायक बहुमत हैं। अभी तक मैं स्वयं नहीं जानता कि अपने हेतुकी सचाईका विश्वास मैं मुसलमानोंको कैसे करा सकता हूं । इसलिए मैं इस स्थितिमें नहीं हूं कि दूसरोंकी प्रवृत्तियोंका संचालन करूं । अंधा लंगड़ेको रास्ता नहीं बता सकता।" [प्रार्थना-प्रवचन, २६ दिसम्बर १९४६] उन्होंने इशारा किया कि निकट भविष्यमें उनके लिए ईश्वरको ही अपना "एकमात्र अदृश्य साथी" बनाकर "मार्ग ग्रहण करने" की जरूरत हो सकती है।

गांधीजीके वक्तव्योंसे उनके मित्रों और साथियोंको गहरी चिन्ता हुई । गांधीजीके नोआखालीमें अनिश्चित कालके लिए डेरा जमानेके निश्चयसे वे चिन्तित थे। गांधीजी जितने ही साहसपूर्वक आगे बढ़ते थे उतना ही तूफानका खतरा बढ़ता जाता था। भारतके भाग्यका निर्णय दिल्लीमें किया जा रहा था। वे लोग समझते थे कि गांधीजी जो कुछ कर रहे हैं वह ऐसा ही है जैसे जंगलकी पत्तियोंकी खड़खड़ाहटको रोक कर तूफान शान्त करनेका प्रयत्न होता है। नोआखाली तो केवल एक रोगका बाह्य लक्षण है । रोगको जड़से मिटानेकी जरूरत है। इसलिए अब गांधीजीको लौट आना चाहिये। उनके नोआखालीमें ठहरनेसे जो भी भलाई हो सकती थी वह हो चुकी है। उनके अधिक वहां ठहरनेसे मुस्लिम लीग उत्तेजित ही होगी ।

परन्तु गांधीजी कुछ दूसरी ही दृष्टिसे सोचते थे। जहां तक मुस्लिम लीगका सम्बन्ध था, उनके सामने एक अभेद्य दीवाल खड़ी हो गई थी। राजनीतिक स्तर पर वे अपने सिद्धान्तोंको तिलांजलि देनेके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते थे। परन्तु नोआखालीमें हिन्दू और मुस्लिम जनतामें काफी काम करनेके लिए था। दोनोंकी आवश्यकताएं एकसी ही थीं। दोनोंकी कठिनाइयां और समस्याएं भी एकसी थीं और उनका हल भी एकसा हो सकता था । गांधीजी

कहते थे कि मैं उनके बीचमें जाकर रहूंगा, उनके साथ एकरूप हो जाऊंगा, उनके सुख-दु:खमें भाग लूंगा और उन्हें मेरे जीवनका भागीदार बनाऊंगा। मैं उन्हें अज्ञान, दरिद्रता और रोग पर विजय प्राप्त करना सिखाऊंगा और एक ही ईश्वरमें श्रद्धा रखने और उसकी उपासना करनेकी भावना उनमें उत्पन्न करूंगा, क्योंकि हिन्दू और मुसलमान दोनोंके लिए ईश्वर एक ही है । जब मैं इस प्रकार उनके हृदयोंमें प्रवेश कर लूंगा और उन्हें अपने हृदयमें प्रवेश करने दूंगा, तब शायद वह समय आयेगा जब वातावरण बदलेगा और जहां पहले कटुता फैली हुई थी वहां हिन्दुओं और मुसलमानोंमें मधुरताका साम्राज्य होगा । तब मुसलमान समझेंगे कि मैं और मेरा उद्देश्य एक ही हैं और मेरे तथा उनके बीचमें जो मतभेद है उसका डंक मिट जायगा। 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडें' इस न्यायसे यदि भारतके किसी भी कोनेमें **सच्ची** शान्ति स्थापित की जा सके, तो वह सारे देशमें ही नहीं, शायद सारे जगतमें फैल जायगी।

नोआखालीके लिए प्रस्थान करनेसे पहले उन्होंने कहा था, "संसारमें जहां कहीं सत्य और अहिंसाका साम्राज्य है वहीं शान्ति और आनन्द है।" [हरिजन, २९ सितम्बर १९४६, पृ० ३३२] नोआखालीके उदाहरणमें इस जादूने काम क्यों नहीं किया, इसका कारण शायद यह था कि गांधीजीके आदर्श और व्यवहारमें जो अन्तर था वह कहीं न कहीं उनके और सत्यके बीचमें बाधक हो जाता होगा और उससे उनकी अहिंसा अथवा आत्मबलका कार्य रुक जाता होगा। यह किसी हद तक अनिवार्य है। जब तक शरीर है तब तक इस अन्तरको सर्वथा मिटा देना मनुष्यकी सामर्थ्यके बाहर है । परन्तु सतत प्रयत्नसे यह बाधा धीरे धीरे क्षीण की जा सकती है। एक बार जब संकटकी सीमा पार कर ली जाती है तब सारा तूफान खतम हो जाता है, बाधा नष्ट कर दी जाती है और उसमें से ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है जिसकी कोई सीमा नहीं होती और जिसके सामने सारा द्वेष और सन्देह ऐसे विलीन हो जाते हैं जैसे उगते हुए सूर्यके सामने प्रातःकालका कोहरा ।

मित्र लोग यह तर्क करनेका प्रयत्न करते थे: हमें दूरसे आपकी नोआखालीकी कार्य-योजनामें से प्रकाश छनकर आता दिखाई दे रहा है। इस बातका पर्याप्त प्रमाण है कि उपद्रव-पीड़ित लोगोंमें फिरसे धीरे धीरे विश्वास आ रहा है । गांधीजी इसका उत्तर देते थे: परन्तु आपने

मेरा दृष्टिबिन्दु समझा नहीं । मेरे अन्धकारका कारण बाहर नहीं, मेरे भीतर है । हमारे पास पतंजलिके योगसूत्रका प्रमाण है कि जब किसी व्यक्तिमें अहिंसा पूर्णतः प्रतिष्ठित हो जाती है तो उसके आसपास वैरभाव और बुराईकी शक्तियां पूरी तरह नष्ट हो जाती हैं । जंगली जानवर उसके सामने अपनी स्वाभाविक शत्रुताको भूल कर मित्र बन जाते हैं। सिंह, बिच्छू और सांप जैसे भयंकर प्राणी भी अपनी भयंकरताको छोड़ कर निर्दोष बन जाते हैं। नोआखालीमें वह स्थिति अभी तक नहीं आई है। और इससे मैं यह निष्कर्ष निकालता कि मेरी अहिंसाकी साधनामें कोई न कोई कमी है। इसीलिए मैं कहता कि मेरे चारों ओर अभी तक केवल अन्धकार ही अन्धकार है।

गांधीजीने कहा, "मेरे लिए यह बिलकुल स्पष्ट है कि मेरी बातका बहुत कम असर होता है। अविश्वास इतना गहरा जम गया है कि समझानेसे वह मिट नहीं सकता।" ज्यों ही चावलके खेतोंमें पानी सूख जायगा और मेरा प्रबन्ध पूरा हो जायगा, त्यों ही मैं एक गांवसे दूसरे गांवकी पैदल यात्राके लिए रवाना हो जाऊंगा और सद्भाव तथा शान्तिका सन्देश घर चर पहुंचाऊंगा । जिस गांवसे मैं रवाना होऊंगा उसमें वापस नहीं आऊंगा। यात्राके समयकी कोई मर्यादा नहीं होगी। मैं ग्रामजनोंके जीवनमें भाग लूंगा और उनके साथ एकरूप हो जाऊंगा । अपनी इस यात्रामें मैं यथासंभव बहुत थोड़े साथियोंको रखूंगा और मुसलमान भाइयोंके घरोंमें ठहरना मैं ज्यादा पसन्द करूंगा । मैं किसी भी प्रकारके रक्षणके बिना यात्रा करना चाहूंगा, ताकि हर कोई देख ले कि मेरे हृदयमें मुसलमानोंके लिए प्रेम और मित्र- भावके सिवा दूसरा कुछ नहीं है।

इस आयुमें और नोआखालीकी वर्तमान परिस्थितियोंमें ऐसा साहस करके गांधीजी क्या गंभीर खतरा नहीं उठा रहे थे? अगर कोई पागल होश खो दे और गांधीजीको कोई चोट पहुंचा दे, तब तो वह मिशन ही खतरेमें पड़ जायगा जिसके लिए वे निकल रहे थे। परन्तु यह बात उनके गले नहीं उतरी। उन्होंने कहा, ईश्वरका मार्ग कायरों और कमजोर दिलवालोंके लिए नहीं है। मेरा शरीर कांपने लगा है और मेरी प्रस्तावित यात्रामें मुझे कठिन पुलोंको पार करना पड़ सकता है । परन्तु यदि ईश्वरका आदेश शारीरिक खतरोंका सामना करनेका हो और मैं हिचकिचाऊं, तो ईश्वर मुझे क्षमा नहीं करेगा। इसलिए मेरे सामने मार्गके खतरोंका सामना करनेके सिवा और

कोई विकल्प बाकी नहीं रह गया है। अनेक लोगोंके ऐसे उदाहरण हैं, जिनके चारों ओर हजारों सहायकोंके होते हुए भी उनकी रक्षा नहीं हो सकी; और ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध सांसारिक सहायता निकम्मी साबित हुई। इससे उल्टी बात और भी ज्यादा सच है। ईश्वर बड़ेसे बड़े बलवानोंसे भी अधिक बलवान है; उसीकी शरणमें सच्ची सुरक्षितता है। परन्तु ईश्वरके एकाकी मार्ग पर चलनेके लिए बलवान हृदय चाहिये।

तो वे अपने स्वास्थ्यके लिए बार-बार जो खतरा मोल ले रहे थे और न आजमाई हुई तथा प्राकृतिक रूपमें उपलब्ध खुराकका अभ्यास कर रहे थे, उसका रहस्य यह था । इसीलिए वे कठोर पैदल यात्राकी आदत डालनेके लिए अपनी सैरकी लम्बाई दिनोंदिन बढ़ा रहे थे, रातमें अटपटे समय अपने बंगाली पाठ तैयार करते थे और ७८ वर्षकी आयुमें एक ही शहतीरके हिलते हुए चिकने पुलोंको बिना किसीकी मददके पार करनेका खतरनाक अभ्यास कर रहे थे; और इसमें इतनी लगन और आग्रहका परिचय दे रहे थे, जिसे समझना लोगोंके लिए कठिन था।

वे अपना आरंभ किया हुआ काम अत्यन्त गंभीरतासे कर रहे थे। मान लीजिये कि अपने मिशनके लिए आगे बढ़ते हुए अन्तमें वे अकेले ही रह जायं, तो वे हार मान कर क्या इसीलिए लौट आयंगे कि वे बिना किसीकी सहायताके हिलते हुए शंको (पुल) को पार नहीं कर सकते अथवा उन्हें भाषाकी कठिनाईका सामना करना पड़ता है? नहीं, उनमें न केवल साहसका होना जरूरी है, बल्कि जरूरत पड़ने पर अकेले ही चलनेकी शक्ति भी होनी चाहिये।

एक बार उन्होंने सत्याग्रही सैनिकके लिए ये योग्यताएं और प्रशिक्षण आवश्यक बताया था:

> यदि सत्याग्रही मन और शरीरसे स्वस्थ न हो, तो शायद वह पूरी निर्भयता नहीं दिखा सकता। उसमें दिन-रात एक ही जगह खड़े रहकर पहरा देनेकी क्षमता होनी चाहिये। सर्दी, गर्मी और बरसात सहन करनी पड़े, तो भी उसे बीमार नहीं पड़ना चाहिये । उसमें खतरेकी जगहों पर जानेका, आगके स्थानोंमें दौड़ पड़नेका और सुनसान जंगलों और स्मशानोंमें अकेले घूमनेका साहस होना चाहिये। वह शिकायत किये बिना सख्त

पिटाई, भूख और उससे भी बुरी बातें सहन कर लेगा और अचल बनकर अपने कर्तव्य-स्थल पर डटा रहेगा। अभेद्य दिखाई देनेवाले दंगेके स्थानोंमें भी कूद पड़नेकी सूझ और क्षमता उसमें होगी । आग लगने पर ऊपरकी मंजिलोंमें रहनेवाले लोगोंको बचानेके लिए मगवानका नाम लेकर दौड़ पड़नेकी इच्छा और शक्ति उसमें होगी । बाढ़में बहते हुए लोगोंको बचानेके लिए पानीमें कूद पड़नेकी और डूबते हुए लोगोंको बचानेके लिए कुएंमें कूद जानेकी निर्भयता उसमें होगी। [हरिजन, १३ अक्तूबर १९४०, पू० ३१९]

पिछले सारे सप्ताहोंमें इसी उद्देश्यसे गांधीजी अपनेको तैयार कर रहे थे। उनका अन्तिम विचार यह मालूम होता था कि ज्यों ही बंगाली काफी सीख ली जाय, त्यों ही वे अपना बंगाली दुभाषिया भी हटा दें और समुद्रमें बूंदकी तरह चारों ओरके मानव-समुद्रमें लीन हो जायं। वे गांव गांव और घर घर जाना चाहते थे और चाहते थे कि उनका काम और उनकी ईमानदारी ही उनकी ओरसे बोले । एक पत्रमें मीराबहनको उन्होंने लिखा: “यदि मैं पूरो तरह शून्य बन जानेमें सफल हो जाऊं, तो ईश्वर मुझमें आ बसेगा। फिर तो . . . सब कुछ ठीक हो जायगा; परन्तु यह गम्भीर प्रश्न है कि मैं शुन्यवत् कब बनूंगा।” [गांधीजीका पत्र मीराबहनको, ४ जनवरी १९४७]

३

शान्त और अब तक अर्धत्यक्त रहनेवाला छोटासा श्रीरामपुर गांव एक रातमें बिककुल बदल गया और अगले कुछ दिनोंके लिए उसने एक मेलेका रूप ग्रहण कर लिया, जब दिसम्बर १९४६ के अन्तिम सप्ताहमें पंडित नेहरू और उनके साथ कांग्रेसके अध्यक्ष आचार्य कृपलानी तथा कुछ दूसरे कांग्रेसी नेता गांधीजीसे मिलनेके लिए वहां आ पहुंचे ।

यह मंडली लगभग आधी रातको श्रीरामपुर पहुंची । गांधीजी तब तक दो घंटोंकी नींद ले चुके थे । मेहमानोंमें से कुछ लोग सोनेको तैयार हुए तब तक गांधीजी जाग गये थे। उस समय रातके २॥ बजे थे। उठते ही उन्होंने नये दिनका काम आरम्भ कर दिया । जीवनकी छोटीसे छोटी सुख-सुविधाओंके सम्बन्धमें भी अपनी विशिष्ट सूक्ष्म दृष्टिसे, जिसका त्याग वे कठिनसे कठिन परीक्षा करनेवाली परिस्थितियोंमें भी नहीं करते थे, उन्होंने मेहमानोंके रहने और उनकी

सुख-सुविधाओंके लिए की जानेवाली व्यवस्थाके बारेमें विस्तृत सूचनायें दे रखी थीं। जहां कहीं वे जाते थे वहां व्यक्तिगत दैनिक उपयोगकी कुछ आवश्यक चीजें अपने साथ ले जाया करते थे—जैसे हाथ-मुंह धोनेका बरतन, कमोड वगैरा—ताकि उनके यजमानोंको उनकी वजहसे कोई असुविधा न हो। ये सब चीजें गांधीजीने पंडित नेहरूकी कुटियामें भिजवा दी थीं, ताकि उनका जीवन कुछ अधिक आरामवाला बन जाय । लेकिन जब नेहरूजीने यह बात जानी तो उन्होंने एक भी बात नहीं सुनी और अपने लिए गांधीजीको होनेवाली असुविधाके लिए बेचारी मनुको खूब डांटा।

मनुने विरोधमें कहा: "बापूने हुक्म दिया था; मैं क्या कर सकती थी?"

कठोरताका दिखावा करते हुए पंडित नेहरूने उत्तरमें कहा: "तब तुम्हें उनका हुक्म नहीं मानना चाहिये था।" मनु अभी परेशानीमें ही पड़ी हुई थी कि उन्होंने आगे कहा: "तुम उनसे कहना कि जवाहरलालने मना कर दिया है | बापू तुम्हें मार डालें तो भी तुम्हें उनके ऐसे हुक्म नहीं मानने चाहिये।"

"लेकिन घबराना मत, बापू तुम्हें नहीं मारेंगे !" भयभीत बनी हुई लड़कीको स्वस्थ करनेके लिए आंखोंके आनन्दजनक इशारे और प्रेमल हास्यके साथ पंडित नेहरूने कहा।

दूसरे दिन सुबह जब गांधीजीसे यह बात मनुने कही तो वे बोले: "जवाहर ऐसा ही है। अब वह ये चीजें काममें नहीं लेगा । तू इन्हें रख दे।" और इसके बाद हाथ-मुंह धोनेका बरतन, कमोड और कुछ दूसरी छोटी छोटी चीजें उपयोगमें लिये बिना ही वापिस आ गईं और गांधीजीके कामचलाऊ छोटेसे बाथरूममें फिरसे रख दी गईं।

दिल्लीसे आये हुए मेहमान जब तक रहे तब तक आसपासके गांवोंसे हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके उत्सुक दल उस स्थानको घेरे रहते थे। वे पुलिसका कॉर्डन भी तोड़ देते थे और गांधीजीके प्रार्थना-पंडालमें भी घुस जाते थे।

पंडित नेहरूने विनोदमें गांधीजीसे कहा: "तो यह आपकी एकाकी यात्रा है !"

उन्मुक्त हास्य बिखेरते हुए गांधीजी बोले: "तुम भूल जाते हो कि मैं महात्मा भी हुं !"

इसके बाद दोनों कामकी बातोंमें पड़े । पंडित नेहरूने गांधीजीको बताया कि उनके (गांधीजीके) दिल्ली छोड़नेके बाद कांग्रेस और लीगके बीचकी खाई कैसे बढ़ती रही; लीग अंतरिम सरकारमें अपनी रुकावटें खड़ी करनेवाली कार्य-पद्धतिसे नमक-कर रद करनेकी घोषणाको—यह बात लीगके अंतरिम सरकारमें आनेसे पहले तय हो चुकी थी—आगामी बजट अधिवेशन तक कैसे टालती रही; लीगकी इस कार्य-पद्धतिसे किस प्रकार मंत्रि-मंडलमें लगभग गतिरोधकी स्थिति खड़ी हो गई और किस प्रकार अंतरिम सरकारके कांग्रेसी सदस्योंको उन्हें त्यागपत्रकी नोटिस देनी पड़ी; दूसरी ओर लॉर्ड वेवेल किस तरह इस गतिरोधका उपयोग मुस्लिम लीगको अधिक छूटछाट देनेके लिए और कांग्रेसको प्रान्तोंमें भी मिश्र मंत्रि-मंडल बनाने, अथवा दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो प्रत्येक कांग्रेस प्रान्तके मंत्रि-मंडलमें एक "राजाका पक्ष" स्थापित करनेकी बात कहनेके लिए तर्कके रूपमें करते थे। गांधीजीने अपनी ओरसे पंडित नेहरूको अहिंसाकी वह कार्य-पद्धति समझाई, जिसका प्रयोग वे नोआखालीमें कर रहे थे । उन्होंने कहा कि आजाद हिन्द फौजके लोग अपनी सेवायें देनेके लिए मेरे पास आये थे । परन्तु मैंने यह आग्रह किया कि पहले उन्हें नोआखालीमें कार्य करनेके लिए बंगालके मुख्यमंत्रीकी लिखित इजाजत लेनी चाहिये।

पंडित नेहरूने कहा: "आपकी यह बात बिलकुल ठीक है । वर्ना वे लोग शायद यह सोचें कि आप बाहरसे सिक्खोंको नोआखालीमें लाकर उन्हें दबा देना चाहते हैं।"

गांधीजीने आगे कहा: "मेरा दृष्टिकोण यह है कि अगर वे इजाजत देते हैं तो भी हमें लाभ है और नहीं देते तो भी हमें लाभ है । जो भी हो, मैं कभी लीगके साथ धोखा नहीं करूंगा अथवा असत्यका आचरण नहीं करूंगा।"

नेहरूजी बोले: "मैं आपके साथ पूरी तरह सहमत हूं; परन्तु आज हममें से यहां कितने लोग आपके कड़े नियमका पालन करनेके लिए तैयार हैं?"

गांधीजीने उत्तर दिया: “यह इस बातका और भी बड़ा कारण हो जाता है कि मुझे ऐसा क्यों करना चाहिये।”

गांधीजी लगभग दो माहसे दिल्लीके बाहर रहे थे । उनके दिल्ली छोड़नेके बादसे केन्द्रमें अंतरिम सरकारका कामकाज अच्छी तरह नहीं चल रहा था। संकट निकट आता दिखाई दे रहा था।

संविधान-सभाकी बैठक ९ दिसम्बरको हुई थी और “उद्देश्यों सम्बन्धी प्रस्ताव” की सामान्य चर्चाके बाद उसकी बैठक स्थगित कर दी गई थी, जिससे मुस्लिम लीगके प्रवेशके लिए यथासंभव अधिकसे अधिक सरलता और अनुकूलता पैदा की जा सके । परन्तु मुस्लिम लीगने संविधान-सभाका बहिष्कार करनेका अपना पिछला निर्णय बदला नहीं था। और लॉर्ड वेवेलने, जो मुस्लिम लीगको इस मौखिक वचनके आधार पर अंतरिम सरकारमें लाये थे कि वह सहयोग करनेके इरादेसे अंतरिम सरकारमें आ रही है और वह संविधान-सभामें सम्मिलित होगी, उस समय रहस्यमय मौन धारण कर लिया जब जिन्नाने इस बातसे इनकार कर दिया कि उन्होंने ऐसा कोई लिखित या मौखिक वचन दिया था।

कैबिनेट-मिशन और कांग्रेसके बीच समूह-रचना (ग्रूपिंग) सम्बन्धी धाराओंके अर्थ करनेके बारेमें गतिरोध मिटा नहीं था। कांग्रेसने यह प्रस्ताव रखा था कि मामला संघ-न्यायालय (फेडरल कोर्ट) के सामने रख दिया जाय और उसके निर्णयको स्वीकार किया जाय । परन्तु मुस्लिम लीग इसे स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हुई। जिन्नाने कहा, मामला “न्यायालयके निर्णयके योग्य” नहीं है और लीगके संविधान-सभामें शरीक होनेके लिए पहली शर्त यह है कि कांग्रेस समूह-रचना संबंधी धाराओंका कैबिनेट-मिशन द्वारा किया हुआ अर्थ “असंदिग्ध रूपमें स्वीकार करे”। दूसरी ओर, कांग्रेसकी मांग यह थी कि चूंकि मुस्लिम लीग इस स्पष्ट मान्यताके आधार पर अन्तरिम सरकारमें आई है कि उसने १६ मई, १९४६ का कैबिनेट-मिशनका वक्तव्य स्वीकार कर लिया है (सच तो यह है कि अन्यथा वह अन्तरिम सरकारमें आ ही नहीं सकती थी)

और संविधान-सभामें सहयोग देनेके इरादेसे ही वह अन्तरिम सरकारमें शामिल होगी, इसलिए लीगको या तो उस वचनको पूरा करना चाहिये या अन्तरिम सरकारसे निकल जाना चाहिये।

दोनों महान दलोंमें समझौता करानेके लिए सम्राट्की सरकारने वाइसरॉयको और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगके नेताओंको परामर्शके लिए लन्दन आनेका निमंत्रण दिया। कांग्रेसकी यह निमंत्रण स्वीकार करनेकी इच्छा नहीं थी। पंडित नेहरूने २६ नवम्बरको लॉर्ड वेवेलको लिखा, "हम नियत की हुई तारीख अर्थात् ९ दिसम्बरको संविधान-सभाका अधिवेशन करनेकी बातको बहुत महत्त्व देते हैं। लन्दन आनेके निमंत्रणसे हमें ऐसा लगता है कि सारी समस्या फिरसे वहां विचारी जायगी, यद्यपि वह समस्या कैबिनेट-मिशनके वक्तव्यसे बहुत-कुछ निबट गई है । . . . इस कार्यको और अधिक स्थगित करनेका परिणाम . . . होगा . . . योजनाका परित्याग करना।" परन्तु ब्रिटिश प्रधानमंत्रीने पंडित नेहरूको विश्वास दिलाया कि न तो संविधान-सभाके अधिवेशनके निर्णयका और न कैबिनेट-मिशन द्वारा पेश की हुई योजनाका परित्याग करनेका हमारा कोई इरादा है। और "इस पर पूरा अमल किया जाय यह देखनेकी" [श्री एटलीका तार पंडित नेहरूको, २७ नवम्बर १९४६] हमारी इच्छा है। साथ ही जिन्नाको, जिन्होंने प्रस्तावित सम्मेलनमें तब तक उपस्थित रहनेसे इनकार कर दिया "जब तक संपूर्ण परिस्थितिकी चर्चा करनेकी उन्हें छूट न मिले," यह विश्वास दिलाया गया कि "सम्मेलनमें सारे दृष्टिकोणों पर पूरा विचार करनेमें बाधक बने ऐसी कोई बात इसमें नहीं है।" [श्री एटलीका तार जिन्नाको, ३० नवम्बर १९४६]

सरदार पटेल लंदन जानेके विरुद्ध थे। परन्तु जब ब्रिटिश प्रधानमंत्रीने बार-बार आग्रह किया, तो कांग्रेसके प्रमुख नेताओंको ऐसा लगा कि निमंत्रणको अस्वीकार कर देना अनुचित होगा। "भले उसका कोई परिणाम न निकले, परन्तु उससे कोई हानि भी नहीं होगी।" [राजाजीका पत्र गांधीजीको, ३ दिसम्बर १९४६] और इसलिए पंडित नेहरू लंदन गये।

बातचीत असफल रही । सारी बाजीका रहस्य ६ दिसम्बरको खुला जब ब्रिटिश सरकारने एक "राज्य-कानून" के द्वारा समूह-रचनाकी धाराके अर्थके बारेमें चल रहे विवादका अन्त कर

दिया। पार्लियामेन्टके दोनों सदनोंमें यह घोषणा की गई कि सम्राट्की सरकारको मिली हुई कानूनी सलाह इस बातकी पुष्टि करती है कि १६ मईके वक्तव्यका वही अर्थ है जो उसने हमेशा अपने आशयके बारेमें बताया था, अर्थात् यह कि विभागोंमें मतदान, दूसरा कोई समझौता न होनेकी स्थितिमें, विभागोंके प्रतिनिधियोंके साधारण बहुमतके द्वारा होना चाहिये और वक्तव्यका वह भाग—जिसका ऐसा अर्थ किया गया है—१६ मईकी योजनाका आवश्यक अंग समझा जाना चाहिये । संविधान-सभा चाहे तो इस बातको संघ-न्यायालयके समक्ष रखनेके लिए स्वतंत्र है; परन्तु यदि मुस्लिम लीगको संविधान-सभामें आनेके लिए समझाया न जा सके और लीगके भाग लिये बिना कोई संविधान बना लिया जाय, तो देशके जिन भागोंमें मुस्लिम लीगका बहुमत है वे भाग संविधान-सभाके परिणामोंसे बंधे हुए नहीं माने जा सकते। इसलिए सम्राट्की सरकार इस प्रकार बने हुए संविधानको स्वीकृतिके लिए पार्लियामेन्टके सामने रखनेकी जिम्मेदारी नहीं लेगी, क्योंकि वह "देशके किसी अनिच्छुक भाग पर ऐसा संविधान थोपने" की कल्पना नहीं कर सकती । १२ दिसम्बरको सर स्टैफर्ड क्रिप्सने ब्रिटिश पार्लियामेन्टमें कहा, "इस स्थितिको कांग्रेस हमेशा समझती आ रही थी और उसने बार-बार यह कहा था कि हम देशके अनिच्छुक भागोंको नया संविधान माननेके लिए दबायेंगे नहीं।"

इस सत्यके बावजूद कि ब्रिटिश सरकारने अपने एटर्नी-जनरलका कानूनी मत प्रकट करके मामलेको बिगाड़ दिया था और जिन्नाने पहलेसे ही संघ- न्यायालयके किसी विपरीत निर्णयको माननेसे इनकार कर दिया था, कांग्रेस कार्यसमितिने सम्राट्की सरकारकी घोषणाके अनुसार इस प्रश्नको संघ-न्यायालयके समक्ष रखनेका निर्णय किया। एक बार संविधान-सभाके आरम्भ हो जाने पर उसकी कार्रवाईको किसी एक समूह (ग्रूप) अथवा विभाग (सेक्शन) के उसमें भाग न लेनेके कारण रोका नहीं जा सकता था। और न संविधान-सभा जो संविधान बनाती उसकी यथार्थताके बारेमें कोई प्रश्न उठाया जा सकता था—कमसे कम उन क्षेत्रोंके सम्बन्धमें जिनके प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित थे। परन्तु कांग्रेसेके इस निर्णयके साथ ही १७ दिसम्बरको लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने लॉर्डसभामें इस आशयका एक निवेदन किया कि सम्राट्की सरकार

"संघ-न्यायालयमें अपील की गई तो भी अपने किये हुए अर्थसे कभी नहीं हटेगी।" इससे संघ-न्यायालयमें इस प्रश्नको प्रस्तुत करनेका कोई अर्थ नहीं रह गया।

सरदार पटेल सबसे अधिक दुःखी थे । जब १९४० में सरदार तथा कांग्रेस कार्यसमिति दूसरे महायुद्धमें भाग लेनेके प्रश्न पर गांधीजीसे अलग पड़ गये थे और कांग्रेसके पूना-प्रस्तावको ब्रिटिश सरकारने अस्वीकार कर दिया था, तब सरदारने पश्चात्तापपूर्वक गांधीजीसे कहा था, "हमारे जीवन-कालमें ऐसा फिर कभी नहीं होगा।" दूसरी बार जून, १९४६ में गांधीजीके विरुद्ध जाकर कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा १६ मईकी योजना स्वीकार करवानेमें सरदारको उतनी ही वेदना हुई थी। उस समय गांधीजीकी अंतरात्मा उसे स्वीकार करनेके सर्वथा विरुद्ध थी । और अब ब्रिटिश सरकारके कैबिनेट-मिशनने फिर कांग्रेसकी उपेक्षा की थी। १५ दिसम्बरको सरदारने सर स्टैफर्ड क्रिप्सको एक पत्रमें लिखा:

> जब (लंदन जानेका) निमंत्रण आया तब पहली भावना तो उसे स्वीकार न करनेकी ही हमारे मनमें आई थी । परन्तु प्रधानमंत्रीकी अपीलने और हमारे समुद्री तारके उत्तरमें दिये हुए उनके आश्वासनने पंडित नेहरूके मनमें ऐसा भाव पैदा किया कि निमंत्रणको अस्वीकार करना अशिष्टताकी बात समझी जा सकती है; और वे सद्भाव तथा सहानुभूतिके सन्देशकी पूरी आशाएं लेकर भारतसे गये थे। परन्तु वहांसे वे बुरी तरह निराश होकर लौटे। अब वे अपनी भूल महसूस करते हैं। . . .
>
> आपने लीगके प्रतिनिधि-मंडलको वहां ऐसे समय बुलाया जब कुछ हद तक यह बात समझ ली गयी थी कि हिंसा एक ऐसा खेल है, जिसे दोनों दल खेल सकते हैं। . . . जब समझौतेका ठीक समय आ पहुंचा तब जिन्नाको निमंत्रण मिला और वे फिरसे मुसलमानोंको इसका विश्वास करानेमें समर्थ हुए हैं कि वे उत्पात और हिंसाको जन्म देकर अधिक रियायतें प्राप्त कर सके हैं। . . .
>
> लंदनमें सारी बाजी हमारे विरुद्ध रच ली गई थी। आपने १६ मईके निवेदनका जो अर्थ लगाया है उसका अभिप्राय यह है कि बंगाल . . . आसामका संविधान तैयार कर

सकता है । यह स्तब्ध कर देनेवाली बात है। क्या आप समझते हैं कि ऐसी भयंकर बातको आसाम स्वीकार कर सकता है—खास तौर पर सामूहिक पैमाने पर बलात् किये गये धर्म-परिवर्तन, आगजनी, लूटपाट, स्त्रियों पर किये गये बलात्कार और जबरदस्ती की गई शादियोंके दुःखद अनुभवके बाद ? निवेदनके इस अर्थ पर आपके जोर देनेसे देशमें जो रोष और क्रोध भड़क उठा है, उसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। यदि आप यह समझते हों कि आसामको दबाकर बंगालका प्रभुत्व स्वीकार कराया जा सकता है, तो आप यह भ्रम जितनी जल्दी दूर कर लें उतना ही अच्छा है। . . . यदि वे लोग आसामका संविधान इस ढंगसे बना लें कि जिससे आसामियोंका बाहर निकलना असंभव हो जाय, तो आपके वक्तव्यमें उसका क्या उपाय है?

आप जानते हैं कि गांधीजी ७७ वर्षकी आयुमें अपनी सारी शक्ति पूर्व बंगालके विनष्ट हिन्दू घरोंमें खर्च कर रहे हैं और गुम हुई लड़कियोंको फिरसे प्राप्त करने और जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये लोगोंको फिरसे अपने मूल धर्ममें प्रतिष्ठित करानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु वे भारी कठिनाइयोंके विरुद्ध काम कर रहे हैं। . . . उनके चारों ओर बड़ा ही विरोधी वातावरण है। वहां इन परिस्थितियोंमें उनकी मृत्यु हो जाय तो क्या होगा, कोई कह नहीं सकता। मैं तो उसके परिणामोंका विचार करके कांप उठता हूं। . .

आपने देखा होगा कि वाद-विवादके तुरन्त बाद लन्दनमें जिन्नाने क्या कहा है। वे तो पाकिस्तानके सिवा कोई बात ही नहीं करते; और जो कुछ छूट उन्हें दी जाती है उसका उपयोग वे उसी उद्देश्यके लिए करेंगे । आप चाहते हैं कि हमें उनका सपना पूरा करनेमें सहायता देनेके लिए सहमत हो जाना चाहिये । . . . आप जानते हैं कि **जब गांधीजीने हमारे समझौतेका प्रबल विरोध किया था, तो मैंने समझौतेके पक्षमें अपने प्रभावका उपयोग किया था। आपने मेरे लिए बड़ी अप्रिय स्थिति पैदा कर दी है। यहां हम सब यह महसूस करते हैं कि हमारे साथ विश्वासघात हुआ है**। अब समस्याका हल अधिक कठिन ही नहीं, लगभग असंभव हो गया है। समझौता तभी हो सकता है जब कोई बाहरी हस्तक्षेप न हो और दोनों पक्षोंको स्वतंत्र छोड़ दिया जाय। वाइसरॉय हमें चैन

नहीं लेने देते। हमें इन कठिनाइयोंमें काम करना पड़ता है। यह असंभव स्थिति है। . . -. (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

*

ब्रिटिश सरकारके ६ दिसम्बरके निश्चयने आसामके लिए और एक हद तक उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तके लिए जीवन-मरणका प्रश्न खड़ा कर दिया। यदि कांग्रेस समूह-रचना सम्बन्धी धाराओंका कैबिनेट-मिशनका अर्थ स्वीकार कर लेती, तो आसाम—जहां हिन्दुओं और कांग्रेसका बहुमत था—बंगालकी मुस्लिम लीगी सरकारके हाथमें चला जाता, जो पाकिस्तान प्राप्त करनेके लिए कटिबद्ध थी । इसके विपरीत, अगर आसाम कांग्रेसके निर्णयको माननेसे इनकार कर देता, तो क्या वह कांग्रेसके प्रति बेवफाईका अपराधी न माना जाता, उस पर संविधान-सभाको भंग करानेका दोषारोपण नहीं होता और इस प्रकार मुस्लिम लीगकी बाजीको मजबूत बनानेमें वह सहायक न होता ? तो क्या आसाम शेष भारतकी प्रगतिमें बाधक न बननेके लिए आत्मोत्सर्ग कर लेता?

इस दुविधामें से कोई मार्ग निकालनेके लिए तथा संभव हो तो गांधीजीको नोआखाली छोड़कर दिल्ली लौटनेकी बात समझानेके लिए—जहां उनकी उपस्थिति और सलाहकी बड़ी आवश्यकता थी—कांग्रेसी नेता गांधीजीसे मिलने और उनसे सलाह-मशविरा करने नोआखाली आये थे।

गांधीजीकी सलाह स्पष्ट थी । सही या गलत, कांग्रेसने यह निर्णय कर लिया था कि वह संघ-न्यायालयके निर्णयको स्वीकार करेगी। इन भारी प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी कांग्रेसको ईमानदारीसे खेल खेलना था और आवश्यक हो तो हार भी स्वीकार करनी थी। "जहां तक मैं समझ सकता हुं, संघ-न्यायालयका निर्णय समूह-रचना सम्बन्धी कांग्रेसके अर्थके विरुद्ध जायगा । इसका सीधा-सा कारण यह है कि (ब्रिटिश) मंत्रि-मंडलका कहना है कि उसे जो कानूनी सलाह मिली है, उससे उनके निर्णयका समर्थन होता है । संघ-न्यायालय अंग्रेजोंकी रचना है । उसमें सब उसकी हां में हां मिलानेवाले आदमी भरे हैं।" [हरिजन, २९ दिसम्बर १९४६, पृ० ४७१]

परन्तु आसामको अपनी आत्मा खो नहीं देनी चाहिये। उसे विभाग (सेक्शन) में शामिल नहीं होना चाहिये। "आसाम जो बात नहीं करना चाहता, वह उससे जबरदस्ती नहीं करायी जा सकती।" [वही] उसे अपना विरोध प्रकट कर देना चाहिये, संविधान-सभासे हट जाना चाहिये और एक स्वायत्त घटकके नाते अपना संविधान स्वयं तैयार कर लेना चाहिये। "यदि कोई प्रान्त अथवा व्यवित भी सही रास्ते पर हो, तो वह कांग्रेसके विरुद्ध विद्रोह कर सकता है और ऐसा करके वह कांग्रेसकी सेवा कर सकता है। मैंने स्वयं ऐसा किया है। वह कांग्रेसकी भलाईके लिए कांग्रेसके विरुद्ध किया जानेवाला एक प्रकारका सत्याग्रह होगा। . . . भारतकी स्वाधीनताके लिए एकमात्र यही शर्त है। प्रत्येक घटकमें अपना निर्णय करने और स्वयं कार्य करनेका सामर्थ्य होना ही चाहिये।"

लेकिन अगर आसाम और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त विभाग (सेक्शन) से बाहर रह जाते, तो शायद मुस्लिम लीग संविधान-सभामें नहीं आती और यदि लीगके बहिष्कारके बावजूद भी संविधान-सभा कोई संविधान तैयार कर लेती, तो शायद सम्राट्की सरकार उस पर कोई ध्यान ही न देती और वह निरर्थक सिद्ध होता।

कांग्रेसके सामने एक दुविधा थी। वह एक अभेद्य फौलादी दीवालसे घिर गई थी। उसने ब्रिटिश सरकार और उसके प्रतिनिधियोंके समक्ष कैबिनेट-मिशनके १६ मईके वक्तव्यके अपने अर्थके बारेमें अपनी स्थिति बार-बार स्पष्ट की थी। कांग्रेसकी इस स्थितिके पूरे ज्ञानके साथ कैबिनेट-मिशनने निश्चय किया था कि वह उसकी योजनाकी "स्वीकृति" है और उसी आधार पर वाइसरॉयने सम्राट्की सरकारकी अनुमतिसे कांग्रेसके अध्यक्षको केन्द्रमें अंतरिम सरकार बनानेके लिए आमंत्रित किया था। २४ अगस्तके अपने रेडियो-भाषणमें वाइसरॉयने मुस्लिम लीगसे कैबिनेट-मिशनकी योजनाको स्वीकार करने और अन्तिरम सरकारमें शामिल होनेकी अपील करते हुए फिरसे यह बता दिया था कि कांग्रेस वक्तव्यके अर्थ-संबंधी किसो भी झगड़ेको संघ-न्यायालयके सामने रखनेको तैयार है। इसका यदि कोई अर्थ हो सकता था तो यही कि इसे मुस्लिम लीगकी आपत्तियोंका पर्याप्त उत्तर मान लिया गया था। सिक्ख नेता मास्टर तारासिंहके नाम १ जून, १९४६ को लिखे अपने पत्रमें भारत-मंत्रीने कहा था कि कैबिनेट-मिशन "(१६ मईके

) अपने वक्तव्यमें और कोई बात जोडेगा नहीं और न उसका कोई अर्थ करेगा ।" इसके सिवा, प्रधानमंत्री एटलीके इस आश्वासनके आधार पर ही पंडित नेहरूने लंदन जाना स्वीकार किया था कि योजनाको बदलनेकी उनकी कोई इच्छा नहीं है, हालांकि खुद उनकी भी इच्छा जानेकी नहीं थी और कांग्रेस कार्यसमितिके उनके कुछ साथियोंका निश्चित मत भी उनके वहां जानेके खिलाफ था। इन सब बातोंके बावजूद ब्रिटिश सरकारने अब एक वक्तव्य जारी किया था, जो अनेक बातोंमें स्पष्टतः कैबिनेट-मिशनके मूल वक्तव्यकी सीमासे बाहर जाता था। क्या सम्राट्की सरकारकी बादकी घोषणाओं द्वारा वक्तव्यमें किये गये पर्याप्त संशोधनको देखते हुए कांग्रेसको १६ मईके राज्यपत्रको अस्वीकार करके फिरसे वनवासमें चले जाना चाहिये था? ऐसा मार्ग अपनानेके लिए काफी औचित्य था। इसका नतीजा यह होता कि पहलेसे भी अधिक विशाल पैमाने पर कटु और शायद दीर्धकालीन संग्राम छिड़ जाता और ब्रिटिश सरकार तथा लीगकी सम्मिलित शक्ति शायद उसके विरुद्ध खड़ी होती। क्या कांग्रेसको यह खतरा उठाना चाहिये था? इसके विपरीत, यदि वह सम्रादकी सरकारकी ६ दिसम्बरवाली घोषणाको मान लेती, तो क्या इसका अर्थ आसाम और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तको धोखा देना और संविधान-सभाकी देहली पर ही लीगकी गुंडागीरीकी नीतिके सामने झुक जाना नहीं होता ? और फिर इस प्रक्रियाका अन्त कहां जाकर होता ?

दक्षिण अफ्रीकामें श्री लिओनार्ड पिंकट गांधीजीके मुख्य वकील थे। जब कोई ऐसा मामला आता जिसमें न्याय तो गांधीजीके पक्षमें होता परन्तु कानूनकी भाषा उनके विरुद्ध होती, तब श्री पिंकट गांधीजीसे कहा करते थे, "यदि हम तथ्योंकी चिन्ता कर लें, तो कानून अपनी चिन्ता खुद कर लेगा।" गांधीजी उस पाठको कभी भूलते नहीं थे। दक्षिण अफ्रीकाकी अदालतोंमें वकालत करते हुए तथा बादमें देशके राजनीतिक जीवनके नेताकी हैसियतसे वे अन्य सब बातोंसे अधिक अपने तथ्योंका हमेशा ध्यान रखते थे। कोई विपरीत तथ्य उनके मुवक्किलको कितना ही असुविधाजनक अथवा विरुद्ध क्यों न दिखाई दे, तो भी वे उसे कभी नजरअन्दाज नहीं करते थे। उनकी पद्धति यह थी कि जो भी बात उनके मुवक्किलके विरुद्ध हो उसे स्पष्ट स्वीकार कर लिया जाय और विरोधीके पक्षको इतने न्याय और समझके साथ पेश किया जाय कि उससे बढ़कर

शायद वह खुद भी अपना पक्ष पेश न कर सके और फिर न्याय और समानताके आधार पर अपने मुवक्किलके पक्षमें बहस की जाय। इसलिए २८ सितम्बर, १९४६ को लॉर्ड वेवेलके साथ हुई अपनी मुलाकातमें एक क्षणकी भी हिचकिचाहट महसूस किये बिना गांधीजी उनसे इस बातमें सहमत हो गये थे कि यदि लीग संविधान-सभाका बहिष्कार करती रहे तो कैबिनेट-मिशनके १६ मईवाले वक्तव्यके अनुसार संविधान-सभाका उचित रूपमें अधिवेशन नहीं हो सकता । गांधीजीका यह विचार उस समय कांग्रेस कार्यसमितिके उनके साथियोंको पसन्द नहीं आया था। परन्तु वे इस बात पर दृढ़ थे कि यदि बहिष्कार करनेवाले लोगोंको केवल ब्रिटिश संगीनोंके बल पर ही काबूमें रखा जा सके और वैसी परिस्थितिमें ब्रिटिश सरकार संविधान-सभाको न बुलाये, तो वे उसे कोई दोष नहीं देंगे—भले वे अकेले ही इस मतके क्यों न हों। संविधान-सभाका अधिवेशन आरम्भ होनेसे ठीक पहले उन्होंने श्रीरामपुरसे कांग्रेस कार्यसमितिके नाम जो पत्र भेजा, उसमें इसी विचारको दोहराया था। यदि बहिष्कारके होते हुए सरकार संविधान-सभाके कामको आगे बढ़ाना चाहती, तो वह उचित रूपमें ऐसा तभी कर सकती थी जब १६ मईका वक्तव्य वापस ले लेती और प्रमुख भारतीय दलोंसे सलाह-मशविरा करनेके बाद उसके स्थान पर दूसरा वक्तव्य निकालती। "यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि कांग्रेस कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो गई हो, तो भी संविधान-सभाकी आज जो कल्पना है उसके अनुसार संविधान-सभाका अधिवेशन ब्रिटिश सरकारकी कार्रवाईसे ही हो सकता है।" [कांग्रेस कार्यकारिणीके नाम गांधीजीका नोट, ४ दिसम्बर १९४६]

गांधीजीका तर्क यह था कि यदि मुस्लिम लीगके बहिष्कारके बावजूद ब्रिटिश सरकारके हार्दिक सहयोगसे संविधान-सभाका अधिवेशन हो, तो भी वह भारतीय अथवा यूरोपियन ब्रिटिश सेनाके "दृश्य अथवा अदृश्य संरक्षण" में ही होगा। "मेरी रायमें हम इन परिस्थितियोंमें किसी सन्तोषजनक संविधानको कभी जन्म नहीं दे सकेंगे। हम स्वीकार करें या न करें, हमारी कमजोरी सारी दुनियाको मालूम हो जायगी।" [वही] ऐसी परिस्थितिमें उत्तम मार्ग यह होगा कि संविधान-सभाको नमस्कार कर दिया जाय और उसके स्थानमें "ब्रिटिश सरकारके साथ किसी भी तरहका सम्बन्ध रखे बिना" अपनी ही संविधान-सभा बुला ली जाय, यदि कांग्रेसको लगता है कि उसने

ऐसा करनेके लिए "अमुक मात्रामें प्रतिष्ठा और शक्ति" प्राप्त कर ली है । इसका अर्थ यह होगा कि उसे मुस्लिम लीग और राजाओं सहित सब दलोंका सहयोग प्राप्त करना होगा और "संविधान-सभा कुछ लोग उसमें शरीक न हों . . . तो भी मिल सकती है। इस प्रकार संभव है कि केवल कांग्रेसी प्रान्त और देशी राजा ही इसमें शरीक होना चाहें।" [वही]

परन्तु यदि यह मार्ग कांग्रेसी नेताओंको पसन्द न हो या यह माना जाय कि ऐसा करनेका समय बीत गया है, तो दूसरा उत्तम मार्ग यह होगा कि समूह-रचना सम्बन्धी धाराओंका ब्रिटिश सरकार द्वारा किया हुआ अर्थ अथवा यों कहिये कि "उसके और जिन्नाके बीच स्वीकृत हुआ सम्मिलित अर्थ" [कांग्रेस कार्यकारिणीके नाम गांधीजीका नोट, २९ दिसम्बर १९४६] मान लिया जाय। परन्तु उस सूरतमें कांग्रेसको यह भी स्पष्ट कर देना चाहिये कि "संविधान-सभाके उद्देश्यके लिए आसाम और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तको कांग्रेससे अलग हो जानेका" [कांग्रेस कार्यकारिणीके नाम गांधीजीका नोट, १७ दिसम्बर १९४६] अधिकार होगा। कांग्रेस एक स्वेच्छापूर्ण संगठन है, इसलिए घटकों पर "नैतिक सत्ताके सिवा अन्य कोई सत्ता" उसके पास नहीं है। वह किसी घटकको वहांके लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध विवश नहीं कर सकती। उसने असहयोग-कालके आरंभसे ही कांग्रेसी घटकोंके लिए कार्यकी ऐसी सत्याग्रही स्वतंत्रता स्वीकार कर रखी है। यह कैबिनेट-मिशनकी इस घोषणाके अनुसार भी होगा कि वे "किसी समूह (ग्रूप) या प्रान्तको मजबूर नहीं करेंगे।"

इसका यह परिणाम हो सकता था कि पूर्वमें आसाम और पश्चिममें सीमाप्रान्त, पंजाबमें सिक्ख और शायद बलूचिस्तान प्रारंभिक मंजिलोंमें संविधान-सभासे या उसके किन्हीं विभागोंसे बाहर रहना पसन्द करें। तब विभाग 'क' की रचना करनेवाले घटक सम्मिलित होना चाहनेवाले अन्य तत्त्वोंके साथ संविधान-सभामें मिलेंगे और कैबिनेट-मिशनकी योजनाके अनुसार स्वाधीनताका संपूर्ण संविधान रच लेंगे और 'ख' और 'ग' विभागोंको 'अलग रहनेवाले घटकोंके बावजूद जैसा बना सकें" वैसा संविधान बना लेना होगा। यह संविधान सारे भारतके लिए होगा, **परन्तु, आरंभमें तो वह भाग लेनेवाले घटकोंके लिए ही बन्धनकारक होगा**। उसमें ऐसी एक विशिष्ट धारा होगी जो यह बतायेगी कि अलग रहनेवाले घटकोंमें से जो उस संविधानका

लाभ उठाना चाहें वे बादमें किस प्रकार शामिल हो सकते हैं। इससे उन लोगों पर, जो संविधान तैयार करेंगे, एक ऐसा संविधान रचनेका भार आ जायगा, जो अत्यन्त निष्पक्ष, न्यायपूर्ण और उदार हो। ब्रिटिश सरकारको इस तरह तैयार किया गया संविधान स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि वह अनिच्छुक भागों पर लादा नहीं जायगा। उसमें सबके साथ निष्पक्ष व्यवहारका आश्वासन दिया गया होगा और जिन्नाको उनके पाकिस्तानके लिए—ऐसा पाकिस्तान जिसका आधार सब संबंधित पक्षोंकी स्वेच्छापूर्ण सम्मति पर होगा— एक निर्दोष और सबके लिए स्वीकार्य सूत्र मिल जायगा।

गांधीजीने कहा, यह तर्क किया जा सकता है कि ब्रिटिश सरकार मुस्लिम लीगकी मांगके अनुसार दूसरी संविधान-सभाको स्वीकार करेगी या स्थापित करेगी । यदि सरकार ऐसा करेगी, तो "वह सदाके लिए अपनेको निन्दाका पात्र बना लेगी।" [कांग्रेस कार्यकारिणीके नाम गांधीजीका नोट, २९ दिसम्बर १९४६] क्योंकि वह कैबिनेट-मिशनके वक्तव्यके अनुसार, जिसकी व्याख्या सम्राट्की सरकारके ६ दिसम्बरके वक्तव्यमें की गई है, रचे जानेवाले संविधानको स्वीकार करने तथा उसके बाद "बाकी सारी बातोंको भाग्यके भरोसे छोड़ कर ब्रिटिश सत्ताके प्रत्येक अवशेषको नष्ट करके तथा ब्रिटिश सैनिकोंको सदाके लिए भारतसे हटाकर" [वही] भारत छोड़ देनेके वचनसे बंधी हुई है।

क्या कांग्रेसके ऐसा मार्ग अपनानेका अर्थ जिन्ना अथवा मुस्लिम लीगके सामने हार मान लेना नहीं होगा? गांधीजीने कहा, मुझे इस आरोपकी परवाह नहीं है, "क्योंकि यह त्याग निर्बलताका कार्य नहीं होगा, बल्कि कांग्रेसकी शक्तिका सूचक कार्य होगा, क्योंकि वह तथ्योंको ध्यानमें रख कर किया जायगा।" [कांग्रेस कार्यकारिणीके नाम गांधीजीका नोट, ४ दिसम्बर १९४६] सत्याग्रही सिर्फ इसीलिए सच्चा काम करनेसे नहीं रुकता कि विरोधीके विचारोंके साथ उसका मेल बैठता है।

कांग्रेसके नेताओंके साथ गांधीजीकी जो बातचीत हुई उसमें से उनके इस संक्षिप्त हलने जन्म लिया था, जिसे बादमें कांग्रेस महासमितिके ६ जनवरी, १९४७ के प्रस्तावमें सम्मिलित कर लिया गया था।

*

सत्याग्रहका उद्देश्य सदा सिद्धान्तका बलिदान दिये बिना विरोधीसे समझौता करनेका होता है, इसलिए गांधीजी सदा दूसरी ओरसे आनेवाले किसी भी प्रस्तावकी जांच करनेके लिए तैयार रहते थे, भले ही वह उनके अपने प्रस्तावसे बिलकुल भिन्न हो। ऐसा करके वे उसमें जो भी तुटियां होतीं उनसे उसे मुक्त कर देते थे। कैबिनेट-मिशनने पहले तो प्रान्तोंको समूह बनाने या न बनानेके लिए स्वतंत्र कर दिया और बादमें मुस्लिम लीगको संविधान-सभामें लानेकी और संभव हो तो सम्मिलित केन्द्रकी रक्षा करनेकी दृष्टिसे वस्तुत: आसाम, उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त और बलूचिस्तानको उनके चुने हुए प्रतिनिधियोंकी इच्छाओंके विरुद्ध काम करनेके लिए तथा विभागोंमें मतदान करनेकी तरकीबसे अपने भाग्यका निर्णय मुस्लिम लीगके हाथोंमें सौंप देनेके लिए मजबूर करना चाहा। उसका उद्देश्य प्रशंसनीय था, परन्तु उसके उपाय गलत थे। एक ही चीजको अलग अलग नामोंसे अलग अलग दलोंको बेचनेका प्रयत्न करके कैबिनेट-मिशनने अपने लिए ऐसी स्थिति पैदा कर ली थी, जिसका लगभग कोई हल नहीं था और जो बुरी तरह आत्म-विरोधी थी। सम्राट्की सरकारने ६ दिसम्बरके अपने वक्तव्यमें कैबिनेट-मिशनके वक्तव्यकी मूल त्रुटियोंको कानूनका जामा पहनानेकी कोशिश की, परन्तु उससे संबंधित दलोंमें अन्यायकी एक तीव्र भावना उत्पन्न हो गई। सत्य पर अचल रह कर गांधीजीने कांग्रेसके आसपास खड़ी कर दी गई लोहेकी अभेद्य दीवालको भेद कर बाहर निकलनेका मानो एक चतुर्थ-आयामी मार्ग खोज निकाला और ब्रिटिश सरकारको दिखा दिया कि कैबिनेट-मिशन तथा सम्राट्की सरकारकी घोषणाओंकी मर्यादाओंमें रहते हुए भी न्याय कैसे किया जा सकता है। उससे सब दलोंकी परीक्षा हो गई। उसकी एकमात्र मांग यह थी कि सब संबंधित लोगोंमें शत-प्रतिशत सचाई होनी चाहिये । स्वयं गांधीजीने तो निश्चय कर लिया था कि या तो वे परीक्षामें पूरे नम्बरोंसे पास होंगे या प्रयत्न करते करते मिट जायंगे।

गांधीजीको दिल्ली वापस ले जानेके लिए पंडित नेहरूने उनसे जो विनती की वह सफल नहीं हुई। इस विषयमें उनकी बातचीतका एकमात्र लेखा गांधीजीकी ३० दिसम्बर, १९४६ की डायरीमें संक्षेपमें इस प्रकार मिलता है: "जवाहरलालने जानेसे पहले कोई १० मिनट बातें कीं। उनका आशय यह था कि मुझे उन लोगोंके साथ दिल्लीमें उपस्थित रहना चाहिये।" उस दिन सुबह ३ बजे उन्होंने पंडित नेहरूके नाम एक व्यक्तिगत पत्र लिखा था। वह इस प्रकार था:

> तुम्हारा स्नेह असाधारण और अत्यन्त स्वाभाविक है ! जब तुम चाहो फिर आ जाना, या जब तुम न आ सको और तुम्हारी रायमें मेरी सलाह लेना जरूरी हो तब किसी ऐसे आदमीको भेज देना, जो तुम्हें समझता हो और मेरी प्रतिक्रियाओंको सही रूपमें तुम्हारे सामने रख सके। . . . यह भी अच्छा नहीं लगता कि तुम्हें बार-बार मेरे पास दौड़ कर आना पड़े, यद्यपि मेरा दावा है कि मैं तुम्हारे लिए एक बुद्धिमान पिताके समान हूं और तुम्हारे प्रति मोती-लालजीसे कम प्रेम नहीं रखता हूं।
>
> कल तुमने जो मसौदा मुझे दिखाया, उसकी भावनाको मत छोड़ना । . . . किसी न किसी तरह मैं यह महसूस करता हूं कि साम्प्रदायिक समस्याओं और राजनीतिक स्थितिके बारेमें मेरा निर्णय सच्चा है। कांग्रेस कार्यसमितिने जब कैबिनेट-मिशनके वक्तव्यको स्वीकार किया तब मैंने दिल्लीमें जो कुछ कहा था उसकी बुद्धिमत्तामें मुझे कोई शंका नहीं है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि कार्यसमितिने जो कुछ किया, वह उसे नहीं करना चाहिये था । इसके विपरीत, कार्यसमितिने जो कुछ किया उसके साथ मैंने अपने आपको पूरी तरह संबद्ध कर लिया था । इतनी ही बात थी कि जो बात मैंने इतने अस्पष्ट रूपमें महसूस की थी, उसका समर्थन मैं बुद्धिपूर्वक नहीं कर सका था।
>
> इस बार बात बिलकुल दूसरी है। मेरी बुद्धि पूरी तरह मेरे हृदयके साथ है। इसकी पुष्टि प्रतिदिन होती है। इसलिए मेरा सुझाव है कि देशके एक पुराने झौर आजमाये हुए सेवकसे बार-बार सलाह-मशविरा किया जाय ।

किसी घटनाके हो जानेके बाद बुद्धिमानी जताना और उन लोगोंकी आलोचना करना आसान है, जिन्होंने अभूतपूर्व कठिनाईकी परिस्थितिमें कठिन निर्णय करनेकी जिम्मेदारी उठाई हो । परन्तु सारी घटनाका सिंहावलोकन करने पर यह लगे बिना नहीं रहता कि जून, १९४६ में गांधीजीकी अन्तः-प्रेरणाको अस्वीकार करके कांग्रेसी नेताओंने कैबिनेट-मिशनकी जो योजना स्वीकार की, उससे भारतको बहुत लाभ नहीं हुआ। जब तक कैबिनेट-मिशन अपनी कूटनीतिपूर्ण दोहरी बातोंको छोड़ कर प्रश्नको सीधे और न्यायपूर्ण ढंगसे हल करनेके लिए तैयार न हो तब तक यदि कांग्रेसी नेताओंने धैर्यसे वनवासमें रहना ही ज्यादा पसन्द किया होता, तो अन्ततोगत्वा शायद वह अधिक लाभदायी होता । कांग्रेसी नेताओंने अपने कर्णधारको छोड़कर—यद्यपि उसकी स्वीकृतिसे—जो कुछ पाया, उसे उन्हें फेंक देना पड़ा और अपनी व्यवहार-कुशलताकी विजयके परिणामस्वरूप जो कुछ उनके पास बच रहा वह उनके गलेमें अटक गया। और अन्तमें सर्वथा निराश होकर उन्होंने भारतके विभाजनको स्वीकार करके उससे अपना पिंड छुड़ानेमें प्रसन्नता मानी ।

३० दिसम्बर, १९४६ को ७।। बजे सुबह पंडित नेहरू और उनकी मंडलीने श्रीरामपुरसे प्रस्थान किया । गांधीजी अपनी सैरकी सीमा तक उनके साथ गये और वहां उन्हें विदाई दी | मंडली मधुपुरके निकटवर्ती गांव तक पैदल गई और वहांसे उसे जीप द्वारा फेनीके हवाई अड्डे तक ले जाया गया।

दिल्ली पहुंचकर संवाददाताओंसे पंडित नेहरूने कहा: "७७ वर्षके इस नौजवानसे मिल कर सदा प्रसन्नता होती है और प्रेरणा मिलती है। उनसे मिलनेके बाद हम अपनेको सदा कुछ अधिक नौजवान और अधिक शक्तिशाली अनुभव करते हैं और हमारे कंधों परका भार कुछ हलका मालूम होने लगता है।"

दूसरा भाग

भक्तराजकी यात्रा

सातवां अध्याय
नंगे पैरोंवाला यात्री

१

पंडित नेहरूकी श्रीरामपुरकी मुलाकात नोआखालीके मेघाच्छादित आकाशमें विद्युत्-प्रकाशके जैसी थी। थोड़े दिनोंके लिए उदासी और निराशाका अन्धकार दूर हो गया और सबके हृदयोंमें प्रसन्नताका प्रकाश भर गया । उनके चले जानेके बाद गांवका जीवन फिर अपनी साधारण गतिसे चलने लगा और गांधीजी अपनी साधनामें फिर लीन हो गये।

दो दिन बाद नव वर्षके आरम्भके दिन गांधीजीने गांवके लोगोंसे विदा ली। उन्होंने कहा, जिस परिवारमें मैं रहा उसके लोगोंने मुझ पर प्रेमकी जो अतिशय वर्षा की, उससे मेरा जीवन काफी समृद्ध बना है। परन्तु ईश्वरने कुछ ऐसा निर्धारित कर रखा है कि मैं बहुत समय तक किसी एक जगह कभी नहीं रह सका। मेरी यात्रायें असंख्य कड़वे और मीठे अनुभवोंसे भरी हुई हैं। संयोग और वियोग मानव-जीवनकी साधारण घटनाएं हैं। मैं नित्य यह प्रार्थना करता हूं कि भगवान मुझे जीवनके बदलते हुए अनुभवमें से समबुद्धिके साथ पार होनेका बल दे और जब में किसी स्थानको छोडूं तो लोग मेरे बारेमें यह कहें कि मैं उनका मित्र था, शत्रु नहीं।

यह नये वर्षका आरम्भ था गांधीजीने प्रार्थना की कि श्रोतागण आसुरी वृत्तिके अपने दोषोंसे मुक्त होकर नव वर्षमें प्रवेश करें और सामान्य ध्येयकी सेवाके अधिक योग्य साधन बनें । उन्होंने सब भाइयोंसे अनुरोध किया कि मुझमें जो भी दोष या कमियां पाई जायं, उन्हें मुझे बताकर आप मेरी सहायता करें। मित्र तभी मित्र होते हैं जब वे आत्मशुद्धिमें हमारी सहायता करते हैं। इसके बाद गांधीजीने श्रोताओंके समक्ष एक ईसाई भजनके कुछ अंश सुनाये । यह भजन राजकुमारी अमृतकौरने गांधीजीके लिए एक संग्रहमें से अपने सुन्दर अक्षरोंमें लिख दिया था:

मुंदे नेत्र खुलें हे प्रभु, जागृत हों सोये प्राण,
नित्य प्रातः प्रेमका तव उगे उज्ज्वल भानु;
सोये थे हम घनी नींदमें फैला था अंधकार,
जीवन-भेंट रूपमें थे जो नूतन शक्ति-विचार;
प्रभु, आपने बाहर उनका किया प्रकट प्रसार ॥ १॥

गायें प्रतिदिन हम तेरे ही मंगल महिमा-गान,
तेरी स्नेहछाया मस्तक पर रहे सदा भगवान !
विभीषिकायें भयकी भागें पिघलें पाप-पहाड़,
स्फुरें तत्त्व-विचार, विराजे उरमें तू भगवान !
खुलें नव आशाके दिव्य किवाड़ ॥ २॥

जीवन-लीलामें घड़ने हों घड़ें घटोंके घाट,
धूएंसे प्रकाशमें आलोकित हो जाये बाट;
ईश करेगा मुक्त हाथसे तुझको मालामाल,
खोलेगा अनमोल खजाना खुद ही दीन-दयाल;
अर्पित करके श्रीचरणोंमें होंगे हम निहाल ॥३॥

ध्यानपूर्वक करें सदा हम छोटे-मोटे काम,
कर्मयज्ञसे पायें सब मनवांछित मनकाम:
गला अहंता करें शून्यतामें हम नित्य मुकाम,
होता जाये नित्य निकटतर परम प्रभुका धाम;
किसी समय तो होगा ही ऐसा अवसर अभिराम ॥ ४॥

गांधीजीके प्रस्थानसे पहलेके दो दिनोंमें यह देखा गया कि गांधीजीकी कुटियामें आसपाससे आये हुए मुसलमानोंकी असाधारण भीड़ रही। श्रीरामपुरसे भेजा हुआ एक अखबारी सन्देश इस प्रकार था: "जो लोग किसी समय गांधीजीको सन्देह और अविश्वासकी दृष्टिसे देखते थे, वे अब यहां पूजा और कृतज्ञताके भावसे आते हैं। ये कुछ इस बातके संकेत हैं कि इस कटु समस्याके प्रति गांधीजीका नैतिक दृष्टिकोण धीरे धीरे परन्तु स्थिर गतिसे काम कर रहा है।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, ३ जनवरी १९४७] एक स्थानीय मुसलमान उनसे मिलनेके बाद यह कहते हुए सुना गया: "गांधीजीके लिए हमारे मनमें बड़ा आदर है और हम चाहते हैं कि वे यहां और रहें।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, २४ दिसम्बर १९४६] इससे भी अधिक अर्थपूर्ण और संकेतपूर्ण शहीद सुहरावर्दीका एक उद्गार था । एक अखबारी मुलाकातमें उन्होंने कहा कि "मुझे आशा है कि महात्मा गांधी न सिर्फ बंगालमें बल्कि भारतके दूसरे भागोंमें भी अपने मिशनमें सफल होंगे।" [दि हिन्दू, २८ दिसम्बर १९४६]

परन्तु गांधीजीके हृदयमें तुफान मचा हुआ था। उन्हें समाचार मिले थे कि कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्योंमें मतभेद खड़ा हो गया है । स्वभाव और दृष्टिकोणका भेद सरदार पटेलको जवाहरलाल नेहरूसे अलग करता था। यह भेद था तो आरंभसे ही, परन्तु भारतके अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्रामके २५ वर्षोंमें दोनोंके मिलकर एक दलकी तरह काम करनेके मार्गमें उससे कोई बाधा नहीं पड़ी थी। मतभेद उचित समय पर गांधीजीके सामने लाय जाते थे और दूर किये जाते थे। गांधीजीके सामने वे एक-दूसरेसे साफ साफ बातें कर सकते थे । ध्येयके प्रति दोनोंमें बुनियादी वफादारी थी और गांधीजीके प्रति उनका और उनके प्रति गांधीजीका समान आदर और स्नेह था। इससे दोनोंके बीच एक अकाट्य बन्धन पैदा हो गया था, जिसे कोई मतभेद तोड़ नहीं सकते थे। सरदार और नेहरू दोनों अपने अपने ढंगसे बड़े थे; दोनों सर्वथा निःस्वार्थ और देशके ध्येयके लिए समर्पित थे। परन्तु उनके सहायक लोग कभी कभी व्यक्तिगत उत्साहके अतिरेकमें आकर अपने गुरुओंकी कुसेवा कर बैठते थे। दोनोंके बीचके मौजूदा तनावका कारण भी यही था। पंडित नेहरूके आगमनके बाद गांधीजीने सरदारको एक पत्रमें लिखा :

आपके विरुद्ध मैंने बहुतसी शिकायतें सुनी हैं। . . . आपके भाषण भड़कानेवाले होते हैं और भीड़को खुश करनेके लिए दिये जाते हैं; आपने हिंसा और अहिंसाका सारा अन्तर भुला दिया है; आप लोगोंको तलवारका जवाब तलवारसे देनेकी शिक्षा दे रहे हैं; आप समय असमय लीगका अपमान करनेका कोई मौका नहीं चूकते। यह सब यदि सच हो, तो बहुत हानिकारक है। कहा जाता है कि आप पदसे चिपके रहनेकी बात करते हैं। सच हो तो यह भी बहुत खटकनेवाली बात है। मैंने जो कुछ सुना है वह आपके विचारके लिए आप तक पहुंचा दिया है। यह बहुत नाजुक समय है। यदि हम सीधे रास्तेसे थोड़े भी हट गये, तो हमारा किया-कराया सब मिट जायगा। कार्यसमितिमें जैसी एकता होनी चाहिये वैसी नहीं है। भ्रष्टाचारका उन्मूलन कर दीजिये। आप यह काम करना जानते हैं। यदि ठीक समझें तो किसी विश्वस्त और समझदार आदमीको भेज दीजिये, जो सारी बातें मुझे समझा दे और मेरे मनको समझ ले । आपके स्वयं आनेकी बिलकुल जरूरत नहीं है । आपका शरीर अब इधर-उधर दौड़नेके लायक नहीं रहा है । लगता है कि आप अपने स्वास्थ्यकी संभाल नहीं रखते। यह बुरी बात है। [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, ३० दिसम्बर १९४६] सरदारके उत्तरमें आहत मनकी झलक थी:

आपका पत्र मिला। उससे मुझे दुःख हुआ है। स्वभावतः जो समाचार आपको मिले हैं और जो शिकायतें आपने सुनी हैं, उनके आधार पर आपने लिखा है। शिकायतें झूठी तो हैं ही, परन्तु कुछ तो ऐसी हैं जिनका कोई अर्थ ही नहीं होता।

यह आक्षेप बिलकुल मनगढ़न्त है कि मैं पदसे चिपका रहना चाहता हूं । इतनी ही बात है कि मैं अन्तरिम सरकारसे त्यागपत्र देनेकी जवाहरलालकी थोथी धमकियोंके विरुद्ध हूं। इससे कांग्रेसकी प्रतिष्ठाको धक्का लगता है और अधिकारियों पर बुरा असर पड़ता है। हमें त्यागपत्र देनेका पक्का निश्चय कर लेना चाहिये। बार-बार कोरी धमकियां देकर हमने वाइसरॉयका आदर खो दिया है। और अब वे त्यागपत्रकी हमारी धमकियोंको निरी धौंस समझते हैं। जब वाइसरॉयने मुझसे अपना विभाग छोड़नेकी मांग की, तो मुझे त्यागपत्र देनेमें एक क्षण भी नहीं लगा। वह कोई खाली धमकी नहीं थी और उसका बहुत

> अच्छा असर हुआ। पदसे चिपके रहनेमें मेरा क्या स्वार्थ है? मैं तो रोगशय्या पर पड़ा हूं । जिम्मेदारीसे मुक्त हो सकूं, तो खुशीसे हो जाऊं। . . . मेरी तो समझमें नहीं आता कि आपने ऐसी शिकायत सुनी ही कैसे ।
>
> यह तो किसी लीगीने भी नहीं कहा है कि मैं बार-बार लीगका अपमान करता हूं। मेरे लिए तो यह नई बात है कि मेरे भाषण श्रोताओंको खुश करनेके लिए होते हैं। मेरी आदत लोगोंको कटुसे कदु सत्य सुनानेकी है। बम्बईमें जलसेनाके विद्रोहके समय मैंने किसीका लिहाज रखे बिना और गोलमोल बातें कहे बिना उपद्रवकी निन्दा की थी, यद्यपि उस समय मेरी बातसे बहुत लोग नाराज हुए थे। . . . तलवारका जवाब तलवारसे देनेकी बात एक लम्बे पैरेसे अलग करके कही गई है और सन्दर्भको तोड़-मरोड़कर रखी गई है।
>
> कार्यसमितिमें यदि मतभेद है तो वह आजका नहीं है। वह बहुत समयसे रहा है। उलटें इस समय तो अधिकांश मामलोंमें बहुत कुछ एकरागता है। अगर मेरे साथियोंमें से किसीने मेरे बारेमें आपसे शिकायत की है, तो मैं जानना चाहूंगा। उनमें से किसीने मुझसे कुछ नहीं कहा है। [सरदार पटेलका पत्र गांधीजीको, ७ जनवरी १९४७]

सरदारके पत्रके अन्तमें यह लिखा था: "बंगाल सरकार और बंगालका गवर्नर आपके बंगालमें सतत रहनेके बारेमें जो गुप्त रिपोर्टें भेज रहे हैं, वे बहुत खराब हैं। वे आपको वहांसे हटा देना चाहते हैं।"

सरदारका उत्तर यों तो सम्पूर्ण था। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाका आक्षेप तो अतिशय घृणाजनक था। परन्तु गांधीजीकी चिन्ता इससे गहरी थी। यह सच है कि सरदार अपने लिए कोई पद नहीं चाहते थे; परन्तु कांग्रेसको उससे जो सत्ता मिलती थी, उसकी वे स्पष्टतः कीमत करते थे। यदि सरदारका भी गांधीजीकी तरह यह विश्वास होता कि "अहिंसा पृथ्वी पर सबसे प्रचण्ड शक्ति है," तो अन्तरिम सरकारके गृहमंत्रीकी अपेक्षा बारडोलीके सरदारके नाते अपने वीरतापूर्ण कार्यको वे अधिक महत्त्व देते। उनके सामने जो संकट खड़ा था उसमें लड़नेके साहसकी अपेक्षा

शान्त तथा आत्म-विश्वास-पूर्ण बलवाले साहसकी तथा उस संयम और स्वस्थताकी जरूरत थी, जिन पर किसी घबराहट या उत्तेजनाका कोई असर नहीं होता और जो विरोधीके पास प्रेमके रूपमें पहुंच कर उसके घाव भरते हैं, उसे निःशस्त्र कर देते हैं और इस तरह उस पर विजय प्राप्त करते हैं। यह तर्क द्वारा नहीं समझाया जा सकता; प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा ही समझाया जा सकता है। गांधीजीके दूसरे पत्रमें सरदारके स्वास्थ्यके बारेमें ही गहरी चिन्ता व्यक्त की गई थी: "आपके स्वास्थ्यकी मुझे चिन्ता हो रही है। आपको अच्छा हो ही जाना चाहिये। आपको अभी बहुत काम करना है ! . . . यहांकी स्थिति नाजुक है। देखते रहिये, यहां क्या होता है। मैं अभी तक अंधेरेमें मार्ग खोज रहा हूं, लेकिन मुझमें निराशाका भाव नहीं है।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, ६ जनवरी १९४७]

गांधीजीकी मूलभूत आध्यात्मिक अन्त:प्रेरणा सामान्यसे फिर विशेषकी ओर मुड़ी। उनके अपने ही साथियोंमें मेलजोलकी कमी हो गई थी और कुछ समयसे उनके चारों तरफ छोटे छोटे लड़ाई-झगड़ों और तुच्छ षड्यंत्रोंका वातावरण पैदा हो गया था। श्रीरामपुरसे प्रस्थान करनेके दिन वे रात २ बजे ही जाग उठे और एक बार फिर अपने मनमें यह प्रश्न पूछने लगे : "अहिंसा काम क्यों नहीं कर रही है ?" अहिंसा केवल आंशिक रूपमें अच्छी नहीं हो सकती—बिलकुल पड़ोसमें वह असफल रहे और दूसरी जगह सफल हो, यह नहीं हो सकता। उन्होंने मनुको भी जगा लिया और उससे कहा कि हमारे सामने जो अग्नि-परीक्षा आ रही है उसे देखते हुए तुझे सतत सावधान और जागरूक रहना चाहिये। जब मैं कुछ दिनों बाद गांधीजीसे मिला तो उन्होंने कहा: "तुम नहीं देखते कि यहां एक गुट बन रहा है ?" अपने आसपासके वातावरणका उल्लेख करते हुए वे मन ही मन बोले : "मेरे भीतर ही गहराईमें कोई न कोई गंभीर त्रुटि होनी चाहिये, जिसका मैं पता नहीं लगा सकता। . . . मैं कहां रास्ता भूला हूं ? मेरी अहिंसा और श्रद्धामें कोई न कोई भयंकर दोष अवश्य है, जिसके कारण ये सब बातें होती हैं।" [गांधीजीकी डायरी, २ जनवरी १९४७]

*

जब २ जनवरी, १९४७ को प्रातःकाल गांधीजी अपनी छावनी समेट कर अपनी लम्बी यात्रा पर रवाना हुए, तब श्रीरामपुर गांव और उसके आसपासके स्थानोंमें नवजीवनका संचार होने लगा। चावलकी फसल हाल ही में कटी थी, इसलिए धानके खेत खाली पड़े हुए थे। रास्ते भर मंडली रामधुन गाती रही। सारे ग्राम्य प्रदेशमें उत्साहकी लहर दौड़ गई। महात्मा रास्तेसे गुजरे तब उसके दोनों ओर दोनों समुदायोंके ग्रामीण लोग पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। एक प्रत्यक्षदर्शीने लिखा, "७८ वर्षका बूढ़ा बांसकी लाठी लिये तेज गतिसे कूच करता है और जो कोई आकर उसे अभिवादन करता है उसे वह सदा मुस्करा कर जवाब देता है।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, ४ जनवरी १९४७]

१६ वर्ष पहले गांधीजीने इसी प्रकार ऐतिहासिक दांडी-कूच पर ७९ आदमियोंका दल लेकर समुद्रकी ओर प्रयाण किया था। उस समय वे ८-१० मील रोज चलते थे और थके बिना बहुतसे नौजवानोंसे आगे निकल जाते थे। उसके बाद उनका भौतिक शरीर कई लम्बे लम्बे उपवासों और १५ वर्षके अथक और कठोर परिश्रमके कारण क्षीण हो गया था; परन्तु उनके भीतरकी आत्माकी ज्योति पहलेसे अधिक तेज जल रही थी। उन दिनों लोग हजारोंकी संख्यामें उनके कूचमें शामिल होते थे और उनका स्वागत किया जाता था; इस बार उन्होंने सब सम्बन्धित लोगोंको बता दिया था कि वे अपनी इस पवित्र यात्रामें ईश्वरके सिवा और कोई साथी नहीं चाहते।

शोकमग्न श्रीरामपुरसे उत्सुक और आशासे पूर्ण चंडीपुर ३ मील दूर था। वहां गांधीजी प्रात:काल ८-५० पर पहुंचे। रास्तेमें वे उपद्रवोंमें विनष्ट हुई दो बाड़ियोंमें रुके। दोनों राजनीतिक विरोधियोंकी थीं। एक बाड़ी किसी पुराने क्रान्तिकारीकी थी, दूसरी किसी स्थानीय मुसलमानकी। पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट अब्दुल्ला, जिन्हें गांधीजीसे गहरी आत्मीयता हो गई थी और जो उनके परिवारके आदमी बन गये थे, श्रीरामपुरसे चंडीपुर तक गांधीजीके साथ रहे। आगे आगे बन्दूकें लिये हुए २० सैनिक पुलिसोंका दल चल रहा था। चंडीपुर पहुंच कर गांधीजीने अब्दुल्लासे जो पहली बात कही वह यह थी: मैं यह पसन्द नहीं करता कि सेनाकी पुलिस मेरे साथ रहे। "बंगाल सरकार जिस जागरूकताके साथ मेरी रक्षाका प्रयत्न कर रही है, उसकी मैं कदर करता हूं । परन्तु मुझे ईश्वरके सिवा और किसीकी रक्षा नहीं चाहिये।"

शामकी प्रार्थना कुछ जल्दी ४॥ बजे की गई, ताकि जो स्त्रियां पासके गांवसे आई थीं वे प्रार्थनामें सम्मिलित होकर अंधेरा होनेसे पहले अपने अपने घरोंको लौट जायं। पार्लियामेन्टरी सचिव हमीदुद्दीनने कलकत्तेके अपने वक्तव्यमें अन्य बातोंके साथ साथ यह भी कहा था कि गांधीजीकी प्रार्थना-सभाओंमें हिन्दु-मुसलमान दोनोंकी हाजिरी कम होती जा रही है और एक दिन ऐसा आयेगा जब उनकी बातें सुननेवाला कोई नहीं रह जायगा | इसका उल्लेख करते हुए गांधीजी बोले कि ऐसा हो जाय तो भी निराश होकर अपना मिशन छोड़ देनेके लिए मेरे पास कोई कारण नहीं होगा । तब मैं एक गांवसे दूसरे गांव घूम कर ग्रामवासियोंको सिखाऊंगा कि वे अपने तालाब कैसे साफ करें और कला-कौशल तथा हाथ-उद्योगोंके द्वारा अपने जीवनको कैसे सम्पन्न बनायें। ऐसा प्रेमपूर्ण और निःस्वार्थ परिश्रम सारे पूर्वाग्रह पर विजय प्राप्त करेगा। "अपनी यात्रामें मैं जो विशेष पदार्थ-पाठ आपको देना चाहता हूं, वे ये हैं कि आप गांवके पानीको और अपने आपको स्वच्छ कैसे रख सकते हैं; जिस मिट्टीसे आपके शरीर बने हैं, उसका आप क्या उपयोग कर सकते हैं; आपके सिर पर जो अनन्त आकाश फैला है, उससे आप जीवन-शक्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं; आप अपने चारों ओर फैली हुई वायुके द्वारा अपनी जीवन-शक्ति कैसे बढ़ा सकते हैं; और आप सूर्यके प्रकाशका कैसे लाभदायी उपयोग कर सकते हैं। दूसरे शब्दोंमें, मैं आपको यह सिखानेकी कोशिश करूंगा कि हम अपने आसपासके विभिन्न प्राकृतिक तत्त्वोंका सदुपयोग करके अपने गरीब देशको स्वर्णभूमिमें कैसे बदल सकते हैं।" [प्रार्थना-प्रवचन, ६ जनवरी १९४७]

गांधीजीसे पूछा गया कि साम्प्रदायिक सुमेल स्थापित करनेके लिए आपके सारे नोआखालीमें घूमनेकी क्या जरूरत है ? और आपके साथ सिक्खोंके जानेकी क्या आवश्यकता है ? इन प्रश्नोंका उत्तर देते हुए गांधीजीने कहा कि मेरा उद्देश्य लोगोंको यह विश्वास करा देनेका है कि मेरे मनमें किसीके प्रति वैरभाव या दुर्भावना नहीं है। यह विश्वास मैं लोगोंको तभी करा सकता हूं जब उन लोगोंके बीच रहूं और घूमूं-फिरूं, जो मुझ पर अविश्वास करते हैं। रही बात सिक्खोंकी, सो वे सरकारकी इजाजतसे आये हैं; वे यहां झगड़ा करने नहीं आये हैं—अपने कृपाण भी वे साथमें नहीं लाये हैं—किन्तु दोनों समुदायोंकी सेवा करने आये हैं। "ऐसे मित्रोंको मैं किस

बिना पर वापस भेज दूं? . . . यदि मैं उन्हें लौटा दूं, तो अपनी ही नजरमें मैं गिर जाऊंगा और कायर साबित होऊंगा। . . . मेरा आपसे अनुरोध है कि इन लोगों पर आप भरोसा कीजिये . . . और इनकी सेवाएं स्वीकार कीजिये। . . . परमात्माने उन्हें शरीर-बल और श्रद्धा दोनों दिये हैं।" [वही]

*

चंडीपुरमें गांधीजी पांच दिन ठहरे। अब निराश्रित लोग काफी संख्यामें अपने घरोंको लौटने लगे थे और उनके पुनर्वासका सवाल दिनोंदिन तीव्र होता जा रहा था। नवम्बरके दूसरे सप्ताहमें जिला-मजिस्ट्रेट श्री मैकिनर्नीने दत्तापाड़ामें निराश्रितोंके साथ गांधीजीकी पहली मुलाकातके समय कहा था कि प्राकृतिक अथवा मानव-कृत भयंकर उत्पातके बाद भोजन, वस्त्र, मकान और डॉक्टरी राहत बेशक पहली प्रारम्भिक आवश्यकताएं हैं। परन्तु इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है साहस । इसलिए नोआखालीमें इस नाजुक मौके पर गांधीजीकी उपस्थितिसे अधिक उपयुक्त कोई बात नहीं हो सकती। निराश्रितोंने जो कुछ गंवाया है, उसे गांधीजी वापस नहीं ला सकते। परन्तु वे जीवनके उतार-चढ़ावका सामना साहस, श्रद्धा और आशाके साथ करनेका बल उन्हें अवश्य दे सकते हैं। इसके लिए पुनर्वासकी समस्याके बारेमें विशेष प्रयत्न और नया दृष्टिकोण आवश्यक है।

सबसे हृदयस्पर्शी प्रसंग एक अन्धी स्त्रीका था। उसने अपना सर्वस्व खो दिया था। वह गांधीजीका दर्शन करना चाहती थी। उसे वे क्या सान्त्वता दे सकते थे? उन्होंने उससे कहा, जो कुछ हमें बाहरी आंखोंसे दिखाई देता है, उससे अधिक सत्य वह है जो आन्तरिक दृष्टिसे दिखाई देता है। (गांधीजीने इस साधनाका भी प्रयोग किया था।) बुढ़िया सान्त्वना पाकर वापस चली गई। उसी क्षण उसे अपना दर्शन हो गया था !

अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने अपने नोआखालीके साहसको तीर्थयात्राकी उपमा देते हुए कहा, प्राचीन कालमें यात्राएं पैदल की जाती थीं। सबसे पवित्र स्थान उन दिनों भारतके सुदूर और अगम्य छोरों पर स्थित थे। उनकी यात्रा लम्बी और कठिन होती थी। यात्रामें यात्री नंगे

पैरों चलते थे, कठोर व्रत लेते थे और तपस्या करते थे। यात्राके कष्टोंके साथ श्रद्धा पूर्वक स्वीकार की जानेवाली ये बातें पावन तपस्या बन जाती थीं। तीर्थ-यात्राका पुण्य आत्मशुद्धिमें निहित है। ईश्वर अन्य स्थानोंको छोड़कर किसी विशेष स्थानमें नहीं रहता। वह मनुष्योंके हृदयोंमें निवास करता है। इसलिए तीर्थस्थानमें जानेसे ही विशेष पुण्य नहीं मिलता। परन्तु यदि कोई मनुष्य शुद्ध भावनासे और सारे नियमोंका संपूर्ण पालन करते हुए यात्रा करे, तो प्रतिदिन उसके हृदयकी अधिकाधिक शुद्धि होनी चाहिये। मेरे नोआखाली मिशनके सन्दर्भमें इसका अर्थ यह है कि आपके हृदयोंसे सारी अशुद्धि निकल जानी चाहिये और "सबसे अधिक तो भय नामकी अशुद्धि दूर हो जानी चाहिये।" जिन लोगोंको दंगोंमें धन-जनकी हानि हुई है वे यदि भयमुक्त हो जायं, तो न तो वे अपने आक्रमणकारियोंको सजा देना चाहेंगे और न उनसे बदला लेना चाहेंगे; वे तो अपने आक्रमणकारियोंका हृदय-परिवर्तन चाहेंगे। इसलिए आप लोग अपने भीतर निर्भयता और क्षमाकी भावना पैदा करके अपने घरोंको छोड़े बिना भी मेरी तीर्थयात्रामें शरीक हो सकते हैं। मैं आप सबको इस प्रकार अपनी इस यात्रामें शरीक होनेका निमंत्रण देता हूं। इसका आर्थ न केवल नोआखालीके हिन्दुओं और मुसलमानोंकी बल्कि सारे भारतकी सर्वांगीण शुद्धि होगा। अपने कुसंगतिमें पड़े हुए पुत्र हरिलालको, जो उन्हें छोड़कर चला गया था, गांधीजीने दुःख-पूर्वक लिखा: "यह जानकर मुझे कितनी खुशी होगी कि तूने नया जीवन आरम्भ कर दिया है ! जरा सोच तो सही कि मैंने तुझ पर कितनी उदारतासे स्नेहवर्षा की है ! मेरी यह यात्रा अत्यन्त कठिन है। हो सके सो तू इसमें शरीक हो जा। . . . यदि तू अपनी शुद्धि कर ले, तो कहीं भी रहते हुए तू इसका पूरा भागीदार बन जायगा।" [गांधीजीका पत्र हरिलाल गांधीको, २२ जनवरी १९४७] फिर अपने इस सिद्धान्तका उल्लेख करते हुए कि आध्यात्मिक पुनर्जन्म अनिवार्य रूपसे शारीरिक पुनरुद्धारमें प्रतिबिम्बित होता है, उन्होंने यह भी लिखा, "भागवत इस बातका प्रमाण है कि आत्मशुद्धि करनेके बाद तू समयसे पहले बूढ़ा नहीं दिखाई देगा, जैसा कि आज दिखाई देता है।"

उन्होंने दंगोंसे पीड़ित लोगोंसे कहा: यह ठीक है कि दंगोंमें आपके घर जला दिये गये और सम्पत्ति लूट ली गई; परन्तु जब तक आपके भीतर अपने लिए और राष्ट्रके लिए साहसपूर्वक

तथा हर्षपूर्वक किये हुए अपने श्रमके आधार पर आगे बढ़ने और अपने जीवनका पुनर्निर्माण करनेकी इच्छा और संकल्प है तब तक भला इसकी क्या परवाह है ? मेरे लिए आप लोगोंके पुनर्वासका अर्थ केवल आर्थिक पुनर्वास नहीं, परन्तु नैतिक और आध्यात्मिक पुनर्वास भी है। आपका आध्यात्मिक दृष्टिसे पुनर्जन्म होना चाहिये। केवल आपका ही नहीं, परन्तु आपके उत्पीड़कोंका भी । मुझे बताया गया है कि कुछ अपराधी, जिन्होंने दंगोंमें भाग लिया था, गिरफ्तारीके डरसे एक जगहसे दूसरी जगह भागते फिरते हैं। लेकिन इस तरह भागना कायरता है । उन्हें सच्चे हृदयसे अपना अपराध स्वीकार करना चाहिये और कोई सजा मिले तो उसका सामना करना चाहिये। ऐसी सजा बहादुरीसे सहन की जाय तो वह सजा नहीं रहती, शुद्धि बन जाती है; वह मनुष्यको ऊंचा उठाती है। दंगोंके शिकार बने लोगोंको मेरी यह सलाह है कि उन्हें अपराधियोंको बिलकुल भूल जाना चाहिये, अपने घरोंको लौट आना चाहिये और सारे खतरोंका सामना करना चाहिये। अन्तमें गांधीजीने उनसे कहा: अगर हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने जीवनकी जो छोटी छोटी बातें मुझसे कहने आये हैं उन्हें अच्छी तरहसे निबटाना सीख लें, तो देशकी शकल बदल जाय और जिस दयनीय दशामें आज आप सब रहते और कष्ट भोगते हैं, उसीमें से स्वर्गकी सृष्टि हो जाय।

जिस समय गांधीजी नोआखालीमें—जहां हिन्दू दंगोंके शिकार हुए थे— अपना शान्ति-मिशन सारी शक्ति लगाकर चला रहे थे, उस समय भी उनका हृदय बिहारके मुसलमानोंके लिए कम दुःखी नहीं था। गांधीजीकी पूछताछके उत्तरमें बिहार सरकारने उन्हें बिहारकी स्थितिकी जानकारी देनेके लिए बिहारके एक मंत्री और कई प्रतिनिधि अधिकारियोंको भेजा। उन्होंने गांधीजीके सामने स्वीकार किया कि उपद्रवोंमें अमानुषिक घटनायें घटी थीं । उन्होंने कहा कि इसके लिए हम सारी उचित निन्दा सहन करनेको तैयार हैं। परन्तु उन्होंने बिहारके इन अपराधोंमें साझेदार होनेके आक्षेपको सर्वथा अस्वीकार किया। गांधीजीने अपनी एक प्रार्थना-सभामें मुसलमानोंको विश्वास दिलाया कि मैं उस समय तक चैन नहीं लूंगा जब तक कि मुझे खुदको इस बातका सन्तोष न हो जाय कि बिहार सरकारने वह सब किया है, जो दंगेके शिकार

बने लोगोंके पुनर्वास के लिए और बहुसंख्यक समुदाय द्वारा उनके साथ अच्छा बरताव होनेके लिए मनुष्य कर सकता है।

अस्थायी आश्रय-स्थान बनानेके लिए भी नोआखालीमें सरकारी सहायता बिलकुल अपर्याप्त थीं। गांधीजीसे उनकी एक सभामें पूछा गया: क्या निराश्रितोंको ऐसी सहायता स्वीकार करनी चाहिये ? गांधीजीने उनसे कहा, यदि आपकी बुनियादी जरूरतें प्रस्तावित सरकारी सहायतासे पूरी नहीं होतीं, तो आपको वह सहायता स्वीकार नहीं करनी चाहिये। फिर भी आपको अपने घरोंको लौट आना चाहिये, भले ही आपको आकाशके नीचे ही क्यों न रहना पड़े। परन्तु यह सब आपको क्रोधकी भावनासे नहीं, किन्तु खिलाड़ीको शोभा देनेवाली भावनासे करना चाहिये।

मान लीजिये कि सरकारी और निजी सहायता बन्द कर दी जाय, तब निराश्रितोंको क्या करना चाहिये ?

"उस सूरतमें पहले सामाजिक कार्यकर्ताओंको मौके पर जाकर एक व्यवस्थित और ब्योरेवार जांच करनी चाहिये कि हर गांवमें कौन-कौनसे उद्योग-धन्धे हाथमें लिये जा सकते हैं। फिर उन्हें उन उद्योग-धन्धोंको सहकारी आधार पर संगठित करनेका काम शुरू कर देना चाहिये।"

"बहुसंख्यक समुदायकी आक्रामक मनोवृत्तिके तुष्टीकरणके लिए क्या किया जाना चाहिये?"

गांधीजीने उत्तर दिया कि "तुष्टीकरण" शब्दका उपयोग बुरे अर्थमें होने लगा है। सम्मान खोकर किसी भी हालतमें किसीका तुष्टीकरण नहीं करना चाहिये। जो बात उचित और न्याययुकत हो, उसीको किसी भी कीमत पर करना वास्तविक और एकमात्र तुष्टीकरण है। 'जैसेको तैसा' वाला न्याय अब पुराना पड़ चुका है। वीरोंकी अहिंसा इस समस्याको हल करनेका सच्चा उपाय है।

२

नोआखालीमें प्रकृतिकी मनुष्य पर बड़ी कृपा है। पैरोंके नीचे धरतीका स्पर्श कोमल और शान्तिदायक है। नंगे पैरोंको चुभनेवाले नुकीले पत्थर या कांटे वहां नहीं हैं। धानकी कटाईके बाद खेतोंमें बचे हुए उसके डंठल भी रेशमकी तरह नरम होते हैं। गांधीजीके पैर बड़े नाजुक थे। वे उनकी असाधारण संभाल रखते थे। फिर भी जब वे चांदपुर पहुंचे तो उनके पैरोंमें घाव हो गये थे। परन्तु उन्होंने निश्चय कर लिया कि अपनी शेष यात्रामें वे चप्पल नहीं पहनेंगे। जो भूमि गरीब पुरुषों और स्त्रियोंके निर्दोष कष्ट-सहनसे पवित्र हो चुकी थी, उस पर चप्पल पहन कर चलना उसका अनादर करना होगा।

गांधीजीकी यात्राकी सामग्री और कागजात मनुकी देखभालमें रहते थे । उन्होंने यह काम मनुको तालीम देनेके लिए सौंप रखा था। परन्तु अपने लिए उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि कोई गड़बड़ी होगी, तो उसके लिए वे किसीको जिम्मेदार नहीं ठहरायेंगे। इसलिए वे खुद यह देख लेते थे कि यात्राका सामान ठीक समय पर अच्छी तरह बांधकर तैयार कर लिया गया है या नहीं।

सामानमें उनकी जरूरतकी लगभग सभी चीजें होती थीं। पेन, पेन्सिल और कागजसे लेकर कपड़ोंकी मरम्मतके लिए सुई और धागा तक उसमें होता था। थोड़ेसे खाना बनानेके बरतन, एक मिट्टीका कटोरा और काठका चम्मच, नहानेके लिए कलईदार लोहेकी बालटी, एक कमोड, एक हाथ-मुंह धोनेका बरतन और साबुन—ये सब चीजें तो रहती ही थीं; उनका चरखा तथा उसका सरंजाम भी होता था। इसके सिवा, फाइलें, कागज और कुछ पुस्तकें होती थीं । एक पोर्टेबल टाइप-राइटर भी साथ रहता था । थैलेमें जो पुस्तकें चलती थीं वे इस प्रकार थीं:

१. दि सेइंग्ज ऑफ मुहम्मद

२. ग्लान्सेज़ एट इस्लाम

३. दि वर्ल्ड बाइबल

४. दि बुक ऑफ डेली थॉट्स एण्ड प्रेयर

५. प्रैक्टिस एण्ड प्रिसेप्ट्स ऑफ जीसस

६. ए बुक ऑफ ज्यूइश थॉट्स

७. कन्स्ट्रक्टिव प्रोग्राम: इट्स मीनिंग एण्ड प्लेस

८. धम्मपद

९. विष्णु-सहस्त्रनाम

१०. उत्तरगीता

११. सुखमणिसाहब (सिक्ख धर्मग्रन्थ)

१२. श्रीरामचरितमानस

१३. डिस्कवरी ऑफ इण्डिया

१४. आश्रम-भजनावलि

१५. गीतांजलि

१६. एलिमेन्टरी बेंगाली रीडर

१७. बेंगाली टीचर

१८. बेंगाली-हिन्दी टीचर

१९. हिन्दी-बंगला शिक्षक

२०. उर्दू रीडर

२१. भगवद्गीता

७ जनवरीको, जो चंडीपुरमें गांधीजीकी अन्तिम रात थी, वे २ बजे ही उठ गये और अपने स्वभावके अनुसार पूरी तरह जांच करके उन्होंने यह विश्वास कर लिया कि कूचके लिए उनके

सारे आदेशोंका पालन हो गया है या नहीं। सुबहकी प्रार्थनामें उन्होंने अपना प्रिय भजन "वैष्णवजन" गवाया। उसमें इतना-सा परिवर्तन करनेकी सूचना की कि ठेकमें 'वेष्णव-जन' के बदले बारी बारीसे सब धर्मोंके अनुयायियोंकी दृष्टिसे 'मुस्लिम-जन', 'पारसी-जन' और 'ईसाई-जन' कर दिया जाय।

उदय होते सूर्यका बिम्ब क्षितिजमें दिखाई देने लगा कि ७॥ बजे गांधीजीने कविवर टागोरके इस गीतके साथ अपनी यात्रा आरम्भ कर दी :

जदि तोर डाक शुने केओ ना आसे

तबे एकला चलो रे !

एकला चलो, एकला चलो,

एकला चलो रे ! जदि०

जदि केओ कथा ना कय,

ओरे ओरे ओ अभागा,

केओ कथा ना कय,

जदि सबाइ थाके मुख फिराये

सबाइ करे भय;

तबे पराण खुले,

ओ तुइ मुख-फुटे तोर मनेर कथा

एकला बलो रे ! जदि०

जदि सबाइ फिरे जाय,

ओरे ओरे ओ अभागा,

सबाइ फिरे जाय,

जदि गहन पथे जाबार काले

केओ फिरे ना चाय;

तबे पथेर-कांटा,

ओ तुइ रक्त-माखा चरण तले

एकला दलो रे ! जदि०

जदि आलो ना घरे,

ओरे ओरे ओ अभागा,

आलो ना घरे;

जदि झड़-बादले आंधार राते

दुआर देय घरे;

तबे बज्रानले,

आपन बुकेर पांजर जालिये निये,

एकला जलो रे ! जदि०

रास्तेभर एक परिवर्तनके बाद दूसरे परिवर्तनके साथ रामधुन गाई जाती रही । भक्ति-संगीत गानेवाली एक भजन-मंडली गांधीजीकी सारी यात्रामें साथ रहना चाहती थी । परन्तु उन्होंने यह कह कर मना कर दिया: मैं नहीं चाहता कि स्थानीय मुसलमानोंकी दृष्टिमें मेरी यात्रा किसी विजय-यात्राका स्वरूप धारण करे। मुझे तो केवल अपनी हीन वृत्तियों पर तथा लोगोंके हृदयों पर विजय प्राप्त करनेकी ही अभिलाषा है।

रास्ता मनोहर सौन्दर्यवाले प्रदेशसे होकर जाता था । संकरी और टेढ़ीमेढ़ी पगडंडी थी, जिस पर दो आदमी मुश्किलसे साथ साथ चल सकते थे। उस पगडंडीके दोनों ओर भव्य ताड़के पेड़ोंकी कतारें खड़ी थीं, जिनके सीधे तनों और झुकी हुई टहनियोंका प्रतिबिम्ब पासके तालाबोंके

कांच जैसे निर्मल जल पर पड़ता था। आकाशमें प्रभातकी लाली भर गई थी। घनी हरी झाड़ियोंवाले जंगलोंकी चोटियां और छोटे छोटे जलाशयोंसे जड़ी हुई धरतीकी हरियालीका गालीचा प्रभातके लाल प्रकाशमें स्नान कर रहे थे। ९ बजे मंडली माशिमपुर पहुंची। सतीशचन्द्र दासगुप्तने गांधीजीके रहनेके लिए एक छोटीसी साफ-सुथरी आरामदेह झोंपड़ी खड़ी कर दी थी । वह बांसकी खपचियों, बेंत और घाससे बनी हुई अलग की जा सकनेवाली दीवालोंकी मददसे बनाई गई थी। उसमें छोटी छोटी खूबसूरत खिड़कियां थीं और बरतन तथा दूसरी चीजें रखनेके लिए चौगोड़िये थे । दो छोटे छोटे कमरे पाखाने और मालिशके लिए रखे गये थे। एक छोटासा तिरंगा झंडा उस झोंपड़ी पर लहरा रहा था, परन्तु गांधीजीने उस झोंपड़ीको "महल" का नाम दे दिया। उन्होंने सतीश दासगुप्तसे कहा, "इस महलका मेरे जैसे बिना घरबारवाले परिव्राजकके साथ कोई मेल नहीं बैठता । गरीबोंके लिए चलते-फिरते औषधालयके रूपमें इसका उपयोग करना चाहिये। मैं यह विलास सहन नहीं कर सकता कि यात्रामें मेरे उपयोगके लिए एक खुलने और बन्द होनेवाली झोंपड़ी एक जगहसे दूसरी जगह ले जाई जाय। मुझे हर कहीं आराम मिल सकता है। अगर कोई मुझे अपने घरमें आसरा देनेके लिए तैयार नहीं होगा, तो मैं किसी पेड़की आतिथ्यभरी छायामें आरामसे रह लूंगा।"

एक दिनमें एक गांवकी गांधीजीकी यात्रामें प्रतिदिन उनके लिए ठहरनेका उपयुक्त स्थान जुटानेकी एक समस्या थी। सतीश दासगुप्तने सोचा कि साथ चलनेवालो ऐसी झोंपड़ी तैयार करके वे इस समस्याको हल कर सकेंगे । परन्तु यदि हृदयोंके द्वार बन्द हों तो ठहरनेका स्थान किस कामका ? इसलिए गांधीजीने उस झोंपड़ीका उपयोग करनेसे इनकार कर दिया और एक शालाके सीलवाले छप्परके नीचे डेरा लगाया। उन्होंने अपने कार्यकर्ताओंको भी आदेश दे दिये कि जिस परिवारमें वे ठहरें उसमें जो भी कुछ मिल जाय उसीसे उन्हें गुजर कर लेना है। उन्हें परिवारके लोगोंके साथ एकरूप हो जाना चाहिये और न तो ऐसा रुख अख्तियार करना चाहिये और न किसी पर यह छाप डालनी चाहिये कि वे उनके "संरक्षक और उपकारक" बन कर आये हैं।

संध्याकी प्रार्थना-सभामें कुछ मुसलमान भी उपस्थित थे। परन्तु ज्यों ही प्रार्थनामें रामधुन आरंभ हुई उनमें से कुछ उठकर चले गये। नमाजके लिए तो वे नहीं गये होंगे, क्योंकि सूर्य अभी चमक रहा था। पूछताछ करने पर गांधीजीको मालूम हुआ कि उन्हें रामधुन गाने पर आपत्ति थी। गांधीजीको इस बातसे दुःख हुआ कि खुदा या अल्लाहके नामके सिवा ईश्वरको और किसी नामसे स्मरण करना उन लोगोंको सहन नहीं हुआ; परन्तु इस बातसे उन्हें खुशी भी हुई कि उनकी यात्राके पहले ही दिन उन्हें पता चल गया कि यात्रामें उन्हें किस तरहके प्रतिकारका सामना करना पड़ेगा। अपने प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने कहा: मैं इस बातकी बहुत सावधानी रखता हूं कि अनावश्यक रूपमें किसीकी भावनाओंको ठेस न पहुंचे और मैं मुसलमानोंके बीचमें ही ठहर कर तथा उनकी सेवा करके उनके प्रति अपने मित्रभावका प्रत्यक्ष प्रमाण देनेके लिए ही नोआखाली आया हुं; परन्तु मैं रामनामको नहीं छोड़ सकता, क्योंकि वह तो मेरी आत्माका आहार है। एक ही सरजन-हार प्रभुको लोग अलग अलग नामोंसे पूजते हैं। जो लोग आज शामको प्रार्थना-सभासे उठकर चले गये हैं उन्होंने भूल की है और मुस्लिम लीगकी घोषित नीतिके विरुद्ध आचरण किया है। साथ ही मैं हिन्दुओंको भी चेतावनी देता हूं कि रामनाम आक्रामक वृत्तिसे दूसरे समुदायकों चिढ़ानंके लिए या झूठी बहादुरी दिखानेके लिए नहीं गाना चाहिये।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब गांधीजी फतहपुर गांव पहुंचे तब काटनेवाली ठंडी हवा चल रही थी। इसलिए वे मालिश कराते समय अपनी रोजकी झपकी नहीं ले सके । जब मनुने उनके पैरोंमें तेल लगाया, तो उसने देखा कि उनसे खून निकल रहा है। फतहपुरमें गांधीजीके यजमान मौलवी इब्राहीम थे, जो अपने ढंगके अनोखे आदमी थे। पिछले पचास बरससे वे मुसलमानोंको समझा रहे थे कि जिन धन्धोंको "नीची जाति" के समझ कर वे नहीं करते थे उन्हें अपनायें। मुसलमान मछली नहीं पकड़ते थे, इसलिए मौलवी इत्राहीस खुद मछली पकड़नेका धन्धा करने लगे। वे जुलाहेका काम नहीं करते थे, इसलिए मौलवीने करघे लगवा लिये और एक बुनाई-शाला खोल दी, जो बहुत लोकप्रिय हो गयी। मौलवी और उनके परिवारके लोगोंने गांधीजीके निवास-कालमें उन पर खूब प्रेम बरसाया और उनकी बड़ी सेवा की।

फतहपुरकी सायंकालीन प्रार्थनामें बहुतसे स्थानीय मुसलमान भी उपस्थित थे। दिनमें गांधीजीने मौलवी इब्राहीमसे पहले ही पूछ लिया था कि क्या प्रार्थना-सभामें रामधुन गाने पर कोई आपत्ति उठाई जायगी। मौलवीने उत्तर दिया कि रामधुन गाने पर कोई आपत्ति नहीं होगी। परन्तु मुसलमानोंको मृदंगकी संगत पर आपत्ति हो सकती है, क्योंकि सभा लगभग मस्जिदके सामने ही होगी। [मुसलमानोंमें कुछ संप्रदाय मस्जिदके सामने या उसके आसपास बाजे बजानेका विरोध करते हैं। वे अपने निग्रहपूर्ण धर्मके साथ बाजे-गाजेको असंगत मानते हैं। लेकिन मस्जिदके पास जो हिन्दू मंदिर हों उनमें तो घंटनाद तथा अन्य प्रकारके संगीतको पूजाका एक आवश्यक अंग माना जाता है । इसकी वजहसे बहुत बार दोनों पक्षोंकी अतिशय धर्मान्धताके फल-स्वरूप कौमी दंगे फूट पड़ते थे] " मैंने फौरन उनकी बात समझ ली और कुछ भी शिकायत किये बिना अपने उस साथीसे, जो यात्राकी व्यवस्था करता था, कह दिया कि रामधुनके साथ मृदंग न बजाया जाय । श्रोता-मंडलीका मुस्लिम भाग सभामें अन्त तक बैठा रहा। मौलाना इब्राहीमने . . . उसमें भाग लिया और कार्यक्रमके बारेमें स्नेहपूर्ण उद्गार प्रगट किये।" [गांधीजीका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, ९ जनवरी १९४७]

प्रार्थना-सभासे लौटते समय घनश्यामदास बिड़लाके घरेलू नौकर हरिरामको अपने सामने खड़ा देखकर गांधीजीको आश्चर्य हुआ। वह दिल्लीके बिड़ला-भवनमें गांधीजीका खाना बनाया करता था और उनकी सेवा किया करता था। घनश्यामदास बिड़लाने उसे नोआखालीमें गांधीजीकी सेवाके लिए भेजा था। परन्तु गांधीजीने कहा, "नहीं" और उसे वापस भेज दिया। बिड़ला बन्धुओं और उनके जैसे मित्रोंके लिए तो गांधीजीकी चिन्ता करना बिलकुल ठीक ही था, परन्तु ऐसी सहायता स्वीकार करना नोआखालीके उनके तपस्यामय कार्यक्रमके अनुरूप नहीं था।

अगले गांव दासपाड़ामें एक गरीब मुसलमानने पहले तो अपने मकानमें गांधीजीको ठहराना मंजूर कर लिया, लेकिन बादमें यह कह कर उसने अपनी लाचारी जाहिर की कि वह अपने मुसलमान भाइयोंको नाराज करनेका खतरा नहीं उठा सकता। उस रात गांधीजीने बंगालके मुख्यमंत्रीको एक पत्रमें लिखा, "यह मैं शिकायतके तौर पर नहीं लिख रहा हूं। मैंने तो

प्रिय और अप्रिय दोनों तरहके अनुभवोंकी नोआखालीमें आशा रखी थी। यह बात मैं आपके ध्यानमें इसलिए ला रहा हूं कि आप चाहें तो मुख्यमंत्रीके नाते नहीं, परन्तु एक मनुष्यके नाते जिस दिशामें आप ठीक समझें उस दिशामें अपने प्रभावका उपयोग कर सकते हैं। अगर आप यह समझ लें कि मैं यहां एक विशुद्ध शान्ति-मिशनमें लगा हुआ हूं और दोनों दलोंका समान मित्र हूं, तो आप तुरन्त ही ऐसा करेंगे।" [वही]

गांधीजीसे चंडीपुरकी एक प्रार्थना-सभामें पूछा गया: जब आप खुद सशस्त्र सैनिकोंके रक्षणमें चलते हैं तब दूसरोंसे हथियार छोड़नेके लिए आप कैसे कह सकते हैं? उन्होंने उत्तर दिया, यह सही है कि मैं सशस्त्र संरक्षणमें चलता दिखाई देता हूं, लेकिन इस मामलेमें मैं लाचार हूं। अगर बंगाल सरकार मेरी रक्षाके लिए पुलिस और सेनाके आदमी रखना अपना कर्तव्य समझती हो, तो मैं उसे रोक नहीं सकता। "आप मानें या न मानें, मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि मैं ईश्वरके सिवा और किसीको अपना रक्षक नहीं मानता। परमात्मा अन्तर्यामी है। वही इस बातका प्रमाण देगा।" [प्रार्थना-प्रवचन, ६ जनवरी १९४७] यह प्रश्न उनके मनको परेशान करता रहा। दासपाड़ा गांवमें सन्ध्याकी प्रार्थना-सभामें आधे दर्जनसे अधिक मुसलमान नहीं आये थे। गांधीजीको बताया गया कि गांवके मुस्लिस समुदायके मुख्य लोग अपने घर छोड़ कर चले गये हैं, क्योंकि उन्हें गांधीजीके साथ रहनेवाली सेनाका डर लगता है। कुछ स्थानीय मुसलमानोंने गांधीजीको कहला भेजा कि जब तक वे सशस्त्र रक्षणमें यात्रा करेंगे तब तक दोनों समुदायोंमें मेलजोल नहीं हो सकता। गांधीजीको भी उन लोगोंकी तरह सेना और पुलिसका अपने साथ मौजूद रहना पसन्द नहीं था, परन्तु उन्हें मुसलमानोंके रवैयेसे भी सन्तोष नहीं था। अपने प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने सुझाया, सरकार लोकमतके अनुसार काम करती है। इसलिए यह काम आपका है कि आप (स्थानीय मुसलमान) बंगाल सरकारके मंत्रि-मंडलको इसका भरोसा दिला दें कि आपके बीचमें आनेवाले मेरे जैसे एक यात्रीको आप कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकते; इसलिए मंत्रि-मंडलको सेना हटा लेनी चाहिये, क्योंकि उसका बना रहना स्थानीय मुसलमानोंके लिए बदनामीकी बात है। इसके फलस्वरूप अगर मंत्रि-मंडल सशस्त्र पुलिसको हटा ले, तो

इससे ज्यादा खुशीकी बात मेरे लिए और क्या हो सकती है? क्योंकि तब मैं किसी भी तरहकी रुकावटके बिना हर आदमीसे मिल सकूंगा। शहीद सुहरावर्दीको गांधीजीने लिखा:

> जब तक मैं सशस्त्र पुलिस या सेनाके पूरे संरक्षणमें घूमूंगा तब तक दोनों समुदायोंमें सच्ची मित्रता पैदा करनेके मेरे सारे प्रयत्न असफल ही रहेंगे। . . . सेनाका डर उन्हें मेरे पास आनेसे और शंका-निवारणके लिए तरह तरहके प्रश्न पूछनेसे रोकता है। उनकी दलीलमें मुझे कुछ बल दिखाई देता है। अगर दोमें से एक भी समुदाय सचमुच बहादुर होता, तो ऐसी दलील नहीं दी जाती। दुर्भाग्यसे दोनोंमें ही इस अत्यावश्यक मानव-गुणकी कमी है। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप स्थिति पर फिरसे विचार करें और आपको विश्वास हो जाय तो यह सेनाका संरक्षण हटा लें। मुझे इसकी जरूरत नहीं है। मुझे तो इससे परेशानी भी होती है और मेरी साधनामें इससे निश्चित रूपसे बाधा पड़ती है। अगर आप समझते हैं कि मेरे दृढ़ और स्पष्ट लिखित वचनसे आपकी मुश्किल दूर हो जायगी, तो आप जो भी मसौदा मेरे हस्ताक्षरके लिए भेजेंगे उस पर मैं अवश्य विचार करूंगा। यह न हो सके तो मेरा सुझाव है कि आप ऐसी घोषणा कर दें कि जिस प्रदेशमें होकर मैं गुजरूं उसके मुसलमान मेरी सलामतीके बारेमें आपको कोई सन्तोषजनक आश्वासन दे दें, तो आप सशस्त्र सेनाका संरक्षण हटा लेंगे। यदि ऐसा हो जाय तो वह एक भव्य कार्य होगा। मैं अवश्य उसकी कदर करूंगा और उसका चारों ओर लोगों पर अच्छा असर पड़ेगा। [गांधीजीका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, ९ जनवरी १९४७]

कार्यकर्ताओंने कुछ स्थानीय लोगोंकी सहायतासे जगतपुरका रास्ता झाड़-बुहार कर साफ कर दिया था, परन्तु कुछ मुसलमानोंने रातको उस पर गोबर और पाखाना छिड़क कर उसे गन्दा कर दिया था ! जब गांधीजीका ध्यान इस ओर दिलाया गया, तो वे बोले: “मुझे यह अच्छा लगता है। इससे मेरी कोई हानि नहीं होती और उन लोगोंको अपने मनका गुबार निकालनेका मौका मिलता है !” गांधीजीकी यात्रामें अक्सर इसी प्रकारका “स्वागत” उनके भाग्यमें लिखा था।

जगतपुरमें तीसरे पहर स्त्रियोंकी एक सभा हुई। एक स्त्री दंगोंमें मार डाले गये अपने पतिकी अधजली जांघकी हड्डी लेकर आई थी। वह उसे एक पवित्र अवशेषके रूपमें अपने साथ रखती थी। गांधीजीने उससे कहा, मैं नहीं चाहता कि स्वर्गीय आत्माओंका उनके नाशवान अवशेषोंके साथ तादात्म्य साधा जाय। और उसे समझा-बुझा कर वह हड्डी उन्होंने फिकवा दी। कुछ स्त्रियां रोते रोते अपनी दुःखभरी कहानियां सुना रही थीं। गांधीजीने यह कहकर उन्हें सान्त्वना दी कि शोक करना व्यर्थ है, क्योंकि कितना ही शोक किया जाय तो भी मरे हुए लोग जीवित नहीं हो सकते। उन्होंने स्त्रियोंसे कहा कि रामनास ही सारे दुःख और शोकका रामबाण उपाय है। मेरे पास इसके सिवा दूसरा कुछ तुम्हें देनेके लिए नहीं है। गांधीजीकी अलौकिक स्वस्थता और धैर्यमें एक अनोखी प्रेरणा थी। शोकाकुल स्त्रियों पर उसका शान्ति और शक्ति देनेवाला अद्‌भुत प्रभाव हुआ, जो दया अथवा सहानुभूतिके उत्तम शब्दोंसे भी नहीं हो सकता था।

मुसलमानोंकी एक मंडलीने गांधीजीसे वाद-विवाद करनेकी कोशिश की। परन्तु उन्होंने यह चुनौती स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया और कहा, नोआखालीमें मेरा उद्देश्य शब्दोंकी अपेक्षा कार्योंके द्वारा बोलनेका है। जब तक मैं अपने सेवाकार्योंमें अटल रह सकता हूं, तब तक मुझे तर्कमें पराजय स्वीकार करनेकी परवाह नहीं हैं। सेवाकार्यमें मैं कभी हार नहीं मानूंगा।

*

गांधीजीने मुख्यमंत्रीको सेनाका संरक्षण हटा लेनेके लिए जो अनुरोध किया था, उसका कोई फल नहीं निकला । सशस्त्र संरक्षणके स्थान पर दूसरा कोई परिणामकारी उपाय खड़ा करनेके लिए स्थानीय मुसलमानोंका लोकमत तैयार करनेकी दृष्टिसे जरूरत इस बातकी थी कि सरकारका संपूर्ण हृदय-परिवर्तन हो और इस ध्येयको सिद्ध करनेमें वह अपना सारा प्रयत्न लगा दे। परन्तु बंगालके मुख्यमंत्री अभी इसके लिए तैयार नहीं थे। यह स्थिति आनेके पहले अनेक कष्ट सहन करना जरूरी था।

गांधीजी विचारमग्न होकर बोले : "मैं चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा देख रहा हूं। जहां तहां असत्य ही भरा हैं। एक तरफ बिहारमें दावानल फूट पड़ा है। कहीं भी मेलजोल नहीं; कहीं भी एकता नहीं। इस स्थितिमें मुझे टिके रहना है । कब तक टिका रहूंगा, यह नहीं कह सकता । रोज १०-११ बजें रातको सोता हूं और २-२।। बजे उठ जाता हूं और काम करता हूं। आराम तो जरा भी नहीं मिलता। फिर भी ईश्वर कैसे टिका रहा है, इसका मुझे आश्चर्य होता है !" [मनु गांधी, 'एकला चलो रे', अहमदाबाद, १९५४, पू० ७२]

जब उन्होंने अपने चारों ओरकी परिस्थितिका विचार किया तो उन्हें फिरसे यह लगने लगा कि नोआखालीका उनका मिशन जल्दी ही समाप्त होनेवाला नहीं है। वे बोले, "इस समय मुझे ऐसे चिह्न दिखाई नहीं देते कि हिन्दू-मुसलमानोंका वैमनस्य बिलकुल मिट जायगा। वह तभी मिटेगा जब मुझमें पूर्णता आ जायगी। परन्तु अभी तक रामनाम मुझमें इतना हृदयगत हो गया है, ऐसा मेरा दावा नहीं हैं। उस दिशामें मेरा प्रयत्न जरूर है।"

३

११ जनवरीको गांधीजी २ बजे रातसे जागते रहे और प्रातःकाल लामचरके लिए रवाना होनेसे पूर्व अन्तिम क्षण तक काममें लगे रहे। रास्तेमें उन्हें एक कठिन शंको (पुल) पार करना पड़ा। वे लामचर पहुंचे तब तक देर हो चुकी थी। बहुतसे स्थानीय मुसलमान, जिनमें कुछ स्त्रियां और बच्चे भी थे, एक चौराहे पर गांधीजीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने नारियलोंसे गांधीजीका स्वागत किया। उनमें से कुछ तो लामचर तक उनके साथ गये।

गांधीजीने अपनी यात्रा आरम्भ की तबसे जो भी मुसलमान रास्तेमें मिले उसे सलाम करनेका नियम उन्होंने बना लिया था, फिर भले उनके सलामका जवाब मिले या न मिले । लामचर जाते हुए उन्हें पहली बार यह देखकर सन्तोष हुआ कि सारे मुसलमानोंने उनके सलामका उत्तर दिया। केवल नोआखालीके ही नहीं परन्तु अन्य भागोंके मुसलमान भी, जिन्होंने पहले गांधीजीकी नोआखालीकी प्रवृत्तिको अविश्वास और सन्देहकी दृष्टिसे देखा था, अब उसके महत्त्वको समझने लगे थे और उसकी कदर करने लगे थे। ऐसे ही एक मुस्लिम नौजवानने, जो

अलीगढ़ विश्वविद्यालयकी मुस्लिम लीगका संयुक्त मंत्री था, ६ जनवरी, १९४७ को गांधीजीको लिखा:

> यह आपकी बड़ी कृपा है कि इतने कमजोर स्वास्थ्यके होते हुए भी आप कौमी एकताके लिए यह यात्रा कर रहे हैं। हमारे आजादीके प्रिय लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए देशकी दोनों बड़ी कौमोंकी एकता एक आवश्यक शर्त है, चाहे पाकिस्तान बने या अखंड भारत रहे। जो लोग इसके लिए काम कर रहे हैं, वे बेशक महान सेवा कर रहे हैं।
>
> मेरे अन्तरतममें भी यह इच्छा है कि मैं आपके साथ नोआखालीकी पैदल यात्रा करूं और एकता स्थापित करनेके व्यावहारिक पाठ सीखूं। आज ऐसे बहुत लोग हैं, जो हिल्दू-मुस्लिम एकताका राजनीतिक दलबन्दीसे ऊपर उठकर विचार नहीं करते। एकताकी प्राप्तिमें सच्ची रुकावट यही है। वे नहीं जानते कि हिन्दू-मुसलमानोंकी मित्रता अखंड हिन्दुस्तान या पाकिस्तानकी चर्चा करके नहीं, बल्कि किसी और ऊंची और पवित्र वस्तुकी अर्थात् आजादीकी चर्चा करके ही सिद्ध की जा सकती है। भले हम अखंड हिन्दुस्तान या पाकिस्तानको प्रसन्द न करें, तो भी इस उप-महाद्वीपकी स्वतन्त्रताकी इच्छा तो सभीको होनी चाहिये।

परन्तु गांधीजीका उत्तर वही था, जो ऐसी सब प्रार्थनाओंका होता था : जब तक खुद मुझे प्रकाश दिखाई न दे तब तक मैं किसीको इस यात्रामें शरीक नहीं करना चाहता।

लामचरकी सायंकालीन प्रार्थनामें जाते समय गांधीजीका ध्यान तालाबसे निकाली गई सड़ी हुई लाशोंके एक ढेरकी ओर दिलाया गया। ये अधिकतर उन व्यक्तियोंकी लाशें थीं, जो कारपाड़ामें उपद्रवके समय मारे गये थे। उनके तालाबमें होनेकी बात सबको मालूम थी, परन्तु इसका जिक्र कानाफूसियोंमं ही होता था। गांधीजीके पहुंचने पर स्थानीय लोगोंमें साहस आया और उन्होंने पुलिसको इसकी सूचना दे दी। तब वे लाशें बरामद की गईं। गांधीजीने इस भयानक खोजमें कोई दिलचस्पी नहीं ली। यह पूछे जाने पर कि क्या वे लाशोंको अधिक ध्यानसे देखना चाहेंगे, उन्होंने कहा: “जो लोग मर गये हैं उनका विचार करना व्यर्थ है। हमें तो यह प्रबन्ध करना

है कि लोग भविष्यमें इस तरह न मरें।" परन्तु जो लोग साहस-पूर्वक और कायरता अथवा धर्म-परिवर्तनकी अपेक्षा मृत्युको अधिक पसन्द करके मर गये थे, उन लोगोंके व्यक्तिगत इतिहासको जाननेमें गांधीजीको बड़ी गहरी दिलचस्पी थी । दो आदमी बन्दूककी गोलियोंके घावसे लड़ते लड़ते मरे थे । दूसरे दो वैष्णव थे, जिनके पास कोई सांसारिक सम्पत्ति नहीं थी । उनमें से एकको जब मृत्युकी धमकीके साथ इस्लाम स्वीकार करनेको कहा गया, तो उसने यह कहकर इनकार किया, "मेरी इस जिह्वाने हरिनाम व्यर्थ ही नहीं लिया है।" जिस मन्दिरमें वह काम करता था, उसको आग लगा दी गई। वह बाहर आनेका प्रयत्न किये बिना ही मंदिरमें भस्म हो गया। दूसरे वैष्णवने जब अपना धर्म बदलना अस्वीकार कर दिया, तो उसे तेज हथियारसे काट दिया गया।

शामकी प्रार्थना-सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने यह आशा प्रगट की कि पुरानी समाज-व्यवस्थाकी राखमें से एक नयी और अधिक अच्छी समाज-व्यवस्था जन्म लेगी, जिसका आधार आर्थिक न्याय और मानव-मूल्योंका आदर होगा । उन्होंने अंग्रेजोंके जमानेसे पहलेकी भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थाका विस्तृत वर्णन करते हुए बताया कि वह व्यवस्था एक ऐसी बांधनेवाली शक्ति थी, जो विभिन्न समुदायोंको एकत्र रखकर एक सम्मिलित सहकारी प्रयत्नमें लगाये रखती थी। एक समय ऐसा था जब प्रत्येक गांवमें कारीगरोंकी पूरी टोली होती थी और वह किसानोंकी सेवा करती थी। किसान ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थाका आकर्षण-केन्द्र होता था । कीमतें वस्तुओंके रूपमें चुकाई जाती थीं और उत्पादन लोगोंकी जरूरतको ध्यानमें रखकर किया जाता था । अलग अलग उद्योग-धन्धे परस्परावलम्बनके बन्धनसे बंधे होते थे और सब मिलकर एक सम्पूर्ण घटक बनाते थे । **इस व्यवस्थामें सब कौमें पूरी तरह साझेदार होती थीं। उसमें कोई मनुष्य अन्न, वस्त्र और आश्रयविहीन नहीं रह सकता था** । सरकारका पहला कर्तव्य यह है कि उस व्यवस्थाको फिरसे स्थापित करनेमें सहायता दे और इसके लिए जिन कारीगरोंका जीवन अस्तव्यस्त हो गया है उन्हें मकान और औजार मुहैया करे और अपने अपने उद्योग-धन्धे चलानेके लिए आवश्यक कच्चा मार जुटा दे । इस प्रकार गांवोंमें अलग अलग उद्योग-धन्धोंमें गे हुए भिन्न भिन्न लोगोंसे फिरसे सहयोगका एक नया सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। आज तो ये लोग

ऐसा जीवन जी रहे हैं, जिसका संयोजन न तो एक-दूसरेके साथ है और न पड़ोसके गांवोंके साथ है।

निराश्रितोंके समक्ष भाषण देते हुए गांधीजीने कहा, मैं लोगोंसे साहसी बननेको कहता रहा हूं। इसका मतलब केवल बदमाशोंका सामना करनेका साहस ही नहीं है। मैं जो साहस पैदा करना चाहता हूं, वह ज्यादा ऊंचे दर्जेका है। इस जिलेके निवासियोंको, जो ऐसे कटु अनुभवसे गुजरे हैं, अब जहां कहीं अनिवार्य हो गया हो वहां जीवनके संपूर्ण आर्थिक पुनर्गठनके कष्टोंका सामना करनेके लिए कमर कस लेना चाहिये।

दंगोंके शिकार बने एक भाईके घर जब गांधीजी गये, तो घरके मालिकने उनका यह कह कर स्वागत किया कि अब तक हमने पत्थरकी मूर्तियां पूजी हैं, परन्तु अब हम मानवके रूपमें देवताका दर्शन कर रहे हैं ! गांधीजी किसी भी रूपमें मनुष्यका देवताके रूपमें पूजा जाना पसन्द नहीं करते थे, इसलिए उन्होंने उस भाईको हलका-सा उलाहना देते हुए कहा, पत्थरके देवता मनुष्यसे हमेशा अच्छे होते हैं, क्योंकि कमसे कम वे कोई दुष्टता तो नहीं करते !

दूसरे दिन कारपाड़ामें कुछ कार्यकर्ता गांधीजीसे मिले । वह सुशीला पैका केन्द्र था। उन्होंने पूछा, हालके हत्याकांडके बाद लोगोंका जीवन रहने लायक बनानेके लिए हमें कया करना चाहिये? गांधीजीने महत्त्वके क्रममें पहला स्थान पीनेका स्वच्छ पानी जुटानेके प्रश्नको दिया और इस मामलेमें सेनाका उदाहरण अनुसरणके लिए उनके सामने रखा । उन्होंने तीन सीधे-सादे और सस्ते तरीके सुझाये, जिनसे गांवोंको पीनेका साफ पानी निश्चित रूपसे मिल सकता था। पहला, तालाबोंसे कुछ अन्तर पर—लेकिन तालाबोंसे कुछ नीची सतह पर—पानीके खड्डे खोदे जायं । तालाबोंका पानी इस तरह उनके पेंदेमें से झिर कर और शुद्ध होकर इन खड्डोंमें आयेगा—इसमें तालाबोंका पेंदा कुदरती छलनीका काम करेगा; दूसरा, प्रत्येक घरमें रेत और कोयलेकी धरमें बनाई हुई कृत्रिम छलनी ऊगाई जाय; तीसरा, जहां कहीं संभव हो नलकूप लगा लिये जायं । सामूहिक उपयोगके लिए सीधी-सादी और सस्ती छलनीकी व्यवस्थाका काम सतीशचन्द्र दासगुप्तको सौंपा गया। उन्होंने काजिरखिलमें अपनी छावनीके लिए जो वर्कशॉप

बनाया था, उसमें ऐसी एक छलनी तैयार की जिससे ५० रुपयेके भीतर लगभग २५ परिवारोंकी शुद्ध पानीकी आवश्यकता पूरी हो सकती थी।

गांधीजीका अगला पड़ाव शाहपुरमें था। वहां मुसलमान काफी बड़ी संख्यामें उनसे मिलने आये और प्रार्थनाके समय भी उपस्थित रहे । परन्तु वे रामधुनके समय चुप रहे। बहुतसे हिन्दू भी प्रार्थना-सभामें तो आये थे, परन्तु उन्होंने प्रार्थनामें भाग नहीं लिया। कया इसका कारण मुसलमानोंका डर था, जो गांधीजीके रहते हुए भी नहीं मिटा ? भारतको जो व्याधि सता रही थी और नोआखाली जिसका एक लक्षण था, उसके मूल कारणको गहराईमें जाकर गांधीजीने अपने प्रवचनमें कहा, इस व्याधिका कारण सच्ची शिक्षाका अभाव है या यों कहिये कि लोगोंकी कुशिक्षा है। मुझे इसका एक यही इलाज मालूम है कि **जनताको सामूहिक पैमाने पर सच्ची शिक्षा देनेका विशाल प्रयत्न किया जाय । और वह सहकारिताके आधार पर साधारण दस्तकारियों और गृह-उद्योगोंके प्रचार द्वारा ही उत्तम रूपमें किया जा सकता है**। इससे बेकारी, गरीबी और अज्ञानको दूर करनेमें और लोगोंमें परस्परावलम्बन तथा समान हितोंकी भावना पैदा करनेमें जितनी मदद मिलेगी उतनी और किसी चीजसे नहीं मिल सकती।

दूसरे दिन सुबह भटियालपुर पहुंचनेमें गांधीजीको लगभग ८५ मिनिट लगे। रास्तेमें वे ४ मुसलमानोंके घर गये। इनमें से एक घर वह था जहां मेरे साथ उस क्षेत्रमें पहुंचने पर पहली दुर्घटना हुई थी। और दो मकान मशहूर अपराधियोंके थे। तीसरे स्थान पर मुसलमान मालिकने गांधीजीसे कहा कि मनु और सुशीलाको जनानेमें स्त्रियोंसे मिलनेके लिए भेज दिया जाय, क्योंकि वे परदेसे बाहर नहीं आ सकतीं। गांधीजीने उससे पूछा, मैं अगर उनसे मिलूं तो क्या आपको कोई एतराज होगा ? मुसलमान भाई पहले तो संकोचमें पड़ गये, परन्तु अन्तमें वे राजी हो गये और गांधीजीको बीचमें बैठाकर अपने परिवारका एक फोटो भी उन्होंने खिंचवा लिया !

भटियालपुरमें मुसलमानों और हिन्दुओंकी स्थानीय शान्ति-समिति बनाई गई थीं। समितिके मुसलमान सदस्योंने एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। उसमें जो घटनाएं उस क्षेत्रमें हुई थीं उन पर खेद प्रकट किया गया था और उनकी निन्दा की गई थी और जो लोग

मजबूर होकर वहांसे चले गये थे उन्हें वापस आकर अपने पुराने घरोंमें फिरसे बस जानेमें हर तरहसे मदद देनेका वचन दिया गया था। इस प्रतिज्ञाके अनुसार समितिके मुसलमान सदस्य दंगोंमें लूटपाट करनेवालोंके पास और जिनके अधिकारमें लूटका माल था उनके पास पहुंचे । परन्तु लूटी हुई संपत्तिकी कुछ छोटी छोटी चीजें ही लौटानेके लिए सामने लाई गईं; इससे लूटका बड़ा हिस्सा वापस नहीं मिल सका । इसके दूसरे कारणोंके साथ एक कारण यह भी था कि लूटनेवालोंमें दलबन्दी हो गई थी।

भटियालपुरमें गांधीजी जहां ठहरनेवाले थे उस बाड़ीका मन्दिर उपद्रवके दिनोंमें नष्ट कर दिया गया था और परिवारके परलोकवासियोंके अवशेषों पर बनी समाधियां तोड़फोड़ कर ऐसी बना दी गई थीं कि वे मुसलमानोंकी कब्रों जैसी दिखाई दें। शांति-समितिके कुछ सदस्योंने स्वेच्छासे, गांधीजीके आगमनका खयाल करके, फिरसे समाधियोंको मूल रूप देनेका वचन दिया। बादमें वे लोग गांधीजीसे उस समय मिले जब कुल-मन्दिरमें गांधीजीने मूर्तिकी पुनर्स्थापनाका संस्कार किया। गांधीजीके सामने ही उन्होंने अपनी यह प्रतिज्ञा दोहराई कि भविष्यमें अपने प्राण देकर भी वे अपने हिन्दू भाइयोंके प्राणों, सम्मान और धर्मकी रक्षा करेंगे। दंगोंके बाद नोआखालीमें इस प्रकारकी यह पहली ही घटना थी।

शामकी सैरके समय मुस्लिम नौजवानोंकी एक मंडली, जिसमें अधिकांश विद्यार्थी थे, गांधीजीसे मिली और उनसे कई सवाल पूछे। उनमें से एक सवाल यह था, “क्या यह बेहतर नहीं होगा कि पाकिस्तानको स्वीकार करके सारे भारतके लिए आजादी हासिल कर ली जाय ?”

गांधीजीने जवाब दिया, “जब तुम पहले पाकिस्तान कायम करनेका सोचते हो तब किसी तीसरी सत्ताकी सहायतासे उसे हासिल करनेकी बात सोचते हो । जब मैं भारतकी आजादीके बारेमें सोचता हूं तो किसी विदेशी सहायताके बिना हमारी अपनी ही भीतरी शक्तिके आधार पर आजादी लेनेकी बात सोचता हूं। एक बार सारे देशके लिए आजादी हासिल कर ली जाय, तो फिर हम पाकिस्तान या अखंड हिन्दुस्तानके बारेमें फैसला कर सकते हैं।”

“हालके दंगोंके बाद न तो पाकिस्तान है, न शान्ति है। इस समस्याका हल क्या है?”

"उसीकी तो मैं खोज कर रहा हूं। ज्यों ही मुझे पता लग जायगा त्यों ही दुनियाको भी वह मालूम हो जायगा।"

प्रार्थना-सभामें गांधीजी मुसलमान स्त्रियोंमें प्रचलित परदेके रिवाजके बारेमें बोले और उनसे कहा, यह बहुत पुराना रिवाज हो गया है। इसे छोड़ देना चाहिये। सच्चा पर्दा दिलका होता है और उसीसे स्त्रीकी सच्ची रक्षा होती है। मेरी रायमें यह पैगम्बरकी शिक्षाके भी अनुकूल है। इस मित्रता और सद्भावपूर्ण सलाहके लिए न केवल नोआखालीके बल्कि बम्बई और मद्रास जैसे दूर दूरके स्थानोंके मौलवी-मुल्लाओंने और दूसरे मुस्लिम प्रतिक्रियावादियोंने चुन चुन कर गांधीजीको गालियां दीं। गांधीजीके इस कामको एक काफिरकी अनधिकार चेष्टा और इस्लामी परम्पराओंको भ्रष्ट करनेवाला प्रयत्न बताया गया !

४

दूसरे दिन सुबह जब गांधीजीने नारायणपुरके लिए अपनी यात्रा फिर शुरू की तब जाड़ेकी ओस टपकाती झाड़ियों पर गहरा सफेद कोहरा छाया हुआ था। भटियालपुरके अपने यजमानोंसे विदा लेनेसे पहले गांधीजी एक बार फिर उस मन्दिरमें गये, जिसे उन्होंने पिछले दिन फिरसे खोला था। घरकी मालकिन पहलेसे ही वहां मौजूद थी। परन्तु वह आराधनामें इतनी लीन थी कि उसे गांधीजीके आनेका पता ही नहीं चलका। वे उसकी आराधनामें विघ्न डाले बिता चुपचाप चले आये।

८॥ बजे मंडली नारायणपुर पहुंची। वहां उनकी यात्रामें दूसरी बार किसी स्थानीय मुसलमानने गांधीजीको अपने यहां ठहराया। गांधीजी पड़ावके स्थान पर पहुंच कर काम आरम्भ करनेसे पहले अपने पैर धोया करते थे। पैरोंको साफ करनेके लिए वे एक पत्थरका टुकड़ा काममें लेते थे। उस दिन नारायणपुर पहुंचने पर उनके सामानमें वह पत्थर नहीं मिला। रास्तेमें वे एक जुलाहेकी झोंपड़ीमें पैरोंको गरम पानीसे धोनेके लिए ठहर गये थे, क्योंकि उनके नंगे पैर सर्दीसे ठिठुर गये थे। मनुने उस पत्थरको वहीं छोड़ दिया होगा। परन्तु कर्तव्य-पालनमें छोटीसी भूल भी गांधीजीकी दृष्टिमें तो "बड़ी भूल" थी। मनुको वापस जाकर जहां कहीं उसने पत्थर छोड़ा

हो वहांसे ढुंढकर उसे लाना था। रास्ता एक निर्जन और घने जंगलमें होकर जाता था, जहां बड़े लोग भी अक्सर रास्ता भूल जाते थे। गुंडोंका डर भी था ही । कांपते हुए मनुने पूछा, क्या मैं अपने साथ रक्षाके लिए स्वयंसेवक ले जा सकती हूं ? बनावटी कड़ाईके साथ गांधीजीने उसे अकेले ही जानेकी आज्ञा दी।

जब मनु वहां पहुंची उस समय कुटियामें घरकी एक बुढ़िया ही मौजूद थी। उसने पत्थरको आंगनमें पड़ा देखकर बाहर फेंक दिया था। थोड़ी खोजके बाद वह मिल गया। जब उस कीमती पत्थरको लेकर बेचारी लड़की लौटी तो वह थक कर चूर हो गई थी और उसे मूख भी लग आई थी। गांधीजीके सामने उस पत्थरको रखते हुए वह रो पड़ी। गांधीजी हंस दिये। यह तो हद हो गई ! गांधीजीने उसकी परेशानी देखी और कोमलतासे कहा, “तू जिस दिन मेरे पास आई थी उसी दिन मैंने तुझे सावधान कर दिया था कि इस यज्ञमें मेरा साथ देना कोई हंसी-खेल नहीं है। तू अब भी वापस जा सकती है। इस पत्थरकी कृपासे तुझे इतनी जल्दी कड़ी परीक्षासे गुजरनेका अवसर मिल गया।”

उन्होंने आगे कहा, “अब तेरा शायद भोजन करनेका मन हो रहा होगा। करना चाहे तो तू कर सकती है। परन्तु मैं तेरी जगह होता तो हरे नारियलका दूध ही लेता और थोड़ी देर आराम करता। जब आदमी थक जाता है तो वास्तवमें उसे आवश्यकता भोजनकी नहीं, आरामकी होती है।” उसने गांधीजीकी सलाहकी कदर तो की, परन्तु एक बार तो वह प्रकृतिके ही वश हो गई और डट कर खा लिया !

शामको गांधीजीने इस घटनाकी फिर चर्चा की: “मैं नोआखालीकी स्त्रियोंसे कहता हूं कि वे अचल रहकर सब खतरोंका सामना करें। इसलिए मैंने अपने आपसे कहा, मैं अपने ही घरसे इसका प्रारम्भ क्यों न करूँ? मैं तेरी अपेक्षा खतरेको अधिक जानता था। यदि कोई गुंडा तुझे उठाकर ले जाता और तू साहसपूर्वक मृत्युका आलिंगन करती, तो मेरा हृदय हर्षसे नाच उठता। परन्तु यदि भीरुता या भयके मारे तू खतरेसे मुंह मोड़ लेती अथवा भाग जाती, तो मुझे अपमान और दु:खका अनुभव होता। जब मैं तुझे रोज रोज “एकला चलो रे” वाला गीत गाते सुनता था, तो

मनमें सोचता था कि कहीं यह निरी शेखी ही तो नहीं है। आजकी इस घटनासे तुझे कल्पना हो जानी चाहिये कि मैं जिन्हें सबसे अधिक प्रेम करता हूं उनकी परीक्षा लेनेमें कितना कठोर हो सकता हूं।" [मनु गांधीके साथकी बातचीतमें, १५ जनवरी १९४७]

गांधीजीकी अहिंसा कोई तरंगी भावुकता नहीं थी। जो लोग उनकी देखरेखमें रहते थे उनके भलेके लिए जरूरत पड़ने पर वे अत्यन्त हृदयहीन "अत्याचारी" बन सकते थे। एक अवसर पर, जब मनु सख्त जुकाममें पड़ी हुई थी, उसने गांधीजीसे कहा, "जब कातनेके लिए आपको चरखा तैयार करवाना हो तब मुझे जगा लीजियेगा।" परन्तु गांधीजीने उसे नहीं जगाया और स्वयं ही चरखा तैयार कर लिया। बादमें उन्होंने मनुको समझाया, "यह न समझ लेना कि मुझे तुझ पर दया आ गई। अगर तू यह जानना चाहती हो कि मैं कितना हृदयहीन हो सकता हूं, तो अपने शरीरको फौलादके जैसा मजबूत बना ले। तूने कभी लुहारको काम करते देखा है? वह एक कच्चे लोहेके टुकड़ेको धन पर हथौड़ेकी जोरदार चोटें लगा लगा कर पीठता है और फिर उसकी कोई सुन्दर उपयोगी वस्तु बना लेता है। मैं भी लुहारकी तरह हृदयहीन हो सकता हूं।"

दो दिन बाद गांधीजीने अपने रिवाजके अनुसार एक नौजवान मुस्लिम साथीको, जो उनकी नोआखाली-यात्रामें शरीक हुआ था, दीक्षा देनेका निश्चय किया। उसे पहले पाखाना-सफाईका काम और बादमें रसोईका काम देकर वे दीक्षित करना चाहते थे। नौजवानने पहले कभी पाखाना-सफाईका काम नहीं किया था। इसलिए वह वीरतासे अपने नये कामके साथ जूझा तो सही, पर उसे सफलता नहीं मिली और इस कामके प्रति उसकी घृणा बढ़ती गई । मनुको उस पर दया आई, परन्तु उसने समझदारीसे काम लेकर उसे कोई सहायता नहीं दी। जब मनुने गांधीजीको यह घटना सुनाई, तो उन्होंने कहा, तूने अच्छा किया कि उसकी सहायता नहीं की; अन्यथा मैं तेरी खबर ले लेता। "ऐसी दया सच्चे अर्थमें दया नहीं होती, बल्कि निर्दयता होती है। जब वह भाई अपनी दुर्बलताको जीतनेके लिए संघर्ष कर रहा था तब उसके निश्चयको झूठी दया दिखाकर कमजोर करना उसकी निश्चित कुसेवा होती। जो सर्जन पीब पड़े हुए एपेंडिक्सके साथ आनेवाले रोगीके एपेंडिक्सका ऑपरेशन करनेसे डरता है, वह अपने रोगीको

निश्चित ही मृत्यु के मुखमें भेजता है। रोगीकी जिन्दगी बचानी हो तो उसे तत्परता और निर्दयतासे काम लेना होता है। मैं उसी प्रकारका सर्जन हूं।"

*

गांधीजीने नारायणपुरके अपने मुस्लिम यजमानसे मुसलमानी ढंगसे 'खुदा हाफिज' कह कर विदा ली। स्थानीय मुसलमानोंने उन्हें 'नमस्कार' करके विदा दी और उसके जवाबमें गांधीजीने उन्हें 'सलाम' कहा।

रामदेवपुर-दसधरियाका रास्ता और गांवोंसे लम्बा था। वहां कनु गांधीको रखा गया था। रास्तेमें कई जगहों पर मुसलमानोंकी टोलियां गांधीजीके इन्तजारमें खड़ी थीं। कुछ स्थानों पर लोगोंने हरे पत्तोंके स्वागत-द्वार खड़े कर लिये थे। स्त्रियोंने आरती उतार कर गांधीजीका स्वागत किया और उनके ललाट पर शुभ लाल तिकक लगाया। धनवान हिन्दू भूस्वामी सुरेन्द्रताथ बसुके, जिनका दंगोंके दिनोंमें वध कर दिया गया था, मुसलमान मैनेजरने फलोंसे गांधीजीका स्वागत किया। गांधीजीने दोनों समुदायोंके बच्चोंको फल बांट दिये और कहा: "तुम्हारा ही प्रेम मुझे सबसे अधिक चाहिये।"

नारायणपुरमें एक परिवारके मुस्लिम बुजुर्गोंने गांधीजीसे कहा था कि जनानेमें चलकर आप स्त्रियोंसे मिल लें। लेकिन स्त्रियां परदेसे बाहर आईं ही नहीं। इस पर गांधीजीने वहांकी हिन्दू स्त्रियोंसे कहा कि चूंकि मुसलमान स्त्रियां अपने सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी पिछड़ेपनके कारण बाहर खुलेमें आनेमें संकोच करती हैं, इसलिए यह काम हिन्दू स्त्रियोंका है कि उनके पास जाकर उनमें हिलमिल जायं, क्योंकि वे इस बातमें अधिक आगे हैं। हिन्दू स्त्रियां मुसलमानोंसे डरती थीं। गांधीजीने उनसे कहा, यदि तुम्हें सचमुच मुसलमान स्त्रियोंसे हमदर्दी हो, तो तुम्हें उनका और अपना अविश्वास दूर करना चाहिये। प्रेमका डरके साथ कोई मेल नहीं है।

*

जबसे गांधीजी नोआखाली पहुंचे थे तभीसे वहांके मुसलमान मियां साहब गुलाम सरवरकी रिहाईकी मांग कर रहे थे। कोई मुसलमान या हिन्दू इस मांगका खुला विरोध करनेका साहस नहीं करता था, यद्यपि एकांतमें हिन्दू और कुछ मुसलमान भी बिलकुल दूसरी ही बात करते थे। जेलमें बैठे बैठे भी वह तानाशाह लोगोंमें कितना डर पैदा कर सकता था, इसका यह एक प्रमाण था। सच तो यह है कि यद्यपि वह स्वयं हवालातमें बन्द था, परन्तु उसका संगठन जोरोंसे अपना काम कर रहा था । गांधीजीने इसका प्रमाण शाहपुर और दूसरे स्थानोंमें देखा था। डॉ. अमिय चक्रवर्ती उससे हवालातमें मिले थे और उन्होंने देखा था कि उसे अपनी काली करतूतों पर बिलकुल पश्चात्ताप नहीं है । उससे मिलनेके बाद अमिय चक्रवर्तीने गांधीजीको एक पत्रमें लिखा: "नीति अनीतिकी कोई बाधा उसके रास्तेमें नहीं आती . . . हालांकि अपनी बातचीतमें उसने कुछ आश्चर्यजनक आंशिक रहस्योद्घाटन किये । . . . उसने नोआखालीकी हिन्दू स्त्रियोंके बारेमें और . . . बड़ी संख्यामें सुशिक्षित और प्रभावशाली हिन्दुओंके अभी तक नोआखालीमें सुख-चैनसे जीनेके बारेमें कुछ अत्यन्त घृणित बातें कहीं—जिनमें उनकी बदनामी करने और उन्हें धमकी देनेके सीधे इरादेका परोक्ष संकेत था। . . . उसकी बातोंमें दूसरे संकेत भी थे।"

गुलाम सरवरकी रिहाईके आन्दोलनके सम्बन्धमें १२ मुसलमानोंका एक शिष्ट-मण्डल रामदेवपुरमें गांधीजीसे मिलने आया। उन लोगोंने वही दलील की : नोआखालीमें बहुत बड़ी बरबादी नहीं हुई। अगर मियां साहबको छोड़ दिया जाय, तो वे आसपासके इलाकेमें "सच्ची शांति" कायम कर देंगे। गांधीजी अपने "भयंकर नम्र" ढंगसे कठोर लोगोंके साथ बिलकुल कठोर बन सकते थे । उन्होंने इन लोगोंसे कहा कि मुझे इस बात पर भरोसा नहीं होता, क्योंकि मेरे पास गुलाम सरवरके रवैयेके बारेमें अधिकृत रिपोर्टें हैं । मैं आपकी इस रायसे भी सहमत नहीं हो सकता कि नोआखालीमें बहुत बरबादी नहीं हुई, क्योंकि मुझे तो जो भयंकर बरबादी की गयी है उसके प्रमाण रोज रोज देखनेको मिल रहे हैं।

गांधीजीसे पूछा गया कि जब हिन्दू लोग अपराधियोंकी गिरफ्तारी और उन पर मुकदमा चलानेके लिए लगातार आन्दोलन कर रहे हैं, तब दोनों समुदायोंमें मित्रतापूर्ण संबंध कैसे स्थापित किये जा सकते हैं? गांधीजीने उत्तर दिया, एक सुधारकके नाते किसी हत्यारेको भी दंड दिलानेमें

मेरी दिलचस्पी नहीं है। मैं तो कानूनके दंडके बजाय अन्तरात्माका दंड चाहता हूं। परन्तु सरकारकी स्थिति दूसरी होती है। वह जाने हुए अपराधियोंको और जो लोग घृणित अपराधोंके दोषी हैं उन्हें तब तक दंड दिये बिना नहीं रह सकती, जब तक कि इस बातकी पूरी गारंटी न मिले कि भविष्यमें ऐसी बातें नहीं होंगी । इसलिए जब तक नोआखालीका मुस्लिम लोकमत यह आग्रह नहीं करता कि अपराधी लोग सामने आ जायं तब तक उन पर मुकदमा चलानेकी बातका विरोध करना मेरी समझमें नहीं आता। इसलिए जाग्रत मुस्लिम लोकमतका कर्तव्य है कि वह जोर देकर लोकमतके न्यायालयमें अपराधियोंको खड़ा करे । लोकमतके न्यायालयके सामने उन्हें खड़ा करके नसीहत देना कानूनी अदालतके सामने मुकदमा चलनेकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है। अगर अपराधी लूटका माल वापस करके पश्चात्ताप प्रकट करें और जिन लोगोंके विरुद्ध अपराध किये गये हैं उन्हें भविष्यमें अपराध न करनेका आश्वासन दें तथा स्थानीय मुसलमान अपराधियोंकी नेकचलनीके जामिन बनें, तो मुकदमे उठा लेना संभव हो सकता है। इसकी जिम्मेदारी अपराधियों पर और उनके साथ सहानुभूति दिखानेवालों पर है।

गांधीजीसे अनेक स्थानों पर पूछा गया, "दोनों नेता—जिन्ना और गांधी— आपसमें समझौता क्यों नहीं कर लेते ? तब सारे मुल्कमें शांति हो जायगी । इसके विपरीत, जब केन्द्रमें सरकारके सदस्योंके बीच शान्ति नहीं है, तो देशमें या नोआखालीमें शांति कैसे हो सकती है?" गांधीजीका जवाब यह था, नेता अनुयायियों द्वारा बनाया जाता है। अगर वे सचमुच भाईचारा और शांति चाहते हैं, तो उनकी इच्छाका प्रतिबिम्ब नेताओंमें पड़ेगा । लेकिन अगर केन्द्रमें शान्ति होनेसे आपका मतलब यह हो कि कांग्रेस और मुस्लिम लीगमें विधिवत् करार हो जाय, तो यह अनावश्यक है; क्योंकि जहां तक मैं जानता हूं, न तो कांग्रेसके अध्यक्ष और न मुस्लिम लीगके अध्यक्ष यह चाहते हैं कि दोनों कौमोंमें वैर बना रहे। उनके बीच राजनीतिक झगड़ा है। परन्तु भारतके उपद्रव—चाहे बंगालमें हों, बिहारमें हों या और कहीं हों—निरी बर्बरता हैं और उनसे सर्वांगीण राजनीतिक प्रगति रुकती है। इसलिए जहां मैं यह स्वीकार करता हूं कि कांग्रेस और लीगके बीच मतभेदोंके रहते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता टिक नहीं सकती, वहां मैं यह भी मानता हूं कि पार्टीकी राजनीतिको छोड़कर यदि नोआखालीके हिन्दू और मुसलमान सच्चे दोस्तोंकी

तरह मिलकर काम करें, तो वे लीग और कांग्रेसके लिए एक मिसाल पेश कर सकते हैं। इसलिए मेरी सलाह आपको यह है कि राजनीतिक झगड़ेको ऊपरके राजनीतिज्ञों तक ही सीमित रहने दिया जाय। यदि आप इस झगड़ेको गांवोंमें फैलने देंगे, तो उससे आपका सर्वनाश हो जायगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अगर मैं स्वयं विशुद्ध अहिंसाका पालन कर सकूं, तो उसका परिणाम यह होगा कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें सच्ची हार्दिक एकता स्थापित हो जायगी। जो लोग मेरे विचारके हैं उनका यह कर्तव्य है कि वे मेरे प्रयत्नको सफल बनानेमें सहायता और सहयोग दें।

गांधीजीकी दृष्टिसे भारतमें ही नहीं बल्कि सारी दुनियामें समस्या यह थी कि लोग सूत्रों और नारोंके प्रवाहमें अपनेको बह जाने देते हैं। विभिन्न वादोंके प्रचलित भ्रममें फंसकर वे छायाके लिए आपसमें लड़ते हैं और मूल वस्तुको अपने हाथसे निकल जाने देते हैं। उन्होंने कहा, यदि नोआखालीमें मैं प्रत्यक्ष रूपमें यह प्रमाणित कर सकूं कि आखिरमें तो—पाकिस्तान हो अथवा अखंड हिन्दुस्तान—जीवनकी दैनिक बातें ही अधिक महत्त्व रखती हैं, आम लोग अपने लिए सन्तोषजनक ढंगसे उन्हें हल कर सकते हैं और अपनी ही मेहनत, बुद्धि, मेलजोलकी शक्ति और आपसी सहयोगसे किसी वादकी परवाह किये बिना वे अपने भाग्यके विधाता स्वयं बन सकते हैं, तो उसका प्रभाव न सिर्फ नोआखालीमें बल्कि सारे हिन्दुस्तानमें अनुभव किया जायगा; और संभव है कि वह दुनियाकी भावी शांतिके लिए भी मार्ग दिखा सके।

आठवां अध्याय
कड़वे और मीठे अनुभव

१

१९ जनवरीको प्रात:काल गांधीजी बादलकोटसे आताकोराके लिए रवाना हुए। उससे पहलेकी रात नोआखालीके लिए भी असाधारण रूपमें ओसवाली सिद्ध हुई थी और जिस संकरी पगडंडीसे गांधीजी जानेवाले थे वह बहुत ही फिसलनी हो गई थी। कर्नल जीवनसिंह कठिन कूचके आदी थे, लेकिन वे भी दो बार पैरोंका संतुलन खो बैठे और जमीन पर लुढ़क गये। उनके भीमकाय शरीरको धरती पर लुढ़कते देखकर सब कोई हंस पड़े। हंसते हंसते गांधीजीने अपनी लाठीका सिरा उनके सामने कर दिया, ताकि उसके सहारे वे फिसलनवाले ढालमें खड़े हो जायं !

पगडंडी इतनी संकरी थी कि मंडली एक एककी कतारमें ही उस पर चल सकती थी । अचानक चलती हुई कतार रुक गई। गांधीजी कुछ सूखे पत्तोंकी सहायतासे पगडंडी पर पड़े हुए मैलेको हटा रहे थे ! पगडंडीको कुछ शैतान मुसलमान लड़कोंने फिर गंदा कर दिया था।

मनुने पूछा, "आपने यह काम मुझे क्यों नहीं करने दिया? आप इस तरह हमें क्यों शरमिन्दा करते हैं?"

गांधीजी हंस पड़े, "तू नहीं जानती कि ऐसे काम करनेसे मुझे कितना आनन्द होता है।"

गांधीजी पगडंडी साफ कर रहे थे उस समय बहुतसे ग्रामवासी पास खड़े खड़े देखते रहे। मनुको बहुत बुरा लगा। गांधीजीने उसकी चिढ़को समझ लिया। वे बोले, "तू देख लेना, कलसे ये लोग मुझे पगडंडी साफ नहीं करने देंगे। आज मैंने उन्हें सबक सिखा दिया है। अब ये समझ गये हैं कि भंगीका काम हलका नहीं है।"

मनुने जवाब दिया, "मुझे कोई शंका नहीं कि कल वे पगडंडी जरूर साफ करेंगे। परन्तु मान लीजिये कि आपके पीठ फेरते ही वे उसे साफ करना छोड़ दें, और बहुत संभव है कि वे छोड़ देंगे, तब क्या होगा?"

"मैं तुझे देखनेके लिए भेज दूंगा। अगर रास्ता फिर गन्दा होगा, तो मैं खुद जाकर साफ करूंगा। व्यापकसे व्यापक अर्थमें सफाई करना तो मेरा धर्म है !"

आगे चलकर सड़क पर एक मुस्लिम प्राथमिक शाला आई। कक्षाएं खुलेमें लगी हुई थीं। गांधीजी छोटे छोटे लड़कों और लड़कियोंसे मिलना चाहते थे। परन्तु उनके मौलवी साहबने उन्हें भगा दिया। गांधीजीने इशारेसे उन्हें वापस बुलानेकी कोशिश की, परन्तु वे नहीं आये। उन्होंने गांधीजीका सलाम तक नहीं लिया। गांधीजी एक ठंडी आह भरकर आगे बढ़ गये।

आताकोरा बादलकोटसे दो ही मील था, परन्तु वहां पहुंचनेमें पूरा एक घंटा लग गया। पड़ोसमें एक बहुत बूढ़े पति-पत्नी रहते थे। वे गांधीजीसे मिलनेके लिए बहुत उत्सुक थे, परन्तु इतने दुर्बल थे कि इतनी दूर चलकर आ नहीं सकते थे । जब गांधीजीको इसका पता चला तो उन्होंने कहा, मैं खुद उनकी झोंपड़ीमें जाकर उनसे मिलूंगा। शामको वे दोनोंसे मिलने गये। बूढ़ा बहरा था। जब वह पास आया तो गांधीजीने प्रेमसे उसके गाल थपथपाये । बुढ़िया भी कपूरके मनकोंकी दो मालाएं लेकर गांधीजीके पास आई । एक उसने अपने बूढ़े पतिको दे दी और दूसरी गांधीजीके गलेमें डालनेके लिए अपने पास रख ली। जब बूढ़ा माला लेकर गांधीजीके पास आया तो गांधीजीने उसके हाथसे माला लेकर बूढ़ेके गलेमें डाल दी, क्योंकि वह उम्रमें उनसे बड़ा था ! फिर बुढ़िया आई। उसने दूसरी माला गांधीजीके गलेमें पहनायी । गांधीजीके दोनों हाथ अपने हाथोंमें लेकर बूढ़ीने पूजाके भावसे उन्हें अपनी आंखों पर, चेहरे पर और सारे शरीर पर उनके आशीर्वाद लिए दबाया। जब बूढ़ी ऐसा कर रहो थी उस समय उसके खुरदरे हाथ और सारा शरीर आनन्दसे कांप रहा था। गांधीजी अत्यन्त गद्गद हो गये । उनकी आंखें भर आईं और उनका मुख-मंडल कोमल स्नेहसे चमक उठा। वे बोले, "जब अपने जैसे आदमी मिल जाते हैं तब अनोखा आनन्द होता है।"

बूढ़े दम्पतीने गांधीजीसे दो हरे नारियलोंका मीठा पानी पीनेका आग्रह किया । राम जाने कितने अर्सेसे उन्होंने ये नारियल संभाल कर रखे थे। गांधीजी अपना अन्तिम सायंकालीन भोजन आम तौर पर सूर्यास्तसे पहले कर लेते थे और उसके बाद कोई पोषक पदार्थ नहीं लेते थे। नारियलके पानीको वे ऐसा ही पदार्थ मानते थे। इस नियमका उन्होंने धार्मिक दृष्टिसे २५ वर्षसे भी अधिक समय तक पालन किया था । परन्तु इतनी अनन्य भक्तिके सामने विधि-निषेधके ऐसे नियमोंकी क्या गिनती ! एक बार तो वे ताकमें रख ही दिये गये। गांधीजीकी "संयम-परायणता" न तो रूखी थी, न कुंठित करनेवाली थी और न धर्मान्ध थी। वह सेवाका एक साधन थी, आनन्दपूर्ण और आनन्ददायी थी—आनन्दनाशक कभी नहीं।

दूसरे दिन यात्रा पर रवाना होनेसे पहले मनुको गांधीजीकी सूचना याद आई। वह लौट कर उस रास्तेका निरीक्षण करने गई, जिसे गांधीजीने पहले दिन साफ किया था । वह सदाकी भांति मैला ही था । मनुने खुद उसे साफ कर दिया । दूसरे लोग उसे ऐसा करते देखकर सफाईमें शरीक हो गये और १५ मिनटसे भी कममें सारा रास्ता साफ हो गया । जब उसने गांधीजीसे यह बात कही तो वे बोले, "तूने आज मेरा पुण्य छीन लिया ! मैं स्वयं यह काम करता तो मुझे कितना आनन्द होता !" भूत-कालकी बातें याद करके गांधीजी कहने लगे, "काठियावाड़के लोगोंमें भी यह गन्दी आदत थी। इस बुराईको मिटानेकी मेरी महत्त्वाकांक्षा थी, परन्तु मेरे भाग्यमें कुछ और ही लिखा था। . . . जैसे दूसरेके भोजन करनेसे हमें सन्तोष नहीं हो सकता, वैसे ही सफाईकी बात है। इसका आनन्द लूटनेके लिए हमें स्वयं सफाई करनी चाहिये।"

जिस अग्नि-परीक्षाकी बात गांधीजी किया करते थे, उसमें से उनके एक साथीको कल्पनासे पहले ही गुजरना पड़ा। शिरंडी गांवमें अम्तुस्सलाम बहन कुछ स्थानीय मुसलमानोंके विरुद्ध उपवास कर रही थीं। उनके उपवासका वह २५ वां दिन था। वे एक धर्म-परायण मुसलमान थीं, जो कभी रुमजानमें वार्षिक रोजा रखना चूकती नहीं थीं और कुरानको पासमें रखे बिना सोती नहीं थीं। कुरानका थोड़ा पाठ वे नित्य करती थीं। बचपनसे ही उन्हें हिन्दू-मुस्लिम एकताकी लगन लगी थी और उसके लिए वे अपने प्राणोंकी बाजी लगानेके लिए भी तैयार रहती थीं। कलकत्ता, दिल्ली और ढाकाके साम्प्रदायिक दंगोंमें खतरनाक जगहों पर पहुंचकर उन्होंने

अनेक बार अपने प्राणोंको संकटमें डाला था। शिरंडीमें बैठकर कार्य शुरू करनेके कुछ अर्से बाद ही एक स्थानीय मुसलमानने कसम खाकर उनसे कहा कि उस क्षेत्रमें कोई लूटपाट नहीं हुई है, और अपनी इस बातका खंडन करनेके लिए उसने स्थानीय हिन्दुओंको चुनौती दी। बेशक, उनमें से किसीका साहस उसकी बातका खंडन करनेका नहीं हुआ। परन्तु बादमें जब वे हिन्दू स्त्रियोंसे उनके घरोंमें मिलने गईं, तो उन्होंने कुछ और ही कहानी सुनाई । एक जगह पड़ोसके शाकटोला गांवके एक मुस्लिम छोकरेने यह बताया कि गांवके एक उपद्रव-पीड़ित हिन्दू अबनीबाबूको उनके परिवारके दो सदस्योंकी तरह मार दिया जायगा। उन दो सदस्योंमें उनके पिता भी थे। हिन्दुओंके धार्मिक कर्मकांडमें काम आनेवाले तीन खड्ग मुसलमान उठा ले गये थे, जिन्हें उन्होंने लौटाया नहीं था। कहा जाता है कि वे हिन्दुओंको मारनेके काममें लिये गये थे और यदि नई धमकी पर अमल किया गया तो दुबारा हिन्दुओंको मारनेके काममें उनका उपयोग किया जा सकता है।

अम्तुस्सलाम उस आदमीके पास गईं, जिसके पास तीनमें से दो खड्ग थे और उन्हें लौटा देनेको कहा। पहले तो उसने कह दिया कि मैं खड्गोंके बारेमें कुछ नहीं जानता, फिर टाल-मटूल करने लगा और अन्तमें खड्ग लौटानेसे उसने साफ इनकार कर दिया । उसने अम्तुस्सलाम से कह दिया, तुम्हारे जो जीमें आये कर लेना । ऊपरसे उन्हें गन्दी गालियां दीं सो अलग । उसने यह सारी जानकारी देनेवालोंको भी धमकियां दीं। उसके बाद जो कुछ हुआ वह अम्तुस्सलामके शब्दोंमें ही सुनिये:

"बेनीबाबूने स्थानीय मुसलमानोंकी एक सभा बुलाई थी। . . . मैंने हश्मतुल्लाको भी बुलाया (जिसे वे पहलेसे जानती थीं)। . . . उसने कहा कि मुसलमानोंने एक सभामें यह निश्चय कर लिया था कि जब तक शाकटोलाका कारी (कारी कुरान पढ़नेवालेको कहते हैं) उन्हें हुक्म नहीं देगा तब तक वे खड्ग नहीं लौटायेंगे । कारीको बुलाया गया तो उसने यह बहाना बना दिया कि उसे किसी दावतमें जाना है, इसलिए वह नहीं आ सकता । इसलिए मैं उसके घर गई। कुछ हिन्दू मेरे साथ थे। उसने पूछा, आप लोग क्यों आये हैं? किसी हिन्दूकी बोलनेकी हिम्मत न हुई । मैंने कहा, 'मेहरबानी करके खड्ग उनके मालिकोंको लौटा दो।' वह चुप रहा। मैंने फिर अनुरोध किया।

उसने कहा, 'हश्मतुल्लाको आने दीजिये।' . . . जब हश्मतुल्ला आ गया . . . तो कारीने कहा कि जिसके पास उन दो खड्गोंमें से एक खड्ग है उस आदमीसे मिलनेकी मैंने कोशिश की, लेकिन वह मिला नहीं। वह किसी और जगह 'कामसे गया है'। मैंने कहा, 'बहुत अच्छा । तीन दिनके भीतर खड्ग ला देना। किसीको उस आदमीकी तलाशमें भेज देना। खर्च मैं दे दूंगी।' कारीने मंजूर किया। दूसरे दो खड्गोंका क्या हुआ ? हश्मतुल्लाने कहा कि वे अशरफअलीके पास हैं। लेकिन वह कारीके बिना देगा नहीं और कारीको दावतमें जाना है। उसने कहा, मैं अशरफअलीके पास कल जाऊंगा। मैंने कहा, "तुम जहां चाहो जा सकते हो। लेकिन खड्गोंका जब तक पता नहीं लगेगा तब तक मैं पानी भी नहीं पीऊंगी ।' . . . फिर मैं वहांसे चली आई। . . . कारी और हश्मतुल्ला आध घंटेमें आये और अशरफअलीके पास गये। अशरफअली नमाजकी तैयारी कर रहा था। नमाज पूरी होने पर उसने हमें अपने घरमें बुलाया और अपना हुक्का तैयार करने लगा। मैंने कहा, 'हुक्का रहने दो। पहले हम कामकी बातें कर लें।' मगर नहीं, हुक्का पहले ! जब तक उसने हुक्का पूरा किया, सूरज डूब चुका था। सारी मंडली चुपचाप बैठी थी। कारी खामोश था, हश्मतुल्ला खामोश था, हिन्दू भी खामोश थे। मुझसे बोलनेको कहा गया। हिन्दू भी इस अनुरोधमें शरीक थे। मैंने कहा, मेरा चुप रहना ही शायद सबसे अच्छा होगा। अगर मैं मुंह खोलूंगी, तो मुझे साफ साफ बातें कहनी पड़ेंगी। अन्तमें मैं बोली, 'खड्ग कहां हैं?' अशरफअलीने कहा, 'कारीसे पूछिये।' कारीने कहा, मैं नहीं जानता। जब खड्ग ले जाया गया तब मैं हाजिर नहीं था। मैंने उसकी तलाश की, मगर मिला नहीं। मैंने कारीसे कहा, 'अच्छा, उसे छोड़ो। दूसरे दो खड्गोंका क्या हुआ? वे तो तुम्हारे पास ही हैं।' उसने दबी जबानमें कहा, हां, मैं उन्हें लौटा दूंगा। मेरे पास वे अमानतके तौर पर रखे हैं। मैंने उन्हें चुराया नहीं है। कमसे कम दस आदमी इसमें शरीक हैं। लौटानेकी जिम्मेदारी उन पर है। इसके सिवा, जिन लोगोंने हमारे पास खड्ग अमानतके तौर पर रखे हैं, वे अभी तक गांवमें वापस नहीं आये हैं। उन्हें संरक्षक किसने बनाया ? क्या खड्गोंके मालिकोंने सुरक्षित रखनेंके लिए वे खड्ग उन्हें सौंपे हैं? नहीं, जब वे खड्गोंके मालिकोंको बचाने गये थे तब उन्होंने ये खड्ग अपने अधिकारमें लिये थे और

तबसे वे खड्ग उन्होंने अपने पास ही रख छोड़े हैं। . . . दंगोंके दो महीने बाद भी वे खड्ग क्यों नहीं लौटाये गये? क्या मालिकोंने उनकी मांग नहीं की ? हां, मांगे तो थे।

"मैंने पूछा, फिर ? एक सभामें कुछ समय बाद खड्ग लौटा देनेका फैसला हुआ था। कुछ समय बाद क्यों ? तब तक क्या उन्हें और अधिक हत्याएं करनेके काममें लिया जायगा ? 'क्या आप हमें हत्यारे समझती हैं? हमने तो हिन्दुओंकी रक्षा की थी।' मैंने उससे कहा, 'मैंने अपनी आंखोंसे देखा है कि तुमने उनकी कैसे रक्षा की।' मुझसे पूछा गया, क्या आप यह कह सकती हैं कि यहां कोई लूटपाट हुई है? मैंने जवाब दिया, 'इसके लिए इजहार देख लेना बेहतर होगा।' इजहारका नाम लेते ही अशरफअली आगबबूला हो गया। मैंने कहा, 'तुम मुझे डरा नहीं सकते। बेहतर यह है कि कयामतके दिन खुदाके कहरका खयाल करो। वह दिन बहुत दूर नहीं है। तुम्हारा एक पांव तो कब्रमें जा ही चुका है।' वह चुप रहा। हिन्दुओंमें भी अब हिम्मत आई। . . . यह परिवर्तन देख कर अशरफअली बोला, 'इस बात पर और जोर देनेकी जरूरत नहीं। मैं समझ गया हूं। एक खड्ग तो मेरे पास है। दूसरा भी इसी गांवमें है, यह मैंने आपसे कहा था। मेरा लड़का अभी आकर दे देगा।' मैंने कहा, 'तुम्हें दोनों खड्ग देने होंगे। बेहतर है कि जहां कहीं हो वहांसे दूसरा भी तलाश कर लाओ।' . . . अशरफअली . . . गांवमें गया। . . . वहांसे वह उत्तेजित होकर चिल्लाता हुआ लौटा: 'जिन हिन्दुओंको मैंने बचाया था, वे ही आज मेरे खिलाफ पुलिसमें शिकायतें कर रहे हैं। उनसे जितना भी बुरा करते बने कर लें। . . . मैं कसम खाता हूं कि इसके बाद वे यहां चैनसे नहीं रह सकेंगे। जब तक मैं अपनी आंखोंसे न देख लूं कि उन्होंने अपने इजहारोंमें क्या कहा है तब तक मैं खड्ग नहीं लौटाऊंगा।' मैंने उसे शान्त करनेका प्रयत्न किया और कहा, शिकायत दर्ज कराना कोई अपराध नहीं है। जिनके घर लूट लिये गये हैं उन्हें क्या शिकायत दर्ज करानेका भी हक नहीं है? उसने मुझसे कहा, चुप रहो। 'तुम दखल देनेवाली कौन हो ? तुम हिन्दुओंका पक्ष लेनेके बहाने उन्हें हमारे खिलाफ भड़का रही हो।' हिन्दुओं और मुसलमानोंने उसे शान्त करनेकी कोशिश की। जो खड्ग तुम्हारे कहनेके अनुसार तुम्हारे पास अमानत हैं उन्हें मालिकोंको लौटानेमें इजहार कैसे बाधक हो सकते हैं? परन्तु अशरफअली गुस्सेसे चिल्लाता रहा, 'नहीं, मैं खड्ग कभी नहीं लौटाऊंगा । कमसे कम जब तक वह

(अम्तुस्सलाम) यहां है तब तक तो हरगिज नहीं लौटाऊंगा। . . . वह मुझे यहां धमकी देने आई है। मैं उसे दिखा दूंगा।' "[अम्तुस्सलासका पत्र गांधीजीको, १८ दिसम्बर १९४६]

अब अम्तुस्सलाम क्या करें ? उनके सामने ऐसे लोग थे जिन्हें उनके सहधर्मियोंने सताया था। उन्होंने उन हिन्दुओंकी हिफाजतका जिम्मा लिया था। उनके आश्वासनके बल पर वे लोग अपने घरोंको लौट आये थे। और अब उनके सामने ही हिन्दुओंको उनका विश्वास करनेकी सजा देनेकी धमकी दी जा रही थी। अम्तुस्सलामने वहीं और उसी समय संकल्प किया कि जब तक बदमाशोंका दिल नहीं बदलेगा और उसके प्रमाणके रूपमें वे चुराये हुए खड्ग लौटा नहीं देंगे, तब तक मैं कुछ भी नहीं खाऊंगी—पानी तक नहीं पीऊंगी । इसका तुरन्त असर हुआ। हिन्दुओं और मुसलमानोंने मिलकर सलाह की। और उसके फलस्वरूप तीनमें से दो खड्ग लौटा दिये गये। तीसरेका पता नहीं चल सका। जिसके पास तीसरा खड्ग बताया जाता था वह आदमी फरार था। अम्तुस्सलाम ने फिर उपवास करनेका और पानी तक पीना छोड़ देनेका निश्चय किया। परन्तु उन्होंने अपनी भूल समझ ली और उसे सुधार लिया, जब गांधीजीने उन्हें लिखा: "इसमें अधीरताकी गन्ध आती है। तुम कानूनको अपने ही हाथमें लेना चाहती हो और एक लम्बे उपवासकी संपूर्ण पीड़ा सहन करनेके बजाय स्वयं ईश्वरसे अपनी शर्त कबूल कराना चाहती हो।"

इस बार अम्तुस्सलामके सामने एक पत्थरकी दीवार खड़ी कर दी गई थीं। पुलिस अधिकारियोंने इस मामलेमें अपनी लाचारी जाहिर कर दी। उन्होंने एक छोटीसी बातका बतंगड़ बना कर उन पर "हठ" और 'दुराग्रह" करनेका भी आरोप लगा दिया। गांधीजीने पुलिस अधिकारियोंसे कहा, आप लोग उतना ही कीजिये जितना आपका कर्तव्य आपसे मांग करता है; उससे अधिक कुछ नहीं। "यदि वह दुराग्रही है और उसके कारण मर जाती है, तो उसे मर जाने दीजिये—और बेइज्जत होकर मर जाने दीजिये । अगर वह सच्ची है और सच्ची बात उसके जीवन-कालमें पूरी नहीं होती, तो मृत्यु उसका उचित प्रयाश्चित्त होगी।" [पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टके नाम गांधीजीका नोट, १४ जनवरी १९४७]

इसलिए उपवास चालू रहा। वह सुखपूर्वक तो तभी समाप्त हो सकता था जब खोया हुआ खड्ग प्राप्त हो जाता और उसकी प्राप्तिके साथ जुड़े हुए अर्थ पूरे हो जाते। जब उन्होंने अपना उपवास शुरू किया था, तब उन्हें तेज बुखार और खांसी थी। १२ दिन तक दोनों शिकायतें बनी रहीं; उसके बाद मिट गई थीं। उसके बाद जीवन-दीप धीरे धीरे क्षीण होता चला गया, फिर भी वे प्रसन्न और शान्त थीं। और उनके बिस्तरके पास गीता और कुरानका अखंड पाठ उन्हें शान्ति प्रदान करता था।

गांधीजी शिरंडी पहुंचे उसी दिन मुसलमानोंका एक बड़ा दल गांधीजीसे मिला। उसने गांधीजीसे कहा, हमने खड्गका पता लगानेकी भरसक कोशिश की, परन्तु वह सफल नहीं हुई। हम अपनी ओरसे क्या आश्वासन दें, जिससे अम्तुस्सलामको सन्तोष हो जाय और वे अपना उपवास छोड़ दें? गांधीजी विचारोंमें डूब गये। सत्याग्रहके नाते किये जानेवाले उपवासमें आरम्भ और अन्तकी दो नाजुक अवस्थायें होती हैं। हठधर्मीके कारण, घमंडके कारण या उपवासकी शर्तें तत्त्वतः पूरी हो जानेके बाद उत्पन्न हुए सफलताके नशेके कारण उपवासको थोड़ा भी लम्बाना उपवासकी सफलताके लिए उतना ही घातक सिद्ध होगा, जितना कि कमजोरीके कारण या शर्तें पूरी न होने पर भी मनको शर्तें पूरी हो गई हैं इस तरह समझा लेनेके कारण समयसे पहले उपवासको छोड़ देना घातक सिद्ध होगा। पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट और कुछ स्थानीय मुसलमानोंने भरसक कोशिश कर ली, परन्तु वे खोये हुए खड्गका पता नहीं लगा सके। उनको यह भी विश्वास नहीं था कि खड्ग अब अस्तित्वमें है या उसका पता लगाया जा सकता है। यदि अम्तुस्सलाम यह आग्रह रखतीं कि उनकी शर्त अक्षरश: पूरी हो तभी वे उपवास छोड़ सकती हैं, तब तो यह स्पष्ट था कि परिस्थितियोंको देखते हुए उन्हें मरना ही पड़ता। लेकिन यह उनके उपवासका वास्तविक उद्देश्य नहीं हो सकता था। खोये हुए खड्गका पुनः प्राप्त होना उसके पीछे रही किसी दूसरी बातका प्रतीक था—अर्थात् दोनों समुदायोंके बीचकी एकता और शान्तिका प्रतीक था। इसलिए यदि मुसलमान इस बारेमें पूरा आश्वासन दे दें, तो यह समझ लिया जा सकता है कि उनके उपवासका उद्देश्य पूरा हो गया और उन्हें अपना उपवास छोड़ देना

चाहिये। स्थानीय मुसलमानोंने वांछित आश्वासन देना स्वीकार किया। उनके हस्ताक्षरोंके लिए गांधीजीने आश्वासनका जो मसौदा तैयार कर दिया वह इस प्रकार था:

> खुदाको साक्षी रखकर, हम सौगंध खाकर यह घोषणा करते हैं कि हम हिन्दुओं या दूसरी किसी कौमके लोगोंके प्रति कोई वैरभाव नहीं रखते । हर आदमीको, फिर वह किसी भी धर्मका अनुयायी हो, अपना धर्म उतना ही प्यारा है जितना हमें इस्लाम प्यारा है। इसलिए दूसरोंके धर्म-पालनमें किसीके दस्तंदाजी करनेका कोई सवाल नहीं उठ सकता। हमें मालूम हुआ है कि बीबी अम्तुस्सलामका मकसद हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करना है। यह मकसद इस प्रतिज्ञा पर दस्तखत कर देनेसे पूरा हो जाता है। इसलिए हम चाहते हैं कि वे अपना उपवास छोड़ दें। हम समझते हैं कि इस मामलेमें हमने मनमें चोरी रखकर अमल किया, तो हमें गांधीजीके उपवासका सामना करना होगा। बाकीके तीसरे खड्गका पता लगानेकी हमारी कोशिश जारी रहेगी।

इस घोषणा पर चार गांवोंके ग्यारह प्रमुख मुसलमानोंके दस्तखत थे। बारहवें आदमीने, जो मुस्लिम जमातकी ओरसे पहले-पहल बोला था, दस्तखत नहीं किये। वह कई मील दूर एक "सभामें शरीक होने" के लिए चला गया था ! उसके खिलाफ यह रिपोर्ट थी कि दंगोंके दिनोंमें उसने बहुतसे हिन्दुओंको जबरन् मुसलमान बनाया था। कुछ मुसलमानोंने यह तर्क किया कि चूंकि जिस गांवका वह आदमी है वह गांव इस समझौतेमें शामिल नहीं है, इसलिए उसके दस्तखत जरूरी नहीं हैं। परन्तु गांधीजी उसके दस्तखत लेनेके मामलेमें दृढ़ रहे । उन्होंने कहा, यदि उसके विरुद्ध पेश की गई रिपोर्ट सही है, तो यह आवश्यक है कि हिन्दुओंको जबरदस्ती मुसलमान बनानेमें शरीक होनेका पछतावा वह प्रगट करे और आगेके लिए सन्तोषजनक आश्वासन दे । दूसरे दिन सुबह उसके दस्तखत भी घोषणा पर करा लिये गये।

गांधीजीने मुसलसान बुजुर्गोंको समझाया कि अगर दस्तखत करनेवाले लोग प्रतिज्ञाकी भावनाका पालन करनेमें असफल रहेंगे, तो मैं उपवास करूंगा। बुजुर्गोंने पूछा, मान लीजिये कि चोरीकी वारदातें होती रहीं और दस्तखत करनेवाले उन्हें रोक नहीं सके, तो कया यह आपके

लिए उपवास करनेका एक कारण हो जायगा ? क्या ऐसी "घटनाओं" को "साम्प्रदायिक" स्वरूपकी समझा जायगा ? गांधीजीने समझाया कि मैं कोई भी गम्भीर कदम उठानेसे पहले दस्तखत करनेवालोंको अपनी स्थिति सही साबित करनेका पूरा मौका दूंगा। साथ ही मैं चाहता हूं कि वे एक बात अच्छी तरह समझ लें। मेरे पास यह राय रखनेका काफी कारण है कि दंगोंके दिनोंमें जो कुछ हुआ और छोटी छोटी चोरियों वगैराके रूपमें अब भी जो कुछ हो रहा है, उसका रूप निश्चित ही "साम्प्रदायिक" है। (देखिये अध्याय - ३, खंड- ३) अगर अल्पसंख्यक हिन्दुओंके साथ गुंडे जैसा चाहें वैसा व्यवहार करते रहें और मुसलमान उन्हें रोकनेका कोई गम्भीर प्रयत्न न करें, तो इसका यह मतलब होगा कि गुंडोंको अपनी कौमका परोक्ष समर्थन प्राप्त है। इसलिए यह महत्त्वकी बात है कि मुसलमान चोरी और अत्याचारकी ऐसी सब घटनाओंको रोकें और उनकी कोशिशके बावजूद अगर चोरियां वगैरा हों तो उनके शिकार बननेवालोंके साथ पूरा न्याय करें।

गांधीजीने दस्तखतवाले प्रतिज्ञा-पत्रका अर्थ अम्तुस्सलामको समझाया और एक मुसलमान सज्जन द्वारा अल-फातिहा पढ़े जानेके बाद उन्होंने बापूजीके हाथोंसे तीन औंस संतरेका रस पी कर अपना उपवास छोड़ा।

तीसरे खड्गका पता नहीं लगा। परन्तु खून करनेकी धमकियां बन्द हो गईं। रोग इतना गहरा पैठ गया था और इतना धोखेमें डालनेवाला था तथा झूठ इतना व्यापक हो गया था कि सबकी शुद्धि करनेवाले उपवासके द्वारा ही उसका सामना किया जा सकता था। अम्तुस्सलामके उपवासके बाद शिरंडी और आसपासकी स्थिति बिलकुल बदल गयी। उपवासने ताजी खुशनुमा हवाके झोंकेकी तरह मुरदा-घरकी उस सड़ी हुई बदबूको एकदम उड़ा दिया, जो दंगोंके बादसे उस क्षेत्रमें फैली हुई थी। वह उपवास छोटे पैमाने पर साहस, श्रद्धा और आशाके आधार पर रखे गये दोनों कौमोंके आपसी मीठे सम्बन्धोंके विकासका आरंभ-बिन्दु बन गया।

२

अम्तुस्सलामके उपवासके सफलतापूर्वक समाप्त होनेके लिए लोगोंको धन्यवाद देकर गांधीजी २२ जनवरीको केथूरी चले गयें। शिरंडीकी बातचीतके कठोर शारीरिक, मानसिक और उससे भी अधिक आध्यात्मिक परिश्रमके बाद उन्हें थकावट मालूम हो रही थी। दूसरे दिन प्रातःकालकी प्रार्थनाके बाद कागजोंका ढेर पढ़ते पढ़ते वे सो गये और कागज उनके हाथमें ही रह गये। यात्राके लिए सामान इकट्ठा करनेका समय हो गया। बड़ी संख्यामें लोग बाहर उनका इन्तजार कर रहे थे, परन्तु कहीं उनकी नींद न उचट जाय इस डरसे मनुकी उनके हाथोंसे कागज ले लेनेंकी हिम्मत नहीं हुई। परिणाम यह हुआ कि वे लोग कुछ मिनट देरसे रवाना हुए। इससे गांधीजीको अहिंसाके एक और पहलू पर चर्चा करनेका अवसर मिल गया। हमारे समयका एक एक क्षण ईश्वरकी सेवामें उपयोग करनेके लिए उसको दी हुई पवित्र धरोहर है। "जब लोगोंसे कह दिया गया कि हम ७ बजे रवाना होंगे, तो फिर ७ बजते ही हमें रवाना हो जाना चाहिये। समयका काम समय पर न करना पाप है।"

पनियाला अगला पड़ाव था। वहां जाते समय मनुने नई रामधुन गाई। उसका दूसरा पद परिवर्तित रूपमें इस प्रकार था:

ईश्वर - अल्ला तेरे नाम,
सबको सन्मति दे भगवान !

उसने शामकी प्रार्थनामें भी यही रामधुन गाई। सारी श्रोता-मंडली गानेमें शरीक हुई। बरसों पहले जब मनु छोटीसी लड़की थी तब उसने अपने जन्मस्थान पोरबन्दरके सुदामा-मन्दिरमें धर्मकथाके समय लोगोंको यह धुन गाते सुना था। तभीसे वह उसकी स्मृतिमें जम गई थी और उस दिन प्रातःकाल वह अनायास उसे याद आ गई। उसने गांधीजीको यह किस्सा सुनाया । इससे उनके मनमें अपने बचपनकी स्मृतियां ताजी हो आईं। वे बोले, " पुराने जमानेमें ऐसा ही था। कट्टर ब्राह्मण पुजारियोंके मुंह पर भी अल्लाका नाम स्वाभाविक रूपमें आ जाता था। हिन्दु-मुसलमानोंके वर्तमान जहरीले संबंध तो एक नया अभिशाप हैं। ज्यों ज्यों मैं अपने

चारों ओर विरोधका भाव अधिक बढ़ता देखता हूं त्यों त्यों उस अदृश्य शक्तिमें मेरी श्रद्धा अधिक दृढ़ होती जाती है। तुझे आज अनायास यह रामधुन गानेकी जो प्रेरणा हुई, वह मेरे लिए उसी श्रद्धाका चिह्न है।"

प्रार्थना-सभामें बड़ी संख्यामें ऐसे लोग आये थे, जिनके संबंधियोंकी दंगेके दिनोंमें मुसलमानोंने हत्या कर दी थी। इसलिए ऐसी रामधुनका गाना, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंके ईश्वरसे सबको सन्मति देनेकी प्रार्थना की गई हो, बहुत समयानुकूल था और उसे एक नया अर्थ और महत्त्व प्राप्त हो गया। गांधीजीने आदेश दिया कि आगेसे उनकी यात्रामें रोज वही धुन गाई जाय।

पनियाला में प्रार्थना-प्रवचनके बाद मुस्लिम लीगी विरोधियोंकी एक टोलीने गांधीजी पर प्रश्नोंकी झड़ी बरसा दी: "आपने कहा है कि मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्त यदि चाहें तो आज पाकिस्तान ले सकते हैं। इससे आपका क्या मतलब है?"

गांधीजीने समझाया: चूंकि जिन्नाने यह घोषणा की है कि पाकिस्तानमें, संभव हुआ तो, अल्पसंख्यकोंके साथ मुसलमानोंसे भी अधिक अच्छा बरताव किया जायगा, इसलिए वहां कोई स्वामी या सेवक नहीं होगा। यदि मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्त, जिन्हें लगभग पाकिस्तान ही समझा जा सकता है, ब्रिटिश सत्तासे सर्वथा स्वाधीन हो जायं और जिन्नाके बताये हुए आदर्शका व्यवहारमें पालन करने लगें, तो सारा भारत ऐसी व्यवस्थाका स्वागत करेगा—फिर उसे किसी भी नामसे पुकारा जाय—और सारा भारत पाकिस्तान हो जायगा। "यदि पाकिस्तानका दूसरा कुछ अर्थ हो तो मैं नहीं जानता; और यदि दूसरा कोई अर्थ हो तो वह मेरी बुद्धिको जंचेगा नहीं।"

"आपकी अहिंसाने बिहारमें कैसा काम किया?"

"बिलकुल काम नहीं किया । वह बुरी तरह असफल रही । परन्तु जिम्मेदार क्षेत्रोंसे मिली हुई रिपोर्टों पर भरोसा किया जाय, तो बिहारके आम लोगोंने यह समझ लिया है कि उस प्रान्तके कुछ भागोंमें बिहारियोंने सामूहिक रूपमें गम्भीर अपराध किये हैं।"

"नोआखालीमें हिन्दुओंको और हिन्दुओंकी सम्पत्तिको अगर मुसलमानोंने नहीं बचाया तो किसने बचाया?"

"इस प्रश्नसे सूक्ष्म अहंकार प्रगट होता है। पश्चात्तापमें नम्रता होनी चाहिये । यदि नोआखालीमें सचमुच जितनी भयंकर शैतानियत हुई उससे ज्यादा भयंकर न हुई, तो उसका श्रेय मनुष्यको नहीं, खुदाको है। साथ ही मुझे यह स्वीकार करनेमें कोई संकोच नहीं, बल्कि खुशी है कि नोआखालीमें ऐसे मुसलमान भी थे, जिन्होंने हिन्दुओंकी रक्षा की।"

*

गांधीजीकी उपस्थितिने नोआखालीको एक ध्वनि-वर्धक यंत्रमें बदल डाला था । वह यंत्र प्रत्येक ध्वनि अथवा तरंगको पकड़ता था और उसे बढ़ाकर सारे भारतमें फैला देता था । गांधीजीने आसामको यह सलाह दी थी कि यदि यह विश्वास न दिलाया जाय कि विभाग (सेक्शन) में सम्मिलित दूसरे प्रान्तोंके प्रतिनिधि आसाम पर ऐसा संविधान थोपनेका प्रयत्न नहीं करेंगे, जो आसामके प्रतिनिधियोंको स्वीकार न हो, तो आसामको संविधान-सभाके उस विभागसे बाहर निकल जाना चाहिये। इस सलाहसे मुस्लिम लीगके अनुयायियोंमें गहरी चिढ़ पैदा हुई थी और उसका असर नोआखालीमें भी महसूस हुआ था। गांधीजीसे पूछा गया : अगर आपका लक्ष्य हिन्दू-मुस्लिम एकता है, तो आप आसामको ऐसी सलाह कैसे दे सकते हैं और इसके बाद मुस्लिम लीग संविधान-सभामें कैसे शरीक हो सकती है? गांधीजीने उत्तर दिया, कैबिनेट-मिशनकी योजनामें जो कुछ सूचित है और कांग्रेसके स्वरूप और परम्परामें निहित है, उसके बाहर जाकर मैंने आसामको कोई सलाह नहीं दी है। उसमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो साम्प्रदायिक एकता करानेके मेरे कक्ष्ससे मेल न खाती हो या जो मुस्लिम लीगके लिए संविधान-सभामें आना असंभव बना देती हो। यह काम कांग्रेस और लीगका है कि संविधान-सभामें आकर वे अपने कार्यक्रमको और नीतिको तत्त्वतः आकर्षक बनायें और प्रान्तों अथवा समूहों (ग्रूप्स) की बुद्धिको अपील करें।

कुछ तो बंगालके कुछेक सीमावर्ती जिल्होंमें अत्यधिक आबादीका दबाव कम करनेके लिए, परन्तु मुख्यतः आसामकी जनसंख्याका साम्प्रदायिक अनुपात बदलनेके लिए, मुस्लिम लीगने बड़े पैमाने पर मुस्लिम प्रवासियोंके द्वारा आसाम पर "तीनतरफा आक्रमण" शुरू कर दिया था। मुस्लिम लीगके नेशनल गार्डोंको, जो अपनेको "खिलजी दस्ते" कहते थे, १७-१७ की टोलियोंमें संगठित किया गया और उन्हें बख्तियार खिलजी नामक सैनिक साहसीकी तरह आसाममें भेजा गया। बख्तियार खिलजीके सैनिक पराक्रमके विषयमें यह लोककथा प्रचलित है कि उसने १३वीं शताब्दीमें 'अल्लाहो अकबर' के नारे लगानेवाले केवल १७ घुड़सवारोंकी मददसे गौड़ (प्राचीन बंगाल) पर हमला करके उसकी राजधानी नवद्वीप (आजका नदिया) को जीत लिया था। इन 'खिलजी दस्तों' ने आसाममें सरकारी खाली जमीनों पर गैर-कानूनी कब्जा कर लिया और वहांसे हटनेसे इनकार कर दिया । आसाम सरकारको कुदरती तौर पर उनके खिलाफ कानून और व्यवस्थाके तंत्रका उपयोग करना पड़ा। सरकारी जमीनों पर अनधिकार प्रवेशको रोकने और नाजायज ढंगसे उस पर आ बसनेवालोंको निकाल बाहर करनेका निर्णय आसाम सरकार आसाम विधान-सभाके मुस्लिम लीग दलके नेता मोहम्मद सादुल्काके साथ हुए समझौतेके फलस्वरूप बहुत पहले कर चुकी थी | यह एक विशुद्ध प्रशासनिक प्रश्न था । परन्तु उसे साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया और आसामके कांग्रेसी मंत्रि-मंडलके विरुद्ध "अत्याचारों" की पुकार मचानेके लिए मुस्लिम लीगने उसका दुरुपयोग किया। पनियालामें गांधीजीको चुनौती दी गई कि बताइये, आसाम सरकारने मुसलमानोंको निकाल दिया, इस पर आप क्यों चुप हैं?

उन्होंने उत्तर दिया: गैर-कानूनी ढंगसे घुस आनेवाले सिर्फ इसीलिए साधारण कानूनके अमलसे मुक्त नहीं हो सकते कि वे मुसलमान हैं या बंगाली हैं। इस उत्तरको गांधीजीके खिलाफ एक शिकायत बना कर उनकी बदनामी करनेके आन्दोलनमें इसका उपयोग किया गया।

गांधीजी मानते थे कि जिस प्रकार शारीरिक महामारियां छुतहे रोगोंके जन्तु-वाहकों द्वारा फैलाये हुए अदृश्य रोगोत्पादक कीटाणुओंका आविर्भाव हैं, उसी प्रकार सामाजिक रोग (उपद्रव) हमारे भीतरकी बुराईका आविर्भाव है। महामारीको नियंत्रणमें लानेके लिए हमें जन्तु-वाहकोंको जंतुमुक्त करना पड़ता है, उसी प्रकार सामाजिक बुराइयोंको दूर करनेके लिए हमें अपने

भीतरकी बुराईसे सर्वथा मुक्त होना पड़ता है । गांधीजीने कहा, इसलिए जब हम देखते हैं कि हमारे चारों ओर अव्यवस्था फैल रही है तब हमें उसका कारण खोजनेके लिए अपने भीतर गहरे उतरना चाहिये, यदि हम सारे संसारके लिए विशुद्ध अहिंसा सिद्ध करना चाहते हैं। फिर तो हमारी पूर्णता दिनोंदिन बढ़ती जायगी और हम दूसरों पर अपना गुस्सा निकालनेके प्रलोभनमें नहीं पड़ेंगे। एक दिन गांधीजीने तीन बंदरोंकी प्रतीकात्मक मूर्तियोंको दिखाते हुए अपने एक साथीसे पूछा, "तुम मेरे वानर गुरुओंको जानते हो ?" इन तीन बंदरोंमें से एक अपने हाथोंसे आंखें बन्द किये हुए था, दूसरा कान बन्द किये था और तीसरा मुंह बन्द किये था। वे बौद्ध धर्मकी तीन आज्ञाओंके प्रतीक थे, जो इस प्रकार हैं: "बुरा न देखो; बुरा न सुनो; बुरा न बोलो।" गांधीजी उन्हें अपने तीन गुरु कहा करते थे। आगे उन्होंने कहा, "अगर कोई हमारी निन्दा करे, तो हमें खुशीसे नाचना चाहिये। हमारे विरोधीकी आलोचनामें जो कुछ भी अच्छा या मूल्यवान हो, उसे हमें ग्रहण कर लेना चाहिये और बाकी सब बातोंको भूल जाना चाहिये।" और उन्होंने प्रसिद्ध भारतीय भक्तकवि दादूकी सुपरिचित पंक्तियां कह सुनाई, जो उन्हें बहुत प्रिय थीं:

निन्दक बाबा बीर हमारे।
जुग जुग जीवै निन्दक मोरा,
राम देव, तुम करो निहोरा।
निन्दक मेरा पर उपकारी,
दादू निन्दा करै हमारी।

उन्होंने यह भी कहा, "रामनामका जप करना व्यर्थ है, यदि उससे जीवनके तूफानोंमें हमें शान्त रहनेकी शक्ति प्राप्त न हो। यह हमारी श्रद्धाकी परीक्षा और कसौटी है।"

*

जो कुछ अनुभव पहले हुआ और जो बादमें हुआ, उसकी तुलनामें मुरायम गांव मरुभूमिमें हरियाली जैसा सिद्ध हुआ। मुरायममें जिस मौलवीके घरमें गांधीजी ठहरे थे, वह उन्हें अपने घरके भीतर ले गया और जनानेकी महिलाओंका उनसे परिचय कराया। उन्होंने गहरी भक्तिसे

गांधीजीका स्वागत किया। यह देखकर कि उनमें से कुछ गांधीजीके सामने संकोच कर रही हैं और पर्दा रख रही हैं, मौलवीने उन्हें हल्का-सा उलाहना देकर कहा, "यह हमारा सौभाग्य है कि गांधीजी जैसा फरिश्ता आज हमारे यहां आया है। हमारी कौम पर इस समय अपने हिन्दू भाइयोंका खून बहानेका कलंक लगा हुआ है। महात्माजी हमें उस कलंकसे मुक्त करने आये हैं। इनकी पवित्र करनेवाली उपस्थितिमें पर्दा करना बेहूदा बात है।"

शामकी प्रार्थनामें सारे हिन्दुओं और मुसलमानोंने मिलकर रामधुन गाई। गांधीजी बोले, "इसका सारा श्रेय मौलवी साहबको है। इससे मेरे इस विचारकी पुष्टि होती है कि एक व्यक्ति भी यदि सच्चा और शुद्ध हृदयका हो, तो वह अपने आसपासके वायुमंडलको बदल देनेके लिए काफी है।" यह बात यदि उस गांवके लिए सच थी, तो सारे नोआखाली और हिन्दुस्तानके लिए सच क्यों नहीं हो सकती थी?

मुरायमके भले मुस्लिम यजमान गांधीजीको अगले गांव हीरापुरके आधे रास्ते तक रामधुन गाते गाते छोड़ने आये। जब गांधीजी मुरायम आये तब भी वे रामधुन गा रहे थे। हीरापुरमें केवल दो हिन्दू परिवार थे। यहां की प्रार्थना-सभा यात्राकालमें हुई सभाओंमें सबसे बड़ी थी। गांधीजीके हीरापुरसे रवाना होनेसे पहले वहांकी मुस्लिम स्त्रियोंने मनुसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। मनु गांधीजीको भी अपने साथ ले गई। परन्तु एकके सिवा कोई स्त्री घरमें से बाहर नहीं निकली। इस पर गांधीजी उनकी झोंपड़ियोंमें उनसे मिलने गये और सबको सलाम किया—जिनमें बच्चे भी थे।

*

विनाश और निर्जनताके दृश्य पीछे छोड़कर यात्रीने मनोहर सौन्दर्यके प्रदेशमें प्रवेश किया । एक भीतरी जलमार्गको पार करनेके बाद पगडंडी एक सीधी चढ़ाईवाले किनारे पर टेढ़ीमेढ़ी चलती थी। वहांसे एक बड़ा आमका बगीचा दिखाई देता था। उसके बीचमें एक सुन्दर तालाब था, जो लगभग आधा फर्लांग लम्बा होगा। उसमें असंख्य बतखें और जंगली हंस थे, जो निश्चिन्त होकर उसके विशाल और लहराते पानी पर तैर रहे थे । वे तुरन्त भयंकर चीख मार कर

आकाशमें उड़ गये, क्योंकि अनधिकार प्रवेश करनेवाले लोगोंने उनकी शान्ति भंग कर दी थी। आमके बगीचेके अन्तिम छोरके आगे मीलों तक एक उतार-चढ़ाववाला हराभरा सुन्दर प्रदेश फैला हुआ था।

गांधीजीकी मंडली बांसामें २६ जनवरी, १९४७ को अर्थात् स्वाधीनता-दिवस पर पहुंची। गांधीजीसे कहा गया कि १८ वर्ष पहले कांग्रेसने स्वाधीनताकी जो घोषणा की थी, उसकी स्मृतिमें आप राष्ट्रीय झंडा फहरायें। पूनाके आगाखां महलकी नजरबन्दीके दिनोंमें भी गांधीजीने यह दिन मनाया था और बिना चूके तिरंगा झंडा फहराया था; और उनकी रिहाईके बाद, जब सरकारी दमन अपनी चरम सीमा पर था, उन्होंने सरकारकी निषेधाज्ञाके बावजूद स्वाधीनता-दिवस मनानेका आग्रह रखा था। परन्तु नोआखालीमें यह दिन मनानेका उन्हें कोई उत्साह महसूस नहीं हुआ, क्योंकि वहां हिन्दुओं और मुसलमानोंके दिल फट गये थे और भाई भाईका दुश्मन बन गया था। वे उदास होकर बोले, "मैं अंग्रेजोंसे तो लड़ सका, लेकिन यहां किससे लड़ूं ? अपने ही भाइयोंसे लड़ूं ? भले ही मुसलमान इसे बरदाश्त कर लें और कुछ न कहें। परन्तु मैं जानता हूं कि राष्ट्रीय झंडा फहरानेसे वे भीतर ही भीतर कुढ़ेंगे। मैं यह नहीं चाहता। मैंने हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और सिक्ख आदि भारतके सभी धर्मों, सभी समुदायों और सभी लोगोंके प्रतीकके रूपमें तिरंगेकी योजना की थी। किसी समय सचमुच वे सब इसे

अपना ही झंडा मानते थे। बहुतोंने इसके लिए अपने प्राण दिये थे। किन्तु आजकल तो हमारे बुरे दिन आ गये हैं। यदि हम जागेंगे नहीं तो स्वाधीनता आयेगी तब वह मिथ्या स्वप्नमें बदल जायगी।" और इस कारणसे गांधीजीने झंडा फहरानेकी विधि नहीं की।

कड़ाकेकी ठंड पड़ रही थी। जब गांधीजी दूसरे दिन पल्ला पहुंचे तो उनके पैर फिर ठंडके मारे लगभग ठिठुर गये। वहां जब वे अपने चारों ओरकी प्रकृतिकी अपार शांतिका विचार करने लगे, तो उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रकी अपनी यात्रामें वे प्रतिदिन जो विनाश और वीरानी देखते आ रहे थे उसके दुःखने उन्हें अभिभूत कर लिया। उन्होंने ठंडी आह भर कर कहा, "मुझे बंगालकी झोंपड़ियोंसे प्रेम हो गया है। वे बड़ी हवादार और हलकी हैं। प्रकृतिने यहां इतनी विपुलता बिखेर

रखी है, फिर भी यहांके हिन्दू और मुसलमान भाइयोंकी तरह मिलकर क्यों नहीं रह सकते ? बेवकूफीकी बात तो देखो । एक ओर अकाल और भुखमरीका खतरा खड़ा है और दूसरी तरफ हिन्दू काश्तकारोंका बहिष्कार करके खेतीके कामकाजमें बाधा पहुंचा कर अज्ञानवश अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी चलाई जा रही है ! . . . इसीलिए मैं रोज प्रार्थना करता हूं कि 'सबको सन्मति दे भगवान' ।"

*

मुसलमानोंका संगठित गुप्त विरोध या कहिये कि मुस्लिम लीगका गुप्त विरोध गांधीजीकी पदयात्राके अगले दौरमें खुलकर सामने आया। पांचगांवके रास्तेमें एक स्थान पर मनु हमेशाकी तरह मुसलमान स्त्रियोंसे मिलनेके लिए उनके घर गई, परन्तु उन्होंने जल्दीसे अपने दरवाजे बन्द कर लिये, ताकि वह भीतर न जा सके । एक बूढ़ी मुसलमान महिला थोड़ी देरमें आई और उसने छोटीसी लड़की (मनु) से "बेकार, बिलकुल बेकार डर जाने पर उन स्त्रियोंको डांटा और स्नेहपूर्वक अपने मेहमानसे रोटीका टुकड़ा और मछली खानेका आग्रह किया। बेचारी मनुने बहुतेरा समझाया कि मैं पक्की शाकाहारी हूं और मछली नहीं खाती । लेकिन सब व्यर्थ हुआ बूढ़ी मांको विश्वास ही नहीं हुआ। हिन्दू हो या मुसलमान, बंगालमें मछलीके बिना किसीका काम कैसे चल सकता है ! उसने कह दिया, "हिन्दू तो आखिर हिन्दू ही है । इसके बाद हम कैसे यह विश्वास कर सकते हैं कि गांधीजी यहां हिन्दू-मुस्लिम एकता कराने आये हैं !" उस मांको विश्वास दिलानेके लिए मनुने रोटीका एक टुकड़ा तोड़ कर खा लिया। बुढ़िया नरम पड़ गई और कुछ समझाने-बुझाने पर दूसरी औरतें भी बाहर निकल आईं। परन्तु इस घटनासे यह प्रगट हो गया कि मुसलमान औरतोंमें भी हिन्दुओंके बारेमें कितना गहरा अविश्वास पैठ गया था। इससे गांधीजीको बड़ा आघात लगा ।

गांधीजीकी मंडलीमें से कुछ लोगोंने जिला मुस्लिम लीगके मंत्रीसे सम्पर्क साधा था। चूंकि इन महाशयने अपनी बातचीतके दौरान नोआखालीमें हिन्दू-मुस्लिम सहयोगके बारेमें कुछ बड़ी प्रशंसनीय भावनाएं प्रगट की थीं, इसलिए उन्होंने लीगके मंत्री और गांधीजीकी मुलाकातका प्रबंध

कर दिया । वे गांधीजीसे पांचगांवमें मिले। परन्तु सबको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मंत्रीने अपनी सारी अच्छी अच्छी बातोंको ताकमें रखकर ये मांगें गांधीजीके सामने रखीं : १. बाहरके सब नेता और स्वयंसेवक जिला छोड़कर चले जायं, क्योंकि उनके रहनेसे साधारण शान्तिपूर्ण स्थितिके फिरसे पैदा होनेमें बाधा पड़ती है; २. शान्ति फिरसे स्थापित करने और बनाये रखनेकी जिम्मेदारी पूरी तरह स्थानीय मुसलमान और हिन्दू नेताओंकी मानी जानी चाहिये और उन्हें आपसमें समस्यायें हल करनेके लिए "स्वतन्त्र छोड़ देना" चाहिये; और ३. आपको अपनी प्रार्थना-सभाएं बन्द कर देनी चाहिये, क्योंकि मुसलमान उन्हें नापसन्द करते हैं। अन्तमें उन्होंने गांधीजीसे कहा कि इस जिलेमें आपका रहना जरूरी नहीं है और अगर आपका नोआखालीमें अपनी प्रवृत्तियां जारी रखनेका आग्रह हो, तो आपको एक ही स्थान पर रहना चाहिये और गांव-गांव नहीं घूमना चाहिये।

गांधीजीने उत्तर दिया, यदि किसीकी उपस्थिति नोआखालीमें साधारण शान्तिपूर्ण स्थितिके फिरसे पैदा होनेमें बाधक होती हो, तो ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियोंके विरुद्ध सरकारको अपनी सत्ताके बल पर कार्रवाई करनी चाहिये। बेशक, शान्तिकी पुनर्स्थापनाकी जिम्मेदारी अन्तमें तो स्थानीय नेताओं पर ही है और होनी चाहिये। परन्तु दूसरे लोग सहायता देना चाहें, तों उसका तिरस्कार करना समझदारी नहीं होगी । में अवश्य ही नहीं **चाहता** कि मुसलमान या हिन्दू भी मेरी प्रार्थना-सभाओंमें आयें । लेकिन अगर मुझसे पूछा जाय कि उनका आना मुझे पसन्द होगा या नहीं, तो मैं निश्चित रूपसे 'हां' कहूंगा। अगर ऐसे मुसलमान हों, जो मेरी प्रार्थना-सभाओंको नापसन्द करते हैं, तो वे न आनेके लिए स्वतन्त्र हैं। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि गैर-मुस्लिम जिस पद्धतिको उत्तम समझते हों उस पद्धतिसे वे सार्वजनिक प्रार्थना न करें । रही बात मेरे नोआखालीमें ठहरनेकी । सो मैं मुस्लिम लीगके मंत्रीकी रायको महत्त्व अवश्य दूंगा। परन्तु यह निर्णय करनेकी छूट मुझे होनी चाहिये कि इस जिलेमें मेरा रहना जरूरी है या नहीं अथवा मुझे जगह जगह घूमना चाहिये या नहीं।

३

प्रश्नोंकी गोलाबारी जयागमें भी जारी रही।

पनियालामें जो नई रामधुन शुरू की गई थी, उसमें बादमें दो पद और जोड़ दिये गये। अब रामधुन इस प्रकार गाई जाने लगी:

रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम,
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान !
कृष्ण करीम हैं तेरे नाम,
राम रहीम हैं तेरे नाम।
सबको सन्मति दे भगवान !

मुसलमानोंके एक वर्गने इस पर भी आपत्ति की । गांधीजी पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने रहीम और करीमके साथ राम और कृष्णके नाम जोड़ दिये। कहा गया कि यह तो कुफ्र है और मुसलमानोंके कानोंको यह बुरा लगता है। इसी तरह क्या आपके खयालसे किसी गैर-मुस्लिमका कुरानका पाठ करना अनुचित नहीं है?

इस प्रश्नसे गांधीजीको दुःख और आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, इससे कितनी असहिष्णुता और संकुचितता प्रगट होती है? यह असत्य है कि मैं राम और कृष्णके हिन्दू अवतारोंको इस्लामके एक ईश्वरके साथ जोड़ कर इस्लामको भ्रष्ट करनेकी कोशिश कर रहा हूं। मैंने सिद्धान्तके रूपमें किसीको अपना धर्म-परिवर्तन करनेका कभी निमंत्रण नहीं दिया था। मेरा उद्देश्य हमेशा यह रहा कि मुसलमानोंको अधिक अच्छे मुसलमान बनाया जाय, हिन्दुओंको अधिक अच्छे हिन्दू बनाया जाय और ईसाइयोंको अधिक अच्छे ईसाई बनाया जाय । मेरा धर्म किसीका बहिष्कार नहीं करता । वह व्यापक है और सबका अपने भीतर समावेश करनेवाला है। मेरे लिए राम, अल्ला और गॉड एक ही अर्थके द्योतक हैं । करोड़ों हिन्दू ईश्वरको रामके नामसे ही जानते हैं।

*

परम तत्त्वके वाचक अथवा मनुष्यको उसका जो भी पहलू अपील करता हो उसके वाचक किसी शब्द-प्रतीकका एकाग्र मनसे तब तक निरन्तर जप करनेकी प्रथा, जब तक उसका परिणाम "बुद्धि, संकल्प-शक्ति और भावनाकी ऐसी शान्तिमें न आये कि आत्माकी गहराईमें उस दैवी शब्दकी ध्वनि उठे", [आल्डस हक्सले, 'दि पेरेनियल फिलॉसॉफी', लन्दन, १९४६, पृ० ३२०] हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम सब धर्मोंका समान रूपसे एक अभिन्न अंग बन गई है। "यदि उस शब्दका 'संपूर्ण रूपमें तथा बौद्धिक विश्लेषण द्वारा उसे विभक्त किये बिना" केवल जप किया जाय, तो जिस सत्यका वह प्रतोक है वह सत्य अखण्ड अन्तःप्रेरणाके रूपमें आत्मामें अवश्य ही प्रकट होगा।" [वही]

गांधीजीके सम्बन्धमें वह शब्द राम था। उन्होंने लिखा है कि जब मैं बच्चा था तब मुझे भूतोंका डर लगता था। मेरी धाय रम्भा मुझसे कहा करती थी कि "भूत नहीं होते। परन्तु तुम्हें डर लगे तो रामनामका जप करो।" बादके जीवनमें उन्हें पता लगा कि विद्या मनुष्यको अनेक स्थितियोंमें से निकाल कर आगे ले जाती है, परन्तु खतरे और प्रलोभनके समय वह सर्वथा निष्फल सिद्ध होती है। "उस समय श्रद्धा ही मनुष्यकी रक्षा करती है।" [यंग इंडिया, २२ जनवरी १९२५, पृ० २७] उसके बाद रामनाम गांधीजीके जीवनका सहारा बन गया—उनके आध्यात्मिक आकाशमें सबसे महान ध्रुवतारा बन गया।

प्रत्येक साधकने आत्म-संयम सिद्ध करनेकी साधनामें उन शत्रुओंसे—जो मनुष्यके अवचेतन मनके गहरे समुद्रमें छिपे रहते हैं—चित्तकी सतही संकल्प-शक्तिके हिंसक प्रयत्नों द्वारा लड़नेकी व्यर्थता और खतरोंका अनुभव किया है। "मनुष्य जितना अधिक कर्म करता है उतना ही अधिक उसका अस्तित्व और स्थिति होती है; और जितना अधिक उसका अस्तित्व और स्थिति होती है, उतना ही ईश्वरका अस्तित्व और स्थिति उसके भीतर कम होती है।" [आल्डस हक्सले द्वारा 'दि पेरेनियल फिलॉसॉफी' में बेनेट ऑफ केनफील्ड कृत 'रूल ऑफ परफेक्शन' से उद्धृत भाग, लंदन, १९४६, पृ० ३२५] बुरे विचारोंमें अतिशय रमे रहनेसे वे आसानीसे हम पर हावी हो जाते हैं। इसलिए साधनाकी तीव्रताको अनासक्तिके द्वारा सौम्य बनाना होता है। इसी कारणसे हमारी साधनाके, सफलता और असफलताके सारे फलोंको ईश्वरके चरणोंमें अर्पण

करके आत्म-समर्पण करना या उसकी कृपाकी याचना करना आवश्यक होता है। मूर्खतापूर्ण आत्म-दमनसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके मातसिक रोगों, विकृतियों तथा ग्रंथियोंकी आज भयंकर वृद्धि हो गई है और मानसिक चिकित्सा करनेवालोंका ध्यान इन सबके प्रति अधिकाधिक खिंचने लगा है। प्राचीन कालके ऋषि-मुनियोंने इनका जो उपाय बताया है, उससे अधिक फलदायी दूसरा कोई उपाय आज तक खोजा नहीं गया है। वह उपाय है "अनासक्ति रूपी तीक्ष्ण शस्त्र" द्वारा उनका निर्मूलन (असंगशस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा) और आत्म-समर्पण । 'क्लाउड ऑफ अननोइंग' के महान रहस्यवादी लेखकने लिखा है: "जब तुम्हें लगे कि तुम किसी भी उपायसे उन्हें (प्रोलोभनोंको) दबा नहीं सकते तब कायर और नामर्द आदमीकी तरह उनके वश हो जाओ . . . और ऐसा मान लो कि उनसे अधिक जूझना अब मूर्खता है और इसलिए तुम अपने शत्रुओंके हाथमें—ईश्वरकी शरणमें जाते हो। . . . और मुझे निश्चित रूपसे ऐसा लगता है कि यह दूसरा कुछ नहीं है, केवल तुम्हारी अपनी, तुम जैसे हो उसकी सच्ची पहचान और सच्चा भान है। . . . और तुम्हारी यह नम्रता तुम्हें ईश्वरकी सहायताके योग्य तथा पिता अपने बालकके आंसू पोंछता है उस तरह वात्सल्यसे ईश्वर तुम्हारे आंसू पोंछे इस योग्य तुम्हें बनाती है। . . ." [आल्डस हक्सले द्वारा 'दि पेरेनियल फिलॉसॉफी' में 'दि क्लाउड ऑफ अननोइंग' से उद्‌धृत भाग, लंदन, १९४६, पृ० ३२७] इस सम्बन्धमें गांधीजीने अपना अनुभव इस तरह बताया है: " रामनाम मनुष्यको अनासक्त बनाता है, उसे समता प्रदान करता है और संकटके क्षणोंमें कभी उसका त्याग नहीं करता।" [यंग इंडिया, २१ अक्तूबर १९२६, पृ० ३६४]

परन्तु रामनामके जपका जंतर-मंतरके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। और न रामनाम प्रयत्नका स्थान ले सकता है। "एक ऐसी विचारधारा है, जो संपूर्ण अकर्म और सारे प्रयत्नकी निरर्थकता सिखाती है। . . . मेरी नम्र रायमें प्रयत्न आवश्यक है। . . . परन्तु वह प्रयत्न निष्काम होना चाहिये। रामनाम या उसके जैसी दूसरी वस्तु जपनेके लिए नहीं, परन्तु शुद्धिके लिए आवश्यक है। रामनाम प्रयत्नको तीव्र बनाने और सही मार्ग पर चलानेमें सहायक होता है।" [वही] और गांधीजीने अपने ही अनुभवका प्रमाण पुनः देते हुए कहा है कि, "जो मनुष्य इसका पूरा उपयोग कर सकता है, वह बहुत थोड़े बाहरी प्रयत्नसे शक्तिशाली परिणाम दिखला सकता है।"

[हरिजन, २२ जून १९४७, पृ० २००] हृदयसे लिया जाय तो रामनाम "बुरे विचार मात्रको भगा देता है; और बुरे विचारोंके चले जाने पर बुरा कर्म भी संभव नहीं रहता ।" [हरिजन, १२ मई १९४६, पृ० १३२] इसका यह अर्थ नहीं कि जिस किसीने रामनाम जप कर अपनेको शक्तिशाली बना लिया है, वह सब प्रकारकी छूट लेते हुए भी सुरक्षित रह सकता है। "ऐसा मनुष्य स्वयं अपने साथ भी कोई छूट नहीं लेगा। उसका सम्पूर्ण जीवन आंतरिक शुद्धिका अचूक प्रमाण होगा।" [वही]

*

रामनाम क्या है?

भक्त-शिरोमणि तुलसीदास अपनी 'रामायण' में ऋषि याज्ञवल्क्यसे आरम्भ करके कई पात्रों द्वारा यह प्रश्न पुछवाते हैं। अन्तमें एक अमर संवादमें पार्वती शिवसे पूछती हैं: "ये राम कौन हैं, जिनका नाम ऋषि-मुनि और आप भी परमानन्दकी प्राप्ति और जीवन-मरणके बन्धनसे मुक्ति पानेके लिए सतत जपा करते हैं? क्या ये वही राम हैं, जो अयोध्याके राजा थे, जो अपनी पत्नीके वियोगसे मर्त्यलोकके साधारण मनुष्यकी तरह विलाप करते थे और जिन्होंने अत्यन्त क्रोधमें आकर रावणको मार डाला था; अथवा वे और कोई हैं?" उत्तर यह दिया गया है: "जिन रामका देवगण और ब्रह्मासे लेकर नीचे तकके ऋषि-मुनि अपनी उपासनामें ध्यान करते हैं, वे ऐतिहासिक राम नहीं हैं, राजा दशरथके पुत्र और अयोध्याके राजा राम नहीं हैं। वे तो 'नित्य', अजन्मा, अद्वितीय . . . कालातीत, निरंजन, निराकार हैं।"

गांधीजीके राम भी वही थे। वे सबके लिए समान थे। "उनके उतने ही नाम हैं जितने कि मनुष्य हैं।" [हरिजन, २४ नवम्बर १९४६, पृ० ४०९] "ये नाम व्यक्तिवाचक नहीं, किन्तु गुणवाचक हैं, यद्यपि राम गुणातीत, अवर्णनीय और अमेय हैं।" [गांधीजी, 'रामनाम', अहमदाबाद, १९४९, पृ० ११]

सनातनी अर्थमें गांधीजी ईश्वरके अवतारोंमें विश्वास नहीं करते थे। ईश्वर सर्वव्यापी है, इसलिए सभी मानव-प्राणियोंके हृदयमें निवास करता है; इस अर्थमें हम सभी उसके अवतार कहे जा सकते हैं। राम और कृष्णको ईश्वरका अवतार कहा जाता है, क्योंकि उनमें वे सभी दैवी

गुण थे, जिनकी मनुष्यने कल्पना की है। वे "वास्तवमें मनुष्यकी कल्पनाकी सृष्टि थे।" [हरिजन, २२ जून १९४७, पृ० २००]

परन्तु ये अवतारी पुरुष सचमुच हुए थे अथवा नहीं, इससे मनुष्योंके मनमें उनकी जो कल्पना है उस पर कोई असर नहीं पड़ता। "रामसे रामनाम अधिक शक्तिशाली है।" [हरिजन, २ जून १९४६, पृ० १५८] गांधीजीको ईश्वरके साथ जुड़े हुए ऐसे सब नाम और रूप मान्य थे, जो एक ही निराकार सर्वव्यापक रामके प्रतीक हैं। इसलिए जिस रामका वर्णन दशरथ-पुत्रके रूपमें किया गया है, वह गांधीजीके लिए वही सर्व-शक्तिमान तत्त्व था, जो हृदयमें अंकित होने पर सारे मानसिक, नैतिक और शारीरिक कष्ट दूर कर देता है।" [वही] वे "गणितशास्त्रके ऐसे सूत्रके साथ उसकी तुलना करते थे, जिसमें अनन्त अन्वेषणका फल सार रूपमें आ जाता है।" [प्रार्थना-प्रवचन, २ जुलाई १९४६] "रामनाम कोई मलिन विद्या नहीं है।" [हरिजन, ७ अप्रैल १९४६, पृ० ६८]

"केवल तोतेकी तरह रामनाम रटनेमें कोई रहस्यमय गुण नहीं होता।" [प्रार्थना-प्रवचन, २ जुलाई १९४६] जिसका वह प्रतीक है उसे संपूर्णतया समझ कर रामनाम जपना चाहिये। इस सम्बन्धमें वह "श्रद्धाके उपचार" से भिन्न है। इसका अर्थ अन्ध-उपचार नहीं है। उससे "आत्मा जागृत होनी" चाहिये। ईश्वरका नाम जपनेके लिए ईश्वर-परायण जीवन व्यतीत करना चाहिये। ईश्वर और उसका नियम एक ही हैं; अत: "जिस व्यक्तिके लिए ईश्वरका ध्यान उतना ही स्वाभाविक हो गया है जितनी श्वासोच्छ्वासकी क्रिया, वह ईश्वरकी भावनासे इतना ओतप्रोत हो जाता है कि नियमका ज्ञान अथवा पालन उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है। ऐसे व्यक्तिको और किसी उपचारकी जरूरत नहीं होती।" [हरिजन, र४ मार्च १९४६, पृ० ५६] ऐसे व्यक्तिके लिए "अनुशासन और आत्म-संयम सरल हो जायंगे। . . . उसका जीवन सीधे, सरल मार्ग पर चलेगा।"हरिजन, २ जून १९४६, पु० १६८] दूसरोंके कष्ट-निवारणके लिए स्वयं कष्ट उठाना उसके जीवनका अंग बन जायगा और उसे अमिट तथा शाश्वत आनन्दसे भर देगा। इस प्रकार रामके भक्तको गीताके स्थितप्रज्ञके आदर्शका मूर्त रूप कहा जा सकता है। और रोगमात्र ईश्वरके नियमोंका भंग करनेसे होता है, इसलिए गांधीजीकी रायमें ऐसा व्यक्ति बीमार नहीं पड़ेगा। संयोगवश यदि वह बीमार

पड़ भी गया, तो वह उपचार करानेके लिए दुनियाभरमें नहीं दौड़ेगा। "देहमें रहनेवाले देहीका यह काम नहीं कि किसी न किसी तरह देहको अच्छा करे। . . . जो मनुष्य यह समझता है कि शरीरमें रहते हुए भी आत्मा शरीरसे भिन्न है और नाशवान शरीरकी तरह आत्मा नाशवान नहीं है," [हरिजन, २९ जून १९४७, पृ० २१२] वह अपना वैद्य खुद ही बनकर सन्तोष कर लेगा और स्वस्थ होने तथा रहनेके लिए रामनाम पर और प्रकृतिके पंचतत्त्वोंके उपचार पर निर्भर करेगा। और यदि इनसे रोगका उपचार नहीं हो सकेगा तो वह घबरायेगा नहीं और मृत्युको अपना मित्र और उद्धारक मानकर उसका स्वागत करेगा।

गांधीजीने कहा है : सब देशोंमें, सब युगोंमें और सब भाषाओंमें ईश्वरके जितने भी नाम प्रचलित हैं, उन सबका मनुष्य जप करे तो भी परिणाम एक ही होगा । इस प्रकार ईसाईको ईसाका नाम जपनेसे उतनी ही सान्त्वना और उतना ही सन्तोष मिलेगा, जितना मुसलमानको अल्लाका नाम लेनेसे मिलेगा । इन सब नामोंका एक ही अर्थ है और एकसी परिस्थितिमें उनका एकसा ही परिणाम होता है। इसलिए राम और रहीम, कृष्ण और करीमका नाम एक साथ लेनेका विरोध करना चरम सीमाकी धर्मान्धता है। क्या मुसलमानोंका ईश्वर एक और हिन्दुओं, पारसियों अथवा ईसाइयोंका ईश्वर दूसरा है? नहीं, सबका एक ही सर्व-शक्तिमान और सर्वव्यापक ईश्वर है। "उसके नाम भिन्न भिन्न हैं। लोग उसे उसी नामसे याद करते हैं, जिससे वे अधिकसे अधिक परिचित हैं।" मुझे रामनाम इसलिए ज्यादा पसन्द है कि मैं उसे बचपनसे भलीभांति जानता हूं और जीवन-संग्राममें मुझे उसीका हमेशा सहारा रहा है।

गांधीजीने विरोध करनेवालोंसे कहा, मैं ऐसे कई मुसलमान मित्रोंको जानता हूं, जिन्हें उनके माता-पिता और प्रियजन सिर्फ रहीम और करीम कहते हैं। परन्तु किसीने यह नहीं कहा कि रहीम और करीम कहकर उन्हें खुदाका दरजा दिया जा रहा है। मुझे आशा है कि विरोध करनेवाले लोग उस सहिष्णुता, मित्रभाव और सब धर्मोंके प्रति समान आदरकी भावनाको समझेंगे, जो राम और रहीम तथा कृष्ण और करीमके नामसे ईश्वरको याद करनेकी मेरी प्रणालीसे प्रकट होता है। इससे उन्हें किसी नुकसानका डर नहीं रखना चाहिये। मुझे यह देखकर कुछ सन्तोष होता है कि सब मुसलमानोंके ऐसे असहिष्णु विचार नहीं हैं। कुछ उदार

मुसलमानोंने मुझे पत्र भेजे हैं, जिनमें उन आलोचकोंका विरोध किया गया है जिन्होंने मेरे कुरानके पाठका या मेरे जैसे एक गैर-मुस्लिमके इस्लामके बारेमें कुछ भी कहनेका विरोध किया है। उन्होंने कुरानसे ही प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि इस्लाम एक उदार और अत्यन्त सहिष्णु धर्म है। वह आलोचनाका स्वागत करता है और दुनियाको कुरानका अध्ययन करनेके लिए निमंत्रित करता है।

आमकीमें (३० जनवरीको) गांधीजीकी श्रद्धाकी सच्ची परीक्षा हुई ।

गांवमें बकरीका दूध मिलता नहीं था। परन्तु गांधीजीने इस बातको कोई महत्त्व नहीं दिया और कहा कि मेरे लिए नारियलका दूध उतना ही अच्छा है जितना बकरीका दूध और मेरे खानेमें बकरीके मक्खनका स्थान नारियलका तेल आसानीसे ले सकता है। तदनुसार बकरीके दूधके स्थान पर उन्होंने ८ औंस नारियलका दूध ले लिया। इससे उन्हें जोरके दस्त लग गये । शाम तक वे बिलकुल ढीले पड़ गये । जब वे कमोड पर बैठकर लौट रहे थे तब मनुने देखा कि वे पसीनेसे तर हो रहे हैं। आम तौर पर जंभाइयां आना, हाथ-पैरोंका ठंडा पड़ जाना और आंखें स्थिर होना आदि लक्षणोंसे मालूम हो जाता था कि उन्हें मूर्च्छा आनेवाली है। बार-बार जंभाइयां आने और खूब पसीना होनेसे उसने सोचा कि गांधीजीको मूर्च्छा आनेवाली है। उसने आशा रखी थी कि वे किसी तरह अपने कमरे तक पहुंच जायेंगे, परन्तु वे तो मुर्च्छित हो रहे थे। उसने उनके माथेका पसीना पोंछ दिया और जब वे गिरने लगे तो हलकेसे उनके सिरको संभाल कर सहायताके लिए प्रोफेसर निर्मलकुमार बोसको पुकारा। दोनोंने मिलकर उन्हें उठा लिया और बिस्तर पर लिटा दिया। तब मनुको सूझा कि यदि डॉक्टरको न बुलानेके कारण गांधीजीको कुछ हो गया, तो सब लोग मुझे मूर्ख कहेंगे। उसने सुशीलाको बुलानेके लिए एक पत्र लिखा। पत्र वह प्रोफेसरको देनेवाली ही थी कि गांधीजीने आंखें खोलीं। उन्होंने मनुसे कहा, "तेरा निर्मलबाबूको बुलाना मुझे पसन्द नहीं आया। तू अभी बच्ची है, इसलिए तुझे मैं माफ कर सकता हूं। परन्तु मैंने सचमुच यह आशा रखी थी कि इस अवसर पर तू और कुछ न करके सच्चे हृदयसे रामका नाम लेगी। मैं तो सारे समय ले ही रहा था। . . . अब किसीको इसकी सूचना न देना, सुशीलाको भी नहीं। राम ही

मेरा सच्चा डॉक्टर है। जब तक वह मुझसे काम लेना चाहता है तब तक मुझे जीवित रखेगा; नहीं तो उठा लेगा।" [मनु गांधी, 'एकला चलो रे', अहमदाबाद, १९५४, पृ० १२७]

मनु चौंक उठी। गांधीजी देखें उससे पहले ही उसने प्रो. निर्मल बाबूके हाथसे पत्र छीन कर फाड़ डालनेकी कोशिश की। परन्तु गांधीजीने देख लिया। उन्होंने पूछा, "क्यों तूने पत्र लिख भी डाला था न?" मनुने अपना दोष स्वीकार किया। गांधीजी बोले: "आज ईश्वरने तुझे और मुझे दोनोंको बचा लिया है। सुशीला अपने गांवका काम छोड़कर मेरे पास दौड़ी आती, इससे मुझे अपने पर और तुझ पर गुस्सा आता। आज मेरी परीक्षा हुई है। यदि रामनामने मेरे हृदय पर सचमुच अधिकार जमा लिया है, तो मैं बीमारीसे नहीं मरूंगा । और यह नियम मेरे ही बारेमें नहीं, बल्कि सभीके बारेमें लागू होता है।" [वही]

धर्मशास्त्रोंके वाचन और व्यक्तिगत अवलोकनसे गांधीजी इस नतीजे पर पहुंचे थे कि जब उस अदृश्य शक्तिमें मनुष्यकी सम्पूर्ण और सजीव श्रद्धा हो जाती है, तब शरीरमें आंतरिक परिवर्तन होनेसे मनुष्यको सब व्याधियोंसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। परन्तु इसकी कसौटी यह है कि रामनाम अन्तिम श्वास तक चलता रहना चाहिये और वह भी केवल मुखसे नहीं परन्तु सम्पूर्ण हृदय और आत्मासे। दुष्टान्तके रूपमें उन्होंने हनुमानका उदाहरण दिया। रामके चरणोंमें सम्पूर्ण आत्म-समर्पण कर देनेके कारण हनुमानका शरीर वज्रके समान अभेद्य बन गया था। "हनुमानकी तरह हम अपने शरीरको भले उतना बलवान न बना सकें, परन्तु कमसे कम अपनी आत्माको तो उतनी बलवान बना ही सकते हैं। कुछ भी हो, प्रयत्न करना हमारा काम है। फलको ईश्वर पर छोड़ दें । गीता हमें यही सिखाती है।" [वही]

४

आमिशपाड़ामें लोगोंकी भारी भीड़ने गांधीजीका स्वागत किया। उसमें एक स्त्री ऐसी थी जिसकी बुढ़ापेके कारण कमर झुक गई थी। वह १०० वर्षकी बताई जाती थी। गांधीजीने उमरका आदर करके उसे अपने पास बिठाया और अपने गलेसे एक माला निकाल कर उसके गलेमें डाल दी। बुढ़ियाके १०० वर्षके जीवनमें यह परम सन्तोषकी बात थी। उसका चेहरा मुस्कुराहटसे

भर गया। वह अपनी बैसाखीसे सामनेकी जमीनको ठोकती हुई और खुशीसे सिर हिलाती हुई जैसी आई थी वैसी ही अपने महान 'पुत्र' के सामनेसे चली गई !

एक भूतपूर्व विमान-चालक (एयर-मैन), जिसने फरार होकर उपनाम रख लिया था, गांधीजीके पास आकर उनकी मंडलीमें शरीक हो गया था। गांधीजीने इस शर्त पर उसकी सेवाएं स्वीकार की थीं कि वह उनके साथ रहेगा और उनकी सीधी देखरेखमें काम करेगा। इसी तरह उन्होंने अनेक क्रांतिकारियों और फरार लोगोंको अपनी छत्रछायामें लेकर उन्हें हिंसाके मार्गसे हटाया था। बादमें उनमें से कुछ लोग गांधीजीके विश्वस्त सहयोगी बन गये थे। परन्तु यह भाई आमिशपाड़ा पहुंचने पर उनके अनुशासनसे अलग हो गया और उसने स्वतन्त्र रूपसे काम करनेकी इच्छा प्रगट की। गांधीजीने अपनी विशेषताके अनुसार अधिकारियोंको तुरन्त सचेत कर दिया। पुलिस-सुपरिन्टेन्डेंन्टको एक पत्रमें उन्होंने छिखा: "आर. मेरे पाससे अचानक चला गया है। मुझे मालूम नहीं कि आपको उसकी जरूरत है या नहीं अथवा आप उसके खिलाफ कुछ कर सकते हैं या नहीं। परन्तु आपके लिए यह जान लेना अच्छा है कि ऐसा एक आदमी नोआखालीमें स्वतन्त्र घूम रहा है। वह मलाबारका है। मुझे उसके लिए अफसोस है। वह स्थिर होकर रहे तो अच्छा कार्यकर्ता बन सकता है।"

शामको प्रार्थना-सभामें उन्होंने श्रोतागणोंको एक अच्छी खबर सुनाई। सुशीलाको अचानक सेवाग्रामके कस्तूरबा अस्पतालके प्रबन्धके सिलसिलेमें बुकाया गया था। वह वहांका काम संभालती थी । परन्तु नोआखालीके उसके मुस्लिम बीमारोंने उसकी सेवाओंको इतना महत्त्वपूर्ण समझा कि वे उसे जाने नहीं देना चाहते थे और यह चाहते थे कि वह कमसे कम तब तक जरूर ठहर जाय जब तक कि वे सब अच्छे न हो जायं ! गांवमें उसके रहनेके कारण जिन लोगोंने अक्तूबरके दंगोंमें भाग लिया था, उनमें से कुछने लूटी हुई सम्पत्ति मालिकोंको लौटा देनेकी तैयारी बतायी थी। गांधीजीने कहा, यह शुभ लक्षण है। और अगर लूटी हुई सम्पत्ति वापस कर दी जाय, तो मैं सरकारसे मुकदमे वापस लेनेको जरूर कहूंगा। परन्तु यह सम्पत्ति लौटानेकी क्रिया सच्ची और सम्पूर्ण होनी चाहिये, न कि मुकदमोंसे बचनेके लिए केवल नाममात्रकी। मुझे तो उनका सच्चा हृदय-परिवर्तन ही चाहिये।

यद्यपि नोआखालीके कौमी दंगोंका तात्कालिक कारण मुस्लिम जनताकी धर्मान्धता थी, जिसका लीगने पाकिस्तानके प्रचारके राजनीतिक हेतुके लिए दुरुपयोग किया था। फिर भी उनका मूल कारण आर्थिक था । बंगाल शुरूमें ही लॉर्ड कॉर्नवालिसके स्थायी बन्दोबस्तमें आ गया था । इससे जमींदारको किसानोंके साथ सनमानी करनेकी स्वतन्त्रता मिल गई, यद्यपि ब्रिटिश सरकारको बदलेमें उसे सिर्फ निश्चित लगान देना होता था। इससे एक ओर तो पीड़ित और असन्तुष्ट किसानों तथा भूमिहीन मजदूरोंकी और दूसरी ओर स्वेच्छाचारी जमींदारोंकी भद्दी परम्परा स्थापित हो गई। ये जमींदार दिनोंदिन परोपजीवी बनते गये। कुछ समयसे नोआखालीमें यह आन्दोलन चल रहा था कि जमींदारका हिस्सा घटाकर पैदावारका एक-तिहाई कर दिया जाय और इस आशयका एक बिल बंगाल विधान-सभाके सामने प्रस्तुत किया गया था। यह एक किसान-आन्दोलन था और साम्प्रदायिक गुटबन्दीसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। अधिकांश कार्यकर्ता दोनों कौमोंके वामपक्षी वर्गोंसे आये थे। परन्तु जमींदार अधिकांश हिन्दू थे। प्रस्तावित बिलसे उनमें घबराहट पैदा हो गई थी। गांधीजीने अनेक प्रार्थना-प्रवचनोंमें इस प्रश्नकी चर्चा की। उन्होंने कहा, मेरा सदासे यह मत रहा है कि भूमि वास्तवमें सबके प्रभुकी अर्थात् समाजकी है। और इसलिए हल चलानेवालेकी है । एक पुरानी कहावत है कि “सभी भूमि गोपालकी” । परन्तु जब तक यह आदर्श सिद्ध नहीं होता तब तक जमींदारका हिस्सा कम करनेका कोई भी आन्दोलन सही दिशामें एक कदम है। इतना ही है कि वह आन्दोलन अहिंसक होना चाहिये। यह सुधार स्वस्थ लोकमत निर्माण करके होना चाहिये। इसमें सुधारकोंको धीरज रखनेकी जरूरत होगी। जैसा साधन वैसा साध्य, यह एक सही सिद्धान्त है । अनेक आन्दोलन गलत साधनों पर आश्रित रहनेके कारण ही असफल सिद्ध हुए हैं।

कुछ लोगोंको यह डर था कि गांधीजी तो शुद्ध अहिंसक उपायसे ही समाजकी कायापलट करना चाहते हैं, परन्तु स्वार्थी लोग उनकी सलाहके उस भागकी उपेक्षा करके और उनके नैतिक समर्थनका दुरुपयोग करके आन्दोलनको हिंसक ढंगसे चलाने लगेंगे। वे पूछते थे, क्या गांधीजीका ऐसे आन्दोलनको सहारा देना अनुचित नहीं होगा, जिसका परिणाम बंगालके सारे मध्यम वर्गका “सर्वनाश” होगा ? और यदि ऐसा हुआ तो क्या उससे अन्तमें इस विनाशका

सामान्य ग्रामवासियों पर भी असर नहीं होगा, क्योंकि इससे ग्रामवासी उन सेवाओंसे वंचित हो जायंगे जो जमींदार आज ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थाके लिए कर रहे हैं?

गांधीजीने उत्तर दिया, मैंने इन स्थानीय प्रश्नोंका काफी अध्ययन नहीं किया है, इसलिए मैं उनके वास्तविक गुण-दोषों पर कोई निर्णय देनेकी स्थितिमें नहीं हूं। मैं सामान्य सिद्धान्तोंकी दृष्टिसि ही कह सकता हूं। जमींदारकी जमीन जब्त नहीं की जायगी। केवल उसका हिस्सा ही कम किया जायगा । अवश्य ही इससे उसका "सर्वनाश" नहीं होगा । इस प्रश्नके साम्प्रदायिक पहलूका भूत आप पर सवार नहीं होना चाहिये। "संभव है कि नोआखालीमें ज्यादातर जमींदार हिन्दू हों। लेकिन यदि कानून अपने आपमें सही है, तो फिर इस बातका कोई महत्त्व नहीं होना चाहिये कि उसका असर किस पर पड़ता है।" हर समस्या पर हमें उसके गुण-दोषके आधार पर ही विचार करना चाहिये। इसलिए जमींदारोंको मेरी सलाह यह है कि वे जमींदारका हिस्सा कम करनेकी मांगके पीछे रहे सिद्धान्तको स्वीकार कर लें और ठोस सुधारोंके लिए काम करें। "मुझे ऐसा समय आता दिखाई दे रहा है जब सारी जमीन राज्यकी अर्थात् जोतनेवालेकी होगी। बरसोंसे भारतने जब्तीका जीवन व्यतीत किया है। वाजिब कमीका विरोध करके जब्तीका खतरा आप क्यों मोल लेते हैं? कारण, मैं कितना ही चाहूं तो भी इस बातकी कोई गारन्टी नहीं कि स्वाधीनता प्राप्त होनेके बाद देशका राज्य सर्वथा अहिंसक ढंगसे ही चलाया जायगा।" अन्तमें उन्होंने कहा, "कहना नहीं होगा कि हिंसा द्वारा जमींदारोंका सर्वनाश अर्थात् सफाया किया गया, तो अन्तमें किसानोंका भी सर्वनाश होगा। यदि जमींदार बुद्धिमानीसे काम करेंगे, तो अन्तमें किसी भी पक्षकी हानि नहीं होगी।"

इस परसे गांधीजीके संरक्षकताके सिद्धान्त पर उनसे कई प्रश्न पूछे गये। परन्तु गांधीजीके संरक्षकताके सिद्धान्तकी समीक्षा अन्य स्थानके लिए सुरक्षित रखनी होगी। (देखिये खंड-४)

शादुरखिलमें, जहां गांधीजी ३ फरवरीको सुबह पहुंचे, उनकी धर्म-यात्राकी एक और मंजिल पूरी हुई । शादुरखिलमें एक मुस्लिम घरमें एक हिस्टीरियाका रोगी था । वह थोड़ा पागल भी मालूम होता था । उसने गांधीजीका हाथ पकड़कर कहा, बिहारमें जो कुछ हुआ उसके लिए

आप "गिरफ्तार कर लिये गये।" गांधीजीका पागलोंसे निबटनेका सदा एक ही ढंग रहता था। उन्होंने उसे विनोदपूर्वक बातोंमें लगा दिया और जरा भी घबराहट प्रकट नहीं होने दी। इसके फलस्वरूप पागल शान्त हो गया। एक बार पहले भी जब एक भयंकर पागलसे उनका वास्ता पड़ गया था, वे अपने कौशल, विनोदी स्वभाव और अविचलित धैर्यके कारण एक खतरनाक स्थितिमें से बच निकले थे। उस समय जरा-सी भी घबहारट वे दिखाते या धबराहटकी शंका भी पागलको होती, तो उन पर भारी आपत्ति आ पड़ती ।

इस गांवके जिस घरमें गांधीजी ठहराये गये थे, उसमें भी एक पागल रोगी थागांधीजीजीसे पूछा गया, क्या आप इसके लिए कुछ कर सकते हैं? उन्होंने एक पर्चे पर लिख दिया कि रोगी ताल और लयके साथ काफी लम्बे समय तक श्रद्धासे रामनाम जपे, तो उसका पागलपन अवश्य दूर हो जायगा।

गांधीजीको अपनी पदयात्रा आरंभ किये अब एक महीना हो गया था । वे नोआखालीकी स्थितिका निरीक्षण करके इस निर्णय पर पहुंचे थे कि उनकी उपस्थितिके फलस्वरूप दंगोंकी शिकार बनी कौमोंमें बड़ी हद तक साहस आ गया है और उनका डर दूर हो गया है; और सद्भावका खमीर धीरे धीरे परन्तु चुपचाप अपना काम कर रहा है । यह देखकर मानव-स्वभावमें उनकी श्रद्धा दृढ़ हुई कि जो कुछ हुआ है और हो रहा है, उसके बावजूद मुस्लिम कौमका हृदय स्वस्थ है और निःस्वार्थ सेवा तथा प्रेमके शान्त सन्देशका उस पर असर हो सकता है। उन्होंने अपना यह दृढ़ विश्वास फिर प्रकट किया कि यदि मुझमें वह जन्मजात शुद्धता है, जिसका मैं अपने लिए दावा करता हूं, तो मेरे परिश्रमका फल अवश्य निकलेगा और वह टिकेगा | शुद्धताकी मेरी परीक्षामें अपने विचारों पर पूरा नियंत्रण भी शामिल है। वह शुद्धता शरीर और मनके स्वास्थ्यमें, कार्यकी क्षमता और श्रेष्ठतामें तथा सबसे अधिक तो ऐसे "अचल मानसिक सन्तुलनमें प्रकट होनी चाहिये, जिसे कोई डिगा न सके।"

दो दिन पहले गांधीजी किसी मानसिक चिन्ताके कारण रोजसे जल्दी जाग गये थे। इसका उल्लेख करते हुए वे बोले: "मुझे यह अच्छा नहीं लगा। इससे यही सिद्ध होता है कि मैं अभी

गीतामें वर्णित स्थितप्रज्ञके आदर्शसे बहुत दूर हूं। परन्तु मुझे लगता है कि मैं दिनोंदिन उसके अधिक निकट जा रहा हूं।”

नवां अध्याय
स्वाधीनताकी चुनौती

१

मुस्लिम लीग इस आशाके मोहजालमें फंसी हुई थी कि सम्राट्की सरकारकी ६ दिसम्बर, १९४६ की घोषणाके बाद कांग्रेस विवश होकर आसाम और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तको किसी न किसी तरह समूह (ग्रूप) 'ग' और 'ख' में क्रमश: विलीन हो जाने देगी। अन्यथा संविधान-सभा भारतीय स्वाधीनताका जो संविधान बनायेगी, उसे ब्रिटिश सरकार गैर-कानूनी करार दे देगी । इस दूसरी सूरतमें मुस्लिम लीग १६ मईवाली योजनाको स्वीकार कर लेगी और फिर यह मांग करेगी कि चूंकि सम्राट्की सरकारकी ६ दिसम्बरवाली घोषणाके स्पष्टीकरणके अनुसार कांग्रेस कैबिनेट-मिशनकी दीर्घ-कालीन योजनाको स्वीकार नहीं कर सकी है, इसलिए कांग्रेसके नामजद सदस्योंको केन्द्रकी अन्तरिम सरकारमें रहनेका अधिकार नहीं रह जाता और केन्द्रकी सारी सत्ता मुस्लिम लीगको सौंप दी जानी चाहिये। शायद लीगने यह भी आशा रखी थी कि यदि कांग्रेस ब्रिटिश सरकारको नाराज कर देगी, तो ब्रिटिश सरकार दूसरी संविधान-सभाकी तथा पाकिस्तानके लिए लीगने जिन ६ प्रान्तोंका दावा किया है उनके लिए लीगकी अलग केन्द्रकी मांग स्वीकार कर लेगी। फिर तो भारतका विभाजन एक निश्चित वस्तु हो जायगा। परन्तु गांधीजीके श्रीरामपुरसे प्राप्त मार्गदर्शनके अनुसार कांग्रेस महासमितिने ६ जनवरी, १९४७ को जो प्रस्ताव पास किया, उसने मुस्लिम लीगकी इन सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। उस प्रस्तावका क्रियात्मक भाग इस प्रकार था:

> कांग्रेसकी महासमिति उन कठिनाइयोंको अच्छी तरह समझती और महसूस करती है, जो कुछ प्रान्तोंक—खास तौर पर आसाम और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तके मार्गमें तथा पंजाबके सिक्खोंके मार्गमें १६ मई, १९४६ की ब्रिटिश कैबिनेट-मिशनकी योजनाके द्वारा और विशेषत: उसका जो अर्थ ब्रिटिश सरकारने अपने ६ दिसम्बर, १९४६

के वक्तव्यमें लगाया है उसके द्वारा खड़ी कर दी गई हैं। कांग्रेस सम्बन्धित लोगोंकी इच्छाके खिलाफ ऐसे किसी दबाव या जबरदस्तीमें शरीक नहीं हो सकती। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसे स्वयं ब्रिटिश सरकारने भी माना है। (किन्तु) महासमिति . . . भिन्न भिन्न अर्थ लगानेसे पैदा हुई कठिनाइयां दूर करनेकी दृष्टिसे यह सलाह देनेको सहमत है कि विभागों (सेक्शन) की कार्यविधिके बारेमें ब्रिटिश सरकारके लगाये हुए अर्थके अनुसार कार्य किया जाय। किन्तु यह स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिये कि इसमें किसी प्रान्तके साथ जबरदस्ती न की जाय। . . . ऐसी जबरदस्ती की जाय तो किसी भी प्रान्त या उसके हिस्सेको यह अधिकार होगा कि संबंधित लोगोंकी इच्छाओंको कार्यान्वित करनेके लिए वह जो भी कार्रवाई जरूरी समझे करे।

६ दिसम्बरवाले अपने वक्तव्यमें सम्राट्की सरकारने कहा था कि विभागों (सेक्शन) का निर्णय, जिसमें प्रत्येक समूह (ग्रूप) में सम्मिलित प्रान्तोंका संविधान बनानेसे सम्बन्धित प्रश्न भी शामिल हैं, किसी विपरीत समझौतेके अभावमें, उस विभागके प्रतिनिधियोंके सादे बहुमतसे करना चाहिये । परन्तु सर स्टैफर्ड क्रिप्स और लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने अपने पार्लियामेन्टके वक्तव्योंमें यह भी कह दिया था कि किसी भी प्रान्तको उसकी इच्छाके विरुद्ध बलात् किसी समूह (ग्रूप)में नहीं रखा जा सकता; किसी प्रान्तका किसी समूहसे निकल जानेका अधिकार छीना नहीं जाना चाहिये और यदि किसी प्रान्तके इस अधिकारके विरुद्ध कोई प्रान्तीय संविधान बनानेकी कोशिश की जायगी, तो वह १६ मई, १९४६ के राज्यपत्र (स्टेट पेपर) के शब्दों और भावना दोनोंके विरुद्ध होगी।

लंदनके 'टाइम्स' पत्रने बताया कि कांग्रेस महासमितिके प्रस्तावमें प्रान्तोंको जबरदस्तीसे मुक्त रखनेवाला जो संरक्षण है, वह "मि. जिन्ना और उनके समर्थकोंके लिए इस बातका स्पष्ट निमंत्रण है कि वे आसाम, सीमाप्रान्त और सिक्खोंको उसी प्रकारके आश्वासन दें, जो वे खुद अपने लिए मांग रहे हैं।" [दि टाइम्स, लन्दन, ४ फरवरी १९४७] जैसे सम्राट्की सरकार संविधानकी रचनामें भाग न लेनेवाले उन घटकों पर ऐसा संविधान थोपनेका विचार नहीं कर सकती, जो मुस्लिम लीगके बहिष्कारके बावजूद संविधान-सभा बना लेती, उसी प्रकार वह

आसाम या उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तको ऐसा संविधान स्वीकार करनेके लिए भी विवश नहीं कर सकती, जिसके बनानेमें उनका कोई भाग न रहा हो। इसलिए सम्राट्की सरकारके मंत्रियों द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेन्टमें किये गये स्पष्टीकरणके अनुसार सम्बन्धित प्रान्तोंको यह आश्वासन देना लीगका काम था कि जिस विभागमें उसका बहुमत होगा उसका काम इस तरह चलाया जायगा कि कैबिनेट-मिशनकी योजनाके शब्दों और भावना दोनोंका उल्लंगन न हो।

मौलाना आजादनें एक अखबारी मुलाकातमें बताया कि विभाग (सेक्शन) की कार्रवाई दो वैकल्पिक पद्धतियोंसे चलाई जा सकती है। या, तो बंगाल, जिसका विभाग 'ग' में बहुमत है, अपने बहुमतका आसामके लिए संविधान बनानेमें "इस तरहसे उपयोग करे कि जिससे सिद्धान्तमें न सही, किन्तु वास्तवमें आगे चलकर प्रान्तके बहुमतका बाहर निकलनेका अधिकार मारा जाय; अथवा वह आसामका संविधान रचनेके बारेमें विभागमें कोई हस्तक्षेप न कर सके ।" दूसरी सूरतमें आसाम "उचित समय पर बाहर निकलने" के अपने अधिकारका उपयोग कर सकेगा, यदि विभाग (सेक्शन) का बहुमत किसी समूह (ग्रूप) का ऐसा संविधान बना दे, जो आसामको पसंद न हो । सारी बात इस पर निर्भर करेगी कि बंगालके प्रतिनिधि विभाग (सेक्शन) में किस तरह काम करते हैं। "यदि उपरोक्त दो पद्धतियोंमें से पहली पद्धति अपनायी गयी, तो आसामका भय पूरी तरह उचित सिद्ध होगा; और यदि उसके प्रतिनिधि विभाग (सेक्शन) से बाहर निकल जायं, तो उन्हें कोई दोष नहीं दे सकेगा। लेकिन यदि बंगालके प्रतिनिधि दूसरी पद्धति अपनायें, तो कोई समस्या ही पैदा नहीं होगी।" [दि स्टेट्समैन, २८ जनवरी १९४७] विभाग 'ख' में यही बात उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त और सिन्ध पर लागू होगी।

अन्तमें मौलाना आजादने कहा, इससे जाहिर होता है कि कांग्रेसने "ब्रिटिश सरकारके ६ दिसम्बरवाले वक्तव्यको पूरी तरह मान लिया है और लीगके पास संविधान-सभासे अलग रहनेके लिए कोई भी बहाना नहीं हो सकता।" इस दलीलको जारी रखते हुए गांधीजीने कहा, यदि इसके बावजूद लीग संविधान-सभामें नहीं आती, तो न तो कैबिनेट-मिशनकी १६ मईवाली योजनाकी भाषामें और न सम्राट्की सरकारकी ६ दिसम्बरवाली घोषणाकी भाषामें कोई ऐसी बात है, जो समूह (ग्रूप) 'क' के प्रास्तोंको समूह 'ख' और 'ग' के क्रमशः उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त और

आसामके साथ संविधान-सभामें सम्मिलित होने और उसमें भाग लेनेवाले घटकोंके लिए स्वाधीनताका संविधान बनाने—और दूसरे चाहें तो उनको भी इससे लाभ उठानेका निमंत्रण देने—से रोक सकती हो। सम्राट्की सरकारकी घोषणाके तर्कसे ब्रिटिश सरकारके लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह उस संविधानको स्वीकार करे, जो १६ मईवाले राज्यपत्र (स्टेट पेपर) के अनुसार संविधान-सभा बनाये, भले हो संविधान-सभामें सारे प्रान्त भाग न लें। शर्त इतनी है कि इस प्रकार तैयार किया गया संविधान भाग न लेनेवाले घटकों पर थोपा न जाय । सम्राट्की सरकार संविधान-सभामें भाग न लेनेवाले मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्तोंके लिए न तो किसी स्थितिमें अलग संविधान-सभा खड़ी कर सकती है और न अलग केन्द्र ही, क्योंकि १६ मईवाली उसकी योजनामें इसका स्पष्ट रूपमें निषेध किया गया है।

मुस्लिम लीगके लिए यह स्तम्भित कर देनेवाली बात थी। निराश होकर उसने संविधान-सभाकी ही निन्दा शुरू कर दी। ३१ जनवरी, १९४७ को कराचीमें लीगकी कार्यसमितिकी बैठक हुई। उसने एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें कांग्रेस महासमितिके प्रस्तावके विषयमें कहा गया कि वह "बेईमानीसे भरी चालाकी और शब्दोंकी बाजीगरीके सिवा कुछ नहीं है।" उसने संविधान-सभाके चुनावको "गैर-कानूनी" कहा और स्वयं संविधान-सभाको एक "अपूर्ण" सभा कहकर उसकी निन्दा की, "जिसमें केवल कांग्रेस दलका ही प्रतिनिधित्व है।" लीगने यह मांग की कि ब्रिटिश सरकारको ऐसी घोषणा करनी चाहिये कि "कांग्रेसने . . . १६ मईवाले वक्तव्यको स्वीकार नहीं किया है", इसलिए संविधान-सभाको तुरन्त भंग कर दिया जाना चाहिये । लंदनके अनुदार पत्र 'टाइम्स' को भी मजबूर होकर लीगके इस प्रस्तावको "बेहूदा" और "व्यूहात्मक गलती" [दि टाइम्स, लन्दन, ४ फरवरी १९४७] बताना पड़ा।

३ फरवरीको गांधीजीने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें कहा कि अगर संविधान-सभाका चुनाव और कार्रवाई गैर-कानूनी है, तो उनकी वैधताको अदालतमें चुनौती देनी चाहिये। वर्ना इस आरोपका कोई अर्थ नहीं। लीगके लिए उचित बात तो यह है कि वह संविधान-सभामें जाये, अपना मामला वहां रखे और सदस्योंकी बुद्धिसे अपील करके उसकी कार्रवाई पर असर डाले । परन्तु यदि वह ऐसा नहीं करना चाहती, तो दूसरा रास्ता यह है कि वह संविधान-सभाकी

सचाईकी परीक्षा ले और देखे कि मुस्लिम समस्याको वह किस तरह निबटाती है। लीग यदि तलवारके कानून पर आधार नहीं रखना चाहती, तो अपने और देशके प्रति उसका इतना कर्तव्य अवश्य है। यह कहना, जैसा कि मुस्लिम लीगके कराची प्रस्तावमें कहा गया है, सत्यका विपर्यास होगा कि संविधान-सभामें केवल कांग्रेसका ही प्रतिनिधित्व है, जब कि वस्तुस्थिति यह है कि लीगको छोड़कर राष्ट्रीय मुसलमानों सहित देशके सब वर्गोंने उसमें भाग लिया है। यदि कुछ प्रान्त राज्यपत्रके अनुसार अपनी स्वाधीनता स्थापित करना पसन्द करें, तो भी सरकार उस पत्रके अनुसार कार्रवाई करनेके लिए बंधी हुई है। मैं आशा करता हूं कि इसमें ब्रिटिश सरकार असफल नहीं रहेगी और भारतके साथ प्रामाणिक व्यवहार करनेका सारा यश नहीं खोयेगी।

गांधीजीने परिस्थितिकी जैसी परिकल्पना की, उसके अनुसार तीनों पक्षोंकी परीक्षा हो रही थी। उन्होंने कहा, ब्रिटिश सरकार और मुस्लिम लीगका निर्णय लिखनेका काम इतिहास पर छोड़ा जा सकता है। परन्तु कांग्रेस 'भारत छोड़ो" प्रस्तावके अनुसार स्वाधीनताकी चुनौतीको न्याय और प्रामाणिकतासे स्वीकार करके अपना इतिहास स्वयं बना सकती है।

१६ मई, १९४६ के राज्यपत्रके वापस ले लिये जानेकी संभावनासे ही कुछ कांग्रेसी निराशामें डूब गये। वे पूछते थे कि यदि लीगके बहिष्कारके फलस्वरूप ब्रिटिश पार्लियामेन्ट संविधान-सभा द्वारा तैयार किये हुए संविधानको स्वीकार करनेसे इनकार कर दे तो क्या होगा ? उन्होंने यह भी पूछा कि यदि मुस्लिम लीग संविधान-सभामें आनेका निश्चय कर ले, तो क्रमशः समूह 'ख' और 'ग' से निकल जानेवालोंका क्या होगा? इससे गांधीजीको बड़ी चोट पहुंची। कांग्रेस-जन यह कैसे सोच सकते हैं कि भारतके चालीस करोड़ लोगोंका भाग्य ब्रिटिश पार्लियामेन्ट पर निर्भर करता है ? रही बात निकल जानेवालोंकी, तो उनमें अगर दम और हिम्मत होगी, तो वे अपने लिए स्वाधीनताका संविधान तैयार करके सारे भारतका नेतृत्व कर सकते हैं और ब्रिटिश सेनाको भारतसे चले जानेके लिए कह सकते हैं। वनवासमें जानेकी संभावनासे उन लोगोंको अवश्य निराशा हो सकती है, जिनका काम ब्रिटिश रक्षाके बिना नहीं चल सकता। परन्तु इससे उन लोगोंको भय कैसे हो सकता है, जिन्होंने भारतको भाग्यके भरोसे छोड़कर बिलाशर्त चले जानेकी ब्रिटिश सरकारको चुनौती दी है?

यह बड़ा सीधा-सादा प्रस्ताव था, परन्तु इसकी सादगी ही परेशान करनेवाली थी। गांधीजीसे उनकी पदयात्रामें पूछा गया कि कोई अकेला प्रान्त बलशाली ब्रिटिश सरकारकी अवहेलना करके स्वाधीनताकी घोषणा कैसे कर सकता है? उन्होंने कई भाषणों द्वारा लोगोंको तात्कालिक और विशुद्ध स्वाधीनताकी दृष्टिसे सोचनेकी शिक्षा देना शुरू कर दिया। दुनियाकी कोई शक्ति स्वाधीनताके ऐसे प्रेमियोंका सामना नहीं कर सकती, जो अपने विरोधियोंको मारनेके लिए नहीं परन्तु अन्तिम मनुष्य तक स्वयं मरनेके लिए तैयार हों। यह वही विचार था, जिसका उन्होंने १९१९ में ही प्रतिपादन किया था। उस समय उनके कहने पर गुजरातने कांग्रेससे पहले असहयोगका प्रस्ताव स्वीकार किया था। परन्तु उसके बाद तो राष्ट्र बहुत आगे बढ़ गया है। उन्होंने सम्राट्की सरकारकी ६ दिसम्बरवाली घोषणाका जो अर्थ समझा, उसके अनुसार वह घोषणा उस बुनियादी सिद्धान्तका अन्तिम रूपमें समर्थन करती थी, जो १६ मईके राज्यपत्रमें व्यक्त हुआ था। ब्रिटिश सरकार किसी अकेले प्रान्तकी भी घोषित इच्छाका प्रतिकार नहीं कर सकती थी । यदि यह बात एक प्रान्तके लिए सही थी, तो उन कई प्रान्तोंके लिए कितनी अधिक सही थी जिनका प्रतिनिधित्व संविधान-सभा असंदिग्ध रूपमें करती थी ? परन्तु जहां तक भारतीय स्वाधीनताका संबंध था, गांधीजीको इस बातकी कोई परवाह नहीं थी कि ब्रिटिश सरकार क्या कहती है। यह भारतके लोगोंके हाथकी बात है, किसी बाहरी सत्ताके हाथकी नहीं। अन्तमें, यदि राज्यपत्र वापस ले लिया जाय, तो चिन्ता क्यों होनी चाहिये ? कांग्रेस तो वनवासी जीवनकी आदी हो चुकी है । यदि कांग्रेसी हारे न हों तो घबरानेकी कोई बात ही नहीं है। उनका लक्ष्य स्वतन्त्रता है और स्वतन्त्रता वे लेकर रहेंगे, भले उन्हें कितना भी बड़ा त्याग क्यों न करना पड़े। [प्रार्थना-प्रवचन, ५ फरवरी १९४७]

गांधीजीने कहा, स्वभावत: यह बात तभी सच्ची सिद्ध हो सकती है जब लोग अहिंसाका मनमें कोई चोरी रखे बिना एक स्थिर, स्वच्छ और हार्दिक नीतिके रूपमें पालन करें। लेकिन अगर लोग अपने अन्तरतममें यह सोचते हों कि अहिंसाका ऊपरी दावा करते हुए वे अंग्रेजोंको तलवारसे निकाल सकते हैं, तो यह उनकी बहुत बड़ी भू होगी। उन्हें पता नहीं कि अंग्रेज कितने दृढ़निश्चयी और साहसी हैं। ब्रिटिश सत्ता तलवारके सामने नहीं झुकेगी, परन्तु उसे अहिंसाके

साहसके सामने झुकना पड़ेगा, जो मौतका बदला मौतसे लेनेकी नीतिसे घृणा करती है। यदि भारत अभी तक सच्ची स्वाधीनतासे वंचित है, तो इसका कारण यह है कि लोगोंने अभी तक पर्याप्त अहिंसाका विकास नहीं किया है। १६ मई, १९४६ के राज्यपत्रमें केवल उतनी ही अहिंसक शक्ति अंकित हुई है, जितनी अहिंसक शक्तिका विकास आज तक अंग्रेजोंके अंदाजसे भारतने किया है। इसलिए मैं चाहता हूं कि लोग किसी भी भविष्यका बहादुरीसे सामना करें और अहिंसक शक्तिसे पैदा होनेवाले आत्म-विश्वासमें सुरक्षा अनुभव करें। अहिंसाको एक नीतिके रूपमें स्वीकार किया जाय तो भी कोई परवाह नहीं, बशर्ते वह स्वीकृति हार्दिक और प्रामाणिक हो। [वही]

एक लम्बी प्रश्नोत्तरीमें गांधीजीने विस्तारसे यह समझाया कि जो योजना उन्होंने सुझाई है वह व्यवहारमें कैसे काम करेगी ।

भारतके स्वतन्त्र प्रान्तोंमें मताधिकारका आधार क्या होना चाहिये?

"बालिग मताधिकार हो, संयुक्त निर्वाचन हो और शायद अस्थायी अथवा अतिरिक्त संरक्षणके रूपमें कुछ स्थान सुरक्षित रखें जायं।" मैं किसीके लिए भी पक्षपातकी कल्पना नहीं कर सकता। यदि पक्षपात करना ही हो, तो केवल कोढ़के रोगियोंके लिए ही होगा। "उनका अस्तित्व समाजके अपराधके फलस्वरूप है। यदि नैतिक दुष्टिसे कोढ़ी माने जानेवाले लोग अपने पर प्रतिबन्ध लगा लें, तो शारीरिक कोढ़के रोगी तुरन्त खतम हो जायंगे।" बालिग मताधिकारके साथ-साथ—या उससे भी पहले—मैं चाहूंगा कि सबको शिक्षा मिले; यह जरूरी नहीं कि शिक्षा साहित्यिक हो। साहित्यिक शिक्षा तो शायद इसमें सहायक होगी। मैं तो जीवनकी शिक्षाका हिमायती हूं, जिसमें नागरिकताके अधिकारों और कर्तव्योंकी शिक्षा सम्मिलित है। [वही]

मान लीजिये कि जो प्रान्त स्वाधीनताकी घोषणा कर दें, वे एक-दूसरेसे सटे हुए घटक न होकर बिखरे हुए हों; तो क्या संघमें शामिल न होनेवाले घटकोंके रहनेसे सम्मिलित कार्यके मामलेमें बाकी घटकोंके लिए कठिनाई पैदा नहीं होगी?

गांधीजीनें कहा, यह एक कठिन सवाल है । परन्तु कठिनाई नहीं रहेगी, यदि यह व्यवस्था अहिंसक हो अर्थात् एकत्र होनेवालोंका उद्देश्य दूसरे अटकोंको हानि पहुंचाकर लाभ उठाना न होकर उनके लिए स्वाधीनताका मार्ग प्रशस्त करके सबकी सेवा करना हो। "इस प्रकार मान लीजिये कि घनी आबादीवाला बंगाल प्रान्त अपने प्रतिभाशाली टैगोरों और सुहरावर्दियोंकी मददसे स्वाधीनता पर आधारित संविधान बना दे और दूसरी ओर अफीमची आसाम शेखचिल्लीकी तरह सपने ही देखता रहे, नर-कंकालोंवाला उड़ीसा आजाद होनेकी इच्छा ही न करे और बिहार भाई-भाईके संहारमें ही लगा रहे, तो इन तीनों पर बंगाल अच्छी तरह छा जायगा।" सफलताकी आवश्यक शर्त यह है कि इस प्रयत्नमें संपूर्ण प्रामाणिकता हो और उसमें संधीय शासन-तंत्रमें सम्मिलित न होनेवाले घटकोंका भी आदर और विश्वास हो। [प्रार्थना-प्रवचन, ६ फरवरी १९४७]

"क्या आप यह आशा रखते हैं कि स्वतन्त्र प्रान्तोंका संविधान इतना 'आकर्षक' बना दिया जायगा कि दूसरे प्रान्त स्वेच्छासे उसमें खिंचकर चले आयंगे ?"

"जो चीज स्वभावसे अच्छी और न्यायपूर्ण होती है, उसमें आकर्षण तो होता ही है।" [वही]

"मान लीजिये कि संपूर्ण समूह 'क' एक समान संविधान बना लेता है, तो क्या आपके खयालसे जो प्रान्त इस समय समूह 'ख' या 'ग' में हैं, वे चाहें तो समूह 'क' में शामिल हो सकेंगे?"

"यह तो साफ बात है कि यदि समूह 'क' ऐसा संविधान बनानेमें सफल हो जाता है, जो अत्यन्त निष्पक्ष, उदार और न्यायपूर्ण हो, तो समूह 'ख' और 'ग' को उसमें सम्मिलित होनेकी छूट ही नहीं होगी, बल्कि वे अनिवार्य रूपसे खिंचकर उसमें चले आयंगे।" [वही]

गांधीजीके उत्तरोंका महत्त्व उस संकेतमें था, जो उनकी कार्य-योजनाके बारेमें मिलता था। वह योजना उनके मनमें आकार ले रही थी। ; लॉर्ड माउन्टबेटनकी योजनाके पक्षमें अपने ६ जनवरी, १९४७ के प्रस्तावको छोड़नेके बदले यदि कांग्रेस उस पर डटी रह कर गांधीजीकी कार्य-योजनाका अनुसरण करती तो उन्हें अच्छा लगता। उसमें भारतके अंगभंगको रोकनेकी संभावना निहित थी—किसी भी हालतमें ब्रिटिश छत्रछायामें भारतके विभाजनके संकटको

टालनेकी संभावना तो थी ही। गांधीजी इसे भारत पर आने-वाला सबसे भयंकर संकट क्यों मानते थे, इसकी चर्चा यथास्थान की जायगी।

परन्तु सारा आधार इस बात पर था कि नोआखालीमें गांधीजीकी अहिंसा कैसे काम करती है। दूसरे शब्दोंमें, वहांके हिम्मत हारे हुए उपद्रव-पीड़ित लोगोंमें वे कहां तक अहिंसाके साहसका संचार कर सकते हैं। इसलिए जब सरदार पटेलने उन्हें दिल्ली लौट आनेको लिखा, तो उन्होंने उत्तर दिया: "मैं यहां अपने ठीक स्थान पर हूं। मैं सन्तुष्ट हूं और मुझे लगता है कि मेरे यहां होनेसे पीड़ित लोगोंको भी कुछ सन्तोष मिला है; और यदि मैं अन्त तक यहां टिका रहा, तो उन्हें अधिक सान्त्वना मिलेगी। परन्तु यह तो दैवके अधीन है।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, ५ फरवरी १९४७]

२

एक दिन धर्मपुरमें और दूसरे दिन प्रसादपुरमें ठहर कर गांधीजी ८ फरवरीको नन्दीग्राम पहुंचे। पूरे रास्ते पर गांवके पुरुष, स्त्रियां और बच्चे उनका स्वागत करने आये थे। कई स्थानों पर गांवकी बूढ़ी स्त्रियोंने मालाओंसे उनका सत्कार किया। एक मुसलमानने, जिसके घर पर गांधीजी गये, उनसे पूछा, "हम आपकी क्या आव-भगत कर सकते हैं?"

गांधीजीने जवाब दिया, "अपने प्रेम और स्नेहमें मुझे स्थान देकर आप मेरी आव-भगत कर सकते हैं।"

दूसरे दिन डेढ़ घंटे चलनेके बाद गांधीजी विजयनगर पहुंचे। यहां नोआखालीके ग्रामकार्यमें लगे हुए कार्यकर्ताओंकी समस्याएं चर्चाका विषय बनीं। गांधीजीसे कहा गया कि कुछ कार्यकर्ता थोड़े समयके बाद सत्ताप्रेमी बन जाते हैं। उनके साथी कार्यकर्ता उन पर नियंत्रण रखने और संस्थाके लोकतांत्रिक स्वरूपकी रक्षा करनेके लिए क्या कर सकते हैं? असहयोग तो इसका उत्तर है ही। परन्तु क्या इससे संस्था और उसके कामको हानि नहीं पहुंचेगी?

गांधीजीने उत्तर दिया, इस प्रश्नसे असहयोगके स्वरूप और सच्चे अर्थका अज्ञान प्रगट होता है। प्रश्नकर्ताको उसी असहयोगका अनुभव मालूम होता है, जो अधिकसे अधिक आंशिक

रूपमें अहिंसक है और अधिक बुरे रूपमें अहिंसाके नाम पर होनेवाली नग्न हिंसा है। सत्ताका प्रेम मनुष्यके स्वभावमें गहरा पैठा हुआ है और वह मृत्युके साथ ही मिटता है। सत्ताप्रेमी लोगोंको नियंत्रणमें रखनेकी कठिनाई इस बातसे पैदा होती है कि स्वयं सुधारकोंमें भी वही मानव-दुर्बलता होती है। जो लोग दूसरोंकी सत्तासे चिपटे रहनेकी महत्त्वाकांक्षाकी शिकायत करते हैं, वे स्वयं कम महत्त्वाकांक्षी नहीं होते । आधे दर्जन और छहमें भेद करनेका नतीजा कोयलेकी दलालीमें काले हाथ करना ही होता है। सत्ताप्रेमियोंसे असहयोग करनेके लिए हमें पहले अपने भीतरके सत्ताप्रेमसे असहयोग करना पड़ता है। अहिंसक असहयोगसे कोई संगठन शुद्ध और मजबूत ही हो सकता है, जब कि और किसी उपायको काममें लेनेसे—जिसमें सत्ताप्रेमी अथवा अवांछनीय तत्त्वोंको बाहर निकालनेके लिए दबाव या बलका उपयोग करना पड़े—उसका लोकतांत्रिक स्वरूप नष्ट होता है। पूर्ण लोकतंत्र अहिंसाकी पृष्ठभूमिमें ही सिद्ध किया जा सकता है।

जो कार्यकर्ता गांधीजीके साथ नोआखाली गये थे, उनसे कहा गया था, और ठीक ही कहा गया था, कि तुम्हारा काम ग्रामजनोंको अपने ही पैरों पर खड़े होने लायक बनानेकी स्थानीय कार्यकर्ताओंको तालीम देना और फिर जितनी जल्दी संभव हो वहांसे वापस चले आना है। परन्तु यदि कार्यकर्ता स्थानीय सहायता प्राप्त करनेकी कोशिश करेंगे, तो वे चाहें या न चाहें, स्थानीय सत्ताकी राजनीतिमें फंस जायंगे; क्योंकि शायद ही कोई गांव ऐसा होगा, जो दलबन्दीसे मुक्त हो। इसके विपरीत, यदि वे बाहरके कार्यकर्ताओंकी मददसे ही काम चलानेका प्रयत्न करेंगे, तो यह भय है कि उनका काम बाहरकी मदद हटते ही ठप हो जायगा । स्थानीय लोगोंकी कार्य-शक्ति और उनके सहयोगको प्रोत्साहन देनेके लिए उन्हें क्या करना चाहिये?

गांधीजीका उत्तर यह था: नतीजा कुछ भी हो, तुम्हें अधिकसे अधिक स्थानीय सहायताका उपयोग करना चाहिये। यदि तुम स्वयं सत्ताकी राजनीतिके रंगसे अछूते रहोगे, तो स्थानीय दलबन्दीका तुम पर कोई असर नहीं होगा। रही बात स्थानीय कार्यकर्ताओंको प्रशिक्षण देनेकी, तो "मेरे अनुभवमें एक भी गांव ऐसा नहीं आया है, जिसमें कमसे कम एक प्रामाणिक कार्यकर्ता न हो। मैं तो यहां तक कहूंगा कि किसी एक ही गांवमें कई वर्ष तक रहकर स्थानीय

कार्यकर्ताओंके द्वारा काम करके जो अनुभव प्राप्त किया जाता है, उसे भी इस बातका अन्तिम प्रमाण नहीं मानना चाहिये कि स्थानीय कार्यकर्ताओंके द्वारा और उनके हाथों काम नहीं किया जा सकता। मैं तो मुख्य कार्यकर्तासे स्पष्ट कह सकता हूं: "अगर तुम्हें कोई बाहरी मदद मिलती है, तो उसे तुम छोड़ दो। **तुम अकेले ही साहस और बुद्धिके साथ काम करो; स्थानीय सहायता जितनी मिल सके ले लो। और यदि अन्तमें तुम्हें सफलता न मिले, तो अन्य किसी व्यक्ति अथवा वस्तुको दोष न देकर स्वयंको ही दोष दो।** ?' "

कुछ दिन बाद अलूनियामें गांधीजीसे एक प्रश्न पूछा गया, जिसका उत्तर देना आसान नहीं था। अपने घरोंमें आकर फिरसे बसी हुई स्त्रियां, अपने भीतर आशा और साहसका संचार करनेके लिए, बाहरसे आई हुई कार्यकर्त्रियोंकी उपस्थिति पर बहुत बड़ा आधार रखती हैं। इस स्थितिको कब तक प्रोत्साहन दिया जाय ? क्या बाहरके सभी कार्यकर्ताओंको धीरे धीरे नोआखालीसे हटा नहीं लेना चाहिये?

गांधीजीने कहा, जो बात पुरुषोंके लिए सही है वह कार्यकर्त्रियोंके लिए भी सही है। वे दंगोंकी शिकार बनी हुई बहनोंमें ईश्वरके प्रति श्रद्धा और साहसका संचार करनेके लिए आई हैं, न कि कार्यकर्ताओंके आभावमें उन्हें लाचारी महसूस करानेके लिए । उन्हें गांवकी स्त्रियोंसे कह देना चाहिये कि हम यहां थोड़े समयके लिए ही आई हैं, इसलिए तुम्हें अपने आप पर निर्भर रहना सीखना चाहिये।

एक और स्थान पर गांधीजीके सामने यह दिलचस्प सुझाव रखा गया कि पूर्व बंगाकके नौजवानोंको, जो कामधन्धेकी तलाशमें कलकत्ता और दूसरे स्थानोंको जाते हैं, अपने समयका कुछ भाग अपने गांवोंको देना चाहिये। गांधीजीने इस सुझावको पसन्द किया, परन्तु यह भी कहा कि वे आपसमें ऐसा प्रबन्ध कर सकते हैं, जिससे उनका एक दल आकर निश्चित कालके लिए गांवोंकी सेवा करे। उसके बाद उसके सदस्य वापस अपने अपने काम पर चले जायं और दूसरा दल आकर उसकी जगह ले ले। इस प्रकार वे सब नोआखालीके बरबाद हुए गांवोंमें जर्जर अर्थ-

व्यवस्थाका और सामुदायिक जीवनका फिरसे निर्माण करनेमें सहायता दे सकते हैं। जो किसी कारणसे शरीरसे सेवा न कर सकें, वे पैसेसे मदद कर सकते हैं।

*

नोआखालीके मध्यभागसे शुरू होकर गांधीजीकी यात्रा सर्पाकार गतिसे घूमती हुई पहले दक्षिणकी ओर और फिर पूर्वकी ओर बढ़ी। फिर सीधी उत्तरकी तरफ टिपरा जिलेकी दिशामें चली और डाल्टाके पास वह जिलेकी सीमाके निकटसे निकट जा पहुंची। बहांसे पंचकोण बनाती हुई वह फिर दक्षिणकी ओर और आमिशपाड़ा होकर सीधी पश्चिममें चली गई। अंतमें उत्तर और पश्चिमकी तरफ एकदम मुड़कर टिपरा जिलेकी सीमा पर उनकी यात्रा हैमचरमें पूरी हुई। जब टिपराकी सीमा नजदीक आई तब दोनों छोरों पर विनाशके दृश्य अधिक भयंकर होते गये और संगठित मुस्लिम विरोध अधिक तीव्र होता गया। हेमचंडी और पूर्व केरवाके रास्तेमें तोड़फोड़ स्पष्ट दिखाई देती थी और कई पुलोंकी एकसे अधिक बार मरम्मत करनी पड़ी । अब १४ फरवरीको गांधीजी पश्चिम केरवा गये तब भी यही हाल था।

पश्चिम केरवामें खुलनाके एक मुस्लिम मौलाना गांधीजीसे साम्प्रदायिक मेलजोलकी समस्या पर चर्चा करने आये। उस समय गांधीजी दोपहरका भोजन कर रहे थे। उन्होंने मौलानाको अपने साथ भोजन करनेका आमंत्रण दिया, परन्तु उन्होंने इनकार कर दिया, क्योंकि खानेको गैर-मुसलमानने छू लिया था ! और कोई कारण दिखाई नहीं दिया। गांधीजीने चुटकी ली और कहा, "मुझे पता नहीं था कि मुस्लिम कौम पर भी अछूतपनका रंग चढ़ गया है !"

तीन स्थानीय मुसलमान गांधीजीसे यह अनुरोध करने आये कि वे दोनों कौमोंके शान्ति और भ्रातृभावसे रहनेके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करें। उन्होंने देखा कि गांधीजी पैगम्बरके वचनोंका अब्दुल्ला सुहरावर्दी कृत संग्रह पढ़ रहे हैं। शामकी प्रार्थनामें गांधीजीने उन वचनोंमें से दो वचन सभामें पढ़कर सुनाये। पहला यह था: "इस दुनियामें मुसाफिर या राहगीरकी तरह रहो और अपनेको मरे हुओंमें समझो ।" दूसरे वचनमें यह प्रश्न पूछा गया था कि कौन सबसे अच्छा आदमी है और कौन सबसे बुरा? पैगम्बरका उत्तर यह था कि मैं उस आदमीको सबसे अच्छा समझता

हूं, जो सबसे ज्यादा जिये और नेक काम करे; और उसे सबसे ज्यादा बुरा समझता हूं, जो बुरे काम करे। शामकी प्रार्थना-सभामें इन वचनोंको अपने प्रवचनका आधार बनाकर गांधीजी बोले, मनुष्यकी परीक्षा उसकी कथनीसे नहीं परन्तु करनीसे की जानी चाहिये। परन्तु कुछ मुसलमान मौलवी यह सिद्धान्त बताते हैं कि जब तक मनुष्य किसी खास धर्मको—जिसके सही होनेका दावा किया जाता है—मानता है तब तक वह कुछ भी बुरे काम करता रह सकता है। यह ठीक नहीं है। यह बात हिन्दू, मुसलमान और दूसरे सभी लोगों पर लागू होती है। हिन्दुओंको इससे यह शिक्षा मिलती है कि अगर वे अस्पृश्यताकी अमानुषिक प्रथाको आश्रय देते रहे, तो उनका हिन्दू धर्म और उसका सारा भव्य आध्यात्मिक उत्तराधिकार किसी काममें नहीं आयेगा। अंग्रेज भारतसे चले जायं तो भी अस्पृश्यताके कलंकको पूरी तरह मिठाये बिना आजादी नहीं आयेगी।

*

सतीशचन्द्र दासगुप्तकी पत्नी हेमप्रभा देवीने नोआखालीमें खादीकार्यके लिए कोई संगठन खड़ा करनेके बारेमें गांधीजीकी सलाह मांगी। गांधीजीने एकता स्थापित करनेवाले बलके रूपमें खादी पर अधिकसे अधिक जोर दिया था। लेकिन उन्होंने हेमप्रभा देवीको चेतावनी दी कि अगर खादीको किसी बड़े केन्द्रीय संगठनके द्वारा संगठित करनेकी कोशिश की गई, तो खादी फूट फैलानेका कारण बन जायगी। मुस्लिम लीगको इसमें मुसलमानोंके भीतर घुसकर उसको सत्ताकी जड़ें काटनेका एक प्रयत्न दिखाई देगा। इसलिए गांधीजीने सुझाया कि कोई केन्द्रीय संगठन खड़ा नहीं करना चाहिये। जरूरी तालीम पाये हुए बाहरी कार्यकर्ताओंको प्रारम्भिक कार्य करनेके लिए लाया जा सकता है, परन्तु बादका सारा काम स्थानीय लोगोंके द्वारा और विकेन्द्रित आधार पर स्थानीय पैसेकी मददसे ही करना चाहिये।

*

शायद शाहपुरके दंगोंके बाद दंगेके दिनोंमें रायपुरामें सबसे भयंकर तूफान आया था। गांवके लोग, जिनमें कुछ स्थानीय मुसलमान भी थे, गांधीजीको मानपत्र भेंट करनेके लिए उत्सुक थे। परन्तु गांधीजी मुसलमानोंके विरोधी वर्गमें कोई अनावश्यक उत्तेजना पैदा नहीं करना चाहते

थे। उन्होंने मानपत्र लेकर आनेवाले लोगोंसे कह दिया कि इस समारोहका सार्वजनिक भाग छोड़ दें। वे बोले, "सच्चे स्नेहके लिए प्रदर्शनकी जरूरत नहीं होती। मेरे प्रति अपना प्रेम आप अपने हृदयोंमें सबके प्रति प्रेम रखकर प्रकट कर सकते हैं।"

इस बातका विपुल प्रमाण था कि उत्पात अभी तक अपना सिर उठाये था । एक मुसलमान भाई पंजाबसे गांधीजीसे मिलने आये थे। रास्तेमें उनका सारा सामान लूट लिया गया। इसी प्रकार कुछ दिन पहले एक और मुसलमान भाई गुजरातसे गांधीजीको मिलने आये थे। कुछ स्थानीय मुसलमानोंने उन्हें धमकियां दी थीं, परन्तु वे विचलित नहीं हुए। गांधीजीके रायपुरा पहुंचनेके दिन सुबह ही हड़ताल करानेकी कोशिश की गई, परन्तु वह सफल नहीं हुई और बहुतसे स्थानीय मुसलमान गांधीजीके स्वागतमें भाग लेनेके लिए आगे आये। उन्होंने गांधीजीसे कहा कि और अधिक मुसलमान आनेको उत्सुक थे, परन्तु कुछ ताकतवर स्थानीय मुसलमानोंने उन्हें डरा-धमका दिया। शामको प्रार्थना-सभाके बाहर पर्चे बांटे गये, जिनमें मुसलमानोंको प्रार्थनासे अलग रहनेके लिए कहा गया था। कुछ छपे हुए पर्चे, जो धमकीसे भरे हुए थे, दीवारों पर चिपके पाये गये। वे 'मुस्लिम पिटुनी पार्टी' के नाम पर निकाले गये थे। नामसे ही जाहिर था कि यह दल हिंसाका पक्षपाती था।

रायपुरामें दो जुम्मा मस्जिदें थीं। गांधीजीके अनुरोध पर उनमें से एकका इमाम उन्हें और उनकी मंडलीको मस्जिदके चारों ओर घुमाने ले गया। परन्तु दूसरेसे जब अनुरोध किया गया तो उसने कहा : मुझे "ट्रस्टियोंसे मिलने और उनकी इजाजत लेने" का समय नहीं है।

शामकी प्रार्थना-सभासे लौटते समय गांधीजी एक मन्दिर देखने गये, जिस पर स्थानीय मुसलमानोंने दंगोंके दिनोंमें अधिकार कर लिया था और उसे "पाकिस्तान क्लब" बना दिया था। उस घटनाके ४ महीने बाद भी वहां वही कहानी कहनेवाली तख्ती लगी हुई थी। किन्तु स्थानीय मुसलमानोंने गांधीजीको आश्वासन दिलाया कि वे उसे जल्दी ही मंदिरका रूप देनेके लिए तमाम जरूरी कदम उठायेंगे। इस प्रकार सारी धर्मयात्रामें बारी बारीसे कड़वे और मीठे अनुभव होते

रहे; और "घटनाओंके दुःखद उतार-चढ़ाव" से धर्मयात्री हर मौके पर पहलेसे कुछ अधिक सहिष्णु और कुछ अधिक परिपक्व होता गया।

३

गगन-विहार करना गांधीजीके स्वभावमें नहीं था । उनका मानस यथार्थवादी था। परन्तु उन्होंने यह सलाह दी थी कि जिस प्रान्तमें ब्रिटिश सरकारसे स्वाधीन होनेकी घोषणा करनेका आत्म-विश्वास, बल और संकल्प हो, वह अपने भाग्यका निर्णय स्वयं कर सकता है। इसलिए इस विषयकी चर्चा करना आवश्यक हो गया। धरमपुरसे आगे गांधीजीकी प्रार्थना-सभाएं चर्चासभायें बन गईं, जिनमें प्रत्येक आदमीको मनचाहा प्रश्न पूछनेकी छूट थी। वहां यह चर्चा भी हो सकती थी कि ऐसे स्वतन्त्र प्रान्तोंमें किस प्रकारकी स्वाधीनता होनी चाहिये, जिससे वे शेष भारतके लिए नमूनेका काम दें। इस चर्चासे जो चित्र सामनें आया, वह गांधीजीके सपनोंके भारतका चित्र था। वह एक ऐसे जाति-विहीन और वर्ग-विहीन समाजका चित्र था, जिसमें ऊंच-नीचके कोई भेदमाव नहीं होंगे; न कोई ऊंचा होगा, न को नीचा होगा; सारी सेवाओंका समान दर्जा होगा और समान वेतन होगा; जिनके पास अधिक होगा वे अपने इस लाभका उपयोग अपने लिए नहीं बल्कि जिनके पास कम होगा उनकी सेवाके लिए ट्रस्टके रूपमें उसका उपयोग करेंगे । और धन्धोंका चुनाव करनेमें हेतु अपनी उन्नतिका नहीं परन्तु समाजकी सेवा द्वारा आत्माभिव्यक्ति और आत्म-साक्षात्कारका होगा।

ऐसे समाजमें सारी सेवाओंका समान दर्जा होगा और वेतन भी उनका समान होगा, इसलिए परम्परागत कुशलताका व्यक्तिगत लाभके प्रलोभनके लिए बलिदान करनेके बजाय एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें उसकी रक्षा और विकास किया जायगा। अनियंत्रित, हृदयहीन प्रतिस्पर्धाका स्थान समाज-सेवा ले लेगी। प्रत्येक आदमी कठोर परिश्रम करेगा और उसे शिक्षा और संस्कृतिके विकासके लिए पर्याप्त अवकाश, अवसर और सुविधाएं प्राप्त होंगी। वह कुटीर-उद्योगों और सधन तथा छोटे पैमानेकी खेतीकी सहकारी समितियोंका मनोहर संसार होगा, जिसमें सम्प्रदायवाद अथवा जाति-पांतिके छिए कोई स्थान नहीं होगा। अन्तमें वह स्वदेशीकी

ऐसी दुनिया होगी, जिसमें आर्थिक सीमाएं तो निकट आ जायंगी, परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी सरहदें अधिकसे अधिक विस्तृत हो जायंगी; हर व्यक्ति अपने निकटवर्ती वातावरणके लिए और सब कोई समाजके लिए जिम्मेदार होंगे। अधिकारों और कर्तव्योंका नियमन परस्परावलम्बन तथा परस्पर सहयोगके सिद्धान्तसे होगा। संपूर्ण और अंशके बीच कोई संघर्ष नहीं होगा। उसमें राष्ट्रवादके संकीर्ण, स्वार्थी अथवा आक्रामक बननेका और अन्तर्राष्ट्रीयताके ऐसी सैद्धान्तिक कल्पना बन जानेका खतरा नहीं रहेगा, जिसमें अस्पष्ट सामान्य सिद्धान्तोंकी भूलभुलैयामें निश्चित और ठोस चीज खो जाती है।

*

"क्या स्वतन्त्र प्रान्तोंमें उन्हीं लोगोंको मताधिकार होगा, जिन्होंने शरीर-श्रम द्वारा राज्यकी सेवामें योग दिया हो?"

"मेरा उत्तर दृढ़ 'हां' में है। एक निश्चित आयुसे ऊपरके सभी बालिग पुरुष या स्त्री, जो किसी न किसी प्रकारके शरीर-श्रम द्वारा राज्यकी सेवा करेंगे, मत देनेके अधिकारी होंगे। इस प्रकार एक सीधा-सादा मजदूर किसी कठिनाईके बिना मतदाता बन जायगा, जब कि एक करोड़पति, वकील अथवा व्यापारीको इसमें कठिनाई होगी, जब तक कि वह स्वेच्छासे मजदूर बनकर राज्यके लिए कुछ न कुछ समाजोपयोगी शरीर-श्रम न करे।" [प्रार्थना-प्रवचन, ६ फरवरी १९४७]

"क्या आप यह आग्रह करेंगे कि रवीन्द्रनाथ अथवा रमण महर्षि जैसे महान साधु भी शरीर-श्रम द्वारा अपनी रोटी कमायें? कोई बौद्धिक कार्य करनेवाला व्यक्ति शरीर-श्रम करनेवालोंके बराबर क्यों न समझा जाय, जब कि दोनों ही उपयोगी और आवश्यक सामाजिक कार्य करते हैं?"

"बौद्धिक कार्यका महत्त्व निश्चित रूपसे है और जीवनकी योजनामें उसका असंदिग्ध स्थान है। परन्तु मैंने सबके लिए रोटीके खातिर श्रम करनेका आग्रह रखा है। कोई भी उस कर्तव्यसे मुक्ति नहीं मांग सकता। मैं टॉल्सटॉयके इस विचारसे सहमत हूं कि शरीर-श्रम बौद्धिक

कार्यको हानि पहुंचानेवाला नहीं है, बल्कि उसका गुण बढ़ानेवाला है। मेरा तो दावा है कि प्राचीन कालमें ब्राह्मण जैसे अपने मस्तिष्कसे काम करते थे वैसे ही शरीरसे भी करते थे। परन्तु वे न करते रहे हों तो भी वर्तमान युगमें तो शरीर-श्रम एक प्रमाणित आवश्यकता है।" [प्रार्थना-प्रवचन, ७ फरवरी १९४७]

"वे हिन्दू, जिनके पास खुद जोत सकें उससे ज्यादा जमीन है, मुसलमानोंके बहिष्कारको देखते हुए अपनी अधिक जमीनका क्या करें?"

"वे चाहें तो अपनी अधिक जमीन बेच डालें या उसे पड़ती रहने दें और खुद स्वेच्छासे मजदूर बन जायं। बेशक, आदर्श वस्तु तो यही है कि जितनी जमीन कोई जोत सकता है उससे अधिक जमीन उसे रखनी ही नहीं चाहिये।" [प्रार्थना-प्रवचन, ८ फरवरी १९४७]

"वर्तमान समाज-व्यवस्थामें राज्य बच्चोंकी शिक्षा और बूढ़ों तथा अपंगोंके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी नहीं लेता। जमींदारोंसे जमीन और पूंजी छीन ली जायगी, उसके बाद बीमारी और बुढ़ापेमें उनका और उनके बच्चोंका क्या हाल होगा ? क्या बच्चोंकी शिक्षा और बूढ़ों तथा अपंगोंके पालनकी पर्याप्त व्यवस्था नहीं होनी चाहिये?"

"मैंने आदर्श समाजके लिए एक सार्वत्रिक नियम बना दिया है। परन्तु प्रस्तुत उदाहरणमें परिवर्तन पसन्दकी चीज न होकर आवश्यकताकी चीज है, क्योंकि यह कहा गया है कि बहिष्कारके कारण हिन्दू जमींदारोंको मजदूर नहीं मिलते, जो कि मुख्यतः मुसलमान हैं। मेरे आदर्श समाजमें बच्चोंकी शिक्षा और बूड़ों तथा अपंगोंके पालन-पोषणका प्रश्न उठना ही नहीं चाहिये। बच्चोंको घर पर शिक्षा मिल जानी चाहिये और जो व्यक्ति अपनी इच्छासे और मेहनतसे काम करता है, उसको अपने बूढ़े और अपंग आश्रितोंके लिए सहारेकी कमी नहीं रहनी चाहिये। समाज इसकी व्यवस्था कर देगा। परन्तु यह स्वीकार करनेके लिए मैं तैयार हूं कि बच्चोंको शिक्षा और बूढ़ों तथा अपंगोंको सहारा देना राज्यका कर्तव्य है। इसके सिवा, मैंने यह नहीं सुझाया है कि मालिक अपनी जमीनें मुफ्तमें ही छोड़ दें। वे चाहें तो उचित शर्तों पर उसे बेच सकेंगे या

अगर उनके विरुद्ध गुटबन्दी हो तो वे उसे अपने पास पड़ती रख सकते हैं। इससे कोई नुकसान नहीं होगा।" [प्रार्थना-प्रवचन, ११ फरवरी १९४७]

"आप दान देनेका विरोध करते हैं। तब वे लोग क्या करें, जो बैठकर किये जानेवाले धन्धोंमें लगे हुए हैं, परन्तु पिछले दंगोंमें अपना सर्वस्व गंवा चुके हैं? क्या वे स्थानान्तर करके ऐसी जगह तलाश करें जहां उन्हें फिरसे वह धन्धा मिल जाय जिसके वे आदी रहे हैं; या वे अपने जीवनको फिरसे ढाल कर प्रत्येकके लिए रोटीके श्रमका आदर्श स्वीकार करें?"

"मैं लोगोंको अपने घरबार छोड़नेकी सलाह कभी नहीं दे सकता। मैं परोपजीवी धन्धोंसे प्राप्त किये हुए धनको उचित कभी नहीं मानता। मैं यह भी नहीं मानता कि कोई आदमी अपनी बुरी या गलत आदतें कभी छोड़ ही नहीं सकता। यदि हर आदमी अपने पसीनेकी कमाईसे गुजर करे, तो पृथ्वी स्वर्ग बन जाय। विशेष प्रतिभाके व्यर्थ नष्ट होनेका प्रश्न खड़ा नहीं होगा। कारण, यदि सब कोई अपनी रोटीके लिए शरीर-श्रम करें, तो कवि, डॉक्टर, वकील आदि अपनी प्रतिभाका उपयोग पैसेके लिए न करके मानव-सेवाके लिए करेंगे। उनकी निःस्वार्थ कर्तव्य-निष्ठाके कारण उनकी सेवाएं और भी मूल्यवान बन जायंगी।" [प्रार्थना-प्रवचन, ७ फरवरी १९४७]

*

गांधीजीकी नोआखाली-यात्रा समाप्त होनेको आई तब उन्होंने यह प्रश्न हाथमें लिया: समाजका उद्योग-धन्धोंसे सम्बन्धित संगठन कैसा होना चाहिये? गांधीजीकी राय थी कि समाजका उद्योग-धन्धोंसे सम्बन्धित संगठन चढ़ाव-उतारवाला और प्रतिस्पर्धात्मक हो सकता है या समतावाला और सहयोगात्मक हो सकता है। पहले प्रकारमें पुरस्कार उस विशेष धन्धेके महत्त्वके अनुसार तथा पूर्ति और मांगके नियमके आधार पर होता है; दूसरेमें सब धन्धोंका एकसा दर्जा माना जाता है और समाज सबको एकसा पुरस्कार देता है । दूसरे प्रकारमें व्यक्ति कोई धन्धा व्यक्तिगत लाभकी दुष्टिसे नहीं चुनेगा, किन्तु विशेष कौशल या अभिरुचिके कारण चुनेगा। और कुशलता तथा अभिरुचियां सामान्यतः थोड़ी-बहुत परम्परागत होती हैं; इसलिए साधारण क्रममें औसत आदमीके सामने यदि ललचानेके लिए वेतनकी असमानताएं न हों, तो वह अपना

जन्मजात धन्धा ही स्वीकार करेगा। लाभके हेतु अथवा वेतनके हेतुका स्थान सेवाका हेतु ले लेगा। अपने या अपने परिवारके हितके बजाय समाजकी भलाईकी दृष्टिसे धन्धा चुना जायगा।

तो क्या इसका यह अर्थ है कि किसीको विशेष प्रेरणा हुई, तो भी उसे अपना बापदादाका धन्धा बदलने नहीं दिया जायगा?

गांधीजीने कहा, "नहीं, धन्धा बदलनेमें तब तक कोई रुकावट नहीं होगी जब तक कि वह मनुष्यकी जीविकाका साधन न हो।" ऐसे उदाहरण स्वभावत: थोड़े ही होंगे। इस प्रकार गौतम बुद्ध एक राजकुमार थे, सुकरात शिल्पकार थे और सन्त पॉल तम्बू बनानेवाले थे। फिर भी बुद्ध ज्ञानी बनकर मानव-जातिके गुरु बने; सुकरात दार्शनिकोंमें शिरोमणि हो गये और सन्त पॉल धर्मोपदेशक बने। परन्तु उनमें से किसीने अपने धन्धेको जीवन-निर्वाहका साधन नहीं माना। इसके विपरीत, उन्होंने अपने जन्मजात बन्धे छोड़कर त्यागका सर्वोच्च उदाहरण प्रस्तुत किया। यदि समाज इस सिद्धान्त पर चले, तो सारे दार्शनिक और सारे कलाकार जीविकाके लिए शरीर-श्रम करेंगे। सारे कलाकार शिल्पकार बन जायंगे और शिल्पकार कलाकार हो जायंगे और जीवन सदाके लिए सौन्दर्यमय और सुखमय बन जायगा।

इस प्रकार, समाजका जन्मके अनुसार चार मुख्य वर्णोंमें होनेवाला विभाजन एक कल्पित विभाजन ही है। यह विभाजन सत्ताका ऊपरसे थोपा हुआ कोई कठोर या अटल नियम प्रस्तुत नहीं करता। उसमें प्रकृतिके नियम अर्थात् वंश-परम्परा और वायुमंडलके नियमसे पैदा होनेवाली वृत्ति ही दिखाई देती है। इन चारों काल्पनिक विभाजनोंमें वर्तमान परिस्थितियोंके अनुसार सुधार किया जा सकता है या कमीबेशी की जा सकती है। आज यह वर्ण-व्यवस्था निष्क्रिय बन गई है और वर्णोंका संकर हो गया है। गांधीजीने कहा, इसलिए समाजको नये सिरेसे आरम्भ करना चाहिये। सबको स्वेच्छासे अतिशूद्र बन जाना चाहिये, मेरी तरह सबको सार्वत्रिक कर्तव्यके रूपमें भंगीका काम स्वीकार कर लेना चाहिये और सब प्रकारके शारीरिक और बौद्धिक श्रमके लिए समान वेतन और समान प्रतिष्ठाका नियम अपना लेना चाहिये। जब भिन्न भिन्न प्रकारकी सेवाओंसे सम्बन्धित वेतन और सामाजिक प्रतिष्ठाकी असमानताका

अशांतिकारक तत्त्व नष्ठ हो जायगा, तब वंश-परम्परा और परिस्थितिके नियममें निहित कुदरती रुझान अपना प्रभुत्व जमायेगा और धीरे धोरे सेवाकी भावना, आत्माभिव्यक्ति और आत्म-साक्षात्कारकी प्रेरणा पर आधारित उद्योग-धन्धों संबंधी सच्चा सामाजिक संगठन फिरसे धीरे धीरे प्रकट होगा। "जातिप्रथा" प्रागैतिहासिक कालमें प्रचलित वर्ण-व्यवस्थाका विकृत रूप हो अथवा वर्णोंका संगठन जातिप्रथाका शुद्ध और आदर्श रूप हो, गांधीजीका यह दावा था कि भारतके लिए वर्गयुद्धकी अग्नि-परीक्षामें से गुजरे बिना स्पर्धाहीन, वर्गहीन तथा समतावादी समाजके आदर्शकी प्राप्तिके लिए इससे अधिक आसान, व्यावहारिक और छोटा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। जिन दो बुनियादी सिद्धांतों पर इसका आधार है वे ये हैं कि "समाजमें कोई ऊंचा और नीचा नहीं है और सबको जीवन-वेतन पानेका अधिकार है; और वह जीवन-वेतन सबके लिए समान होगा।" [गांधीजी, 'सत्याग्रह आश्रमका इतिहास', अहमदाबाद, १९५५, पृ० ८९] इसका विकल्प एक ओर अनियंत्रित और दूसरोंको लूटनेवाला व्यक्तिवाद है और दूसरी ओर लोगोंकी जीवन-संबंधी प्रवृत्तियों और विचारोंके बारेमें भी समाज पर सैनिक ढंगका तानाशाही अनुशासन लादना, जैसा कि आजकल संसारके कुछ भागोंमें पाया जाता है।

दंगोंके दिनोंमें जिन लोगोंका व्यापार नष्ट हो गया था, उन्हें गांधीजीने स्वेच्छापूर्वक मजदूर बन जानेको कहा। गांधीजीसे पूछा गया, आपकी यह सलाह आम तौर पर मान ली जाय, तो शिक्षा, व्यवसाय आदिका क्या होगा ? यदि श्रमका विभाजन उठा दिया जाय, तो क्या समाज छिन्नभिन्न नहीं हो जायगा और "सभ्यता" को धक्का नहीं पहुंचेगा ?

गांधीजीने उत्तर दिया, इस प्रश्नसे मालूम होता है कि मेरे कथनका आशय आपकी समझमें नहीं आया है। प्रस्तुत मामलेमें यदि किसीको अपना मूल धन्धा छोड़ना पड़े, तो वह उसकी पसन्दकी बात नहीं होगी; आत्मा और शरोरको टिकाये रखनेकी आवश्यकताके कारण उसे शरीर-श्रमको स्वीकार करना पड़ेगा । मैंने यह कभी नहीं कहा कि श्रमका विभाजन उठा दिया जाय । मेरा आग्रह केवल वेतनकी समानता पर है। वकील, डॉक्टर और शिक्षकको भंगीसे ज्यादा वेतन लेनेका अधिकार न हो, तभी श्रम-विभाजनसे मानव-जातिका उद्धार होगा । सच्ची सभ्यताके लिए और कोई राजमार्ग नहीं है। [प्रार्थना-प्रवचन, २५ फरवरी १९४७]

गांधीजीने उत्तर केरवा और रायपुरामें अपने आदर्श समाजके एक और पहलूकी चर्चा की। भारतमें खेतीकी जमोनके बहुत छोटे छोटे टुकड़े हो जानेके कारण खेतीका उद्योग आर्थिक दृष्टिसे लाभदायक नहीं रह गया है । भूस्वामित्वकी वर्तमान व्यवस्थामें इस बुराईका क्या उपाय किया जा सकता है ? क्या सहकारी ढंगसे की जानेवाली व्यवस्थासे इसका हल निकल आयेगा ? अथवा राज्यको कानूनमें आवश्यक परिवर्तन करके खेतोंको मिलाकर बड़ी बड़ी आर्थिक इकाइयां बना देनी चाहिये ? परन्तु राज्यको यह स्वीकार न हो तो क्या किया जाय?

गांधीजीने कहा, यह प्रश्न राज्यकी कार्रवाईसे हल नहीं होगा; सहकारी पद्धतिसे की जानेवाली खेती ही इसका एकमात्र हल है। सहकारी खेतीका मेरा विचार यह है कि सारी जमीन मालिकोंकी सामूहिक सम्पत्ति हो और उसमें सामूहिक रूपसे खेती हो तथा उनकी पूंजी, औजार, पशु और बीज वगैरा भी सामूहिक रूपसे सबके हों। इससे श्रम, पूंजी और औजार वगैराकी बचत होगी और मालिकोंको ऐसे बहुतसे लाभ मिल जायंगे, जो बड़े पैमानेकी खेतीसे होते हैं और होने चाहियें। मेरी कल्पनाकी सहकारी खेतीसे समाजमें दरिद्रता और आलस्यका मुंह काला हो जायगा। परन्तु यह सब तभी संभव होगा जब लोग एक-दूसरेके मित्र बन जायंगे और एक परिवारकी तरह रहेंगे। जब वह सुखद घड़ी आयेगी तब साम्प्रदायिक दंगे भूतकालकी वस्तु हो जायंगे। [प्रार्थना-प्रवचन, १५ फरवरी १९४७]

दूसरे प्रश्नका मेरा उत्तर यह है कि जमीन राज्यकी है। इसलिए यह देखना राज्यका कर्तव्य है कि उस पर इस तरह खेती हो जिससे अधिकसे अधिक पैदावार हो; और वह पैदावार अन्नके रूपमें नहीं परन्तु जो लोग उस पर काम करें उनके जीवनके साधनोंके रूपमें कूती जाय। परन्तु मैं चेतावनी देता हूं कि सहयोग बल-प्रयोग अथवा जबरदस्तीसे न किया जाय और न ऊपरसे थोपा जाय; उसका आधार अहिंसा पर हो और उसका विकास नीचेसे ऊपरकी ओर हो। हिंसक अथवा थोपे हुए सहयोगकी सफलता जैसी कोई चीज नहीं है। हिटलर उसका जीता-जागता उदाहरण था। सब जानते हैं कि अन्तमें उसने जर्मनीका क्या हाल कर दिया। यदि भारत भी हिंसा अथवा दभावके द्वारा सहयोगके आधार पर नये समाजका निर्माण करनेकी कोशिश करे तो यह बुरी बात होगी। ताकतके जोरसे की हुई भलाई भी बुराई बन जाती है और मनुष्यके

व्यक्तित्वको नष्ट कर देती है । जब परिवर्तन अहिंसक असहयोगकी समझाने-बुझानेकी शक्तिसे—अर्थात् प्रेमसे—किया जाता है तभी मनुष्यके व्यक्तित्वकी बुनियादकी रक्षा हो सकती है और संसारके लिए वास्तविक और स्थायी उन्नतिको निश्चित बनाया जा सकता है।

*

भणिपुरियोंके (आसाम) एक शिष्ट-मंडलने गांधीजीसे शिकायत की कि यद्यपि हमारी गिनती "सवर्ण हिन्दुओं" में की जाती है, फिर भी ऊंची जातियां हमारे हितोंकी रक्षा नहीं करतीं। इससे गांधीजीको हिन्दू समाजमें जातियोंके भविष्य पर अपने विचार विस्तारसे प्रगट करनेका मौका मिल गया । उन्होंने अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें कहा, मैं बार-बार कह चुका हूं कि यदि हिन्दू धर्मको जीवित रहना है, तो उसे जाति-विहीन बनना पड़ेगा। मैं ऊंच-नोचके भेदोंमें विश्वास नहीं करता । यदि सवर्ण हिन्दुओंका अर्थ सिर्फ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही हो, तो हिन्दू बहुत छोटे अल्पमतमें हो जायंगे। फिर उनकी टिके रहनेकी बहुत कम संभावना रहेगी । मुझे तो आशा है कि जब अंग्रेज भारतसे चले जायंगे और यहां सच्ची स्वाधीनताकी स्थापना हो जायगी, तब "उच्च जाति" का नाम-निशान भी नहीं रहेगा, सारी असमानताएं मिट जायंगी और तथाकथित पिछड़े हुए वर्गोंको अपना मूल महत्त्व प्राप्त हो जायगा। [प्रार्थना-प्रवचन, ११ फरवरी १९४७]

परिगणित जातियोंका एक शिष्ट-मंडल गांधीजीके पास आया। उसने गांधीजीकी सलाह लेनेकी दृष्टिसे पूछा कि हमारा लक्ष्य तथाकथित उच्च जातियोंका दर्जा प्राप्त करना और उसके लिए एक वर्गके रूपमें विशेष सुविधायें प्राप्त करना होना चाहिये या हमारा प्रयत्न अस्पृश्यताको समूल नष्ट करनेका होना चाहिये, जिससे सवर्ण और अवर्णका सारा भेद अतीतकी बात हो जाय?

गांधीजीने उत्तर दिया, मुझे स्वभावतः दूसरा रास्ता ज्यादा पसन्द है । वर्गहीन और जातिहीन समाज मेरा आदर है। जब अस्पृश्यता सचमुच मिट जायगी तब कोई जाति नहीं रहेगी। सब शुद्ध और सीधेसादे हिन्दू होंगे । इसके विपरीत, यदि हरिजन अपने ही लिए विशेषाधिकार प्राप्त करनेकी दृष्टिसे अलग संगठन बनाने लेंगे, तो उससे जल्दी ही वर्ग-संघर्ष खड़ा हो जायगा। ऐसे संघर्षमें जो बुराइयां होती हैं वे तो रहेंगी ही, इसके सिवा यह एक असमान युद्ध होगा। जहां

तक मैं देख सकता हूं, इसमें पलड़ा आपके बहुत ज्यादा विरुद्ध जायगा। इसके अलावा, इस मार्गसे जिस "अस्पृश्यता" को मिटाना आपका ध्येय है वही एक स्थापित स्वार्थ बनकर हमेशाके लिए इस "भयंकर भेद" को जारी रखेगी । इसलिए हरिजनोंको मेरी सलाह यह है कि उन्हें अपने भीतरसे सारे जातिभेद मिटा देने चाहिये और स्वच्छताके नियमोंका तथाकथित सवर्ण हिन्दुओंसे भी अच्छा पालन करना चाहिये। अपने लिए भिन्न प्रकारके व्यवहारकी मांग करनेकी दृष्टिसे कार्य करनेकी अपेक्षा आपको "हिन्दू मानवताके सागरमें विलीन हो जानेका प्रयत्न करना चाहिये। भारतको स्वतन्त्र करनेका एकमात्र उपाय यही है।"

इसके विपरीत, सवर्णोंको गांधीजीकी सलाह यह थी: आपको यह साबित कर देना चाहिये कि जिन धन्धोंमें आज "अछूत" लगे हुए हैं उन सबको अपना कर आपने सचमुच जातिको मिटा दिया है । इस प्रकार आपको भंगीका काम करनेके लिए तैयार होना चाहिये। परन्तु वह काम आपको बुद्धिपूर्वक तथा साफ-सुथरे और स्वास्थ्यप्रद ढंगसे करना चाहिये; न कि यांत्रिक, सुस्त और ढीलेढाले ढंगसे । इससे पाखाने साफ करनेकी व्यवस्था अपने आप बदल जायगी । इंग्लैंडमें असली भंगी प्रसिद्ध इंजीनियर और स्वच्छता तथा स्वास्थ्यका प्रचार करनेवाले लोग होते हैं । मैंने यूरोपियन घर देखे हैं, जहां मानवके मल-मूत्रको ठिकाने लगानेकी भंगियोंकी पद्धति बिलकुल साफ-सुथरी होती है। उन्हें बेंतकी टोकरियां दी जाती हैं, जिनमें वे बाल्टियां ले जाते हैं। उन्हें आसानीसे "भोजन ले जानेकी टोकरियां" समझ लिया जा सकता है ! कहना नहीं होगा कि फिर तो हरिजन भी उन्हीं मुहल्लोंमें रहेंगे जिनमें दूसरे लोग रहते हैं। उन्हें अछूतोंकी तरह अलग नहीं बसाया जायगा; उन्हें और लोगोंकी तरह ही सारी नागरिक सुविधाएं प्राप्त होंगी ।

इस प्रकार गांधीजीके हाथोंमें अस्पृश्यता-निवारणकी समस्याने दोहरी शिक्षाका रूप धारण कर लिया। गांधीजीने कहा, "स्पृश्यों" को " धैर्यपूर्वक आचरण और उदाहरणके द्वारा यह सिखाना पड़ेगा कि अस्पृश्यता मानवताके विरुद्ध एक पाप है और उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये; और अस्पृश्योंको यह समझाना होगा कि उन्हें स्पृश्योंका डर छोड़ देना चाहिये और आपसमें भी अस्पृश्यता नहीं रखनी चाहिये।" अस्पृश्योंको अपनेमें फैली हुई कुरीतियां भी दूर करनी होंगी—जैसे शराब पीना, मुर्दार मांस खाना और गन्दी और सेहतको नुकसान पहुंचानेवाली

आदतें रखना—ताकि कोई उनकी तरफ तिरस्कारकी उंगली न उठा सके। इस दोहरी शिक्षाके लक्ष्यकी पूर्तिके लिए गांधीजीने हरिजन सेवक संघका अखिल भारतीय संगठन खड़ा किया। इस संघकी कल्पना तत्त्वतः "प्रायश्चित्त करनेवालों" के एक समाजके रूपमें की गई है, जिससे हिन्दू समाज तथाकथित अस्पृश्योंके प्रति किये गये अपने पापका प्रायश्चित्त कर सके । उसका कार्य किसीको विशेषाधिकार देनेके बजाय ऋण चुकाना है, इसलिए उसकी कार्यकारिणीमें वे ही लोग रखे गये जिन्हें प्रायश्चित्त करना था।

अन्तमें गांधीजीसे पूछा गया: "सवर्ण हिन्दू हरिजनोंके हितोंकी देखभाल कैसे रख सकते हैं? जिन वर्गोंने उनके हाथों दीर्घकालसे कष्ट उठाये हैं, उनकी भावनाओंको वे कैसे समझ सकते हैं?"

गांधीजीने उत्तर दिया: "सवर्ण हिन्दू स्वेच्छापूवक नामके लिए नहीं बल्कि व्यवहारमें भंगी बन जायं। यदि सवर्ण हिन्दू अपना कर्तव्य पूरी तरह और अच्छी तरह पालन करें, तों हरिजन देखते ही देखते ऊपर उठ जायंगे और हिन्दू धर्म अस्पृश्यताके कलंकसे शुद्ध होकर संसारके लिए एक बहुमूल्य विरासत छोड़ जायगा।" [प्रार्थना-प्रवचन, २५ फरवरी १९४७]

*

गांधीजीको बताया गया कि सरकार देशके औद्योगीकरणकी योजनाएं आरम्भ कर रही है। और उनका उद्देश्य यह बताया जाता है कि देशके प्राकृतिक साधनों और कच्चे मालका अधिकसे अधिक उपयोग किया जाय। परन्तु भारतके विपुल जनबलको काममें न लाकर उसे बेकार रहने दिया जाता है। क्या यह सच्चे अर्थमें राष्ट्रीय विकास कहा जा सकता है?

गांधीजीने उत्तर दिया, यह स्पष्ट है कि जो भी योजना देशके कच्चे मालका उपयोग करती है और उससे अधिक शक्तिशाली जनबलकी उपेक्षा करती है, वह योजना कभी मानव-समानताकी स्थापना नहीं कर सकती और न वह राष्ट्रको वास्तवमें सुखी और सम्पन्न बना सकती है। पश्चिममें वहांके लोगोंने सार्वत्रिक जनबलकी उपेक्षा की और चन्द लोगोंके हाथमें शक्ति केन्द्रित कर दी। ये लोग अधिकांश लोगोंको हानि पहुंचाकर सत्तारूढ़ और सम्पन्न बने हैं। नतीजा

इसका यह हुआ कि उनका औद्योगीकरण उन देशोंके गरीबोंके लिए एक अभिशाप और शेष संसारके लिए एक खतरा बन गया है। यदि भारतको ऐसी विपत्तिसे बचना हो, तो उसे पश्चिमी देशोंकी उत्तम वस्तुको अपनाना और हजम करना होगा और उनकी आकर्षक दिखाई देनेवाली परन्तु विनाशकारी आर्थिक नीतियोंको छोड़ देना होगा। जहां तक भारतका सम्बन्ध है, सच्चा नियोजन तो यह है कि उसके सारे जनबलका उत्तम उपयोग किया जाय और उसका कच्चा माल उसके बहुसंख्यक गांवोंमें बांट दिया जाय, ताकि वहां उससे पक्का माल बनाया जाय और गांवोंसे शहरोंमें या विदेशोंमें कच्चा माल भेज कर फिर उसीको पक्के मालके रूपमें भारी कीमत देकर खरीदना न पड़े। [प्रार्थना-प्रवचन, २७ फरवरी १९४७]

गांधीजीने आदर्श समाजके अपने चित्रको स्वदेशीका सच्चा अर्थ और गूढ़ार्थ समझा कर सर्वांग संपूर्ण बना दिया। शायद उनके तत्त्वज्ञानके सारे पहलुओंमें स्वदेशीका कमसे कम अध्ययन किया गया है और उसीको सबसे अधिक गलत समझा गया है।

गांधीजीने स्वदेशीकी व्याख्या यों की है: “यह हमारे भीतरकी वह भावना है, जो हमें दूरके लोगोंको छोड़कर उन लोगोंके उपयोग तथा सेवामें सीमित कर देती है जो हमारे बिलकुल निकट हों।” [स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गांधी, चौथी आवृत्ति, मद्रास, पृ० ३३६] दूसरे शब्दोंमें, इसका अर्थ यह हुआ कि हम उस विशेष कर्तव्य और जिम्मेदारीको स्वीकार करते हैं, जो अपने बिलकुल नजदीकके लोगोंके प्रति हमारी है। इस प्रकार “स्वदेशोका पुजारी अपने आसपासके वातावरणका ध्यानपूर्वक अध्ययन करेगा और अपने पड़ोसियोंकी सहायताके प्रयत्नको” अपना पहला कर्तव्य समझेगा। वह “दूरके दृश्यके प्रलोभन” में खुदको नहीं फंसने देगा “और सेवाके लिए दुनियाके छोरों तक दौड़कर नहीं जायगा।” इससे पड़ोसियों और आश्रितोंकी उसकी अपनी छोटीसी दुनिया अस्तव्यस्त हो जायगी और अधिक संभावना इसी बातकी रहेगी कि अपनी इस “अकारण बताई जानेवाली साहसिकता” [गांधीजी, ‘फ्रॉम यरवडा मंदिर', अहमदाबाद, १९३५, पृ० ९०] से वह नई जगहके वातावरणमें गड़बड़ी पैदा कर देगा।

स्वदेशीका धर्म अपने चारों ओर कोई ऊंची दीवार नहीं बना लेता। वह सिर्फ इसी तथ्यको स्वीकार करता है कि "प्राणिमात्र एक-दूसरेसे सम्बद्ध हैं—सारा जगत एक परिवार है। . . . प्रत्येक व्यक्तिका प्रत्येक कार्य सारी दुनिया पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालता है। . . . किसी एक ही कार्यका प्रभाव . . . नगण्य हो सकता है। परन्तु प्रभाव तो होता ही है; और इस सत्यका भान होनेसे हमें अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझमें आ जानी चाहिये।" [ग्रांधीजी, 'सत्याग्रह आश्रमका इतिहास', अहमदाबाद, १९५५, पु० ६८] गांधीजीने कहा, जिस मनुष्यने अपने पड़ोसीके प्रति अपना कर्तव्य पालन किया है, उसीको यह कहनेका अधिकार है कि "मेरे लिए सब समान हैं।" जो व्यक्ति अपने पड़ोसीकी उपेक्षा करते हुए सारे संसारकी सेवा करनेका बहाना करता है, वह वस्तुतः न तो संसारकी सेवा करता है और न अपने पड़ोसीकी। वह तो केवल अपने ही सुख अथवा धुनके लिए काम करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार सेवा करनी चाहिये। एक व्यक्तिकी शक्ति पड़ोसीके प्रति अपना कर्तव्य पालनेमें ही पूरी हो सकती है और दूसरेकी शक्तिके लिए सारी दुनियाको अपना पड़ोसी माननेकी जरूरत हो सकती है। इससे स्वदेशीके सिद्धान्तका भंग नहीं होगा।

स्वदेशोका सिद्धान्त जीवनके हर क्षेत्रमें लागू किया जा सकता है। इस प्रकार धर्मके सम्बन्धमें वह सिद्धान्त चाहता है कि हम अपने जन्मके ही धर्मसे चिपटे रहें और सारे धर्मोंकी उत्तम बातें उसमें शामिल करके उसे पूर्ण बननेमें सहायता दें। इससे हमारे अपने धर्मका सतत विकास और विस्तार होता रहेगा और दूसरे धर्मोंके प्रति हममें सहिष्णुता और समभाव उत्पन्न होगा। आर्थिक बातोंमें इस सिद्धान्तका अर्थ यह होगा कि हमें अपने पड़ोसी कारीगरकी सेवाओंका उपयोग करना चाहिये और यदि वह अकुशल हो तो उसे कुशलता प्राप्त करनेमें सहायता देनी चाहिये। हमें बाहरसे सस्ते वेतन पर अधिक योग्य कारीगरको बुलाकर इस गरीब कारीगरको भूखों नहीं मारना चाहिये। इस प्रकार स्वदेशी सर्वोदयके आदर्शका—सबके भलेके आदर्शका, सबके उत्कर्षके आदर्शका आधार और नींव है। इसी तरह स्वदेशी-धर्म बाहरसे मंगाये हुए सामूहिक उत्पादनके सस्ते मालका—जैसे विलायती कपड़ेका—उपयोग करनेकी तथा हमारे अपने ही लाखों देशवासियोंका, जो भिन्न भिन्न स्वदेशी उद्योगोंमें लगे हुए हैं, नाश

करनेको मनाही करता है। राजनीतिक दृष्टिसे स्वदेशीका सिद्धान्त सत्ताके विकेन्द्रीकरणका पक्षपाती है—अर्थात् क्षेत्रीय स्वतन्त्रता और स्वशासनका पक्षपाती है, जिससे प्रत्येक क्षेत्रीय घटक अपनी विशेष परम्परा और प्रतिभाके अनुसार अपनी संस्थाओंका विकास करके पूरी ऊंचाई तक उठ सके।

यह कोई बहिष्कारका अथवा संकीर्ण प्रादेशिकताका पंथ नहीं है। जैसा कि एक विचारकने कहा है, प्रत्येक व्यक्ति अथवा घटकको "अपनी सांस्कृतिक विरासतके अनुसार एक सर्व-सामान्य मापदण्ड खोज लेना चाहिये। भौगोलिक, आध्यात्मिक अथवा भावनात्मक दृष्टिसे हम जहां भी हों वहांसे आगे बढ़कर हम समग्र मानव-जातिकी प्रगति और शांतिके लिए आवश्यक अखण्ड पुरुषार्थ कर सकते हैं।" स्वदेशीके आधार पर अपनी अन्तर्राष्ट्रीयताको खड़ी करनेवाला सुधारक इस प्रकार "समस्त मानव-समाजका सदस्य होता है, परन्तु जिन सन्दर्भोंमें उसने जन्म लिया है उनकी भाषा वह बोलता है और अपनी आन्तरिक उदात्ततासे उन्हें बदल देता है।"

"क्या हम अपने निकटतम पड़ोसियोंके पक्षमें दूसरोंका बहिष्कार करनेका भेदमाव दिखा सकते हैं और फिर भी समग्र मानव-जातिके साथ तादात्म्य अनुभव कर सकते हैं?"

गांधीजीने उत्तर दिया, हम अपने पड़ोसियोंकी सेवाके द्वारा सारी मानव-जातिकी सेवा कर सकते हैं; शर्त इतनी ही है कि पड़ोसियोंकी सेवामें कोई स्वार्थ न हो और किसी दूसरे मानव-प्राणीका शोषण न हो। तब पड़ोसी उस भावनाको समझ लेंगे जिससे उनकी सेवा की जाती है और फिर वे भी अपने पड़ोसियोंकी सेवा करेंगे। "यदि व्यक्तिका त्याग सजीव त्याग है, तो वह बर्फके गोलेकी तरह बढ़ेगा और उसकी शक्ति तथा गति उत्तरोत्तर अधिक होगी और अन्तमें वह सारी दुनिया पर छा जायगा।" [प्रार्थना-प्रवचन, २७ फरवरी १९४७]

"स्वतन्त्र भारतमें किसका हित सर्वोपरि होगा? यदि कोई पड़ोसी देश अभाव-ग्रस्त हो, तो क्या भारत अलग-थलग रहनेकी वृत्ति अपनायेगा और कह देगा कि हमारी अपनी जरूरतें हम पहले देखेंगे ?"

सच्चे अर्थोंमें स्वाधीन और स्वतन्त्र भारत संकटमें अपने पड़ोसियोंकी सहायताके लए दौड़ जायगा। जिस मनुष्यकी त्यागवृत्ति अपने ही समुदायसे आगे नहीं जाती, वह स्वयं स्वार्थी बन जाता है और अपने समाजको भी स्वार्थी बना देता है। आत्मत्यागका अन्तिम परिणाम यह होता है कि व्यक्ति समाजके लिए अपना बलिदान देता है, समाज जिलेके लिए, जिला प्रान्तके लिए, प्रान्त राष्ट्रके लिए और राष्ट्र सारे जगतके लिए बलिदान देता है। समुद्रसे अलग हो जानेवाला जलबिन्दु नष्ट हो जाता है और किसीका कोई भला नहीं कर सकता। समुद्रका अंग बनकर वह शक्तिशाली जहाजोंके बड़े समूहोंको अपने वक्ष:स्थल पर ले जानेके गौरवमें भागीदार होता है।" [प्रार्थना-प्रवचन, २६ फरवरी १९४७]

*

इस प्रकार गांधीजीके आदर्श समाजका चित्र लगभग वर्णाश्रम-व्यवस्थाका आधुनिक स्वरूप है। इस व्यवस्थाका प्रतिपादन प्राचीन भारतमें हुआ था और उसके मूल तत्त्व आज जातिहीन, वर्गहीन और राज्यहीन समाजके भौतिकवादी लिबासमें फिरसे जन्म ग्रहण कर रहे हैं। इस आधुनिक समाजका आधार समाजीकृत धन्धों पर है और उसका नारा है: "प्रत्येकको उसकी आवश्यकताके अनुसार मिले और प्रत्येकसे उसकी शक्तिके अनुसार लिया जाय" तथा "सब प्रत्येकके लिए हैं और प्रत्येक सबके लिए है।" लेकिन इन दोनोंमें एक बुनियादी भेद है, जिसके कारण दोनोंका एकसी भाषामें वर्णन नहीं किया जा सकता। वर्णाश्रमके तत्त्वज्ञानमें व्यक्तिकी प्रवृत्ति अपने लिए या दूसरोंके लिए भौतिक सन्तोषोंका पार्थिव स्वर्ग सिद्ध करनेका साधन नहीं होती; परन्तु दूसरोंकी निःस्वार्थ सेवा द्वारा अपनी रुंधी हुई अहं-केन्द्रित चेतनासे ऊपर उठनेका तथा अपने स्वरूपको समझनेका—जिससे आज हम अलग हो गये हैं—साधन होती है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो यह तत्त्वज्ञान समग्र सृष्टिके साथ अपनी एकता साधनेको तथा उसके बाद सर्वात्मरूप परब्रह्मके साथ—जो समग्र सृष्टिका कारण है और जिसमें उसकी उत्पत्ति, स्थिति और लय है—एकता साधनेको जीवनकी प्रवृत्तिका लक्ष्य मानता है । मार्क्सवादियोंका वर्ग-विहीन समाज केवल भौतिक देहको और उसकी आवश्यकताओंको अपना देवता मानता है और उनके उस तत्त्वज्ञानके फलितार्थके अनुसार अपने ध्येयकी सिद्धिके खातिर हिंसाका उपयोग करनेके

लिए और नीतिके बन्धनोंको नष्ट करनेके लिए प्रेरित होता है। इस प्रकार साधन और साध्यके बीच खड़ा होनेवाला संघर्ष तत्त्वज्ञानके नाते उसे परस्पर विरोधी और कार्य-पद्धतिके नाते आत्मघाती बना देता है।

इसके विपरीत, गांधीजीका तत्त्वज्ञान अपने अन्तिम अर्थमें व्यक्तिको 'समग्र सुष्टिके साथ अपना तादात्म्य साधनेके उसके प्रयत्नमें भौतिक शरीरके बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिए प्रेरित करता है," और व्यक्तिकी स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभावका ध्येय सिद्ध करनेके लिए, दूसरे शब्दोंमें पृथ्वी पर स्वर्गका राज्य स्थापित करनेके लिए, सत्य तथा अहिंसाके सिवा अन्य सब साधनोंका निषेध करता है।

गांधीजीने अपने आदर्श समाजको रामराज्यका नाम दिया। उन्होंने हैमचरमें एक बड़ी सभामें भाषण देते हुए समझाया, "कोई यह समझनेकी भूल न करे कि रामराज्यका अर्थ हिन्दुओंका राज्य है। मेरा राम खुदा या गॉडका ही दूसरा नाम है। मैं खुदाई राज चाहता हूं। और इसका अर्थ है पृथ्वी पर ईश्वरका राज्य । पहले चार खलीफोंका राज्य इससे "कुछ कुछ मिलता हुआ" ही था। "ऐसे राज्यकी स्थापनासे समस्त भारतवासियोंका ही नहीं, बल्कि सारे संसारका कल्याण होगा।" [वही]

दसवां अध्याय
गहरी बनती तपस्या

१

देवीपुरमें गांधीजीके लिए एक भव्य स्वागतकी तैयारी की गई थी। यह नोआखाली जिलेका आखिरी गांव था, जहां गांधीजीको जाना था। कार्यकर्ताओंको भी उतना ही अविस्मरणीय अनुभव वहां मिलनेवाला था। गांवका रास्ता एक धनवान हिन्दू जमींदारके अहातेमें होकर जाता था। किसी समय यह एक शानदार महल था, परन्तु अब तो उसका सर्वनाश हो चुका था । वह हालकी भीषण घटनाओंका एक भयंकर स्मारक था। उसमें से निकल कर रास्ता धीरे धीरे चक्कर काटती हुई दकातिया नदीके साथ साथ टेढ़ा-मेढ़ा आगे बढ़ता था । दोनों ओरको वनराजि पूर्ण यौवन पर थी और पक्षियोंकी चहचहाहटसे गूंज रही थी। ताजी प्रात:कालीन वायु जंगली हरियालीकी सुगंधसे भरी हुई थी । वृक्षोंके गहरे हरे रंगके पत्तोंमें छिपी हुई गांधीजीकी झोंपड़ी सौन्दर्य और शान्तिकी मूर्ति-सी दिखाई देती थी। परन्तु गांधीजीको उससे शान्ति नहीं मिली।

गांव और उसके आसपासके रास्ते झंडियों, पताकाओं, चांदीके तारोंवाली सूतकी मालाओं आदिसे सजाये गये थे। यह सब गांधीजीको खटका। ज्यों ही उनका साप्ताहिक मौन टूटा, उन्होंने गांवके मुख्य कार्यकर्ताको बुलाया और उससे पूछा, यह सब कहांसे लाये ? गांवमें तो ये सब चीजें मिल नहीं सकतीं ! बेचारा कार्यकर्ता समझाने लगा, हमारे गांवका सौभाग्य है कि वह आपके आगमनसे
पवित्र हुआ। इसलिए हमने चंदा करके आपके योग्य स्वागतका प्रबन्ध किया । इस उत्तरने आगमें घीका काम किया: "क्या तुम यह नहीं समझते कि यह व्यर्थका प्रदर्शन करके तुम साम्प्रदायिक भावनाओंको उत्तेजित करोगे ? मेरे लिए इस प्रदर्शनका कोई अर्थ नहीं। परन्तु यह वैमनस्यकी एक ऐसी विरासत छोड़ जायगा, जो बहुत समय तक इस गांवके साम्प्रदायिक सम्बन्धोंको

विषाक्त करती रहेगी । तुम कांग्रेसी हो । खादीके बारेमें मेरे इतने दृढ़ विचार होते हुए भी तुम्हें यह नहीं सूझा कि मिलके कपड़ेके बने हुए फीतों और झंडियोंसे मेरे दिलको चोट ही पहुंचेगी?"

चिन्तनशील मुद्रामें वे आगे कहने लगे : "आजके अनुभवने मुझे गहरे चिन्तनमें डाल दिया है । क्या मेरे साथी भी जब मंत्री बन जायंगे तब मालाओं आदिके बारेमें ऐसी ही कमजोरी दिखायेंगे? मैं यह दावा नहीं करता कि मेरे कार्यकर्ताओंमें असाधारण गुण हैं। परन्तु मुझे इतनी आशा अवश्य है कि मंत्री बनकर भी वे उन आदर्शोंको कभी नहीं भूलेंगे, जिनका कांग्रेसने दावा किया है और जिनके लिए इतने वर्ष तक उसने लड़ाई की है। किन्तु आज जो कुछ मैंने देखा है उससे मुझे शंका हो रही है कि मैं कहीं काल्पनिक जगतमें तो नहीं जी रहा हूं । ऐसा मालूम होता है कि ईश्वरने मुझे झकझोर कर जगा दिया है, ताकि मुझे अपनो सच्ची स्थिति मालूम हो जाय।"

गांधीजीको आगबबूला होते देखकर बेचारा कार्यकर्ता तो स्तब्ध रह गयागांधीजीजीको उस समय तक सन्तोष नहीं हुआ जब तक कि हारों और मालाओंका सारा सूत खोलकर फिरसे बुनने लायक नहीं बना दिया गया। उसकी २० आटियां बनीं। मनुने बादमें लिखा, "जब बापूजी इस प्रकार अपनी आत्मा उंडेल रहे थे तब वे लावा उगलते ज्वालामुखीके साक्षात् अवतार दिखाई देते थे। परन्तु उनकी वाणीमें क्रोध या उलाहनेका लेश भी नहीं था। उनके चेहरेसे किसीको ऐसा भी लग सकता था कि वे अपना ही कोई भयंकर दोष स्वीकार कर रहे हों। और सही बात तो यह है कि उन्होंने कई बार हमसे कहा है कि अपने साथियोंके दोषको मैं अपनी ही असफलता अर्थात् अपनी हो शिक्षाकी असफलता मानता हूं।"

देवीपुरमें एक पीर साहब थे, जिनकी धर्म-परायणताकी वहां बड़ी ख्याति थी । गांधीजीके साथ हुई बातचीतमें उन्होंने नोआखालीके दंगोंमें जबरन् किये गये धर्म-परिवर्तनोंका समर्थन किया । उन्होंने कहा, यह तो हिन्दुओंकी जान बचानेकी सिर्फ एक चाल थी और इसलिए तारीफके काबिल थी ! गांधीजीने उनसे पूछा, धर्मका सौदा करके जान बचानेसे क्या फायदा हुआ ? बेहतर तो यह होता कि आप हिन्दुओंको यह सिखाते कि प्राण देकर भी उन्हें अपने धर्मकी रक्षा करनी चाहिये। परन्तु पीर साहबकी राय थी कि असत्यकी सहायतासे भी जान

बचानेमें कोई बुराई नहीं है। गांधीजीको इससे गहरी चोट लगी और उन्होंने पीर साहबसे कहा, अगर कभी खुदासे मिलनेका मौका मिला तो मैं उससे पूछूंगा कि उसने आप जैसे आदमीको पीर—धर्मगुरु—क्यों बनाया !

गांधीजीका दृढ़ मत था कि धर्म-परिवर्तन वास्तविक और उचित तभी होता है जब वह पूरी तरह ऐच्छिक हो और दोनों धर्मोंको—अपने धर्मको और जिसे स्वीकार करना है उस धर्मको भी—अच्छी तरहसे समझ कर किया जाय। वे संस्थाके रूपमें धर्म-परिवर्तनको नहीं मानते थे। जो गैर-हिन्दू उनकी ओर आकर्षित होते थे उनसे वे कभी—स्वयं हिन्दू होनेके कारण—हिन्दू धर्म स्वीकार करनेके लिए नहीं कहते थे। इसके बजाय वे उन्हें हमेशा हिन्दू धर्मका उचित अध्ययन करने और हिन्दू धर्ममें जो बातें उन्हें अच्छी लगें उनको अपने अपने धर्ममें सम्मिलित करनेकी सलाह देते थे। संघर्षसे बचने और धर्मकी अपनी कल्पनाका विस्तार करनेका यही मार्ग है। जो मुसलमान मित्र सामूहिक धर्म-परिवर्तनके सवाल पर उनसे चर्चा करने आते थे, उनसे नोआखालीकी धर्मयात्रामें वे यही कहते थे कि आपमें से कुछ लोगोंने इस्कालका जो रूप प्रकट किया है, उससे मैं इस्लामको कहीं श्रेष्ठ धर्म समझता हूं।

चरदुखियामें नोआखाली जिलेकी सीमा पार करके गांधीजीने १८ फरवरीको सुबह टिपरा जिलेमें प्रवेश किया और ८।। बजे वे आलूनिया पहुंचे । जिलेके बदलते ही प्राकृतिक दृश्य और भूमिके प्रकारमें परिवर्तन दिखाई दिया। नोआखालीमें नरम बालूवाली मिट्टी थी और टिपरामें चिकनी मिट्टी थी। सुपारीके बाग तो थे, परन्तु नारियलके कुंज ज्यों ज्यों वे भीतर घुसते जाते थे, त्यों त्यों कम होते जाते थे और नोआखालीकी तरह एक गांवसे दूसरे गांवके बीच चावलके खेत फैले दिखाई नहीं देते थे।

आलूनियामें बिहारके एक भाई गांधीजीसे मिले। वे इतनी दूरसे उन्हें तुलसी-रामायण गाकर सुनाने आये थे, क्योंकि उन्हें मालूम था कि गांधीजीको इस अमर भक्तिकाव्यसे बड़ा प्रेम है। परन्तु केवल उनका गाना सुननेके लिए ही उन्हें अपने साथ रखना एक अनुचित विलास होगा,

ऐसा मानकर गांधीजीने उनसे कह दिया कि इस समय बिहारको प्रत्येक योग्य कार्यकर्ताकी जरूरत है। और गायक कवि बिहार लौट गये।

यात्रामें जो लोग गांधीजीका भोजन बनाते थे उनके लिए सुविधा पैदा करनेकी उत्सुकताके कारण गांधीजीको कभी कभी विचित्र व्यंजनोंका आविष्कार करना पड़ता था। एक यह था: "दोपहरके भोजनमें वे भिंडी, लौकी, करेला और हरी पत्तियोंका बिना मसाले और बिना नमकका गाढ़ा साग बनवाते थे और उसीमें उबला हुआ बकरीका दूध डाल देते और चम्मचसे हिलाकर उसे खा लेते थे। जब मैंने उन्हें ऐसा करते देखा तो मुझे आश्चर्य हुआ कि दुनियामें कोई आदमी उस भयंकर सामग्रीको कैसे निगल सकता है। इसकी मुझे महंगी कीमत चुकानी पड़ी। शायद यह अनुमान लगाकर कि मेरे मनमें क्या चल रहा है गांधीजीने चुटकी ली, 'तुम इन चीजोंको क्या जानो ! जब सचमुच भूख लगती है तब जो भी सामने आ जाता है वही स्वादिष्ट व्यंजन बन जाता है !' उमड़ते स्नेहसे उन्होंने उस काढ़ेमें से दो चम्मच काढ़ा मुझे भी दिया। लेकिन उसे निगलनेमें मुझे किसी कड़वी दवाको निगलनेसे भी ज्यादा कठिनाई हुई !" [मनु गांधी, 'एकला चलो रे', अहमदाबाद, १९५४, पृ० १७८]

गांधीजीकी तबीयत बहुत अच्छी नहीं थी। वे थके हुए दिखाई देते थे और "आंखोंमें जलन होने" की शिकायत करते थे। उसे शान्त करनेके लिए उन्होंने आंखों पर मिट्टीकी पट्टी रख ली, परन्तु अपनी यात्राको रोकनेंकी बात सुननेको तैयार नहीं हुए। देवीपुरसे लिखे गये पत्रोंमें से एकमें उन्होंने लिखा था: "पत्र-व्यवहारका बोझ दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है और उससे भी अधिक मन पर बोझ बढ़ रहा है। मेरा काम आसान होनेके बजाय रोज मुश्किल होता जा रहा है। विरोध दिनोंदिन कड़ा होता जा रहा है। परन्तु उसके बावजूद मेरी श्रद्धा और मेरा आत्मश्वास निरन्तर बढ़ रहे हैं। जब कोई करने या मरने पर तुल जाता है, तब कठिनाइयोंकी क्या परवाह ? . . . मेरी यात्राका तीसरा दौर कब शुरू होगा, मैं नहीं जानता । २४ फरवरीको मैं हैमचर पहुंच रहा हूं। फिलहाल तो मैं ईश्वरको धन्यवाद दूंगा कि वह मुझे २४ फरवरी तकका कार्यक्रम पूरा करनेका सामर्थ्य दे रहा है।" किन्तु आराम लेनेका बहुत आग्रह करने पर वे इतना ही बोले : "अब तो जल्दी ही काम खतम हो जायगा। हैमचर पहुंचनेमें बहुत दिन नहीं छंगेंगे।"

जो कार्यकर्ता ४ महीने पहले गांधीजीके साथ नोआखाली आये थे, उन्हें भी कामके तनावका असर महसूस होने लगा। वे पूर्वी बंगालके भोजन और जीवनकी परिस्थितियोंके आदी नहीं थे और उन्हें मानसिक और शारीरिक कष्ट काफी भोगना पड़ा। उनमें से कुछ बिलकुल थक गये थे। खतरा कम हो जानेसे सभी विचारों और मतोंवाले 'नेता' भी अधिकाधिक संख्यामें नोआखाली आने लगे थे और विभिन्न संस्थाओंके छोटे-बड़े कार्यकर्ता परस्पर विरोधी उपदेशोंकी अधिकतासे ऊब कर निराश हो रहे थे। उन्होंने गांधीजीसे सलाह ली। गांधीजीने उनसे कहा, जिन्हें आवश्यकता प्रतीत हो वे विश्राम और परिवर्तनके लिए नोआखालीसे जा सकते हैं। रही बात दूसरोंकी, तो उन्हें ऐसे आदमीको नेता चुन लेना चाहिये, जो उनके हृदय और मस्तिष्कको जंचता हो और फिर उसका पूरी तरह अनुगमन करना चाहिये। यदि मस्तिष्क और हृदयमें संघर्ष हो, तो उन्हें साहसपूर्वक हृदयकी बात माननी चाहिये | मुझे अपनी तसवीरमें से निकाल दीजिये। मैं यहां लोगोंको मिलाने आया हूं, न कि उन्हें अलग करने या आपसमें लड़ानेको।

गांधीजी शरीर और मनका भारी कष्ट भोग रहे थे। १८ फरवरीको सायंकालीन प्रार्थनाके पश्चात् वे दकातिया नदीके उस पार रहनेवाले एक बहुत बूढ़े आदमीसे मिलने नावमें गये । वह एक गरीब मुसलमान था। उसने गांधीजीसे मिलनेकी इच्छा प्रगट की थी, परन्तु वह इतना वृद्ध था कि स्वयं उनके पास नहीं आ सकता था। गांधीजीने उसकी इच्छाका सहर्ष स्वागत किया। नदी एक मनोहर हरेभरे प्रदेशके बीचसे धीरे धीरे बह रही थी। सूर्य मेघहीन त्तीले गगनमें चमक रहा था। हवा बड़ी खुशनुमा थी। न तो बहुत ठंडी थी और न बहुत गरम । नाव श्ञांत गतिसे नदीके ऊपर जा रही थी। दोनों किनारों पर जहां तक दृष्टि जा सकती थी भारी भीड़ जमा थी। नदी-तठ पर जैसे नाना प्रकारके असंख्य हरेभरे वृक्ष थे वैसे ही नाना प्रकारके असंख्य नर-नारी थे। परन्तु नदी पर अनन्त शान्ति बिराज रही थी और किनारोंका शोरगुल बहुत दूर तक सुनाई देता था। गांधीजी बहुत थके-मांदे मालूम हो रहे थे। "कुछ क्षणके लिए वे आंखें बन्द करके लेट गये, मानो समाधि लगा ली हो और चारों ओरके दृश्यकी असीम शान्तिका रसास्वादन करने लगे ! फिर जब नाव दूसरे किनारेके निकट पहुंची तो वे भीड़को देखकर धीरे धीरे मन ही मन कहने लगे: "यह दृश्य मुझे पुराने दिनोंका स्मरण करा रहा है।!' " [वही, पृ० १८१] वे उस समयका

विचार कर रहे थे जब लगभग पाव सदी पहले वे भारतीय रंगमंच पर लगभग अनजान आदमी थे। उन्होंने अस्पृश्यताके विरुद्ध लड़े जानेवाले धर्मयुद्धको अपने राजनीतिक कार्यक्रमका अविभाज्य अंग बना कर अपने सारे राजनीतिक जीवनको खतरेमें डाल दिया था। "जब मैंने अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन चलाया था उस समयकी स्थिति इससे कुछ कुछ मिलती-जुलती थी, यद्यपि कई बातोंमें भिन्न भी थी। आजकी तरह उस समय भी समाज और मेरे कुछ निकटतम साथी भी मेरे उस कदमको पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने बोरिया-बिस्तर बांध कर चले जानेकी तैयारी भी कर ली थी। परन्तु मुझे इससे आन्तरिक सन्तोष हुआ था। मैं टससे मस नहीं हुआ और अन्तमें वे मेरे पास ठहर गये। अपने जीवनमें मैं अनेक बार सब तरहकी सयानी सलाहके विरुद्ध अपने अन्तर्नादके मार्गदर्शन पर चला हूं और मुझे अक्सर आश्चर्यजनक सफलता मिली है। परन्तु सफलता और असफलताका कोई महत्त्व नहीं है। जैसा मैंने कई बार कहा है, उसकी चिन्ता करना ईशवरका काम है, मेरा नहीं।" [वही]

गांधीजीका यह उल्लेख उस तूफानसे सम्बन्ध रखता था, जो उनके ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी विचारों और आचरणके कारण उठ खड़ा हुआ था। इससे उनके और उनके कुछ साथी कार्यकर्ताओंके बीच विवाद खड़ा हो गया था; और स्वयं उनके लिए यह गहरे हृदय-मंथनका विषय बन गया था। "समयके कोहरे" के दूर हो जाने पर, प्रकाश देनेवाले उस क्षणमें उन्होंने देखा कि भूतकाल और वर्तमानका एक अटूट सम्बन्ध हैं और समझ लिया कि ब्रह्मचर्यके प्रश्नन पर उनकी लड़ाई अस्पृश्यता-निवारणकी लड़ाईकी तरह सत्यकी शोधका अथवा प्रेमधर्मकी कार्य-पद्धतिका एक सीमाचिह्न है और उसीको सिद्ध करनेके लिए वे नोआखाली आये हैं।

दूसरे दिन एक घटना हुई, जिससे यह प्रश्न नाटकीय ढंगसे स्पष्ट हो गया।

२

हिन्दू महाशिवरात्रिको भगवान शिवके पवित्र दिनके रूपमें मनाते हैं। गांधीजीकी यात्रामें यह दिन १९ फरवरीको बिरामपुरमें पड़ा। प्राचीन हिन्दू पुराण-कथाके अनुसार उस दिन एक शिकारीको जंगलमें बेलके पेड़की टहनियोंमें रात बितानी पड़ी। जाड़ेकी सरदीमें कांपता हुआ

वह बेलके वृक्ष पर बैठा था उस समय वृक्षके नीचे शिवलिंग पर उसकी नजर पड़ी । अनजानमें वह शिवजीके अत्यन्त प्रिय बेलपत्र लिंग पर चढ़ाने लगा। उसके इस अनसोचे कार्यसे शिवजी उस पर प्रसन्न हुए और उसे दर्शन दे कर उन्होंने जन्म-मरणके चक्रसे उसे मुक्त कर दिया। उस रात कड़ाकेकी सरदीके कारण वह शिकारी जो निःश्वास लेता था, उसमें से शिवजीके नामका कल्याणकारी उच्चार उत्पन्न हुआ ! महाशिवरात्रिकी रात बहुत लम्बी होती है और विदा लेते हुए जाड़ेकी सरदी बहुत तीव्र होती है। साथ ही वह शोत ऋतुका अन्त और वसंत ऋतुका आगमन सूचित करती है। भक्त लोग जागरण करके और प्रार्थना तथा तपस्याके द्वारा भगवान शिवकी कृपा प्राप्त करनेकी कोशिश करते हैं। उस दिन कस्तूरबाकी तीसरी पुण्यतिथि थी। वे फरवरी १९४४ को पूनामें नजरबन्दीकी स्थितिमें कैदीके रूपमें स्वर्गवासी हुई थीं। गांधीजीने उपवास करके वह दिन मनाया।

दीखनेमें यह दिन भी और दिनोंके जैसा ही था। इससे गांधीजीके दैनिक कार्यक्रममें कोई अन्तर नहीं पड़ा। सदाकी भांति उनकी दिनचर्या ४ बजे सुबह शुरू हुई और दिनभर लगातार चलती रही। इस घटनाका उनकी दृष्टिमें महत्त्व तो बहुत था, परन्तु इसका उल्लेख उनकी डायरीमें एक ही वाक्यमें इस प्रकार किया गया है: "इसी दिन और ठीक इसी समय (शामके ७-३५ बजे) बाने तीन वर्ष पहले अपना नश्वर शरीर छोड़ा था।" किसीने गांधीजीके लिए सिलहटसे नारंगियोंकी भेंट भेजी थी। उस दिनकी स्मृतिमें उन्होंने सब नारंगियां बच्चोंको बंटवा दीं और कहा, "बाको खानेकी अपेक्षा दूसरोंको खिलानेमें अधिक आनन्द आता था।"

शामके ७-३५ बजे मंडली गीताका पूरा पारायण करनेके लिए एकत्र हुई। सामने कस्तूरबाका चित्र रखा गया और उसे फूलों और मालाओंसे सजाया गया। पहले छह अध्यायके पाठ तक गांधीजी बैठे रहे और गहरे ध्यानमें डूबे रहे। फिर थकावटके कारण विश्रामके लिए लेट गये। वे जो कठोर तपस्या कर रहे थे, उससे उनकी आध्यात्मिक शक्ति अतिशय बढ़ गई थी और उन्हें पहली बार अपनी प्रिय पत्नीके साथ आध्यात्मिक मिलनका अनुभव हुआ। अपने एक पत्रमें इसका वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा: "गीतापाठके समय तीन वर्ष पहलेका बाके अन्तिम क्षणोंका सारा दृश्य याद आ गया और सजीव होकर आंखोंके सामने तैरने लगा। मुझे लगा जैसे

उसका सिर सचमुच मेरी गोदमें रखा हुआ है । छठे अध्यायके बाद यह अनुभव मुझे विशेष रूपमें हुआ, जब मैं विश्रामके लिए लेट गया और क्षणभरके लिए मुझे हल्की-सी नींद आ गई।" उन्होंने आगे लिखा, "मुझे स्वीकार करना चाहिये कि बाके बिना मैं अहिंसा और आत्म-संयमकी साधनामें सफल नहीं हो सकता था। वह मुझे जितनी अच्छी तरह जानती थी उतना और कोई नहीं जानता था। . . . मेरे प्रति उसकी निष्ठा अद्वितीय थी। आखिरी दिन मुझे अन्तिम क्षण तक भी मालूम नहीं था कि वह किसकी गोदमें आंखें मूंदेगी । परन्तु अन्तकालसे ठीक पहले उसने मुझे बुलाया और मेरी गोदमें श्वास छोड़ा। ऐसी थी बा ! हम उसका श्राद्ध योग्य रूपमें इसी तरह कर सकते हैं कि उसके गुणोंको याद करें और स्वयं अपनेसे उनका विकास करनेकी कोशिश करें। मुझे निश्छल श्रद्धा, निःस्वार्थ निष्ठा और सेवा-परायणताका उसके जैसा दूसरा उदाहरण मालूम नहीं। जबसे हमारा विवाह हुआ तभीसे उसने मेरे जीवनके सभी संग्रामोंमें अचल वफादारीसे मेरा साथ दिया था और मेरे जीवनके मिशनके लिए तन, मन और धन न्योछावर करके ऐसे ढंगसे आत्म-समर्पण किया था, जिसकी बहुत कम मिसालें जगतमें मिल सकती हैं।"

*

बिरामपुर मछुओंका गांव था। मेघना नदी, जो किसी समय उसे छूती थी, अब छह मील दूर चली गई थी। परन्तु मछुओंके परिवार यहीं रहे । उपद्रवके दिनोंमें उनके मछली पकड़नेके जाल या तो छीन लिये गये या नष्ट कर दिये गये थे। नये जाल बनानेके लिए बहुतसे सूतकी जरूरत थी और वह उन्हें मिलता नहीं था। इस प्रकार एक सम्पन्न समुदाय विपन्न हो गया था।

बिरामपुरमें गांधीजी एक मछुएके झोंपड़ेमें ही ठहराये गये। उस दिन आभावसकी रात होनेसे चांद नहीं था, अंधेरा ही अंधेरा था और ठंड जोरोंसे पड़ रही थी। जोरकी हवा चल रही थी और आसपासके जंगलमें सांय सांय मचा रही थी। जिस झोंपड़ेमें गांधीजी सो रहे थे वह टूटा-फूटा था और उसमें ठंडी हवासे रक्षा नहीं हो पाती थी। आधी रातको वे जाग गये। उनके पैर बर्फकी तरह ठंडे हो गये थे और सारा शरीर जाड़ेसे कांप रहा था। यात्राके सामानमें गरम पानीकी बोतल थी। झोंपड़ेमें मनुके सिवा दूसरा कोई मदद देनेवाला नहीं था। उसने गांधीजी पर

सारे गरम कपड़े, जो वहां थे, डाल दिये। परन्तु उनसे गरमी नहीं आई। अन्तिम उपायके रूपमें उसने गांधीजीके पैर और पीठ जोरसे दबाना शुरू कर दिया। इससे उनके शरीरमें कुछ रक्त-संचार फिरसे हुआ और उन्हें हल्कीसी झपकी आ गई। "मुझे भी न मालूम कब झपकी लग गई। और इस तरह हम दोनों प्रार्थनाके समय तक एक-दूसरेकी ऊष्मामें आरामसे सोते रहे।"

यहां एक विशिष्ट स्थिति खड़ी हो गई थी । उपर्युक्त परिस्थितिमें एक-दूसरेसे सट कर दोनोंका सोना क्या गलत था ? गांधीजीके कुछ मित्रोंका मत था कि ब्रह्मचर्यके आदर्शकी दृष्टिसे यह गलत था। इसी प्रकार सुबह-शामके घूमनेके समय गांधीजी नौजवान लड़कियोंको अपनी "लाठी" बनाकर उनके कन्धे पर हाथ रखे-रखे जो चलते थे, उसका भी कुछ मित्रोंने विरोध किया था। इसके विपरीत, गांधीजी यह मानते थे कि ब्रह्मचर्यके आदर्शको जिस प्रकार उन्होंने समझा है और जीवनभर आचरणमें उतारा है, उसके अनुसार कर्तव्यका तकाजा होने पर या स्पष्ट आवश्यकता खड़ी होने पर भी स्त्री-पुरुषका एक-दूसरेसे सट कर सोनेकी स्थितिको टालना उस आदर्शके साथ सुसंगत नहीं है।

नोआखालीमें गांधीजी बार-बार अपनेसे यह प्रश्न पूछते थे: सत्य और अहिंसाकी अपनी तपसयामें मैं कहां खड़ा हूं? इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता था कि ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें वे कहां खड़े हैं? अतः अपनी समग्र शक्तियां उन्होंने इसी प्रश्नका उत्तर खोजनेमें लगा दी थीं। (अगला अध्याय देखिये ।)

*

अब तक गांधीजीने हिन्दुओंके नोआखालीसे सामूहिक रूपमें बाहर चले जानेका प्रबल विरोध किया था। उनकी यह धारणा थी कि थोड़ेसे व्यक्ति ही हिन्दुओंको सता रहे हैं और अधिकांश मुस्लिम कौम यह नहीं चाहती कि अल्पसंख्यक कौम नोआखाली छोड़कर चली जाय। उन्होंने कहा, यदि बहुसंख्यक कौम हिन्दुओंकी कट्टर शत्रु बन जाय और अल्पसंख्यक कौमका अपने बीचमें रहना बर्दाश्त न करे, तो एक अहिंसक मनुष्यके नाते मैं उपद्रव-पोड़ित प्रदेशसे हिन्दुओंके चले जानेका समर्थन करूंगा, बशर्ते लीगी सरकार अथवा बहुसंख्यक कौम

अल्पसंख्यक लोगोंको उचित मुआवजा देना मंजूर करे। मैं यह कभी नहीं चाहूंगा कि सरकार मुसलमानोंके न चाहने पर भी हिन्दुओंको जबरदस्ती उन पर थोपे या बहुसंख्यक कौमको दबा कर वशमें करनेका प्रयत्न करे। इस तरहसे अल्पसंख्यक कौमकी रक्षा नहीं की जा सकती। इसलिए अगर नोआखालीकी बहुसंख्यक कौम हिन्दुओंकी इतनी शत्रु बन जाय कि उसे उनका रामधुन गाना भी सहन न हो, यह कहने पर चिढ़े कि राम कोई व्यक्ति नहीं है परन्तु खुदा या अल्लाका ही पर्यायवाची है; और यदि दुर्भाग्यसे हिन्दुओंका बहिष्कार सरकारकी भी नीति बन जाय, तब तो अहिंसाकी दृष्टिसे उन्हें नोआखालीसे चले जानेकी सलाह देनेके सिवा मेरे पास कोई विकल्प नहीं रह जायगा। [प्रार्थना-प्रवचन, १८ फरवरी १९४७]

गांधीजीसे पूछा गया, "यदि बहुसंख्यक कौम हिन्दुओंकी कट्टर दुश्मन बन जाय, तो अहिंसक दृष्टिसे आपने हिन्दुओंको नोआखालीसे चले जानेकी सलाह दी है। परन्तु आपकी यह भी राय रही है कि एक सच्चे अहिंसक मनुष्यको प्रेमके द्वारा अपने विरोधीका हृदय-परिवर्तन करनेकी आशा कभी नहीं छोड़नी चाहिये। ऐसी परिस्थितिमें कोई अहिंसक मनुष्य हार मानकर अपना वतन छोड़नेकी बात कैसे सोच सकता है?"

गांधीजीने उत्तर दिया, यह बिलकुल सच है कि कोई अहिंसक मनुष्य अपना स्थान छोड़कर नहीं जायगा। ऐसे आदमीके लिए मुआवजेका भी कोई सवाल नहीं होगा। वह तो अपने स्थान पर ही बना रहकर मौतका आलिंगन करेगा और यह साबित कर देगा कि उसके रहनेसे राज्यको या बहुसंख्यक कौमको कोई खतरा नहीं है। परन्तु मैं जानता हूं कि नोआखालीके हिन्दू ऐसा कोई दावा नहीं करते। वे सीधे सरल लोग हैं, जो दुनियासे प्रेम रखते हैं और शान्ति तथा सुरक्षामें रहना चाहते हैं। बहुसंख्यक कौम सुख-शांतिसे रहे यह देखनेके लिए यदि सरकार हिन्दुओंको मुआवजा दे, तो वे यह सोचेंगे कि मुआवजा लेकर वतन छोड़नेमें उनकी मानहानि है या नहीं । यदि हिन्दुओंकी उपस्थितिसे ही नोआखालीके बहुसंख्यक मुसलमानोंको चिढ़ होती हो, तो मैं इसे सरकारका कर्तव्य समझूंगा कि वह उन्हें मुआवजा दे। इसी प्रकार हिन्दू बहुमतवाले किसी प्रान्तमें अगर मुसलमानोंके रहनेसे "बहुसंख्यक कौमको चिढ़ होती हो,"

[प्रार्थना-प्रवचन, १९ फरवरी १९४७] तो मुसलमानोंको मुआवजा देता वहांकी सरकारका कर्तव्य होगा।

“सरकारकी सलाहसे नोआखाली छोड़कर चले जानेकी सूरतमें क्या शरणार्थियोंको अपनी सारी चल और अचल सम्पत्ति और व्यवसायकी हानिका पूरा मुआवजा मांगना चाहिये ? दूसरे शब्दोंमें, आप उचित मुआवजा किसे समझेंगे ? ”

गांधीजीने जवाब दिया, जब चल और अचल सम्पत्तिको शरणार्थी लोग अपने साथ नहीं ले जा सकें या नहीं ले जायं, तब सरकारको दोनोंका मुआवजा देना चाहिये । व्यवसायकी हानिके मुआवजेका प्रश्न टेढ़ा है। मैं इस बातकी कल्पना नहीं कर सकता कि कोई सरकार ऐसे मुआवजेका भार अपने ऊपर ले सकती है। नई जगह पर कामधन्धा शुरू करनेके खयालसे सम्बन्धित व्यक्तियोंके लिए उचित रकमकी मांग की जाय, तो इसे मैं समझ सकता हूं। [वही]

गांधीजीने यह भी कहा कि सिद्धान्तकी दृष्टिसे तो मैं हिन्दुओंके नोआखाली छोड़कर चले जानेकी संभावनाको स्वीकार कर सकता हूं, परन्तु सारे भारतके मेरे अनुभवने मेरी इस मान्यताको दृढ़ कर दिया है कि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके साथ शान्तिसे रहना जानते हैं। मुझे कवि इकबालकी कविताकी इस भावनामें दृढ़ विश्वास है कि जिन हिन्दुओं और मुसलमानोंने विशाल हिमालयकी छत्रछायामें सदियोंसे जिन्दगी बिताई है और साथ साथ गंगा और यमुनाका पानी पिया है, उनके पास संसारको देनेके लिए अनोखा सन्देश है।

अन्तमें उनसे पूछा गया, ‘यदि लोगोंको बादमें मुआवजा लेकर या सुआवजेके बिना नोआखाली छोड़कर जाना पड़े, तो क्या यह बेहतर नहीं है कि वे समय रहते चेत जायं’ और संगठित ढंगसे निकल जायं? ”

गांधीजीने उत्तर दिया, यदि “समय रहते चेत जाने” का मतलब यह हो कि कोई हिन्दू संगठन खड़ा करके हिन्दुओंको बाहर ले जाया जाय, को मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता । “यह भार तो पूरी तरह बहुसंख्यक कौम और सरकार पर पड़ना चाहिये। जब वे अपनी बुद्धिका

दिवाला पीट दें तभी अल्पसंख्यकोंको जाना चाहिये, बशर्ते उन्हें पूरा मुआवजा दिया जाय।"
[प्रार्थना-प्रववचन, २० फरवरी १९४७]

*

मुस्लिम विरोध बीशकाथलीमें चरम सीमा पर पहुंच गया। यह एक छोटासा गांव था, जिसमें ४६९४ की मुस्लिम आबादीके बीच ३०६ हिन्दू थे। जो लोग दंगोंके दिनोंमें अपने घरबार छोड़कर चले गये थे, उनमें से ज्यादातर लोग अभी तक अपने घरोंको लौटे नहीं थे। जिस घरमें गांधीजी ठहराये गये थे उसका मालिक गांधीजीके आगमनके कारण अस्थायी रूपमें लौट आया था । मकान तो बरबादीसे बचा नहीं था। उसमें एक बढ़िया पुस्तकालय था, जिसमें धर्म पर कई हस्तलिखित पुस्तकें थीं । पुस्तकालय इस जिलेकी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराका प्रतीक था । उपद्रवके दिनोंमें यह पुस्तकालय भी जला दिया गया था। गांधीजीके रास्ते पर हस्तलिखित विज्ञापन पेड़ों पर चिपकाये हुए पाये गये थे। उनमें से कुछ इस प्रकार थे:

१. बिहारको याद करो;

और तुरन्त टिपरा छोड़कर चले जाओ।

हमने तुम्हें कई बार चेतावनी दी है, फिर भी तुम यहीं हो।

लौट जाओ; नहीं तो तुम्हारे लिए ज्यादा बुरा होगा।

२. जहां तुम्हारी जरूरत है वहां जाओ।

दम्भ छोड़ दो और पाकिस्तानको मान लो।

३. मुस्लिम लीग जिन्दाबाद !

कायदे आज़म जिन्दाबाद !

पाकिस्तान जिन्दाबाद !

कांग्रेस मुर्दाबाद !

यहां भी कहावतके अनुसार आशाकी चमकती किरणोंका आभाव नहीं था । जिस घरमें गांधीजी ठहरे थे उसके पास ही एक हिन्दू परिवारका घर था, जो बराबर वहीं बना रहा था। गांवके एक नेक मुसलमानने भयंकरसे भयंकर दंगोंमें भी उसकी रक्षा की थी।

शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीसे पूछा गया: "अगर ईश्वर एक ही है, तो फिर एक ही धर्म क्यों नहीं होना चाहिये?"

गांधीजीने उत्तर दिया, "क्योंकि हर आदमीको ईश्वर-संबंधी कल्पना अपनी अपनी होती है। उदाहरणके लिए, मैं अपनेको हिन्दू मानता हूं, परन्तु जानता हूं कि मैं ईश्वरकी पूजा उसी पद्धतिसे नहीं करता जिससे बहुतसे हिन्दू करते हैं।" [वही]

दूसरे दिन कमलापुरमें उनसे पूछा गया: "आप अन्तर्जातीय विवाहके हिमायती हैं। कया आप अलग अलग धर्मके भारतीयोंमें भी विवाह होनेके पक्षमें हैं? क्या उन्हें यह जाहिर करना चाहिये कि उनका कोई धर्म नहीं अथवा सम्प्रदाय नहीं है; अथवा अपना पुराना धर्म पालते हुए एक-दूसरेके साथ विवाह करना चाहिये ? यदि ऐसा हो तो विवाह-संस्कारका स्वरूप क्या होना चाहिये?"

गांधीजीके उत्तरसे यह प्रकट हुआ कि इस प्रश्न पर वे अपनी आरम्भकी स्थितिसे कितने आगे बढ़ गये थे । यद्यपि उनका हमेशा यह विचार नहीं रहा था, फिर भी उन्होंने जवाब दिया: मैं बहुत समयसे इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अन्तर्धर्मीय विवाह जब कभी हो उसका स्वागत करना चाहिये । मेरे विचारसे विवाह एक पवित्र संस्था है, इसलिए परस्पर मित्र-भाव होना चाहिये और दोनों पक्षोंमें एक-दूसरेके धर्मके लिए समान आदर होना चाहिये । इसमें धर्म-परिवर्तनकी कोई गुंजाइश नहीं होती। इसलिए विवाह-संस्कार दोनों धर्मोंके पुरोहितोंसे कराया जा सकता है । परन्तु यह तभी हो सकता है जब कौमें पारस्परिक शत्रुता छोड़ दें और संसारके सब धर्मोंके लिए समान आदर अपने भीतर पैदा कर लें। [प्रार्थना-प्रवचन, २१ फरवरी १९४७]

"क्या सिविल मैरेजकी संस्था धर्मका निषेध नहीं हैं और क्या इससे धर्ममें शिथिलता नहीं आयेगी?"

गांधीजीने उत्तर दिया, मेरा सिविल मैरेजमें विश्वास नहीं है। परन्तु सिविल मैरेजकी संस्थाका मैं इसलिए स्वागत करता हूं कि यह अन्तर्धर्मीय विवाहोंके लिए रास्ता साफ करनेवाला एक अत्यावश्यक सुधार है। [प्रार्थना-प्रवचन, २३ फरवरी १९४७]

"आप कहते हैं कि आप अन्तर्धर्मीय विवाहोंके पक्षमें हैं, परन्तु साथ ही आप यह भी कहते हैं कि दोनों पक्षोंको अपना अपना धर्म छोड़ना नहीं चाहिये । क्या ऐसे कोई उदाहरण हैं, जिनमें अलग अलग धर्मोंवाले वर-वधूने ऐसे विवाहके बाद जीवनके अन्त तक अपने अपने धर्मका ही पालन किया हो?"

गांधीजीने उत्तर दिया, मेरे ध्यानमें ऐसे उदाहरण नहीं हैं, जिनमें दोनों पक्ष "जीवनके अन्त तक" अपने अपने धर्मका पालन करते रहे हों; क्योंकि जो दम्पती मेरे खयालमें हैं वे अभी तक जिन्दा हैं। किन्तु मैं ऐसे पुरुषों और स्त्रियोंको जानता हूं, जिन्होंने भिन्न भिन्न धर्मके होते हुए भी विवाह किये हैं और जो अपने अपने धर्ममें अटल रहे हैं। परन्तु मैं पूछता हूं, क्या लोगोंको सदा पुराने उदाहरणों पर ही निर्भर रहना चाहिये? उन्हें अपने उदाहरण क्यों नहीं स्थापित करने चाहिये, ताकि भीरु लोग अपनी भीरुता छोड़ सकें ? [वही]

३

इसके बाद गांधीजी चरकृष्णपुर गये। यह गांव चरक्षेत्रके बीचमें था। चरका अर्थ एक ऐसा टापू है, जो नदीका बहाव बदलनेसे नदीके पाटमें पैदा हो जाता है। नोआखाली और टिपराका चरक्षेत्र मेघना नदीकी देन है, जिसका मिट्टीसे भरा हुआ सुस्त प्रवाह हमेशा बदलता रहता है। चर-कृष्णपुरकी अधिकांश आबादी नामशुद्रों (हरिजनों) की थी। मुसलमानोंकी संख्या सिर्फ २०० थी । दंगोंमें नामशूद्रोंको भयंकर कष्ट उठाने पड़े और अन्य भागोंमें दंगे शान्त हो जानेके बाद भी इस क्षेत्रमें बहुत दिनों तक आतंक-राज्य बना रहा।

यात्राकी आजसे पहलेकी मंजिलोंके विपरीत—जहांकी मुख्य आबादी मुस्लिम थी—चरकृष्णपुरके सारे रास्ते पर स्त्रियों और पुरुषोंकी उत्सुक भीड़ खड़ी थी। चरकृष्णपुरमें गांधीजीका भावी यजमान भी एक मुसलमान था । परन्तु ऐन वक्त पर उसने अपना विचार बदल

दिया, क्योंकि उसने कहा कि मुसलमानोंका एक वर्ग उस पर जो दबाव डाल रहा है, उसके सामने वह लाचारी महसूस करता है। इस कारण गांधीजीके ठहरनेके लिए एक नीचे छप्परमें जगह प्राप्त की गई, जो जले हुए घरसे टीनकी चादरें निकाल कर कामचलाऊ ढंगसे खड़ा कर लिया गया था| गर्मीसे बचनेके लिए उसे हरी टहनियोंसे ढंक दिया गया था, फिर भी भीतर बहुत गर्मी और घुटन मालूम होती थी।

कुछ समयसे विभिन्न केन्द्रोंसे ऐसी खबरें आ रही थीं कि स्थिति बिगड़ रही है। मुसलमानोंकी गुप्त सभाएं की जा रही थीं और शिकायत करनेवालों पर शिकायतें वापस लेनेके लिए दबाव डाला जा रहा था । हिन्दुओंका बहिष्कार करनेके लिए एक ही तरहका जहरीले ढंगका संगठित प्रचार किया जा रहा था। इससे बहुतसे हिन्दू मछुए, पानकी फसल पैदा करनेवाले लोग, जुलाहे, छोटे छोटे दुकानदार वगैरा गांवोंमें बेकार हो गये थे। कुछ समयसे यह बहिष्कार हिन्दुओंकी खेती पर भी लागू कर दिया गया था। जो इन चालोंको नापसन्द करते थे उन्हें "गद्दार" कहा जाता था और उन्हें जाति-बहिष्कार और प्रतिशोधकी धमकियां दी जाती थीं— फिर वे हिन्दू हों या मुसलमान । किसी व्यापक और सफल बहिष्कारका अन्तिम परिणाम यही हो सकता था कि हिन्दू मजबूर होकर नोआखालीसे चले जायं । इस स्थितिको बंगाल सरकार सहन करती रहती, तो उससे संकट जल्दी ही उत्पन्न हो सकता था गांधीजीको लगा कि अब इन चालोंका डट कर मुकाबला करने और इस सवालको सामने लानेका समय आ गया है । कुछ लोग निराश होकर पूछने भी लगे थे कि इन परिस्थितियोंमें क्या बंगालका विभाजन ही इसका एकमात्र उत्तर नहीं रह गया है?

गांधीजीसे मिलकर आनेके बाद डॉक्टर अमिय चक्रवर्तीने लिखा: "वसन्तके पुनरागमनके साथ प्रकृतिने सौन्दर्य धारण कर लिया है। भूमि पर नीली 'कालाई' की नीलिमा छा रही है और जब गांधीजी गांवमें प्रवेश करते हैं तब खिला हुआ शिमुल उनका स्वागत करता है। लेकिन मानवकी भूमिका अविनय और निरंकुशताकी है । गांधीजीके लिए . . . यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि मानवीय सत्य प्रगट होनेसे पहले बाह्य परिस्थिति भी वैसा ही उग्र रूप धारण कर लेती है। . . . गांधीजी यह नहीं मानते कि कोई भी स्थिति अपरिवर्तनीय है । अपरिवर्तनीय सत्य

तो यही है कि अवसर दिया जाय तो मानव-स्वभाव पुनः अपनी साधारण स्थितिमें आ जाता है।" [हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड, २३ फरवरी १९४७]

गांधीजीने डॉक्टर चक्रवर्तीसे कहा, "यदि मेरा ऐसा विश्वास न होता, तो मैं नोआखालीमें न होता। जो लोग अलग होनेकी बात सोचते हैं, उन्हें जान लेना चाहिये कि हमारी स्थिति क्या है। . . . यदि बहिष्कार सरकारकी नीति है, तो हमें उसके बारेमें जानना चाहिये। कोई कौम या समाज अपने आप कदम नहीं उठा सकता। बंगालको और दूसरे प्रान्तोंको भी यह समझ लेना होगा। . . . मैं असफल हो जाऊं, तो भी सत्य असफल नहीं होगा। मुझे कोशिश करनी होगी और इस प्रश्नको प्रकाशकी ओर ले जाना होगा। इस प्रयत्नमें या तो मैं जिन्दा रहूंगा या मिट जाऊंगा । नोआखाली और टिपराकी कोई अलग समस्या नहीं है; यह समस्या तो ऐसी है जिसे भारतको अपने लिए और समस्त मानव-समाजके लिए भी हल करना होगा । सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे मुझे जीवनके अत्यन्त कठिन साहसोंमें सफलता मिली है। परन्तु मैं नहीं जानता कि इस बार क्या होगा। हमारी सबसे बड़ी कसौटी हो रही है, परन्तु उस पर विजय पाना कभी हमारी शक्तिसे बाहर नहीं होता।"

अन्तमें डॉक्टर चक्रवर्तीने कहा, "जैसे जैसे गांधीजी आगे बढ़ते हैं, वैसे वैसे सम्पूर्ण कार्यक्षेत्रमें नये प्राणोंका संचार होता जाता है। . . . कलका रास्ता चरक्षेत्रमें उन्हें और आगे ले जायगा। अनुसूचित जातियोंके दंगोंके शिकार बने लोग ग्रामीण विनाशके वायुमंडलमें गांधीजीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हैमचरमें महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित हो, ऐसी भूमिका खड़ी हो रही है।"

*

गांधीजी बूतेसे बाहर श्रम करके अपने शरीरको घिसते ही रहे । उनकी २४ फरवरीकी डायरीमें यह लिखा है:

> प्रात:कालकी प्रार्थनाके बाद बंगाली अंक १ पर हाथ घुमानेकी और अंक २ की आकृति सुधारनेकी कोशिश की । फिर लगभग दस मिनिट तक 'निओ' और 'नाओ' का

भेद समझनेके लिए असफल प्रयत्न किया । (ये बंगाली क्रिया 'लेना' के भविष्यकाल और वर्तमान-कालके रूप हैं।) इतनेमें मनु नारंगीका रस ले आई। उससे भी मैंने वही प्रश्न किया । वह भी सन्तोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दे सकी। इसमें १० मिनट और लग गये। निर्मल बाबूको बुलाया। उनसे भी मैंने यह कठिन सवाल पूछा । उन्होंने कुछ ठीक उत्तर दिया, परन्तु अन्तमें उन्होंने भी उल्झनमें पड़कर उत्तर देना बन्द कर दिया। बीचमें उन्होंने सरदार गिलकी फाइल मुझे दी। इससे गिलके बारेमें बातचीत हुई। वह ६-३५ तक चलती रही। 'अ' को एक पत्र लिखा। फिर कोई १० मिनिटके लिए आराम करन लेट गया। ७-२५ पर उठा। खाईवाली टट्टी देखी और दिनकी यात्रा पर रवाना हो गया।

२ जनवरीको गांधीजी श्रीरामपुरसे पदयात्रा पर निकले तबसे वे नोआखाली जिलेके ४९ और टिपरा जिलेके ७ गांवोंका दौरा कर चुके थे। कुल मिलाकर उन्होंने ११६ मीलकी यात्रा की। वे अपने हाथमें बांसकी बैसाखी लिए हुए ठीक समय पर अपनी झोंपड़ीसे निकलते और यात्रा पर रवाना हो जाते थे । आसपासके ग्राम-प्रदेशमें दिन-प्रतिदिन और सप्ताह प्रति सप्ताह यह एक सुपरिचित दृश्य बन गया था। मार्गमें जो भी मुसलमान मिलता, उससे वे मित्रता करनेका प्रयत्न करते थे। गांवोंमें उनके साथो कार्यकर्ता थे, जो उनकी योजनानुसार शान्तिकी पुनर्स्थापनाके तथा आर्थिक और सामाजिक सुधारोंके कार्यमें लगे हुए थे। वे उनसे सलाह और मार्ग-दर्शन लेनेके लिए अपने अपने विवरण लेकर उनके पास आते थे। गांधीजी दोनों कौमोंकी स्त्रियोसे मिलते थे। हिन्दू महिलाओंसे वे अस्पृव्यताके राक्षसका अपने बीचसे काला मुंह करनेकी अपील करते थे, क्योंकि इसकी जिम्मेदारी उनके पुरुषोंकी अपेक्षा स्वयं उन पर अधिक थी । मुस्लिम स्त्रियां गांधीजीके पास नहीं आती थीं, इसलिए वे जहां कहीं सम्भव होता उनके घरोंमें जाकर उनसे मिलते थे और उन्हें पर्दा छोड़कर बाहर आनेकी सीख देते थे। हिन्दू और मुसलमान स्त्री-पुरुषोंसे वे डर छोड़ने और एक ही परिवारके सदस्य बनकर साथ साथ रहनेकी अपील करते थे।

अधिकांश मुसलमान गांधीजीकी प्रार्थना-सभाओंसे दूर रहते थे। परन्तु अक्सर यह देखा गया कि यद्यपि वे प्रार्थना-सभामें प्रवेश नहीं करते थे, परन्तु उसके इतने पास खड़े रहते थे कि

जो कुछ गांधीजी कहें उसे सुन सकें । बुलाने पर वे अक्सर अन्दर आ जाते थे और दूसरोंको आनेके लिए इशारा भी करते थे । ज्यों ज्यों यात्रा आगे बढ़ती गयी, यह अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि विरोधी वर्गके साथ साथ मुसलमानोंका एक ऐसा वर्ग भी बाहर आने लगा है, जो गांधीजीके कार्यसे सहानुभूति रखता है और अपने विचार खुले तौर पर प्रकट करनेमें डरता नहीं है।

किन्तु व्यक्तिगत रूपमें मुसलमानोंका—खास तौर पर निर्धन वर्गका— रवैया गांधीजीके प्रति अच्छा था और उन्होंने गांधीजीके प्रति परायेपनकी भावना छोड़ देना जल्दी ही सीख लिया था। वे अन्त:प्रेरणासे गांधीजीको अपना ही आदमी समझते थे, जो उनकी दृष्टिसे सोच सकता था, उनकी समस्याओंको समझ सकता था और जिसकी बुद्धिमत्ता और सचाई पर वे भरोसा रख सकते थे। गांधीजीसे उनका मन मिल गया था और गांधीजीके स्नेहपूर्ण और संक्रामक विनोदमें उन्हें आनन्द आता था । उन्हें लगा कि गांधीजीके प्रबल विनोदके प्रभावसे वे बच नहीं सकते। चरक्षेत्रके एक स्थानमें जब गांधीजी एक मुसलमानके घर गये, तो एक मुसलमान भाई उनके पास एक हरी डाली लेकर आये, जिस पर दो तरहके पत्ते थे । उन्होंने पूछा: "बापूजी, यह क्या बात है कि एक ही शाखा पर अलग अलग तरहके पत्ते हैं?" गांधीजीने मुसकरा कर उत्तर दिया, "प्रकृतिमें ऐसा ही होता है। हिन्दू-मुसलमानोंकी भी यही बात है। वे एक ही वंशमूलसे निकले हैं और उनका भविष्य भी एक ही है !" सारी मंडली खिलखिला कर हंस पड़ी ।

एक और अवसर पर एक मुसलमान भाईने गांधीजीसे अपने एक सपनेका अर्थ समझानेंको कहा, जो उसने पांच बरस पहले देखा था। गांधीजीने एक कागजके टुकड़े पर लिखा, "मुझे अफसोस है कि मैं एक मामूली आदमी हूं और सपनोंका अर्थ करना नहीं जानता।" लेकिन वे भाई बेहद खुश होकर चले गये । उन्हें इस बातकी खुशी थी कि खुद महात्माजीके हाथका लिखा जवाब उन्हें मिला।

गांधीजीका एक पत्र इस प्रकार था: "मेरा विरोध अधिकाधिक भयंकर होता जा रहा है । परन्तु ऐसे आक्रमणोंका प्रसन्न मनसे और अचल रह कर सामना करना ही जीवनमें मेरा कार्य

रहा है । मेरा वर्तमान यज्ञ सर्वोच्च आत्मशुद्धिका यज्ञ है। संभव है यह मेरा अन्तिम यज्ञ हो।" एक मित्र दिल्लीसे कुछ महत्त्वपूर्ण दस्तावेज लेकर आये थे । उनसे बातचीत करते हुए गांधीजीने कहा: "मेरी समूची शक्तियां धीरे धीरे क्षीण हो जायं और मैं अपंग बन जाऊं ऐसी स्थितिमें—अर्थात् एक हारे हुए आदमीकी तरह—मैं नहीं मरना चाहता । संभव है, किसी हत्यारेकी गोली मेरे जीवनका अन्त कर दे। मैं उसका स्वागत करूंगा। परन्तु सबसे प्रिय बात मेरे लिए यह होगी कि मैं अन्तिम श्वास तक अपने कर्तव्यका पालन करते करते ही मृत्युका आलिंगन करूँ।" एक मित्रको लिखे पत्रमें उन्होंने अपना वर्णन इस तरह किया कि "मैं तूफानी मौसममें अनजान मार्गों पर आगे बढ़ रहा हूं ।" शायद वे इन मार्गों पर सदा ही चलते रहते। परन्तु मानव-शरीरकी मर्यादाएं होती हैं और प्रकृतिने मानवकी भागदौड़ पर बुद्धिमत्तापूर्ण अंकुश लगाया है। कुछ समयसे वे अपने कानोंमें "ढोलकी-सी आवाज" आनेकी शिकायत कर रहे थे । यह तीव्र रक्तचापकी लाल झंडी थी, जो उन्हें हो जाया करता था। अन्तमें मित्रोंकी सलाहसे वे आराम लेनेके लिए हैमचरमें अधिक दिन तक ठहरनेको राजी हो गये।

हैमचरमें छह दिनका पड़ाव रहा। इसमें उन्होंने उन विभिन्न समस्याओंको हाथमें लिया, जो नोआखालीमें आनेके दिनसे ही उनका ध्यान केन्द्रित कर रही थीं।

गांधीजीके हैमचर पहुंचनेके दिन प्रार्थना-सभामें विशाल जन-समूह उपस्थित हुआ। अधिकांश लोग नामशूद्र थे। ठक्कर बापाने उस विनाशका वर्णन गांधीजीके समक्ष कर दिया था, चरक्षेत्रके हरिजन जिसके शिकार हुए थे । उन्होंने गम्भीर सामाजिक बुराइयोंके बारेमें भी गांधीजीको बता दिया था—जैसे बाल-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध और उसके कारण व्यभिचारसे पैदा होनेवाली बीमारियां उन लोगोंमें बहुत ज्यादा फैली हुई थीं । गांधीजी भारी हृदयसे बोले । उन्होंने कहा, आपकी भलाई विधान-सभाओं अथवा और किसी बाहरी संस्थाकी सहायतासे नहीं होगी, परन्तु आपके अपने ही प्रयत्नसे होगी। आप अपनेको पतित या "अस्पृश्य" कभी न समझें । तथाकथित ऊंची जातियां वस्तुतः अपराधी हैं । यदि आप इस बातको अच्छी तरह समझ लें, तो आप तथाकथित उच्च वर्गोंके बुरे रिवाजों और बुरी आदतोंकी नकल करनेकी भूल कभी नहीं करेंगे । मैं आपको बताऊं कि स्वर्गवासी पंडित मदनमोहन मालवीय क्या कहा

करते थे । वे कहते थे कि ईश्वरके बालकों (हरिजनों) को ईमानदारीकी कौड़ी कमानी चाहिये और उससे जो मिल जाय उसीको खाकर सन्तोष करना चाहिये। इससे आपको सच्चा सुख मिलेगा, अस्पृश्यता भूतकालकी वस्तु बन जायगी और तथाकथित ऊंची जातियां आपके साथ किये जानेवाले अपने पापके लिए लज्जित होंगी।

गांधीजीने आगे कहा, आपके कष्टोंकी बात सुनकर मुझे गहरा दुःख हुआ । परन्तु आपको अपने भाग्य पर रोना नहीं चाहिये। आप कठिन परिश्रमके आदी हैं या आपको होना चाहिये। आप अधिकारियोंसे न्याय करनेका और वह भी समय पर करनेका अनुरोध कर सकते हैं। परन्तु यदि सरकारकी सहायता न मिले, तो आपको अपना प्रयत्न नहीं छोड़ना चाहिये। आपको जीवनमें पुनर्स्थापित होनेके लिए अपने मजबूत हाथ-पैरों पर भरोसा रखना चाहिये । ईश्वर सदा उनकी सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं। आपको सजीव ईश्वर पर, न कि सदा भूल करनेवाले मनुष्य पर, आधार रखना चाहिये।

चटगांव विभागके रिलीफ कमिश्नर नूरुन्नबी चौधरीने एक घंटेसे ऊपरके अपने भाषणमें शान्ति-समितिकी बैठकमें ग्रामोद्धारके कार्यकी एक विस्तृत योजना समझाई थी। उन्होंने यह भी कहा था कि मैं "ईश्वरके राज्यके लिए जीना और काम करना चाहता हूं ।" गांधीजीको ये सब बातें जरा अवास्तविक और अप्रस्तुत दिखाई दीं, क्योंकि इनमें सबसे बड़े प्रश्नकी—जो उनके सामने था—उपेक्षा की गई थी। वह प्रश्न था नोआखालीके और मुसलमानोंके अधिकाधिक बिगड़ते हुए सम्बन्धोंका । उन्होंने कहा, किसी अच्छे कार्यकर्ताकी कसौटी इस बातसे नहीं होती कि वह कागज पर लम्बी-चौड़ी योजना तैयार कर सकता है या नहीं, बल्कि इस बातसे होती है कि वह उपलब्ध मानव-शक्ति और साधनोंके साथ अपने कार्यका मेल बैठा सकता है या नहीं और अपनी विशेष शक्तिका सामंजस्य उस बड़ी योजनाके साथ साधना जानता है या नहीं। सही नियम यह है कि अपनी पहुंच और शक्तिके अनुसार थोड़ेसे काम चुन लिये जायं और सारी योजनाको नजरमें रखते हुए उन कामोंको पूरी तरह किया जाय । रिलीफ कमिश्नरकी योजनाका लक्ष्य अतिशय ऊंचा है। पहले करने जैसे काम पहले होने चाहिये। जब तक दोनों कौमोंके बीच हार्दिक एकता न हो तब तक कोई योजना कितनी ही अच्छी क्यों न हो, वह सफल नहीं हो

सकती। अन्तमें गांधीजीने कहा, मैं खुद तो पहली प्राथमिकता दोनों कौमोंके बीच एकता स्थापित करनेके कार्यको दूंगा, क्योंकि उसके आभावमें सारा वायुमंडल इतना दूषित हो गया है कि जिस सभामें रिल्लीफ कमिश्नरने अपना भाषण दिया उसमें भी बहुत थोड़े मुसलमान दिखाई दिये।

४

इस बीच सारे देशको प्रभावित करनेवाली महत्त्वपूर्ण घटनाएं हो चुकी थीं । मुस्लिस लीगके कराची-प्रस्तावने मुस्लिम लीगके संविधान-सभामें आनेकी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया था। ९ फरवरी, १९४७ को पंडित नेहरूने गांधीजीको लिखा : "लीगका प्रस्ताव इससे बुरा और क्या हो सकता था ? शायद उसमें एक गुण यह है कि उससे स्थिति बिलकुल स्पष्ट हो गई है। इस प्रस्तावके बाद हमारे लिए पुराने तरीकेसे अंतरिम सरकारमें काम करना पहलेसे अधिक कठिन हो गया है। इस मामलेमें हम जरूरी कदम उठा रहे हैं।" दूसरे दिन उन्होंने फिर लिखा: "हमने वाइसरॉयको सूचना दे दी है कि कराचीमें पास किये गये मुस्लिम लीगके प्रस्तावको देखते हुए लीगके सदस्य सरकारमें नहीं बने रह सकते। सचमुच हमारे आरोप और हमारी मांगका उसमें कोई जवाब नहीं है और वाइसरॉय इसे खूब समझते हैं। वे लंदनके आदेशोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

लंदनके 'टाइम्स' ने यह टिप्पणी की : "लीग इस ब्रिटिश घोषणा पर विश्वास कर रही है कि जो संविधान-सभा देशका सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करती, उसका बनाया हुआ संविधान भारतके अनिच्छुक भागों पर थोपा नहीं जा सकता। परन्तु शायद उतना ही महत्त्वपूर्ण यह वचन लीगके ध्यानमें नहीं रहा है कि अल्पमतको अनिश्चित काल तक बहुमतकी प्रगतिको रोकने नहीं दिया जा सकता।" [दि टाइम्स, लन्दन, ४ फरवरी १९४७]

इसके बाद घटनायें तेजीसे आगे बढ़ीं और पटाक्षेप हुआ।

१५ फरवरीको सरदार पटेलने एक अखबारी मुलाकातमें बताया कि अन्तरिम सरकारके कांग्रेसी सदस्योंने सम्राट्की सरकारसे कहा है कि या तो मुस्लिस लीग नया संविधान बनानेमें सम्मिलित हो या अंतरिम मंत्रि-मंडल छोड़ दे। "यदि मुस्लिम लीग नहीं निकलेगी, तो हम निकल

जायंगे।" यह कदम बड़े अर्सेसे विचाराधीन था। अब इसे उठानेकी जल्दी इसलिए करनी पड़ी कि अन्तरिम सरकारके मुस्लिम लीगी सदस्योंने, जो निचले सदनमें बैठते थे, एक महत्त्वपूर्ण मतदानके समय सरकारका साथ देनेसे इनकार कर दिया। प्रश्न नाजुक था और उसमें उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्तके कुछ उपद्रवी तत्त्वोंके खिलाफ सजाकी कार्रवाई करनेकी बात थी। कानून और व्यवस्थाके इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नका निबटारा शुद्ध साम्प्रदायिक ढंगसे करना ऐसे खतरेका संकेत था, जिसकी कोई जिम्मेदार सरकार उपेक्षा नहीं कर सकती थी। लंदनके अनुदार 'टाइम्स' को भी मजबूर होकर कहना पड़ा कि दो लीगी मंत्रियोंका व्यवहार "सचमुच बचावके योग्य नहीं" है।

ब्रिटिश सरकारके सामने कठिन स्थिति खड़ी हो गई थी। सर स्टैफर्ड क्रिप्सने ब्रिटिश लोकसभामें स्वीकार किया था कि कांग्रेसका रखा हुआ प्रस्ताव "मामलेके तथ्योंसे मेल खाता है।" परन्तु ब्रिटिश सरकारको ऐसा लगा कि स्थितिके गुण-दोष कुछ भी हों, "जब तक संविधान सभामें सब दलोंके सम्मिल्ति होनेकी कुछ भी आशा है तब तक कोई निर्णय उस पर जल्दीसे थोप देना बुद्धिमानीका काम" नहीं होगा। किन्तु अब निर्णय स्थगित नहीं किया जा सकता था। ब्रिटिश सरकारको जो सलाह मिली थी वह यह थी कि मौजूदा परिस्थितियोंमें "१९४८ के बाद वर्तमान आधार पर ब्रिटिश राज्यको पर्याप्त कार्य-क्षमताके साथ भारतमें कायम नहीं रखा जा सकता।" [लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स लॉर्डसभामें, २५ फरवरी १९४७] मेजर वॉटने १२ दिसम्बर, १९४६ को ब्रिटिश लोकसभाकी चर्चामें चेतावनी दी थी कि "हमें भारतसे स्पष्ट और असंदिग्ध रूपमें कह देना चाहिये कि एक निश्चित तारीखको हम भारत छोड़ देंगे और हमारी सेना, हमारे अधिकारी और जो अंग्रेज निवासी हमारे साथ जाना चाहेंगे वे सब चले जायंगे। उस तारीखकी घोषणा हमारे हाथोंमें भारतका प्रशासन-तंत्र पूरी तरह टूट जानेसे पहले ही हमें कर देनी चाहिये। . . . अंग्रेजी सेना भारतके गृह-युद्धमें किसी भी तरफ घसीटी जाय, ऐसी स्थिति हमें खड़ी नहीं होने देनी चाहिये।" ब्रिटिश सरकारके सामने दो ही विकल्प हैं। या तो वह "भारत-मंत्रीके मातहतकी नौकरियोंमें ब्रिटिश अधिकारियोंकी संख्या बढ़ावे तथा ब्रिटिश सेनामें काफी वृद्धि करे" और इस आधार पर "भारतमें ब्रिटिश नियंत्रणको दृढ़ करने" का प्रयत्न करे और शायद

अगले १५ या २० वर्षों तक और भारतमें रहनेको तैयार हो—जिससे "भारतके सारे दलोंमें अंग्रेजों के प्रति अत्यन्त उग्र शत्रुता पैदा होगी"—अथवा यह घोषणा करे कि अमुक तारीखके बाद हम अपनी जिम्मेदारी निभा नहीं सकेंगे और भारत छोड़ दें।

दिसम्बर १९४६ में गांधीजीने एक मित्रको लिखे पत्रमें कहा था:

> मेरी रायमें अंग्रेजोंका यह सपना असम्भव सिद्ध होगा कि जब तक देशमें पूर्ण शान्ति न हो जाय तब तक वे भारत नहीं छोड़ेंगे। वे यही कर सकते हैं, और उन्हें यही करना चाहिये, कि जो दल तैयार और समर्थ हो, उसे सारी सत्ता सौंप दें और सेनाके ब्रिटिश भागको जल्दीसे जल्दी हटा लें और बाकीको तोड़ दें। उन्हें ब्रिटिश स्वार्थोंकी रक्षाके लिए सेनाका कोई हिस्सा रखनेका विचार नहीं करना चाहिये। ब्रिटिश हितोंकी रक्षाका भार उन्हें भारतवासियोंके सद्भाव पर छोड़ देना चाहिये। सत्ताके शान्तिपूर्ण हस्तांतरणका एक यही राजमार्ग है, दूसरा नहीं ।

अन्तमें घटना-चक्रने ब्रिटिश सरकारको लगभग इसी स्थितिमें ला दिया। २० फरवरी, १९४७ को श्री एटलीने ब्रिटिश पार्लियामेन्टमें कहा कि सम्राट्की सरकारका निश्चित इरादा है कि जून १९४८ से पहले जिम्मेदार भारतीय हाथोंमें शासनकी सत्ता सौंपनेके लिए आवश्यक कदम उठाये जायं। १६ मई, १९४६ के राज्यपत्रके अनुसार सम्राट्की सरकार ऐसा संविधान स्वीकार करतनेकी पार्लियामेन्टसे सिफारिश करनेको सहमत हुई थी, जो संविधान-सभा द्वारा तैयार किया जाय । परन्तु यदि कैबिनेट-मिशनकी योजनाके अनुसार कोई संविधान किसी "पूरा प्रतिनिधित्व करनेवाली संविधान-सभाके द्वारा उस समयसे पहले तैयार नहीं हुआ, तो सम्राट्की सरकारको यह विचार करना पड़ेगा कि ब्रिटिश भारतकी केन्द्रीय सरकारकी सत्ता निश्चित तारीख पर किसे सौंपी जाय—ब्रिटिश भारतके लिए किसी प्रकारकी केन्द्रीय सरकारको समग्र रूपमें सौंपी जाय या कुछ प्रदेशोंमें मौजूदा प्रान्तीय सरकारोंको सौंपी जाय या दूसरे किसी तरीकेसे सौंपी जाय, जो अधिकसे अधिक उचित और भारतीय जनताके लिए अधिकसे अधिक लाभप्रद दिखाई दे।"

इस वक्तव्यके साथ "युद्धकालीन" वाइसरॉयके नाते लॉर्ड वेवेलकी नियुक्तिके अन्तकी और छॉर्ड माउन्टबेटनकी उनके उत्तराधिकारीके रूपमें नियुक्तिकी घोषणा की गई। यद्यपि उनकी सेवाओंको समाप्त करते समय औपचारिक रूपमें उनकी प्रशंसा की गई, फिर भी जैसा श्री चर्चिलने उस समय कहा, उन्हें एक तरहसे पदच्युत करके वापस बुलाया गया था। दिसम्बर १९४६ में ही श्री एटलीको इस निर्णय पर पहुंचना पड़ा था कि यदि सरकारकी भारतीय नीतिको बिलकुल असफल सिद्ध न होने देना हो, तो लॉर्ड वेवेलको हटाना ही पड़ेगा। लॉर्ड वेवेल अपने उत्तराधिकारीके लिए यह विरासत छोड़ गये थे: बुरेसे बुरा राजनीतिक गतिरोध; अधिकाधिक फैलती साम्प्रदायिक हिंसा और संगठित अराजकता, जो तीन बड़े बड़े प्रान्तोंको निगल चुकी थी; लगभग ऊपरसे नीचे तक दो गुटोंमें विभाजित केन्द्रीय सेक्रेटेरियट—जिसमें वाइसरॉयके व्यक्तिगत कर्मचारी और अधिकारी तथा उच्च कक्षाके ब्रिटिश अधिकारी एक या दूसरी पार्टीका पक्षपात करते थे; तथा अस्तव्यस्त बना हुआ प्रशासन-तन्त्र—जिसमें सम्प्रदायवाद बड़ी मात्रामें पैठ गया था। जमा पक्षमें, यदि श्री एटलीके शब्दोंमें कहा जाय तो, लॉर्ड वेवेलका एकमात्र योगदान "ब्रिटिश सेनाके भारत छोड़नेकी योजनासे अधिक रचनात्मक और कुछ नहीं हो सकता था।" [एलन कैम्पबेल-जॉन्सन, 'मिशन विथ माउन्टबेटन', लन्दन, १९५१, पृ० १] लेकिन इस विषयमें अधिक चर्चा आगे की जायगी।

सम्राट्की सरकारके वक्तव्य पर अपनी पहली प्रतिक्रिया बताते हुए गांधीजीने २४ फरवरीके दिन पंडित नेहरूको लिखा:

> स्पष्ट है कि मैंने इस सारे वक्तव्यका एक तरहसे पहले ही अनुमान लगा लिया था। . . . (श्री एटलोके) भाषणका अर्थ मैं यह लगाता हूं :
>
> १. भारतके जो भाग स्वाधीनता चाहें और ब्रिटिश संरक्षणके बिना काम चला लें, उनकी स्वाधीनता मान ली जायगी;
>
> २. जहां अंग्रेजोंकी मांग होगी वहां वे रहेंगे;

३. इसका नतीजा यह होगा कि जो प्रान्त अथवा भाग चाहेंगे, उन्हें पाकिस्तान मिल जायगा। किसीके साथ इधर या उधर कोई जबरदस्ती नहीं की जायगी। कांग्रेसी प्रान्त यदि **बुद्धिमान** होंगे, तो जो वे चाहते हैं वह उन्हें मिल जायगा;

४. बहुत कुछ आधार इस बात पर रहेगा कि संविधान-सभा क्या करेगी और अन्तरिम सरकारके रूपमें आप लोग क्या कर सकेंगे;

५. यदि ब्रिटिश सरकार सच्ची है और सच्ची रह सकेगी, तो यह घोषणा अच्छी है, अन्यथा खतरनाक है।

दूसरे शब्दोंमें, भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि 'भारत छोड़ो' प्रस्तावके अनुसार स्वाधीनताकी चुनौती स्वीकार करनेकी भारतमें कितनी क्षमता है— क्योंकि गांधीजी भारतको उसीके लिए तैयार करनेकी कोशिश कर रहे थे—और ब्रिटिश सरकार बिना शर्तके हट जाने और भारतको अपने भाग्यके भरोसे छोड़नेके लिए कहां तक तैयार है और उसमें अधिकारियों द्वारा अपने निर्णय पर वफादारों और निष्पक्षताके साथ शब्दकी और भावनाकी दृष्टिसे भी अमल करानेका कितना सामर्थ्य है।

इसी बातको अपने नोआखाली मिशनके सन्दर्भमें रखकर गांधीजीने हैमचरकी अपनी प्रथम प्रार्थना-सभामें कहा : भूतकालमें ब्रिटिश शासनका इतिहास भले कुछ भी रहा हो, पर इसमें जरा भी शक नहीं कि अंग्रेज निकट भविष्यमें भारत छोड़ कर जा रहे हैं। ब्रिटिश सरकारके वक्तव्यसे विभिन्न दलों पर यह जिम्मेदारी आती है कि वे जो उत्तम समझें सो करें। इस स्थितिको बिगाड़ना या सुधारना उनके हाथमें है। उनकी सम्मिलित इच्छाको कोई उलट नहीं सकता। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा यह दृढ़ मत है कि अगर हिन्दू और मुसलमान अपनी फूटको मिटाकर बाहरी दबावके बिना एक हो जायं, तो वे भारतके ही नहीं बल्कि शायद समूचे संसारके भविष्यको प्रभावित करेंगे । इसलिए समय आ गया है कि हिन्दू और मुसलमान शान्ति और एकताके साथ रहनेका संकल्प कर लें। दूसरा मार्ग गृहयुद्धका है, लेकिन उससे तो देशके टुकड़े टुकड़े हो जायंगे। मैं नहीं जानता कि भविष्यमें हमारे भाग्यमें क्या बदा है। परन्तु यदि लोग वास्तवमें,

सचाईके साथ और शुद्ध हृदयसे एक होकर कोई चीज चाहेंगे, तो मानवोंकी भाषामें कहा जा सकता है कि ईश्वर अपने दासोंका दास है, इसलिए वह उनकी इच्छा स्वयं पूरी करेगा।

जिस दिन गांधीजीने पंडित नेहरूको पत्र लिखा, उसी दिन पंडित नेहरूने नई दिल्लीसे गांधीजीको लिखा:

> आपने ब्रिटिश सरकारकी नई घोषणा पर मेरा वक्तव्य देखा होगा। उस वक्तव्य पर मुस्लिम लीगके सिवा अंतरिम सरकारके हमारे सब साथियोंने सावधानीसे विचार किया। . . . श्री एटलीके वक्तव्यमें बहुतसी बातें अनिश्चित हैं और उनसे परेशानी खड़ी हो सकती है। परन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि अन्तिम विश्लेषणमें यह एक वीरतापूर्ण और निश्चित वक्तव्य है। इससे हमारी बार-बार दोहराई हुई भारत छोड़नेकी मांग पूरी हो जाती है। . . . अब या कमसे कम माउण्टबेटनके आ जानेके बाद घटनायें तेजीसे आगे बढ़ेगी । . . . कांग्रेस कार्यसमितिकी बैठक ५ मार्चको हो रही है। . . . इस नाजुक अवसर पर आपकी सलाहसे हमें बड़ी मदद मिलेगी। परन्तु आप इतने अधिक दूर हैं कि आपके साथ परामर्श नहीं किया जा सकता और पूर्व बंगालसे हिलना आपको मंजूर नहीं है। फिर भी यदि आप इस विषय पर अपने विचार हम तक पहुंचा सकें, तो हम आपके बहुत आभारी होंगे।

२८ फरवरीको अपने दूसरे पत्रमें पंडित नेहरूने लिखा:

> कार्यसमितिकी बैठक यहां जल्दी ही हो रही है और हम सब उत्सुक हैं कि उस मौके पर आप यहां आ जायें। हमने एक संयुक्त तार भेजकर आपसे आनेकी अपील करनेके प्रश्न पर विचार किया। परन्तु अन्तमें हमने तार न भेजनेका निश्चय किया। हमें निश्चित रूपसे लगा कि आप इस समय नहीं आयेंगे और हमारे तारसे आपको परेशानी ही होगी।
>
> परन्तु यद्यपि हम आपको तार नहीं भेज रहे हैं, हमें दृढ़तासे ऐसा लगता है कि आनेवाले नाजुक समयमें आपकी सलाह हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक होगी। अवश्य ही

हममें से एक या दोका आपके पास आना संभव है, परन्तु काम करनेकी यह पद्धति सन्तोषजनक नहीं है। हम तो यही पसन्द करते हैं कि हम सबके बीच इस प्रश्न पर पूरी चर्चा हो। इस समय तो हममें से किसीका दो तीन दिनके लिए भी दिल्ली छोड़ना बहुत कठिन है। अनेकोंके एकसाथ जानेसे तो सारा ही काम अस्तव्यस्त हो जायगा। विधान-सभामें बजट पेश है, संविधान-सभाकी समितियां हैं, राजाओंके साथ चल रही वार्ताएं हैं, वाइसरॉय बदल रहे हैं और बहुतसी दूसरी चीजें हैं जिन पर सतत ध्यान देना आवश्यक है। इसलिए हम तो दिल्लीसे बाहर जा नहीं सकते; और यदि आप यहां न आयें तो हम मिलें कैसे ?

परन्तु गांधीजी इस सिद्धान्तमें अक्षरशः विश्वास रखते थे कि अपने नियत कर्मको स्थिरतासे अच्छी तरह करके मनुष्य सारे विश्वकी सेवा कर सकता है; और अपने तात्कालिक कर्तव्यका पालन करते हुए मृत्युका आलिंगन करना बेहतर है, परन्तु दूरके सुहावने दृश्योंके प्रलोभनमें पड़कर खिंच जाना अच्छा नहीं। सरदार पटेलको उन्होंने एक पत्रमें लिखा: "मैं आपके सामने सिद्ध करनेमें भले असमर्थ रहूं, परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यहांका मेरा काम सर्वोपरि महत्त्वका है। वहां तो आप सब महारथी मिलकर जिम्मेदारीका बोझ उठा रहे हैं। . . . परन्तु यहां 'ऐरंडोऽपि द्रुमायते' को चरितार्थ करनेवाला मैं अकेला ही हूं। इसलिए मुझे यहीं रहने दीजिये। अगर यहां मैं कोई ठोस सफलता प्राप्त कर लेता हूं, तो सारे देशको लाभ होगा। यदि मैं असफल होता हूं, तो उससे दूसरे किसीकी हानि नहीं होगी।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, ३ मार्च १९४७]

मौलाना साहबने गांधीजीको यह सुझाव दिया था कि अगर आप दिल्ली आकर न रह सकें, तो कलकत्तेको अपना मुख्य केन्द्र बना लीजिये। इसका जवाब गांधीजीने यह दिया: "जिस अहिंसा पर मैंने इतना लिखा है और इतने वर्ष तक जिस पर अमल करनेकी कोशिश की है, वह यदि संकटके समय काम नहीं देती तो मेरी दृष्टिमें उसका कोई मूल्य नहीं रह जाता। मेरे प्रति आपका प्रेम आपसे यह कहलवा रहा है कि मैं आपके पास होता सो सब कुछ ठीक हो जाता।

किन्तु सचाई यह है कि यदि मैं यहां कुछ नहीं कर सकता, तो अन्यत्र कहीं भी उपयोगी नहीं हो सकता।" [गांधीजीका पत्र मौलाना आजादको, १२ फरवरी १९४७]

उन्होंने श्रीमती एडमन्ड प्रीवेट नामक एक यूरोपियन बहनको लिखा, "अपनी पदयात्रासे मुझे अतिशय मानसिक शान्ति मिलती है। इसका परिणाम न तो मैं जानता हूं और न जाननेकी चिन्ता करता हुं। परिणाम पर मनुष्यका अधिकार नहीं होता । वह तो एकमात्र ईश्वरका ही अधिकार है । इसलिए मैं कार्डिनल न्यूमैनके स्वरमें स्वर मिलाकर गा सकता हूं:

मुझे जरा भी लोभ नहीं
दूरके दृश्य देखनेका;
मेरे लिए एक कदम बस है,
एक कदम बस है।" [गांधीजीका पत्र मैडम एडमन्ड प्रीवेटको, २ फरवरी १९४७]

गांधीजी जब तक नोआखालीमें उनका मिशन सफल न हो जाय तब तक दिल्ली आनेसे इनकार करते रहे। इससे कांग्रेसके नेताओंके लिए दुविधा उत्पन्न हो गई। इसे पंडित नेहरूने अपने एक पत्रमें यथातथ प्रकट किया: "मैं जानता हूं कि हमें अपने पर ही भरोसा रखना सीखना चाहिये और हर मौके पर आपके पास मददके लिए नहीं दौड़ना चाहिये। परन्तु हमारी यह बुरी आदत बन गई है और हमें अक्सर ऐसा लगता है कि अगर हम आसानीसे आपके पास पहुंच सकते, तो हमारी कठिनाइयां कम हो जातीं। [पंडित नेहरूका पत्र गांधीजीको, ३० जनवरी १९४७] परन्तु गांधीजीकी स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ: "मैं जानता हूं कि यदि मैं स्वतन्त्र होता, तो देशमें पैदा होनेवाली विविध समस्याएं हल करनेके प्रयत्नमें आप सबके साथ भाग ले सकता। परन्तु मुझे लगता है कि यदि मैं यहां कुछ न कर सका तो बेकार हूं । . . . हम जिस सत्ताको ईश्वर कहते हैं, उसीके हाथमें हम सब हैं।" [गांधीजीका पत्र पंडित नेहरूको, ६ फरवरी १९४७]

अन्तमें न तो गांधीजीका सोचा हुआ और न पंडित नेहरूका, परन्तु जैसा कि उन्होंने पंडित नेहरूसे कहा था "जिसे हम ईश्वर कहते हैं उस शक्ति" का सोचा ही हुआ। गांधीजीके भाग्यमें न तो नोआखालीमें रहना लिखा था, न दिल्लीमें; उनके भाग्यमें तो बिहार जाकर रहना लिखा था।

ग्यारहवां अध्याय
ब्रह्मचर्य

१

हैमचरमें जो अनेक प्रश्न खड़े हुए, उनमें सबसे उग्र प्रश्न ब्रह्मचर्यका था।

हिन्दू धर्ममें आत्म-साक्षात्कारके साधकके लिए अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्तेय तथा ब्रह्मचर्य इन पांच महाव्रतोंकी सिफारिश की गई है। ये ही वे पांच आधार-स्तम्भ थे, जिन पर गांधीजीका संपूर्ण जीवन और उनका सत्याग्रहका तत्त्वज्ञान रचा गया था । परन्तु इन आदर्शोंके प्रति उनकी दृष्टि सनातनी सदाचारवादीकी नहीं थी, बल्कि एक वैज्ञानिक सत्य-शोधककी थी । इन व्रतोंके परम्परागत अर्थको स्वीकार करनेसे गांधीजी इनकार करते थे। इन व्रतोंमें उन्होंने जो अर्थ और तत्त्व भर दिया था, वह सनातनी लोगोंको कभी कभी आश्चर्यमें डाल देता था । उदाहरणके लिए, उस समय जब गांधीजीने गायके बीमार बछड़ेकी असह्य वेदनाका अंत करनेके लिए उसे प्राणघातक इंजेक्शन दिलवाया तथा हड़क और प्लेगका रोग फैछनेका खतरा खड़ा होने पर क्रमशः आवारा कुत्तों तथा चूहोंके नाशका समर्थन किया था। उनका दृष्टिकोण आजीवन एक क्रांतिकारीका दृष्टिकोण रहा । इसने उन्हें अर्थशास्त्र, राजनीति, सामाजिक सम्बन्धों तथा धर्मके विषयमें भी प्रचलित व्यवस्थाको चुनौती देनेकी प्रेरणा दी थी। वे प्रत्येक वस्तुकी कड़ीसे कड़ी कसौटी और जांच-पड़ताल करनेका आग्रह रखते थे। वे नीतिशास्त्र, सदाचार, धर्म और आध्यात्मिक अनुभवको भी विश्लेषण, प्रयोग और अनुसन्धानका उपयुक्त क्षेत्र मानते थे। और, इस कारणसे ब्रह्मचर्यका भी उनके “सत्यके प्रयोगों” के क्षेत्रमें समावेश कर लिया गया था।

गांधीजीके जीवनमें ब्रह्मचर्य प्रेमके नियमका, “जो सारी कामनाओं तथा सम्पूर्ण परिग्रह-परायणताका उर्ध्वीकरण कर देता है,” [जिराल्ड हर्ड, ‘दि इटर्नल गॉस्पेल’, लन्दन, १९४६, पृ० १६८] एक स्वाभाविक फल था। और पांच मूलभूत महाव्रत “इस एक ही आदेशके पांच परीक्षा-

बिन्दु थे कि तू सारी मानव-जातिको अपने जैसा प्रेम कर।" [वही] इनमें से एककी—अर्थात् काम-सम्बन्धकी—प्रेमेके नियमके सर्वोच्च स्तर पर चर्चा करना और बाकीके व्रतोंकी व्यावहारिक सुविधाकी भूमिका पर चर्चा करना, जिराल्ड हर्डके शब्दोंमें "विसंगत उत्तर देना और इसलिए विसंगत जीवन उत्पन्न करना " [वही] होगा । ये पांचों महाव्रत एक सम्पूर्ण और अखण्ड घटक बनाते हैं और पांचोंका जीवनमें समान महत्त्व है । गांधीजीकी सत्यकी साधनामें इन पांचों महाव्रतोंके सम्पूर्ण पालनका समावेश होता था।

ब्रह्मचर्यके आदर्शको गांधीजीने युवावस्थामें ही स्वीकार कर लिया था और तभीसे वे इसका पालन करते रहे थे। ब्रह्मचर्यका शाब्दिक अर्थ है ब्रह्मकी—सत्यकी—शोधमें चर्या, अर्थात् उससे सम्बन्धित आचार। अहिंसा सत्यका व्यक्त अंश है। इस व्यक्त अंशके परे उसका अव्यक्त अंश बाकी रहता है। परन्तु "अहिंसाके रूपमें भी सत्यका दर्शन शुद्ध विरक्तिवाले मनुष्यको ही प्राप्त हो सकता है । क्रोध, लोभ, अहंकार, भय आदि सब मुमुक्षुकी आंखोंके सामने एक आवरण खड़ा कर देते हैं।" [मीराबहन द्वारा 'ग्लीनिंग्स' में उद्धत गांधीजीका कथन, अहमदाबाद, १९४९, पृ० १९] इसलिए ब्रह्मचर्यका अर्थ है मन, वचन और कर्मकी सारी इन्द्रियों पर— विशेषत: जननेन्द्रिय पर—एकसाथ नियंत्रण । गांधीजीकी कल्पनाके अनुसार **ब्रह्मचर्य तब तक सम्पूर्ण नहीं होता जब तक विचारों पर ऐसा नियंत्रण न सिद्ध हो जाय कि इच्छाके बिना एक भी विचार साधकके मनमें न आये**। "ब्रह्मचर्यके बिना सत्याग्रहीमें कोई तेज नहीं होगा, आन्तरिक बल नहीं होगा; सारी दुनियाके सामने निःशस्त्र खड़ा होनेकी शक्ति नहीं होगी। . . . ऐन मौके पर उसकी शक्ति उसे धोखा दे जायगी।" [हरिजन, १३ अक्तूबर १९४०, पृ० ३१९]

ब्रह्मचारी रहनेके इच्छुक व्यक्तिके लिए हमारे शास्त्रोंमें कुछ नियम दिये गये हैं। इन नियमोंको रक्षणकी नवविध दीवाल कहा जाता है। इन नियमोंवाले ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य स्त्रियों, पशुओं और हिजड़ोंके बीच न रहे; वह किसी स्त्रीको अकेले या समूहमें भी न पढ़ायें; जिस चटाई पर कोई स्त्री बैठी हो उस पर वह न बैठे; वह स्त्रीके शरीरके किसी भागको न देखे; वह दूध, दही, घी, तेल या अन्य चिकने पदार्थ न खाये अथवा गरम जलसे स्नान न करे और न तेलकी मालिश करे। गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीकामें थे तब उन्होंने इन सब

नियमोंके बारेमें पढ़ा था, परन्तु ब्रह्मचर्यके आदर्शके प्रति उनकी दृष्टि ऐसी नहीं थी। पश्चिममें वे ऐसे पुरुषों और स्त्रियोंके परिचयमें आये थे जो ब्रह्मचर्यका पालन करते थे, परन्तु जिन्होंने यह कभी नहीं जाना था कि उसके पालनके लिए ऐसे कोई प्रतिबन्ध आवश्यक हैं। स्वयं गांधीजीको भी इन नियमोंका पालन न करनेसे कोई नुकसान नहीं हुआ था। वे स्त्रियोंके साथ छूटसे मिलते-जुलते थे । दक्षिण अफ्रीकामें अपनी देखरेखमें रहनेवाले लड़के-लड़कियोंका उन्होंने किसी प्रकारके प्रतिबन्धोंके बिना दूसरे लड़के-लड़कियोंके साथ पालन-पोषण किया था, यद्यपि अनुभवसे उन्हें मालूम हुआ था कि यह प्रयोग खतरेसे बिलकुल खाली नहीं है।

आश्रमके व्रतोंका उद्देश्य यह था कि अहिंसक लड़ाईमें भाग लेनेवाले स्त्री-पुर्ष इनका पालन करके सुरक्षितता और स्वतन्त्रताकी दिनोंदिन बढ़नेवाली भावनासे लड़ाईके मोर्चे पर जानेकी शक्ति प्राप्त करें। इसलिए गांधीजीको लगा कि जो ब्रह्मचर्य चहारदीवारीमें बन्द रहे बिना पाला नहीं जा सकता उसकी कोई कीमत नहीं है । आश्वमके दूसरे व्रतोंके बारेमें भी कम या ज्यादा उनकी यही दृष्टि थी। उदाहरणके लिए, आश्रममें सादे और बिना मसालेके भोजनकी आदत डालनेका हेतु सत्याग्रहीको अपने कर्तव्य-पालनके स्थान पर इस आत्म-विश्वासके साथ भेजना था कि उस स्थानके लोग उसे जो भी भोजन दे सकें या उस स्थान पर उपलब्ध साधनोंसे वह जो कुछ भी प्राप्त कर सके उसीसे अपना निर्वाह कर लेगा और इस प्रकार वह अपने यजमानों पर स्वयंको भार न बनने देगा या जहां उसका मन चाहा भोजन न मिले वहां लाचारी महसूस नहीं करेगा। इसी प्रकार यदि ब्रह्मचर्य किसी स्त्री या लड़कीको गुंडोंके बीच जाकर उनका निर्भयतासे सामना करनेकी शक्ति प्रदान करनेके बजाय—सत्याग्रहकी लड़ाइयोंमें उन्हें ऐसा ही करना पड़ता था—उसे अपने कर्तव्यसे भागने और अपने घरकी चहारदीवारीके भीतर सुरक्षितता खोजनेकी प्रेरणा दे, तब तो वह ब्रह्मचर्य निरर्थक होगा । इसलिए गांधीजी कहते हैं कि आश्रमवासीके लिए आदर्श यह होना चाहिये: "आश्रममें स्त्री-पुरुष दोनों रहते हैं और एक-दूसरेसे मिलने-जुलनेकी पूरी स्वतन्त्रता भोगते हैं । अर्थात् आदर्श यह है कि जो छूट मां-बेटा या भाई-बहनको होती है, वही छूट आश्रमवासियोंके लिए एक-दूसरेसे मिलने-जुलनेमें रहे । इसलिए ब्रह्मचर्यके पालनके लिए सामान्यतः जिन प्रतिबन्धोंकी कल्पना की गई है, वे सब यहां आश्रममें

नहीं रखे जाते। इसके विपरीत यह माना जाता है कि जिस ब्रह्मचर्यको इन सब प्रतिबन्धोंकी सदा जरूरत रहे, वह वास्तवमें ब्रह्मचर्य ही नहीं है । ब्रह्मचर्यके प्रयत्नके लिए ऐसे प्रतिबन्ध भले जरूरी समझे जायं, परन्तु अन्तमें तो वे टूटने ही चाहिये । इसका अर्थ यह नहीं कि प्रतिबन्ध टूटने पर ब्रह्मचारी स्त्रियोंका साथ खोजता फिरे । इसका अर्थ यह है कि किसी स्त्रीकी सेवा करनेका मौका आने पर ब्रह्मचारी ऐसा मान कर उससे बच नहीं सकता कि स्त्रीसेवा उसके लिए निषिद्ध है।" [गांधीजी, 'सत्याग्रह आश्रमका इतिहास', अहमदाबाद, १९५५, पृ० ५१]

दूसरे शब्दोंमें कहें तो ऐसा ब्रह्मचारी "स्त्रियोंके सम्पर्कसे या उनके स्पर्शसे भ्रष्ट नहीं होगा। ऐसे ब्रह्मचारीके लिए स्त्री-पुरुषका भेद लगभग मिट जाता है। मेरे इस कथनका कोई अनर्थ न करे। इसका उपयोग स्वेच्छाचारके पोषणमें कभी नहीं किया जा सकता । जिस मनुष्यकी विषयासक्ति जल कर नष्ट हो जाती है, उसके मनमें स्त्री-पुरुषका भेद मिट जाता है, मिट जाना चाहिये। सुन्दरताकी उसकी कल्पना बिलकुल नया रूप ले लेती है। वह बाहरी रूपको देखेगा ही नहीं। जिसका आचरण सुन्दर है वह—स्त्री हो या पुरुष—सुन्दर है। इसलिए सुन्दर स्त्रीको देखकर वह काम-विह्वल नहीं हो जायगा । उसकी जननेन्द्रियका रूप भी बदल जायगा । अर्थात् वह सदाके लिए विकाररहित हो जायगी। वह वीर्यहीन होकर नपुंसक नहीं बनेगा, लेकिन उसके वीर्यका परिवर्तन हो जानेके कारण वह नपुंसक जैसा लगेगा। नपुंसकके रस नहीं जलते, ऐसा मैंने सुना है। . . . परन्तु रसोंके जल जानेके कारण जो मनुष्य ऊर्ध्वरेता बन जाता है, उसका नपुंसकत्व बिलकुल अलग ही प्रकारका होता है। ऐसा नपुंसकत्व सबके लिए इष्ट है।" [गांधीजी, 'की टु हेल्थ', अहमदाबाद, १९४८, पृ० ४४]

इस प्रकार ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें आश्रमके आदर्शमें "कुछ अंश तक पश्चिमके जीवनका जान-बूझ कर किया जानेवाला अनुकरण भी आ जाता है।" पश्चिमी देशोंमें स्त्रियों और पुरुषोंके अलग अलग बाड़े नहीं रखे जाते। गांधीजी इस विषयमें कहते हैं कि "ऐसे प्रयोग करनेकी अपनी योग्यताके बारेमें भी मुझे गहरी शंका है। परन्तु मेरे सारे प्रयोगोंके बारेमें ऐसा कहा जा सकता है। . . . जो लोग सोच-समझ कर आश्रममें आये हैं, वे सारे खतरोंको जानते हुए भी मेरे साथियोंके रूपमें यहां आये हैं। आश्रमके बालकों और बालाओंको मैं अपने बच्चे मानता हूं। **इसलिए वे**

अपने आप मेरे प्रयोगोंमें खिच आते हैं । सारे ही प्रयोग सत्यस्वरूप परमेश्वरके नाम पर किये जाते हैं। वह एक कुंभकार है; जब कि हम सब उसके शक्तिशाली हाथमें मिट्टी जैसे हैं।" [गांधीजी, 'सत्याग्रह आश्रमका इतिहास', अहमदाबाद, १९५५, पु० ५२] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

इसका परिणाम अत्यन्त प्रोत्साहित करनेवाला आया था। "स्त्री-पुरुष दोनोंको सब मिलाकर इससे लाभ ही हुआ है । परन्तु मैं ऐसा मानता हूं कि सबसे ज्यादा लाभ स्त्रियोंको हुआ है।" [वही, पृ० ५३] यह प्रयोग करते करते "कुछ स्त्री-पुरुष नीचे गिरे हैं; कुछ गिर कर ऊंचे उठे हैं।" [वही] "ऐसे सब प्रयोगोंमें ठोकरें तो खानी ही पड़ती हैं । जिसमें सौ प्रतिशत सफलता मिले, वह प्रयोग नहीं है। वह तो सर्वज्ञ प्रभुका स्वभाव कहा जायगा।" [वही]

यह सब १९३२ में लिखा गया था। गांधीजीको उस समय लगता था कि "ऐसे प्रयोग करनेकी अपनी योग्यताके बारेमें भी मुझे शंका है।" "जो मन, वचन और कर्मसे इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह ब्रह्मचारी है। इसका अर्थ . . . पूरा पूरा स्पष्ट तो आज भी नहीं हुआ है, क्योंकि मैं स्वयंको शत प्रतिशत ब्रह्मचारी नहीं मानता। मेरे मनके विकार वशमें तो रह सकते हैं, लेकिन वे नष्ट नहीं हुए हैं। जिस मनुष्यके मनोविकार नष्ट नहीं हुए हैं, वह पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं माना जा सकता। इस स्थिति पर मैं पहुंच जाऊंगा तब ब्रह्मचर्यकी इसी व्याख्याको मैं नई दृष्टिसे देखूंगा।" [वही, पृ० ४९]

गीताके कथनानुसार निराहारी मनुष्यके या पांच इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले मनुष्यके विषय शिथिल हो जाते हैं, परन्तु उसका रस नहीं मिटता। जैसा कि सेन्ट जॉन ऑफ दि क्रॉसने कहा है, "वासना यदि बनी रहे, तो निग्रह अनासक्ति नहीं है;" अनासक्ति "वासनाके दमनमें है । यह वस्तु परिग्रहको बनाये रखने पर भी आत्माको मुक्त करती है।" [महादेव देसाई द्वारा 'दि गॉस्पेल ऑफ सेल्फलेस एक्शन ऑर गीता एकॉर्डिंग टु गांधी' में उद्धत, अहमदाबाद, १९४६, पृ० १६३] गीता कहती है कि "ये रस परका अर्थात् सत्यका या कहिये कि ब्रह्मका दर्शन होने पर ही शान्त होते हैं। . . . इसमें हमारी इन आंखोंसे दर्शन करनेकी बात नहीं है । कोई चमत्कार

देखनेकी बात भी नहीं है। ब्रह्मके दर्शनका अर्थ है—ब्रह्म हृदयमें वास करता है ऐसा अनुभव-ज्ञान। ऐसा ज्ञान न हो तब तक रस मिट ही नहीं सकते। यह ज्ञान होते ही सारे रस तत्काल सूख जाते हैं।" [गांधीजी, 'सत्याग्रह आश्रमका इतिहास', अहमदाबाद, १९५५, पृ० ५४] इसके पश्चात् पतनकी संभावना नहीं रहती।

अहिंसाके समान ब्रह्मचर्यके क्षेत्रका अनुसंधान भी आवश्यक रूपमें धीमी गतिसे ही होता है। असाधारण परिस्थितियोंमें ही नये प्रयोग किये जा सकते हैं और ऐसी परिस्थितियां स्वभावत: विरल होती हैं। इसीलिए छह वर्ष और बीत गये। स्वतन्त्रताकी अहिंसक लड़ाई उग्र बनी और लम्बी चली, इसलिए गांधीजीको अपनी साधनाके आवश्यक अंगके रूपमें पुनः ब्रह्मचर्यके प्रयोग करना जरूरी मालूम हुआ।

कांग्रेसने १९२० में प्रारंभिक कठिनाईके साथ ही अपना कार्य शुरू किया था। बहुत ही थोड़े कांग्रेस-जन जीवन-सिद्धान्तके रूपमें सत्य और अहिंसामें विश्वास करते थे। अधिकतर सदस्योंने इन दोनोंको एक नीतिके रूपमें ही स्वीकार किया था। गांधीजीने आशा रखी थी कि नई नीतिके अनुसार कांग्रेसके कार्यको देखनेके बाद कांग्रेसके बहुतसे सदस्य सत्य और अहिंसाको जीवन-सिद्धान्तके रूपमें स्वीकार कर लेंगे। परन्तु कुछ ही लोगोंने ऐसा किया। शुरूकी मंजिलोंमें कांग्रेसके प्रमुखतम नेताओंके जीवनमें जो परिवर्तन हुआ, वह अत्यन्त गहरा था। पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरंजन दासने जेलसे अपने पत्रोंमें गांधीजीको लिखा कि हमने आत्मत्याग, सादगी और आत्म-बलिदानके जीवनमें "नये आनन्द और नई आशा" का अनुभव किया है।

> अली भाई फकीर जैसे बन गये हैं। हम लोग जिस समय एक गांवसे दूसरे गांवका दौरा कर रहे थे उस समय इन भाइयोंमें जो परिवर्तन हो रहा था, उसे देखकर मुझे आनन्द होता था। जो बात इन चार नेताओंके लिए सच थी, वही अन्य अनेक लोगोंके बारेमें भी सच थी। ऐसे कई लोगोंके नाम मैं दे सकता हूं। नेताओंके उत्साहका प्रभाव कांग्रेसके साधारण सदस्यों पर भी पड़ा था।

परन्तु इस अद्भुत परिवर्तनका श्रेय "एक वर्षमें स्वराज्य" के मंत्रको था । इस मन्त्रकी सिद्धिके लिए मैंने जो शर्तें रखी थीं, वे भुला दी गई थीं। . . . मुझे इस बातका निश्चय कर लेना चाहिये था कि ये शर्तें पूरी की जा सकती हैं या नहीं। . . . मुझमें यह दूरदर्शिता नहीं थी। सामुदायिक पैसाने पर और राजनीतिक इद्देश्योंके लिए अहिंसाका उपयोग स्वयं मेरे लिए भी एक नया प्रयोग ही था। . . . मेरी शर्तें जनताके उत्तरका अनुमान लगानेका मापदण्ड थीं। . . . गलतियां करने और गलत अनुमान लगानेकी संभावना तो सदा रहती ही थी। जो भी हो, जब स्वराज्यकी लड़ाई लम्बी चली, . . . तो लोगोंका उत्साह घटने लूगा, एक नीतिके रूपमें भी अहिंसामें कांग्रेसियोंका विश्वास विचलित होने लगा और उनके भीतर असत्य पैठ गया। . . . यह बुराई दिनोंदिन . . . बढ़ती ही गई। [हरिजन, २३ जुलाई १९३८, पृ० १९२]

गांधीजी नये सिरेसे ऐसे साधनोंकी खोज करने लगे, जो उन्हें इस बुराईका असरकारक ढंगसे सामना करनेकी शक्ति दे सकें:

अहिंसामें जबरदस्ती या दबाव जैसी चीजके लिए कोई स्थान नहीं है। उसमें हमें लोगोंके हृदय तक पहुंचनेकी अपनी योग्यता पर निर्भर रहना होता है । . . . सत्याग्रहके सेनापतिके शब्दमें शक्ति होनी चाहिये—वह शक्ति नहीं जो बेशुमार शस्त्र-अस्त्र रखनेसे प्राप्त होती है, परन्तु वह शक्ति जो जीवनकी शुद्धि, कठोर जागरूकता तथा सावधानी और निरन्तर एकाग्र प्रयत्नसे उत्पन्न होती है । यह ब्रह्मचर्यके पालनके बिना असंभव है। . . . **जिस वीर्यसे, जिस जीवन-शक्तिसे जीवनका सर्जन होता है, उसका संचय करके उदात्त पवित्र कार्यमें उपयोग करनेसे ही सारी शक्ति प्राप्त होती है।** इस वीर्यको, इस जीवन-शक्तिको व्यर्थ नष्ट करनेके बजाय उसका संचय किया जाय, तो उसका सर्वोच्च प्रकारकी सर्जन-शक्तिमें रूपान्तर होता है। मनमें बुरे विचारोंके आनेसे ही नहीं, परन्तु मनके यहां-वहां भटकते रहनेसे या उसमें अव्यवस्थित और अनावश्यक विचारोंके आनेसे भी इस जीवन-शक्तिका सतत—और पता न चले इस तरह ऱ्हास होता रहता है। और, विचार वाणी तथा सारे कर्मोंका मूल है, इसलिए जैसे विचार होते हैं वैसी ही वाणी

और कर्म भी होते हैं। **इसलिए सम्पूर्ण मनोनिग्रहसे किये जानेवाले विचार स्वयं उच्चतम शक्ति बन जाते हैं और सोचा हुआ कार्य कर सकते हैं**। . . . मनुष्य यदि ईश्वरकी प्रतिकृति हो, तो अपने नियत मर्यादित क्षेत्रमें उसके 'अमुक बात हो' ऐसा संकल्प करते ही वह बात होकर रहती है। **जो मनुष्य किसी भी तरह अपनी जीवन-शक्तिको नष्ट कर देता है, उसे इस प्रकारकी शक्ति प्राप्त होना असंभव है**। [वही] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

इसके बाद गांधीजी अपने आपसे पूछते हैं: मुझमें इस शक्तिका अभाव क्यों है? इसका उत्तर उन्होंने खुद दिया है: "अहिंसाके मेरे अनुसंधानके लिए मुझे अपने विचारों पर जो नियंत्रण प्राप्त करना चाहिये, वह मैंने प्राप्त नहीं किया है। अगर मेरी अहिंसाको व्यापक बनना है और दूसरों पर अपना प्रभाव डालना है, तो मुझे अपने विचारों पर अधिक नियंत्रण प्राप्त करना चाहिये। शायद कहीं न कहीं मेरे भीतर ऐसा दोष है, जो मेरे नेतृत्वकी प्रकट असफलताके लिए जिम्मेदार है।" [वही]

तो क्या यह दोष ब्रह्मचर्यके आदर्शके उनके पालनमें या उसके सम्बन्धमें उनकी मर्यादित कल्पनामें था, जिसके विषयमें उन्होंने कहा था कि "ब्रह्मचर्यके अभावमें कोई ब्रह्मके दर्शनकी आशा नहीं कर सकता और ब्रह्मके दर्शनके अभावमें कोई ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन नहीं कर सकता ?" [गांधीजी, 'सत्याग्रह आश्रमका इतिहास', अहमदाबाद, १९५५, पृ.० ५५] कुछ लोग यह मानते हैं कि ऐसा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य यदि साध्य हो, तो भी वह गुफामें रहनेवालोंके लिए ही साध्य है। इसी तरह वे यह भी कहते हैं कि शुद्ध अहिंसा साधु-सन्तोंके लिए ही है और आजकी दुनिया पर उसे किसी तरह लागू नहीं किया जा सकता। वे कहते हैं कि "ब्रह्मचारीको स्त्रीका स्पर्श तो क्या, उसका दर्शन भी नहीं करना चाहिये।" गांधीजी इस सम्बन्धमें कहते हैं: "बेशक, ब्रह्मचारीको **विकारपूर्वक** किसी स्त्रीके बारेमें विचार नहीं करना चाहिये, उससे बोलना नहीं चाहिये, उसे देखना नहीं चाहिये, या उसका स्पर्श नहीं करना चाहिये। परन्तु ब्रह्मचर्य पर लिखी गई पुस्तकोंमें जो निषेध किया गया है, उसमें 'विकारपूर्वक' जैसे महत्त्वपूर्ण क्रियाविशेषणका उपयोग नहीं किया गया है । इसे छोड़नेका कारण मुझे यह लगता है कि ऐसे मामलोंमें मनुष्य

निष्पक्षतासे न्याय नहीं कर सकता। . . . **पुरुष स्त्रीके स्पर्शसे दूषित नहीं होता, बल्कि अक्सर पुरुष इतना अधिक अपवित्र होता है कि वह स्त्रीका स्पर्श करने योग्य नहीं होता**। परन्तु हालमें कुछ समयसे ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणीको भिन्न लिंगके व्यक्तिके सम्पर्कमें आते समय अपने पर कितनी मर्यादा रखनी चाहिये, इस विषयमें मेरे मनमें भारी शंका पैदा हो गई है। **मैंने जो मर्यादायें निर्माण की हैं, उनसे मुझे सन्तोष नहीं है। मैं नहीं जानता कि ये मर्यादायें क्या होनी चाहिये**।" [हरिजन, २३ जुलाई १९३८, पृ० १९२] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

इसलिए गांधीजीने अपने लिए ये मर्यादाएं खोजनेका प्रयत्न आरंभ किया। उन्होंने यह आशा रखी थी कि अपने प्रयोगोंके परिणामस्वरूप वे जिस अन्तिम निर्णय पर पहुंचेंगे, उसे वे जनताके सामने रखेंगे। लेकिन ऐसा कर सकनेके पहले ही उन्होंने शरीर छोड़ दिया। अपनी एक पुस्तकमें, जो उनके निर्वाणके बाद प्रकाशित हुई, उन्होंने यह लिखा है:

> मैं यह नहीं कह सकता कि मैंने अपनी व्याख्याका पूर्ण ब्रह्मचर्य सिद्ध कर लिया है, परन्तु मैं यह मानता हूं कि उसकी दिशामें मैंने महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। यदि ईश्वरकी कृपा हुई, तो मैं इस जीवनमें पूर्ण सफलता प्राप्त कर लूंगा। . . . इस प्रयत्नके लिए मैं ३६ वर्षके समयको बहुत लम्बा नहीं मानता। सिद्धि जितनी अधिक समृद्ध हो, उसके लिए प्रयत्न भी उतना ही बड़ा होना चाहिये। इस बीच मैं जानता हूं कि ब्रह्मचर्यकी आवश्यकताके विषयमें मेरे विचार अधिक दृढ़ हुए हैं। मेरे कुछ प्रयोग अभी इस अवस्था तक नहीं पहुंचे हैं कि उन्हें लाभकी दृष्टिसे जनताके सामने रखा जा सके। यदि किसी समय मुझे उनमें सन्तोषप्रद सफलता मिली, तो मैं उन्हें लोगोंके सामने रखनेकी आशा करता हूं; क्योंकि मैं मानता हूं कि मेरी सफलता (दूसरोंके लिए) ब्रह्मचर्यकी सिद्धिको तुलनामें अधिक सरल बना सकती है। [गांधीजी, 'की टु हेल्थ', अहमदाबाद, १९४८, पृ० ४६]

२

स्त्री गांधीजीकी दृष्टिमें अहिंसाका प्रतीक थी—"प्रहार करनेमें अबला, किन्तु कष्ट सहनेमें सबला।" [हरिजन, १४ नवम्बर १९३६, पु० ३१६] गांधीजीकी सत्याग्रहकी योजनामें स्त्रीने बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। वे स्त्रीके आत्म-बलिदान और कष्ट-सहनको शक्तिमें बदल देना चाहते थे। दक्षिण अफ्रीकामें और भारतके अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्राममें स्त्रियोंने अधिक नहीं तो कमसे कम उतना ही बड़ा भाग लिया था जितना पुरुषोंने लिया था। गांधीजीके अपने जीवन पर उनकी धर्म-परायण माताकी पवित्रता और तपस्याका गहरेसे गहरा प्रेरणादायी प्रभाव पड़ा था। मानव-जातिके "दमनका शिकार बने हुए आधे अंग" के लिए उनका हृदय द्रवित हो जाता था। जब वे अपने आसपासके दृष्यका—खास तौर पर भारतमें—विचार करते थे तब उनकी आंखोंके सामने हृदयद्रावक चित्र खड़ा हो जाता था: "हमारी लड़कियोंका शरीर झूठी शरमके कारण नष्ट हो जाता है। हम भूल जाते हैं कि आजकी लड़कियां कलकी मातायें हैं। अपने विकासकी कोमल और नाजुक अवस्थामें जब लड़कीको अपनी माताके सहानुभूतिपूर्ण प्रेम और मार्गदर्शनकी सबसे ज्यादा जरूरत होती है तब वह उसके साथ सौतेली मांके जैसा व्यवहार करती है, मानो बड़ी होकर लड़कीने समाजके विरुद्ध कोई पाप किया हो और इसलिए उसे हर तरहसे दबाया जाना चाहिये। उसे संकुचित सामाजिक नियमों और रीति-रिवाजोंका शिकार बनाया जाता है । वह न तो घरसे बाहर घूम-फिर सकती है, न खेल सकती है और न खुलेमें कसरत कर सकती है। यही बात उसकी पोशाकको भी लागू होती है। वह इतने चुस्त कपड़े पहनती है, या उसे पहनाये जाते हैं, कि उसके शरीरकी रचना बिगड़ जाती है और उसका विकास रुक जाता है। उसे जीवनकी बुनियादी बातें भी नहीं बताई जातीं; इसके फलस्वरूप झूठी शरमके कारण वह चुपचाप अनेक बीमारियोंकी पीड़ा भोगती रहती है । इससे लछड़कियोंको जितनी शारीरिक हानि होती है उससे कहीं अधिक मानसिक हानि होती है। जिस उमरमें उसे पक्षियोंकी तरह स्वतंत्र, निश्चिन्त और सुखी होना चाहिये, उस उमरमें वह पीली पड़ जाती है और बूढ़ी दिखाई देने लगती हैं। सारी वस्तु अत्यन्त दुःखद और हृदयद्रावक है। अगर भोजन, पोशाक, चाल-चलन, बातचीत, पठन-पाठन, अध्ययन और मनोरंजनके मामलेमें हमारी

लड़कियोंका प्रकृतिकी स्वास्थ्यवर्धक सादगीमें पालन-पोषण किया जा सके और स्वाभाविक लज्जाकी मर्यादाओंका पालन करते हुए उन्हें स्वतन्त्रतासे अपना विकास करने दिया जाय, तो वे अपना सर्वोच्च विकास सिद्ध कर सकेंगी और एक बार फिर हमारे समाजको ऐसे शूर-वीर और सन्त-पुरुष देंगी जिनसे अतीतमें भारत गौरवान्वित हुआ हैं। मैंने ऐसी आदर्श नारियोंका स्वप्न देखा है, जो भारतका गौरव होंगी और उसके भविष्यकी संरक्षिकारयें बनेंगी ।" [मनु गांधी, 'एकला चलो रे', अहमदाबाद, १९५४, पृ० १५९-६०] भारतकी स्त्रियां जब तक बन्धनमें पड़ी हों तब तक गांधीजी भारतकी मुक्तिकी कोई आशा नहीं रखते थे।

भारतीय नारीकी इस करुण स्थितिके लिए गांधीजी भारतके पुरुषोंको बड़ी हद तक जिम्मेदार मानते थे । एक महिला कार्यकर्त्रीसे उन्होंने कहा था कि समाज-सुधारका कार्य करते करते मुझे यह प्रतीति हो गई कि अगर मुझे समाजमें पैठी हुई तरह तरहकी बुराइयां दूर करके उसे शुद्ध बनाना हो, तो मुझे अपने हृदयको मांके हृदय जैसा बनाना होगा। इसलिए स्त्रियोंकी जिस दुर्दशामें पुरुष होनेके नाते मेरा भी हिस्सा है, उसका आंशिक प्रयाश्चित्त करनेके लिए उनमें से एक लड़कीकी मैं विशिष्ट अर्थमें मां बन गया हूं, जैसा कि इससे पहले सामान्य अर्थमें मैं हजारों लड़कियोंकी मां बन चुका हूं।

मनु गांधी गांधीजीके भतीजेकी लड़की थी। वह उनकी पोतीके समान थी। बचपतमें ही मनुने अपनी मां खो दी थी। कस्तूरबा गांधोने आगाखान महलकी नजरबंदीके दौरान अपनी अंतिम बीमारीमें मनुकी सेवाकी मांग की थी। उस समय मनु दूसरी जेलमें नजरबन्दीकी सजा भोग रही थी। उसे आगाखान महलमें बुलाया गया। वह आई और उसने विरल निष्ठा और भक्तिसे कस्तूरबाकी सेवा की । बामें मनुको अपनी खोई हुईमां मिल गई थी। मरते समय कस्तूरबाने मनुको गांधीजीके हाथमें सौंपा था, तबसे कस्तूरबाके स्थान पर वे मनुकी 'मां' बन गये थे । मनु गांधीको एक पत्रमें उन्होंने लिखा था: "मैं पिता तो अनेकोंका बना हुं, लेकिन तेरी मैं मां बन गया हूं।"

मनुकी उमर १९ वर्षकी थी। सामान्यतः: उसकी उमरकी लड़कियोंमें काम-वासना जाग्रत हो जाती है। परन्तु मनुका यह दावा था कि वह इस वासनासे सर्वथा अपरिचित है। इससे गांधीजी थोड़ी परेशानी अनुभव करने लगे । उनका खयाल था कि या तो मनु अपने मनको जानती नहीं या वह खुदको और दूसरोंको धोखा दे रही है। उसके अभिभावक और 'मां' के नाते गांधीजीको जीवनमें उसका मार्गदर्शन करना था। 'मां' के नाते उन्हें लगा कि मुझे मनुका मन जान लेना चाहिये।

लड़कियोंके विवाहके बारेमें उनके विचार बहुत कड़े थे । भारतमें पुराणपंथी माता-पिता लड़कीके कुंवारी रहनेके खिलाफ अपनी नाराजी जाहिर करते हैं। बालिग हो जानेके बाद अपनी लड़कियोंको वे अविवाहित रहनेके लिए प्रोत्साहन नहीं देते । गांधीजीको यह सब बिलकुल पसन्द नहीं था । वे मानते थे कि लड़कियोंको अपना विकास करनेकी और वे चाहें तब तक ब्रह्मचारिणी रहनेकी पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये । परन्तु इन्द्रियोंका बलात्कारपूर्वक दमन किया जाय, इसे वे हानिकारक मानते थे। झूठी शरमसे किये जानेवाले इन्द्रिय-दमनको वे प्रोत्साहन नहीं देना चाहते थे । इसे वे लड़कियोंके लिए शापरूप और वांछित हेतुको निष्फल बनानेवाला मानते थे। मनु इस दृष्टिसे कहां खड़ी थी?

लड़कियां अपने पिताओंसे तो अक्सर अपने सच्चे मनोभावोंको छिपाती हैं, परन्तु माताओंसे नहीं छिपातीं। गांधीजीका दावा था कि मैं मनुकी मां हूं; और मनुने उनके इस दावेको स्वीकार किया था। उन्होंने सोचा, अगर इस दावेकी सत्यताकी परीक्षा की जा सके, तो उन्हें परेशान करनेवाली समस्याकी कुंजी इसमें से उन्हें मिल जाय । साथ ही साथ, इससे वे यह भी जान सकेंगे कि वे पूर्ण ब्रह्मचर्यके मार्ग पर कितने आगे बढ़े हैं।

परन्तु पिछले कुछ समयसे मनु गांधीजीसे दूर हट गई थी। इससे उन्हें दुःख हुआ था। अपनी एकाकी यात्राके लिए वे नोआखालीके श्रीरामपुर गांव पहुंचे, उसके बाद तुरन्त मनुने इस शर्त पर उनके पास लौटनेकी इच्छा पत्र द्वारा बताई कि वह उन्हींके पास रहकर उनकी सेवा करना चाहती है। उस समय गांधीजीने अपने सभी पुराने साथियोंको अपनेसे दूर भेज देनेका

निर्णय कर लिया था। परन्तु मनुके बारेमें उन्होंने, अपने यज्ञके एक अंगके रूपमें, एक अपवाद कर दिया । शर्त यह थी कि उसे पूर्णतया सत्यवादी रहना होगा और वे जो भी कसौटी उसकी करें उसमें से पार होनेके लिए उसे सदा तैयार रहना होगा । दोनोंके बीच किसी तरहका दुराव-छिपाव या गुप्तता नहीं होनी चाहिये । वे उसका न्याय नहीं करेंगे—इस अथेमें कि जब तक वह उनके साथ रहना चाहेगी और उनके अनुशासनका पालन करेगी तब तक वे अपने पाससे उसे दूर नहीं करेंगे। परन्तु जब वह स्वयं चाहे तब उनका वात्सल्य खोये बिना उनके पाससे जा सकती है । एकमात्र शर्त यह थी: **जिस क्षण उन्हें पता चले कि उसने जान-बूझकर असत्यका आचरण किया है या उन्हें धोखा दिया है, उसी क्षण दोनोंको अलग होना पड़ेगा**। मनुने गांधीजीसे कहा कि मैं तो अक्षरशः आपको अपनी मां ही समझती हूं, आपमें मैंने केवल मांके ही प्रेमका अनुभव किया है। गांधीजीने मनुके शब्दों पर पूरा विश्वास रखा और उसकी तथा अपनी कसौटी करनेका निर्णय किया।

कोई माता आम तौर पर अपनी पुत्रीके लिए जो कुछ करती है वह सब गांधीजीने मनुके लिए किया। वे उसकी शिक्षा, उसके भोजन, पोशाक, आराम और नींद—सब बातोंकी देखभाल रखते थे। अधिक गहरे निरीक्षण और मार्गदर्शनके लिए वे अपने साथ एक ही बिस्तर पर उसे सुलाते थे। कोई लड़की, अगर उसका मन बिलकुल निर्दोष हो, अपनी मांके साथ एक ही बिस्तर पर सोनेमें कभी संकोच अनुभव नहीं करती । अगर मनु वास्तवमें वैसी नहीं है जैसी होनेका वह दावा करती है, तो उन्हें पता चल जायगा। गांधीजी जानते थे कि इस प्रयोगमें परिणामको दूषित करनेवाली भ्रांतियां हो सकती हैं । परन्तु उन्हें दूर करनेके मार्ग थे। गांधीजीकी ब्रह्मचर्यकी व्याख्या इतनी व्यापक और सर्वग्राही थी ("सच्चे ब्रह्मचारीकी वाणीमें, विचारमें और कार्यमें कोई अद्‌भुत प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।" [गांधीजी, 'की टु हेल्थ', अहमदाबाद, १९४८, पृ० ४३-४४]) कि उसे सफलतापूर्वक पाखंड सिद्ध करनेके लिए किसी सवाये ब्रह्मचारीकी जरूरत पड़ती ।

गांधीजी बार-बार कहते थे कि मेरी सूक्ष्म जांचके सामने कोई लड़की लम्बे समय तक ढोंग नहीं कर सकती। और अगर मुझमें कोई दोष होगा तो उसका भी पता मुझे चल जायगा।

अगर उसमें या मुझमें कोई अशुद्धि नहीं होगी, तो वह प्रतिदिन सत्यवादिता, साहस और बुद्धिमत्तामें प्रगति करेगी । उसका जीवन अनुशासन, व्यवस्थितता और आत्म-नियंत्रणका प्रतीक होगा । उसके विचारोंमें स्पष्टता और वाणीमें दृढ़ता आयेगी—जिन गुणोंकी अभी तक उसमें कमी रही है। उसका चित्त सबल, जाग्रत और सदा ताजा बना रहेगा। उसमें चंचलता नहीं रहेगी, अस्थिरता नहीं रहेगी, शून्यमनस्कता नहीं रहेगी और न वह अपने कर्तव्योंको भूलेगी। इसी प्रकार उसमें प्रमाद और जड़ता भी नहीं रहेगी। उसकी नींद बालककी तरह शांत, अविचलित और स्वाभाविक होगी । उसके निश्चयोंमें दृढ़ता और स्थिरता होगी और उसका स्वभाव शांत और सन्तुलित रहेगा। उसके मुख पर हमेशा आनन्दपूर्ण प्रकाश चमकता रहेगा। वह न तो कभी मानसिक या शारीरिक थकान अनुभव करेगी, न अशक्ति और बीमारीकी शिकार होगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसमें न तो आसक्ति या संकुचित परियग्रह-व्रत्ति होगी, न ईर्ष्या-द्वेष होगा, बल्कि कर्तव्यके प्रति एकाग्र निष्ठा होगी।

गांधीजीसे कहा गया कि यह विषय ही ऐसा है कि प्रस्तुत उदाहरणमें इस प्रयोगका जो भी परिणाम आयेगा, वह स्वभावतः निर्णायक और अंतिम नहीं होगा । उन्होंने उत्तर दिया कि मैं इसके लिए भी तैयार हूं । मेरी कार्य-पद्धतिका केवल निदानकी दृष्टिसे ही मूल्य नहीं है, परन्तु चिकित्साकी दृष्टिसे भी मूल्य है । पूर्ण ब्रह्मचारी केवल स्वयं ही काम-वासना अथवा कामबोधसे पूर्णतया मुक्त नहीं होता, बल्कि विपरीत लिंगके जिन व्यक्तियोंके सम्पर्कमें वह आता है उनमें भी यह स्थिति निर्माण करता है। यदि मुझमें आवश्यक शुद्धता और पवित्रता होगी, तो वह मेरी पोतीमें बची-खुची अशुद्धताका भी—जिसे वह न जानती हो—ऊर्ध्वीकरण कर देगी। पतंजलि अपने 'योगसूत्र' में कहते हैं कि सम्पूर्ण अहिंसाकी स्थापना होने पर सारी शत्रुता नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्मचर्यकी स्थापना होने पर सारे विकार नष्ट हो जाने चाहिये। गांधीजीका अपना जीवन इसका एक जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत करता है । जवान लड़कियां और स्त्रियां बिना किसी डर या संकोचके उनके पास आती थीं और अपने मनकी गुप्तसे गुप्त बातें भी उन्हें बता देती थीं । इससे वे उनकी जितनी सेवा और सहायता कर सके उतनी भिन्न परिस्थितिमें कभी नहीं कर सकते थे।

गांधीजीने सत्य और अहिंसाके प्रयोगोंकी तरह ब्रह्मचर्यके प्रयोग भी पहले किये थे। **परन्तु यह प्रयोग उनके जीवनमें एक "प्रयोग" के रूपमें नहीं परन्तु कठोर कर्तव्यके रूपमें आया था और इसलिए वह उनकी तपस्या अथवा यज्ञका एक अंग बन गया था।** नोआखालीके अपने श्रद्धामय साहसको गांधीजी तपस्या अथवा यज्ञ कहते थे। लेकिन इसने एक तूफान खड़ा कर दिया। उनके एक सहयोगी कार्यकर्ताने, जिसे वे अपनी मंडलीके एक सदस्यके रूपमें श्रीरामपुर ले गये थे, उनसे कहा कि यदि आप मेरा दृष्टिकोण स्वीकार न करें, तो मेरे विरोधके चिह्नके रूपमें आप मुझे अपने कर्तव्योंसे मुक्त कर दें। गांधीजीने उससे कहा कि इन परिस्थितियोंमें तुम्हारी मुक्त होनेकी मांग उचित ही है। उस कार्यकर्ताको जानेकी इजाजत देनेवाले पत्रमें गांधीजीने लिखा:

> मैंने तुम्हारा पत्र पढ़ा है। . . . उसमें ऐसे अर्धसत्य हैं, जो खतरनाक हैं । . . . मैं तुम्हारी मांगें स्वीकार नहीं कर सकता । दूसरी जो बातें तुमने अपने पत्रमें उठाई हैं, वे मेरे गले नहीं उतरतीं । . . . चूंकि मेरी ऐसी राय है और हमारे बीच आदर्शोंका संघर्ष है तथा तुम स्वयं मुक्त होना चाहते हो, इसलिए तुम आज ही मुझे छोड़ देनेके लिए स्वतन्त्र हो। यह सम्मानपूर्ण और सत्यपूर्ण होगा। मैं तुम्हारी स्पष्टवादिता और साहसिकताको पसन्द करता हूं। . . . मैं तुम्हारे अन्य गुणोंको बाहर लानेका प्रयत्न करनेकी आशा रखता था। मुझे दुःख है कि अब यह नहीं हो सकता। . . . मैं हमेशा तुम्हारे भविष्यमें रस लेता रहूंगा और जब कभी तुम्हें लिखने जैसा लगे तब पत्र द्वारा तुम्हारे हालचाल जानकर मुझे खुशी होगी। अन्तमें मैं तुमसे कह दूं कि तुमने मुझमें और मेरे आसपासके वातावरणमें जो भी बुराई देखी हो, उसे प्रकाशित करनेके लिए तुम स्वतन्त्र हो। . . .

मित्रोंने गांधीजीसे पूछा कि आप जब नोआखालीमें अपने महान मिशनमें लगे हुए हैं, उस समय आप इस बातके लिए इतना समय और इतना ध्यान कैसे दे सकते हैं? गांधीजीने मनुसे कहा: "वे लोग सोचते हैं कि यह मेरे मोहकी निशानी है । लेकिन मैं उनके अज्ञान पर हंसता हूं । वे समझते नहीं हैं । तेरे लिए मैं जो समय और शक्ति खर्च करता हूं, उसे मैं उचित रीतिसे खर्च किया हुआ समय और शक्ति मानता हूं । अगर मैं तेरी आदर्श माता बनकर भारतकी करोड़ों

पुत्रियोंमें से एकको भी तालोम देकर आदर्श नारी बना सकूं, तो मैं भारतकी नारीजातिकी अनुपम सेवा करूंगा। **सम्पूर्ण ब्रह्मचारी बनकर ही मनुष्य स्त्रीकी सच्ची सेवा कर सकता है**।"

गांधीजीकी दृष्टिमें इसका अर्थ काम-वासना पर विजय प्राप्त करना और उसका ऊर्वीकरण करना था । एक बार उन्होंने अपना वर्णन "अर्थ-नारी" के रूपमें किया था। श्रीमती पोलाकने गांधीजी-सम्बन्धी अपने संस्मरणोंमें गांधीजीके "लिंगभेद-शून्यता" के गुणका विशेष उल्लेख किया है। यह गुण दक्षिण अफ्रीकाके उनके जीवनमें भी अत्यन्त प्रमुख रूपमें देखा जा सकता था; इस गुणके कारण स्त्रियां उनके सामने अपना संकोच और शर्म छोड़ सकती थीं । [गांधीजी ऐज़ वी नो हिम, संपा. चन्द्रशंकर शुक्ल, बम्बई, १९४५, पृ० ४७] एक बार उच्च शिक्षा प्राप्त की हुई धनी परिवारकी एक भारतीय महिलाने कहा था: "हमारे जीवनसे सम्बन्धित कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिनके विषयमें किसी पुरुषसे न तो हम स्त्रियां बात कर सकती हैं और न चर्चा कर सकती हैं । लेकिन गांधीजीसे बात करते समय हम पता नहीं किस तरह इस सत्यको भूल जाती हैं कि वे एक पुरुष हैं।" [चन्द्रशंकर शुक्ल, 'गांधीजीज़ व्यू ऑफ लाइफ', बम्बई, १९५१, पृ० १९९]

गांधीजीका यह गुण समयके साथ विकसित होता गया था । दक्षिण अफ्रीकामें उन्होंने पुरुषों और स्त्रियों दोनोंका कुदरती उपचार किया था, और, जैसा कि हर आदमी जानता है, उस उपचारमें संकोचके लिए कोई स्थान नहीं होता। भारत लौटने पर इस प्रयोगका उन्होंने विस्तार किया था। सेवाग्राम आश्रममें वे प्राय: स्त्री-रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषाका काम पुरुष-परिचारकों (नर्सों) को सौंपते थे और पुरुष-रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषाका काम स्त्री-परिचारिकाओंको सौंपते थे । इन नर्सों और रोगियोंमें भारतीय और यूरोपियन दोनों होते थे। गांधीजीके सेवाग्राम या साबरमती आश्रममें कोई "दीवालें" नहीं थीं। उनका "निजी जीवन" जैसा कुछ था ही नहीं। उनके अत्यन्त व्यक्तिगत कार्य भी एकांतमें नहीं किये जाते थे । इस प्रकार वे लगभग नग्नावस्थामें रहकर ही मालिश कराते थे और अक्सर जवान लड़कियां उनकी मालिश करती थीं । वे जब इस अवस्थामें मालिशकी टेबल पर फैले होते तभी अक्सर मुलाकातियोंसे और कांग्रेस कार्यकारिणीके सदस्योंसे भी मिलते थे। इसी प्रकार जल-चिकित्सा लेते समय भी वे अपनी

सहायताके लिए पुरुषों और स्त्रियों दोनोंको अपने पास आने देते थे और उनके स्नानके समय हर कोई गुसलखानेमें जा सकता था। टोरी नेता चर्चिलने गांधीजीके लिए "अर्धनग्न फकीर" जैसे अपमानजनक उपनामका प्रयोग किया था। परन्तु चर्चिलको लिखे अपने प्रसिद्ध पत्रमें इस अपमानजनक उपनामको अपने लिए प्रशंसासूचक मानते हुए गांधीजीने लिखा था कि मेरी अभिलाषा पूर्णतया नग्न बननेकी है—शाब्दिक अर्थमें और लाक्षणिक अर्थमें भी—यद्यपि दूसरे अर्थमें पूर्णतया नग्न बनना अधिक कठिन है । (देखिये खण्ड-१, पृ० ४४-४५)

भारतके प्राचीन दार्शनिक साहित्यमें शुकदेवकी कथा आती है, जो विकाररहित स्थितिमें जनमे थे। वे जन्मसे ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। यद्यपि वे नौजवान थे और नंगे ही घूमते थे, फिर भी स्त्रियां उनकी उपस्थितिमें लज्जा या संकोच अनुभव नहीं करती थीं । परन्तु वही स्त्रियां शुकदेवके पिता व्यासजीकी उपस्थितिमें स्वयंको मुक्त अनुभव नहीं करती थीं; यद्यपि व्यासजी वृद्ध थे, प्रकांड विद्वान थे और अपने आत्म-संयमके लिए प्रसिद्ध थे । इसका कारण यह दिया गया है कि अपने प्रचण्ड आत्म-संयमके बावजूद व्यासजीने अभी तक लिंगभेद-शून्यताकी अथवा यौनबोधसे मुक्तिकी वह स्थिति प्राप्त नहीं को थी, जो पूर्ण ब्रह्मचारीका मुख्य लक्षण माना गया है। और क्या ईसा मसीहने भी "मेरे लिए नपुंसक बननेवालों" का उल्लेख नहीं किया है? "कुछ नपुंसक माताके पेटसे ही इस रूपमें जन्म लेते हैं, कुछको मनुष्य नपुंसक बना देते हैं और कुछने ईश्वरीय राज्यके प्रति प्रीति होनेके कारण स्वयं अपनेको नपुंसक बना लिया है।" [मैथ्यू, १९: १२ (नॉक्स)] परन्तु ईसा मसीहने यह कहनेकी सावधानी रखी है कि इस सत्यको सब कोई आचरणमें नहीं उतार सकते; यह उन्हीं लोगोंके लिए है जिनमें इसके लिए क्षमता है। "ऐसा हर आदमी इसे आचरणमें उतार सकता है, जिसमें यह आचरण करनेकी शक्ति है।" [वही (मॉफेट)]

गांधीजी कहते हैं: "जो मनुष्य अपने जीवनको धर्म-परायण बनाना चाहता है, जो जीवमात्रकी सेवाको अपना आदर्श मानकर संसार-यात्रा पूरी करना चाहता है, उसीके लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य अथवा विवाहित ब्रह्मचर्यके आदर्शका विचार किया जा सकता है। ऐसे जीवनके लिए यह अनिवार्य है। " [हरिजन, ५ जून १९३७, पृ. १३४] "काम-वासनाकी तृप्तिके लिए किया जानेवाला संभोग त्याज्य है। लेकिन इसे निन्द्य मानना जरूरी नहीं। असंख्य स्त्री-पुरुषोंका मिलन

भोगके लिए ही होता है और आगे भी होता रहेगा। इससे जो हानिकारक परिणाम आयेंगे, वे ऐसे लोगोंको भोगने पड़ेंगे। [वही] कुछ ही लोग जीनेके लिए खाते हैं; वे ही सच्चे अर्थमें खानेका नियम जानते हैं। इसी प्रकार कुछ ही लोग स्त्री-पुरुषमें निहित पवित्र सम्बन्धका अनुभव करनेके लिए, ईश्वर-तत्त्वको पहचाननेके लिए, एक-दूसरेके साथ विवाह-सम्बन्धमें बंधते हैं । ऐसे ही स्त्री-पुरुष विवाह-धर्मको समझते हैं और उसका पालन करते हैं।" [हरिजन, ७ जुलाई १९४६, पृ० २१४]

गांधीजी आरम्भ-कालके मरुभूमिमें निवास करनेवाले ईसाई साधकों और तपस्वियोंके इस विचारसे सहमत नहीं थे कि "जीवन स्वयं एक अनिष्ठ वस्तु है।" अथवा रोमके संत ग्रेगरीके इस मतके साथ भी वे सहमत नहीं थे कि "तुम विवाह करोगे तो तुम्हें बच्चे होंगे और उनमें से अधिकतर बच्चोंका उद्धार होनेके बजाय उनके नरकमें जानेकी ही अधिक संभावना है, इसलिए बच्चे रखना एक दयाजनक स्थिति है ।" [जिराल्ड हर्डका पत्र प्यारेलालको, ३ मार्च १९४९] परन्तु गांधीजी जिराल्ड हर्डके इस कथनके अवश्य ही बहुत निकट थे कि "ईसाई तपस्वी इस बातको निश्चित रूपसे समझते थे—यद्यपि जाग्रत रूपमें नहीं—कि . . . दूसरोंको अधिक मिलनेके खयालसे जीवनमें कमसे कम लेनेकी बातको छोड़ दें तो भी . . . भोजनमें संयम रखनेसे तथा ब्रह्मचर्यके पालनसे सच्चे चिन्तनके लिए आवश्यक उच्च कोटिकी एकाग्रता निश्चित रूपसे संभव होती है ।" [वही]

संक्षेपमें, यह सच है कि गांधीजी विवाहको किसी भी अर्थमें "पाप" अथवा "अपने वंशजों द्वारा वंश-परम्पराको निरन्तर चालू रहते देखने" की मानव-वृत्तिको "अधर्म" माननेसे इनकार करते थे; परन्तु वे यह जरूर मानते थे कि केवल भोगके लिए संभोगका उच्चतम आध्यात्मिक उन्नतिके साथ मेल नहीं बैठता। उन्होंने कहा था: "काम-वासना सुन्दर और उदात्त वस्तु है। उसमें शरमाने जैसी कोई बात नहीं है। लेकिन वह केवल सन्तानोत्पत्तिके लिए ही है । काम-वासनाका इसके सिवा दूसरा कोई उपयोग ईश्वर तथा मानव-जातिके प्रति अपराध है।" [हरिजन, २८ मार्च १९३६, पृ० ५३]

स्वयं अपने लिए तो गांधीजी ईसा मसीह द्वारा बताई हुई लिंगभेद-शून्यताकी स्थिति प्राप्त करनेकी महत्त्वाकांक्षा रखते थे। उस स्थितिको प्राप्त किये बिना उनकी सत्यकी शोध पूर्ण नहीं हो सकती थी । यह वस्तु उनके नोआखालीके यज्ञका एक अविभाज्य अंग बन गई थी।

३

गांधीजीने अन्तर्मुख होकर, हृदयमें गहरे उतर कर, आत्म-निरीक्षण करनेमें कितने ही दिन और रातें बिताईं। इस सम्बन्धमें उनके सामने जो भी दृष्टिकोण या तर्क प्रस्तुत किया गया, उस पर उन्होंने धैर्यके साथ सच्चे हृदयसे विचार किया । उन्होंने सारे सम्बन्धित लोगोंको यह बताया कि इस महासत्यकी शोधमें मुझे सब लोगोंकी, विशेषत: विरोधियों और आलोचकोंकी सहायता और सहयोगकी जरूरत है।

यह बात गांधीजीने हॉरेस एलेक्ज़ेंडरके सामने रखी । सी. एफ. एण्ड्र्यूजकी मृत्युके बाद गांधीजीने अनेक बार हॉरेससे कहा था कि तुमसे मैं अपने अंग्रेज या ईसाई 'मार्गदर्शक' के रूपमें काम करनेकी आशा रखता हूं । अब गांधीजीने इस प्रश्न पर एक ईसाईके नाते अपनी प्रतिक्रिया बतानेको उनसे कहा । हॉरेसको लगा कि ब्रह्मचर्यकी परीक्षाके लिए ऐसा चरम कोटिका कदम जरूरी नहीं मालूम होता। क्या यह परीक्षा इससे थोड़े कम तीव्र ढंगसे नहीं की जा सकती ? उन्होंने गांधीजीसे कहा कि खंभेके सिरे पर चढ़कर आत्म-नियंत्रणकी अपनी शक्ति प्रदर्शित करनेके संत साइमन स्टाइलिटीज़के कदमकी मैंने कभी तारीफ नहीं की है। "सारी बातोंमें मर्यादा रखनी चाहिये" यह एक सुन्दर प्राचीन सूत्र है। गांधीजीने यह बात स्वीकार की । उन्होंने कहा, संत साइमन स्टाइलिटीज़के उदाहरणका अनुकरण नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे मिथ्याभिमानी और चिड़चिड़े स्वभावके थे । मैंने जो कदम उठाया है वह यह सिद्ध करनेके लिए नहीं उठाया है कि **मैं स्वयं** कया कर सकता हूं, बल्कि इसलिए उठाया है कि मेरी पोतीके अनुशासनके लिए वह एक जरूरी कदम है। उसके पीछे मेरा आशय अपनी पोतीके उस विश्वासकी सत्यताकी पूरी कसौटी करना है, जो उसने मुझे दिया है। साथ ही, इससे मेरी अपनी कसौटी भी हो जायगी। अगर मेरी सचाईका असर उस पर पड़े और जो सद्गुण मैं उसमें पैदा

करना चाहता हूं वे उसमें पैदा हों, तो उससे यह सिद्ध होगा कि मेरी सत्यकी शोध सफल हुई। **तब मेरी सचाईका असर मुसलमानों पर, मुस्लिम लीगमें मेरे विरोधियों पर और जिन्ना पर भी पड़ेगा**, जिन्हें मेरी सचाई पर शंका है और जिस शंकाके कारण उन्हें और हिन्दुस्तानको नुकसान हो रहा है।

अपने हमेशाके रिवाजके अनुसार गांधीजीने लोगोंको अपने विश्वासमें लिया। अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने कहा कि मेरे आसपास चल रही "कानाफूसी और व्यंग्योक्तियों" का मुझे पता चला है। मेरे चारों ओर शंका-कुशंकाओं तथा अविश्वासका पहलेसे इतना बोलबाला है कि मैं नहीं चाहता कि मेरे अत्यन्त निर्दोष कार्योंके बारेमें लोगोंमें गलतफहमी फैले या लोगोंके सामने उन्हें गलत ढंगसे रखा जाय । मेरे साथ मेरी पोती रहती है। वह मेरे साथ एक ही बिस्तर पर सोती है। ऑपरेशनसे नपुंसक बननेवाले पुरुषोंकी मुहम्मद पैगम्बरने निन्दा की है । लेकिन ऐसे नपुंसकोंका उन्होंने स्वागत किया है, जो प्रार्थना द्वारा ईश्वरके बनाये हुए हैं । मेरी आकांक्षा ऐसा नपुंसक बननेकी है । मैं जिसे अपना कर्तव्य मानता हूं उसे मैंने ईश्वरके नपुंसककी भावनासे हाथमें लिया है | मैं नोआखालीमें जो यज्ञ कर रहा हूं, उसका यह प्रयोग एक अभिन्न अंग है और इस प्रयत्नके लिए मैं आपका आशीर्वाद चाहता हूं। मैं जानता हूं कि मेरे इस कार्यने मेरे मित्रोंको भी मेरे आलोचक बना दिया है। परन्तु घनिष्ठसे घनिष्ठ मित्रोंके लिए भी कर्तव्यकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। [प्रार्थना-प्रवचन, १ फरवरी १९४७] मीराबहनके पत्रमें गांधीजीने लिखा : "सत्यका मार्ग अस्थि-पंजरोंसे बना है और हम उस पर चलनेका साहस कर रहे हैं।" [गांधीजीका पत्र मीराबहनको, ६ फरवरी १९४७]

दूसरे दिन इसी विषय पर बोलते हुए उन्होंने प्रार्थना-सभामें श्रोताओंसे कहा: मैंने जान-बूझ कर मेरे निजी जीवनकी बात आपके सामने रखी है, क्योंकि मैंने यह कभी नहीं माना कि व्यक्तियोंका निजी जीवन सार्वजनिक कार्यों पर असर नहीं डालता । इस प्रकार मैं यह नहीं मानता कि निजी जीवनमें दुराचारी रहते हुए भी मैं कुशल और प्रभावशाली लोकसेवक हो सकता हूं । मेरे निजी आचरणका प्रभाव मेरे सार्वजनिक आचरण पर पड़े बिना रह ही नहीं सकता । मैं मानता हूं कि सार्वजनिक आचरण और निजी आचरणका सम्बन्ध तोड़ देनेसे दुनियामें बड़ी बड़ी

बुराइयां पैदा हुई हैं । जब मैं अपने जीवनमें अहिंसाकी सर्वोच्च परीक्षा करनेमें लगा हूं तब मैं चाहता हूं कि मेरे निजी और सार्वजनिक जीवनके समस्त कार्योंके कुल योगसे ईश्वर और मानव-जाति मेरा न्याय करें। वर्षों पहले मैंने कहा था कि अहिंसक जीवन व्यक्ति, समूह या राष्ट्रके लिए आत्म-निरीक्षण और आत्मशुद्धिका कार्य है।

तीसरे दिन उन्होंने चेतावनीके स्वरमें श्रोताओंसे कहा: मैंने अपने निजी जीवनके बारेमें जो कुछ कहा है, उसका बिना सोचे-विचारे अनुकरण नहीं करना चाहिये । मैंने कभी असाधारण शक्तियां रखनेका दावा नहीं किया है । मैं जो कुछ करता हूं, उसे सब कोई कर सकते हैं। परन्तु **मैं जिन शर्तोंका पालन करता हूं, उनका पालन उन्हें करना होगा। अगर ऐसा न किया जाय, तो जो लोग मेरे आचरणका अनुकरण करनका ढोंग करेंगे, वे नरकमें जायंगे** । मैं जो प्रयोग कर रहा हूं वह बेशक खतरनाक है । लेकिन अगर शर्तोंका कड़ाईसे पालन किया जाय, तो वह खतरनाक नहीं रह जाता । इन शर्तोंका सार मैंने अपनी पुस्तक 'आरोग्यकी कुंजी' में दिया है : " पूर्ण ब्रह्मचर्यके जो अमोघ लाभ हैं, वे इससे (अपूर्ण ब्रह्मचर्यसे) नहीं मिलते । फिर भी इसकी कीमत मामूली नहीं है । अपूर्ण ब्रह्मचर्यके बिना पूर्ण ब्रह्मचर्य असंभव है।"

गांधीजीने अपने घनिष्ठ सित्रोंको अनेक पत्र लिखे और इस सम्बन्धमें उनका मत और उनकी आलोचना मांगी। एक दिन उन्होंने बारह पत्र लिखे। उनमें इस विषय पर गांधीजीका सूक्ष्मसे सूक्ष्म आत्म-निरीक्षण भरा था। एक पत्रमें उन्होंने तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष आचार्य कृपलानीको लिखा था:

> यह एक अत्यन्त व्यक्तिगत पत्र है, लेकिन गुप्त नहीं है।
>
> मनु गांधी खूनके रिश्ते अनुसार मेरी पोती है और वह मेरे यज्ञके—जो शायद अंतिम हो सकता है—एक भागके रूपमें . . . स्वयं मेरा ही खून हो इस प्रकार, मेरे साथ एक ही बिस्तर पर सोती है । इसको वजहसे मुझे अपने कुछ प्रियतम मित्रोंको खोना पड़ा है | . . . मेरे एक प्रियतम और सबसे पुराने साथीके नाते तुम्हें . . . वे लोग जो कुछ कहते हैं उसके प्रकाशमें अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना है। . . . मैंने इस बात पर गहनतम

विचार किया है । सारी दुनिया मेरा त्याग कर सकती है, परन्तु जिसे मैं अपने लिए सत्य मानता हूं उसका त्याग मैं नहीं कर सकता। संभव है कि मेरा यह मोह हो और निरा इन्द्रजाल हो । यदि ऐसा हो तो मुझे इसकी प्रतीति होनी चाहिये । इसके पूर्व मैंने सर्वनाशका खतरा उठाया है। इसका परिणाम भी यदि सर्वनाशमें ही आना हो तो भले आये।

मुझे इस प्रश्न पर दलील नहीं करनी चाहिये । मैंने केवल अपने विचारोंकी तीव्रता ही तुम्हें बताई है।

मेरा सुझाव है कि तुम 'क' और 'ख के साथ इस प्रश्नकी चर्चा करो । उसके बाद तुम अपने निर्णय पर पहुंचो और मुझे बताओ । . . . इस सम्बन्धमें तुम मेरी भावनाओंका विचार मत करना। मेरी कोई भावना है ही नहीं। मैं केवल इतना ही चाहता हूं कि जिसे मैं सत्य मानता हूं, उसका आचरण किसी भी कीमत पर करूं । [गांधीजीका पत्र आचार्य कृपलानीको, २४ फरवरी १९४७]

आचार्य कृपलानीने उत्तरमें लिखा:

आपने मुझे अपने विश्वासमें लिया, यह मुझ पर आपकी बड़ी कृपा और अपार स्नेहको प्रकट करता है। . . . आपसे निकट सम्बन्ध रखनेवाले अनेक व्यक्तियोंसे मैंने इस सम्बन्धमें कुछ बातें सुनी थीं,। किन्तु जब भी कभी इस विषयमें मेरे सामने बात निकली, मैने उसे बन्द कर दिया। मैंने उनसे कहा कि मैं न तो इस बारेमें कोई बात सुनना चाहता हूं और न इस पर चर्चा करना चाहता हूं । . . . मेरा दिमाग एक ही पटरी पर चलनेवाला है। मुझे जिस समय जो काम सौंपा जाता है उस समय मैं उसीमें अपने आपको सीमित कर लेता हूं । लेकिन अब उस विषयमें आपने स्वयं ही मुझे लिखा है, इसलिए मुझे अपनी प्रतिक्रिया आपको बतानी ही चाहिये।

ये सब बातें मुझे अपनी समझसे बाहर मालूम होती हैं। इसके सिवा, अपने आपको नीतिके मार्ग पर बनाये रखनेके लिए मेरे पास काफी काम करनेको रहता है, इसलिए

दूसरे लोगोंका—खास करके जो लोग नीतिकी दृष्टिसे और आध्यात्मिक दृष्टिसे मुझसे कहीं ज्यादा आगे हैं उनका—काजी बननेके लिए मेरे पास समय ही नहीं रहता। मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि आपमें मेरी सम्पूर्ण श्रद्धा है। जो प्रयोग आप कर रहे हैं, उसे कोई नीतिभ्रष्ट मनुष्य नहीं कर सकता । यदि मेरे मनमें कोई शंका हो, तो भी आप पर अविश्वास करनेके बजाय मैं अपनी आंखों और अपने कानों पर ही अविश्वास करूंगा । क्योंकि आपकी अपेक्षा मेरी इन्द्रियां मुझे धोखा दें, इसकी अधिक संभावना है। इसलिए मैं स्वस्थ और शान्त बना रहता हूं।

कभी कभी मुझे लगता है कि . . . आप मानव-प्राणियोंका साध्यकी अपेक्षा साधनके रूपमें हीं उपयोग करते होंगे । लेकिन तब मैं यह सोचकर सान्त्वना ग्रहण करता हूं कि यह खयाल आपके दिमागसे बाहर नहीं हो सकता और यह कि यदि आपको अपने आपमें विश्वास हो तो उनको कोई हानि नहीं पहुंच सकती । तब यह जानते हुए कि आप गीताके महान अभ्यासी हैं, मेरे मनमें यह प्रश्न उठता है कि आप ऐसा करके गीतामें बुद्धिमत्तापूर्वक प्रतिपादित लोक-संग्रहके सिद्धान्तका तो भंग नहीं करते । लेकिन मेरा विश्वास है कि यह विचार भी आपके इस प्रयोगमें आपके ध्यानसे बाहर नहीं रहा होगा।

मैंने अपने जीवनको, जैसा भी वह है, आपसे दूर रह कर ढाला है। आपसे मेरे सम्बन्ध हमेशा राजनीतिक स्वरूपके रहे हैं। मैंने अपने व्यक्तिगत जीवनके बारेमें आपसे कभी सलाह-मशविरा नहीं किया है। फिर भी आपने मेरे जीवनको, मेरे कल्याणके लिए, प्रबल रूपमें प्रभावित किया है । जो सिद्धान्त मैंने आपसे सीखें हैं, उनके अनुसार मैं जीवनमें चल नहीं सकता । परन्तु बौद्धिक दृष्टिसे मेरी यह प्रतीति हो गई है कि उसी मार्ग पर चलनेमें मानव-जातिका उद्धार समाया हुआ है। इसलिए मैं दूसरोंक लिए आपके विचारोंकी अधिक आधुनिक और सुबोध भाषामें व्याख्या करनेवाला एक नम्र भाष्यकार ही रहा हूं। आज मेरे जीवनकी एकमात्र महत्त्वाकांक्षा यह है कि मैं आपके विचारोंका ऐसा भाष्यकार ही बना रहूं । . . . मेरा विश्वास है कि जब तक आपमें मुझे पागलपन और विकृतिके लक्षण दिखाई नहीं देते, तब तक आपके विषयमें मेरा भ्रम कभी दूर नहीं होगा।

लेकिन ऐसे कोई लक्षण मुझे आपमें दिखाई नहीं देते । मैं जानता हूं कि स्त्रियोंके बारेमें आपका जो रुख है, वही एकमात्र सच्चा रुख है। क्योंकि आप उन लोगोंमें से एक हैं, जो स्त्रीको अपने आपमें एक साध्य मानते हैं, न कि केवल एक साधन । आपने कभी स्त्रीका शोषण नहीं किया है—उसका दुरूपयोग नहीं किया है। [आचार्य कृपलानीका पत्र गांधीजीको, १ मार्च १९४७]

परन्तु ऐसे ही उदात्त और उदार मनवाले दूसरे मित्र भी थे, जिनकी शंका-कुशंकायें कटुभाषी तथा ऊपरसे अनादरपूर्ण दिखाई देनेवाले आचार्यसे कहीं ज्यादा गहरी थीं। वे तर्क करते थे, "आप महात्मा हैं, लेकिन दूसरे व्यक्तिका क्या?" क्या सन्तोंके जीवन उनके प्रलोभनकी घटनाओंसे भरे हुए नहीं हैं? मनुको "महान प्रलोभन" कहकर ये लोग गांधीजीको दोषमुक्त घोषित करना चाहते थे। वे कहते थे कि यह एक प्राचीन कालसे चली आ रही युक्ति है, जिसका प्रयोग शैतान और कभी कभी ईर्ष्यालु देवता भगवानके भक्तोंका चित्त कलुषित बनाकर उन्हें तपोभ्रष्ट करनेमें करते हैं। गांधीजीने स्वयंको दोषमुक्त करनेकी इस रीतिको स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। यह आरोप अत्यन्त अन्यायपूर्ण और सत्यसे बहुत दूर था।

दूसरे कुछ लोग गांधीजी और उनके साथियोंमें भेद करते थे। उनकी दुष्टिमें गांधीजी तो सच्चे थे, परन्तु उनके साथी सब झूठे थे । क्या यह इस बातको नहीं बताता कि गांधीजीके तत्त्वज्ञानमें ही कहीं दोष था? परन्तु गांधीजी इस कथनसे भी सहमत नहीं हुए। उनके निकटतम साथी यदि झूठे हों, तो वे स्वयं सर्वथा सच्चे नहीं हो सकते। गांधीजीका यह दावा था कि वे अपने साथियोंके गुण-दोष उनके आलोचकोंसे अधिक जानते हैं।

आलोचकोंने उत्तरमें कहा: "हम यह माननेको तैयार हैं कि आप अपने आचरणसे आध्यात्मिक उन्नति साध सकते हैं; लेकिन सम्भव है कि इससे दूसरे व्यक्तिको हानि पहुंचे, जिसमें आपके जैसी साधनाका अभाव है।" गांधीजीने समझाया: "नहीं, यह तो परस्पर विरोधी बात है। दूसरेको हानि पहुंचा कर किसीकी आध्यात्मिक उन्नति हो ही नहीं सकती। साथ ही, यह भी सच

है कि उचित खतरे जीवनमें उठाने ही चाहिये, वर्ना मानव-जाति कभी भी प्रगति नहीं कर सकती।"

अपनी बातके समर्थनमें उदाहरण देते हुए गांधीजीने एक रूपक-कथा कही : कुम्हार जब मिट्टीका घड़ा बनाने लगता है तब यह नहीं जानता कि घड़ेको आवेंमें पकानेके लिए रखने पर उसमें दरार पड़ जायगी या वह अच्छी तरह पक कर बाहर निकलेगा। यह अनिवार्य है कि कुम्हार जितने घड़े आवेंमें रखता है, उनमें से बहुतसे टूटेंगे, कुछमें दरारें पड़ेगी और कुछ घड़े अच्छी तरह पक कर मजबूत और सम्पूर्ण घड़ोंके रूपमें बाहर आयेंगे। "मैं उस कुम्हारकी तरह हूं। मैं आशा और श्रद्धासे काम करता हूं। कोई घड़ा टूटेगा या उसमें दरार पड़ेगी या नहीं, यह तो संयोग और भाग्य पर निर्भर करता है। कुम्हारको इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। **मिट्टी उत्तम प्रकारकी** है, गंदगी और कंकरोंसे मुक्त है और उसे अच्छी तरह आकार दिया गया है, इस बारेमें **वह उचित सावधानी रखे, तो उसका कर्तव्य पूरा हो जाता है** । परन्तु इतना करनेके बाद उसे परिणाम सर्वथा ईश्वर पर छोड़ देना चाहिये। यदि चुनी हुई मिट्टी अच्छी है और कुम्हारने आवश्यक सावधानी रखी है, तो उसका कर्तव्य पूरा हो जाता है । बाकीकी बातें अपनी चिन्ता स्वयं कर लेंगी । परन्तु यदि मिट्टी साफ-स्वच्छ न हो या उसमें बालू, कंकर वगैरा हों, तो घड़ा भद्दा और बेडौल बनेगा और कुम्हारकी बड़ीसे बड़ी सावधानीका भी कोई नतीजा नहीं निकलेगा । मैंने जान-बूझ कर अपने जीवनमें कोई गलत काम नहीं किया है। जब कभी मैंने अनजाने कोई गलत काम किया है तब अपनी गलतीका ज्ञान होते ही मैंने सार्वजनिक रूपमें उसे स्वीकार किया है और उसके लिए उचित प्रायश्चित्त भी किया है। इसी प्रकार वर्तमान उदाहरणमें मैं जिस मिट्टी पर काम कर रहा हूं उसमें या स्वयं अपनेमें जिस क्षण मुझे थोड़ी भी अशुद्धि या मलिनता दिखाई देगी उसी क्षण—कुम्हार निकम्मे बरतनोंके बारेमें करता है उसी प्रकार—मैं उस मिट्टीको तुरन्त फेंक दूंगा और अपनी अयोग्यताको सारी दुनियाके सामने स्वीकार कर लूंगा।"

आलोचक मानते थे कि ब्रह्मचर्यके विषयमें अथवा महाव्रतोंमें से किसी भी व्रतके विषयमें प्रयोगकी गुंजाइश नहीं है । आचारके मूलभूत नियमोंमें किसी भी तरहका हस्तक्षेप नहीं किया

जा सकता; यदि ऐसा किया जाय तो समाजका सर्वनाश हो जाय । गांधीजी इस विचारसे सहमत नहीं थे । कोई भी आदर्श जड़ नहीं होता। आदर्श तभी जीवन्त रह सकते हैं जब वे समाजके विकास और उसकी बढ़ती हुई जरूरतोंके साथ बढ़ें और विकसित हों । गांधीजी मानते थे कि "ब्रह्मचर्यके विषयमें पहले भी प्रयोग किये गये हैं और आज भी किये जा रहे हैं; और ऐसा होना ही चाहिये।" ऐसा होनेके कारण "प्रगति करनेके लिए हमें अक्सर सामान्य प्रयोगकी सीमाओंसे परे जाना पड़ता है। सामान्य अनुभव या सामान्य विश्वासोंको चुनौती देनेके फलस्वरूप ही बड़ी बड़ी शोधें संभव हुई हैं । मामूली दियासलाईका आविष्कार चकमक पत्थरके सामान्य अनुभवको चुनौती देनेसे संभव हुआ है और बिजलीके आविष्कारने तो पहलेकी सारी पूर्वकल्पित मान्यताओंको खतम कर दिया है। जो बात भौतिक वस्तुओंके बारेमें सच है, वही आध्यात्मिक वस्तुओंके बारेमें भी सच है। . . . आत्म-संयमकी दिशामें हम कहां तक आगे बढ़ सकते हैं, इसके प्रयोग करना हमारा अधिकार और कर्तव्य है।" [गांधीजी, 'की टु हेल्थ', अहमदाबाद, १९४८, पृ० ४७-४८]

एक मित्रके पत्रमें गांधीजीने लिखा: "मैं कहता हूं कि मार्गमें पड़े हुए कांटों, पत्थरों और खड्डोंसे आप डर जायं, तो इस मार्ग (ब्रह्मचर्यके मार्ग) पर आगे नहीं बढ़ सकते । संभव है कि हम चलते चलते मार्गमें ठोकर खा जायं या लड़खड़ा जायें, हमारे पैरोंसे खून बहने लगे, हम नष्ट भी हो जायें । परन्तु हम कभी पीछे नहीं लौट सकते ।" [गांधीजीका पत्र, २२ फरवरी १९४७] मुझे लगता है कि ब्रह्मचर्यका मार्ग, उदाहरणके लिए, अहिंसाके मार्गसे ज्यादा कठिन नहीं होना चाहिये । परन्तु "इस विषयके हमारे अज्ञानके कारण, जिसके साथ अनावश्यक गुप्तताको जोड़ दिया गया है," इस मार्गको अनावश्यक रूपमें कठिन बना दिया गया है। नतीजा यह है कि "हमारे विचार अस्पष्ट हो जाते हैं। हम परिणामोंका सामना करनेसे डरते हैं। हम अधूरे उपायोंको पूर्ण अथवा अन्तिम मान कर उनका सहारा लेते हैं और उनके अमलको अत्यन्त कठिन बना देते हैं । यदि हमारे विचार स्पष्ट हों, हम दृढ़ और स्थिर हों, तो हमारी वाणी और कार्यमें दृढ़ता होगी ही।" [हरिजन, २४ अप्रैल १९३७, पृ० ८८] मैं निश्चित रूपसे मानता हूं कि कामके विषयकी बिना किसी संकोचके स्वच्छ और शिष्ट ढंगसे चर्चा की जा सकती है । कठिनाई यह है कि आज

जिसका कामसे सम्बन्ध मान लिया जाता है, उसमें से अधिकतर भागका "कामसे कोई सम्बन्ध ही नहीं होता ।" [एक पत्रमें, २२ फरवरी १९४७] जो भी हो, मेरा अपना मार्ग स्पष्ट है। "यदि मैं इसमें सफल होता हूं, तो दुनिया मेरे इस साहससे समृद्ध होगी। इसके विपरीत, यदि मैं दंभी या गलत मार्ग पर लगा हुआ मूर्ख साबित हुआ, तो दुनिया मुझे छोड़ देगी और मेरी कलई खुल जायगी। दोनों ही सूरतोंमें दुनियाको तो लाभ ही होगा। यह मेरे लिए इतना ही स्पष्ट है जितना दो और दोका जोड़ चार।"

१९वीं शताब्दीके अंतिम दशकमें, जब गांधीजी नवयुवकके रूपमें अपने जीवनका ध्येय खोजनेके प्रयत्नमें लगे हुए थे, एडवर्ड मेटलैण्डकी पुस्तक 'दि परफेक्ट वे' का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा था । ईश्वरने मानवको अपनी ही प्रतिकृतिके रूपमें अर्थात् नर और मादाके रूपमें उत्पन्न किया है, बाइबलके इस वाक्यका अर्थ करते हुए—रहस्यवादी तथा आधुनिक मानसशास्त्री दोनों ऐसी मान्यता रखते हैं—मेटलैण्ड अपनी पुस्तकमें कहते हैं कि ईश्वरकी प्रतिकृति बननेके लिए व्यक्तिको अपनेमें नर और मादा दोनोंके गुणोंका विकास करना चाहिये और आध्यात्मिक दृष्टिसे प्रुरुष और स्त्री दोनों बनना चाहिये । ईवकी स्थितिसे कुमारी मरियमकी स्थिति तक आत्माकी प्रगतिके रूपकको पुस्तकमें इस प्रकार समझाया गया है:

> स्त्री अज्ञानसे उद्‌भूत निर्दोषताके स्थान पर पूर्ण ज्ञानसे उद्‌भूत नितान्त विशुद्धि प्राप्त करे, तभी वह भविष्यमें होनेवाले पतनके भयसे मुक्त होती है। [प्यारेलाल कृत 'महात्मा गांधी-दि अर्ली फेज़ : खंड-१' में उद्‌धृत, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, १९६५, पृ० ३२४]

अपने जीवनके कठोरतम तपस्यापूर्ण निर्माण-कालमें जिस प्रकार गांधीजीने दूसरी अनेक बातोंको आत्मसात् कर लिया था, उसी प्रकार उपर्युक्त सिद्धान्तने भी उनके हृदयमें गहरी जड़ें जमा ली थीं और वह जीवनके उनके तत्त्वज्ञानका एक अविभाज्य अंग बन गया था। गांधीजीने अपने टीकाकारोंसे कहा कि कोई व्यक्ति अपनी शक्तिकी परीक्षा करनेके लिए यदि खुद होकर विपरीत लिंगके व्यक्तिके साथ सम्पर्क साधनेका प्रयत्न करे, तो वह अधिक नहीं तो मुर्ख अवश्य

है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति अपने ब्रह्मचर्यका कारण सामने रखकर आवश्यक सम्पर्कसे दूर रहे, तो वह कायर और पाखण्डी है; ब्रह्मचारी तो वह है ही नहीं। एक बातचीतमें उन्होंने कहा: "जो ब्रह्मचर्य मौका आने पर परीक्षाका सामना नहीं कर सकता अथवा कसौटीसे बचता है, वह ब्रह्मचर्य नहीं है । सम्पूर्ण ब्रह्मचारीके मनमें नग्न स्त्री या पुरुषको देखकर भी कोई विकार पैदा नहीं होता। क्या छोठे लड़के- लड़कियोंको हम निर्दोष भावसे एक-दूसरेके साथ हिलते-मिलते, खेलते, नहाते और साथ-साथ सोते भी नहीं देखते ? इसका कारण यह है कि उनमें अभी काम-वासना पैदा नहीं हुई है। सम्पूर्ण ब्रह्मचारीमें, कामका पूर्ण ज्ञान होते हुए भी, बच्चोंके जैसी सम्पूर्ण निर्दोषता होगी । जब मनुष्य शारीरिक या मानसिक रूपमें जरा भी उत्तेजित हुए बिना सुन्दरतम नग्न अप्सराके साथ भी सो सके, तभी कहा जा सकता है कि उसने यह स्थिति प्राप्त कर ली है । पौराणिक कथामें कहा गया है कि जब कृष्णने गोपियोंके वस्त्र हर लिये तब गोपियोंने किसी तरहका संकोच या काम-चेतनाका अनुभव नहीं किया; इसके विपरीत वे भक्तिसे मंत्रमुग्ध बनकर भगवानके सामने खड़ी रहीं।

"मैं फिर इसे समझा दूं । सर्वप्रथम बालककी निर्दोषता है । उसमें स्त्री-पुरुषके भेदका ज्ञान अथवा भान नहीं होता । इस निर्दोषताकी जड़ अज्ञानमें होती है । परन्तु बालिग व्यक्तिकी सम्पूर्ण निर्दोषता, जिसे स्त्री-पुरुष-सम्बन्धका पूरा ज्ञान और समझ है, सच्चा ब्रह्मचर्य है। ऐसे सम्पूर्ण ब्रह्मचारीका पता उसके मुखके तेजसे लग जायगा। उसमें न तो कमजोरी होगी और न कोई बीमारी होगी। वह स्थितप्रज्ञके सारे लक्षण पूर्ण रूपमें प्रकट करेगा। और अन्तमें जब उसकी मृत्यु होगी तो वह किसी रोगसे नहीं मरेगा। उसकी मृत्यु "निद्रा और विस्मृति" मात्र होगी। वह अन्त तक अपनी सारी शक्तियोंको जैसीकी वैसी बनाये रखेगा। और अपने अन्तिम श्वास तक भगवानका काम करता रहेगा और भगवानका नाम रटता रहेगा। ये कुछ चिह्न हैं, जिनसे सच्चे ब्रह्मचारीका परिचय हो सकता है।"

४

वयोवृद्ध ठक्कर बापा एक निराले व्यक्ति थे। गांधीजीको अपने आसपास अन्तरात्माके प्रहरी रखनेकी आदत थी। ठक्कर बापा उनमें से एक थे। ब्रह्मचर्यके प्रयोगके विषयमें गांधीजीसे भिन्न मत रखनेवाले उनके कुछ मित्रोंने ठक्कर बापासे विनती की कि वे गांधीजीको इस बारेमें समझायें। २५ फरवरी, १९४७ को गांधीजी हैमचर पहुंचे कि तुरन्त दोनोंकी मुलाकात हुई।

बापा : "नोआखालीमें यह प्रयोग किसलिए ?"

गांधीजी : "आप भूलते हैं, बापा। **यह प्रयोग नहों है**, परन्तु मेरे यज्ञका एक अविभाज्य अंग है। (मोटे टाइप मैंने किये है।) मनुष्य प्रयोगोंको छोड़ सकता है, परन्तु अपने यज्ञको नहीं छोड़ सकता। किसी वस्तुको यदि मैं अपने यज्ञका अंग मानता होऊं, तो जनमतके सर्वथा मेरे विरुद्ध होने पर भी मैं उसे छोडूंगा नहीं। मैं इस समय आत्मशुद्धिके कार्यमें लगा हुआ हुं। पांच महाव्रत मेरी आध्यात्मिक साधनाके पांच स्तंभ हैं। ब्रह्मचर्य उन्हींमें से एक महाव्रत है। किन्तु पांचों महाव्रतोंको मिलाकर एक अखण्ड और अविभाज्य घटक बनता है। ये सब व्रत एक-दूसरेसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं अथवा अन्योन्याश्रयी हैं। इनमें से एक भी व्रत टूटे तो दूसरे सब टूट जाते हैं। इसलिए यदि लोकलज्जाके कारण ब्रह्मचर्यके मामलेमें मैं पीछे हटूं, तो व्यवहारमें मैं केवल ब्रह्मचर्यका ही भंग नहीं करूंगा, बल्कि सत्य और अहिंसा तथा दूसरे महाव्रतोंका भी भंग करूंगा। दूसरे व्रतोंके विषयमें मैं विचार और आचारमें कोई भेद नहीं रखता। इसलिए परिस्थितियोंके वश होकर यदि मैं ब्रह्मचर्यके विषयमें पीछे हट जाऊं, तो इससे मेरे ब्रह्मचर्यको कलंक लगेगा; इतना ही नहीं, इससे सत्यकी मेरी साधना भी दूषित होगी। मैं नोआखाली आया तभीसे अपने आपसे सदा यह प्रश्न पूछता रहता हूं: "मेरी अहिंसा काम क्यों नहीं करती ? इसका जादू लोगों पर अपना असर क्यों नहीं डालता ? कहीं ऐसा तो न हो कि ब्रह्मचर्यके विषयमें परिस्थितिवश मैंने जो शिथिलता दिखाई हो उसका यह परिणाम हो?"

बापा : "आपकी अहिंसा असफल नहीं रही है। . . . आप न आये होते तो नोआखालीकी क्या स्थिति होती, इसे जरा सोचिये। लेकिन दुनिया ब्रह्मचर्यके बारेमें आपकी तरह विचार नहीं करती।"

गांधीजी : "यदि मैं आपके तर्कको मान लूं, तो उसका मतलब यह होगा कि जिस वस्तुको मैं अपने लिए सत्य और उचित मानता हूं, उसे दुनियाकी नाराजीके डरसे छोड़ दूं। यह सोचते ही मैं कांप उठता हूं कि यदि मैंने जीवनमें इसी तरह काम किया होता, तो आज मैं कहां होता। मैं किसी गहरे खड्डेकी तहमें जा पहुंचा होता। बापा, आपको इसकी कल्पना नहीं आ सकती, लेकिन मैं उस स्थितिका स्पष्ट चित्र अपने मनमें खड़ा कर सकता हूं। मैंने अपने वर्तमान साहसको यज्ञ कहा है—एक तप कहा है। इसका अर्थ है सर्वोत्कृष्ट आत्मशुद्धि। जब तक अपने मनमें रही बातको मैं आचरणमें उतारनेकी हिम्मत न करूं, तब तक मेरी ऐसी आत्मशुद्धि कैसे हो सकती है? जिसे कोई मनुष्य अपनी सम्पूर्ण आत्मासे अपना कर्तव्य मानता है, उसके लिए क्या उसे किसीके समर्थन अथवा अनुमतिकी आवश्यकता होती है ? इस परिस्थितिमें मित्रोंके लिए केवल दो ही मार्ग खुले हैं: (१) या तो उन्हें मुझमें, मेरे उद्देश्योंकी शुद्धतामें और मेरी प्रामाणिकतामें श्रद्धा रखनी चाहिये—भले ही वे मेरे तर्कको समझ न सकें या उसके साथ सहमत न हो पायें; (२) अथवा उन्हें मेरा साथ छोड़ देना चाहिये। बीचका कोई मार्ग है ही नहीं। **जब मैंने सत्यके सम्पूर्ण आचरणका यज्ञ आरम्भ किया है, तब मैं अपने विश्वासके तर्कशुद्ध फलितार्थको व्यवहारका रूप देनेसे बच ही नहीं सकता**। और, न मुझे अपने विश्वासोंको अपने भीतर छिपाना चाहिये या अपने मनमें ही रखना चाहिये। ऐसा करना मित्रोंके प्रति मेरी बेवफाई होगी। इसलिए 'क', 'ख' या 'ग' अपनी पसन्दके मार्ग पर चल सकते हैं, परन्तु मैं इस कसौटीसे कैसे भाग सकता हूं? मैंने तो अपने मनमें निश्चय कर लिया है। ईश्वरके जिस एकाकी निर्जन मार्ग पर मैं चल पड़ा हूं, उसमें मुझे दुनियावी साथियोंकी जरूरत नहीं है। इसलिए यदि मैं सचमुच वैसा पाखण्डी हूं जेसी कि वे कल्पना करते हैं, भले ही वे स्पष्ट शब्दोंमें ऐसा न कहते हों तो उन्हें मेरी भर्त्सना करनी चाहिये। इससे उन करोड़ों लोगोंका भ्रम दूर हो जायगा, जो मुझे महात्मा माननेका आग्रह रखते हैं। मुझे स्वीकार करना चाहिये कि इस प्रकार मेरी कलई खुल जाय, तो वह मुझे

बहुत पसन्द होगा। मेरे पास हजारों हिन्दू और मुस्लिम स्त्रियां आती हैं। मेरे मन वे मेरी अपनी मातायें, बहनें और पुत्रियां हैं। लेकिन यदि किसी समय उनमें से किसीके साथ एक ही बिस्तर पर सोना जरूरी हो जाय तो मुझे संकोच नहीं करना चाहिये, यदि मैं सचमुच वैसा ही ब्रह्मचारी होऊं जैसा होनेका मैं अपने लिए दावा करता हूं। यदि मैं इस कसौटीसे भागूं, तो आप मान लेना कि मैं कायर और पाखण्डी हूं।"

बापा : "लेकिन अगर लोग आपके उदाहरणका अनुकरण करें तो क्या होगा ?"

गांधीजी : " यदि मेरे उदाहरणका अन्धानुकरण किया जाय अथवा अविवेकी बन कर कोई उसका दुरुपयोग करे, तो समाज न तो उसे सहन करेगा और न उसे सहन करना चाहिये। परन्तु यदि ईमानदारीसे सच्चा प्रयत्न किया जाय, तो समाजको उसका स्वागत करना चाहिये। उससे समाजको लाभ ही होगा। ज्यों ही मेरा अनुसंधान पूर्ण हो जायगा, मैं स्वयं उसके परिणामोंकी घोषणा सारी दुनियाके सामने कर दूंगा।"

बापा : "मैं स्वयं तो आपमें किसी मलिनताकी कल्पना ही नहीं कर सकता। आखिर तो मनु आपके लिए पोतीके स्थान पर है—आपका ही रक्त-मांस है। मुझे स्वीकार करना चाहिये कि शुरूमें मेरे मनमें कुछ शंका और भ्रम था। मैं सम्पूर्ण नम्रतासे अपने मनकी शंकायें आपके सामने रखनेको आया था। मैं आपके प्रयोगको समझ नहीं पाता था। आज हमारे बीचकी चर्चाके बाद आप जो कुछ करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, उसके अर्थको मैं अधिक गहराईसे समझ सका हूं।"

गांधीजी : "इससे कोई वास्तविक फर्क पड़ता है? नहीं पड़ता, पड़ना भी नहीं चाहिये। आप मनुके और उसके जैसी दूसरी स्त्रियोंके बीच भेद करते मालूम होते हैं। मेरा मन ऐसा कोई भेद नहीं करता। मेरी दृष्टिमें तो वे सब समान हैं—मेरी पुत्रियां हैं।"

इस बातचीतका अनसोचा परिणाम आया। मनुने आकर गांधीजीसे कहा कि आप जो कुछ करते थे उसके बारेमें शुरूमें तो ठककर बापाके मनमें शंकायें थीं। परन्तु ६ दिनके गहरे सम्पर्क तथा सूक्ष्म निरीक्षणके बाद उनकी सारी शुंकायें दूर हो गई हैं और आपके आचरणके

बारेमें या उससे सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी व्यक्तिके बारेमें कुछ भी गलत या अनुचित न होनेका उन्हें विश्वास हो गया है। यह बात उन्होंने अपने मित्रोंको भी लिख दी है। ठक्कर बापाने मनुसे यह भी कहा कि मैंने रोज तुम दोनोंकी निर्दोष और गहरी नींद देखी है और तेरी एकाग्र और अथक कर्तव्य-निष्ठा देखो है। दूसरी किसी भी बातकी अपेक्षा इस एक बातसे कहीं अधिक मेरा हृदय-परिवर्तन हुआ है। इसलिए मनुने गांधीजीसे कहा कि यदि आप सहमत हों, तो कुछ समयके लिए आपका यह प्रयोग स्थगित रखनेकी ठक्कर बापाकी विनती स्वीकार करनेमें मुझे कोई हर्ज नहीं मालूम होता। मनुनें यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी कि मानसिक दृष्टिसे मैं आपके साथ एकरूप हूं, **मैं कुछ त्यागती नहीं हूं, तिलभर भी उत्सर्ग नहीं करती। जो लोग आपके दृष्टिकोणको समझ नहीं सकते और जिन्हें नये विचार ग्रहण करनेमें समय लग सकता है, उनकी भावनाओंको ध्यानमें रखकर ही ऐसा किया जा रहा है**। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) गांधीजी तुरन्त इस प्रस्तावसे सहमत हो गये। परन्तु इसमें गांधीजीने मनुकी अस्पष्टताका दोष देखा। लेकिन उससे क्या हुआ—आखिर तो मनु एक अनुभवहीन बालिका ही थी; अतः कुछ समयके लिए यह प्रयोग बन्द कर दिया गया।

*

लेकिन बात यहां रुकी नहीं। जैसा कि गांधीजीने ठक्कर बापासे कहा, इससे उनकी स्थितिमें कोई मूलभूत फर्क नहीं पड़ता था। दो मित्र उन्हें समझानेके लिए बिहार आये और इस सम्बन्धमें गांधीजीके साथ उनकी पांच दिन तक चर्चा हुई।

"अपने रिवाजके अनुसार आपने यह अनोखा प्रयोग आरम्भ करनेसे पहले अपने साथियोंको विश्वासमें क्यों नहीं लिया और उन्हें अपने साथ क्यों नहीं रखा? यह गुप्तता किसलिए?"

गांधीजी : "गुप्तता रखनेका मेरा कोई इरादा नहीं था। सब कुछ आकस्मिक हो गया। प्रयोगका स्वरूप ही ऐसा था कि इसमें मित्रोंके साथ पहलेसे सलाह-मशविरा नहीं हो सकता था। इसके सिवा, मैं यह मानता हूं कि इसके लिए मित्रोंकी पूर्व स्वीकृति आवश्यक नहीं थी। मैं यह भी मानता हूं इसके आरम्भमें ही मुझे इस बात पर सबका पूरा ध्यान आकर्षित करनेका आग्रह

रखना चाहिये था। यदि मैंने इतना कर लिया होता, तो आजकी बहुतसी मुसीबतें और हो-हल्ला टल जाता। ऐसा न करनेमें मुझसे गम्भीर दोष हो गया। जब ठक्कर बापा आये तब मैं मनमें यह सोच रहा था कि इसका उपयुक्त प्रायश्चित्त क्या हो सकता है। बाकीकी सारी कहानी तो आप जानते ही हैं।"

"यह तो स्पष्ट है कि जिस नैतिक व्यवस्था पर समाज टिका हुआ है और जो लम्बे तथा कष्टमय अनुशासन द्वारा निर्माण की गई है, उसकी बुनियादको आप कमजोर बनायेंगे, तो समाजको अपार नुकसान होगा। परन्तु स्थापित परम्पराको तोड़नेका औचित्य सिद्ध करनेवाला दूसरा कोई लाभ हमें आपके इस प्रयोगमें नहीं दिखाई देता। इसका बचाव आप कैसे करेंगे ? हम आपको हरानेके लिए या आप पर विजय प्राप्त करनेके लिए नहीं आये हैं। हम तो केवल वास्तविक स्थितिको समझना चाहते हैं।"

गांधीजी : "अगर हम प्राचीन परम्पराकी मर्यादाओंसे बाहर निकलनेको तैयार न हों, तो कोई नैतिक प्रगति या सुधार संभव ही नहीं हैं। सामाजिक रूढ़ियोंके वश होकर चलते रहनेसे हमें अपार हानि पहुंची है। मेरी रायमें ब्रह्मचर्यके विषयमें रक्षाकी नवविध दीवालकी प्राचीन कल्पना अधूरी और दोषपूर्ण है। मैंने अपने लिए तो उसे कभी भी स्वीकार नहीं किया। मैं मानता हूं कि उस दीवालके पीछे रहकर तो **सच्चे** ब्रह्मचर्यके लिए **प्रयत्न करना** भी सम्भव नहीं है। दक्षिण अफ्रीकामें मैं २० वर्ष तक पश्चिमके निकटतम सम्पर्कमें रहा। मैंने हेवलॉक एलिस तथा बर्ट्राण्ड रसेलकी स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध विषयक पुस्तकें पढ़ी हैं और इस विषयमें उनके सिद्धान्तोंसे भी मैं परिचित हूं। वे सब प्रसिद्ध, सच्चे और अनुभवी विचारक हैं। अपने विश्वासोंके लिए और उन विश्वासोंको अभिव्यक्त करनेके लिए उन्हें काफी कष्ट उठाने पड़े हैं। विवाह जैसी संस्थाओं और प्रचलित नीति-नियमोंकी वे बिलकुल परवाह नहीं करते—और यहां मेरा उनसे मतभेद हैं—फिर भी इन संस्थाओं और नीति-नियमोंसे स्वतन्त्र रहते हुए वे शुद्ध जीवनकी संभावना और वांछनीयतामें दृढ़ विश्वास रखते हैं। पश्चिममें मैं ऐसे पुरुषों और स्त्रियोंके सम्पर्कमें आया हूं, जो पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं, यद्यपि वे समाजके प्रचलित नीति-नियमों या सामाजिक परम्पराओंको न तो स्वीकार करते हैं और न उनका पालन करते हैं। मेरी यह शोध किसी हद

तक उसी दिशामें चलती है। यदि आप सुधारकी और जहां आवश्यक हो वहां प्राचीनका त्याग करनेकी तथा वर्तमान युगके अनुकूल नीति और सदाचारकी नई व्यवस्था खड़ी करनेकी आवश्यकता और वांछनीयताको स्वीकार करते हैं, तो दूसरोंकी इजाजत लेने या उन्हें प्रतीति करानेका प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। दूसरोंके बदलने तक सुधारक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। उसे नेतृत्व करना ही चाहिये और सारी दुनियाके विरोधका सामना करके भी साहस-पूर्वक अकेले आगे बढ़ना चाहिये। जिस ब्रह्मचर्यमें आपका विश्वास है उसकी प्रचलित व्याख्याकी मैं अपने निरीक्षण, अध्ययन और अनुभवके प्रकाशमें परीक्षा करना चाहता हूं, उसका विकास करना चाहता हूं और उसमें सुधार करना चाहता हूं। इसलिए जब कभी मौका आता है तब मैं उसे टालता नहीं या उससे दूर नहीं भागता। इसके विपरीत, मैं हिम्मतसे उसका सामना करनेको अपना कर्तव्य—धर्म—मानता हूं; ऐसा करके मैं यह जानना चाहता हूं कि वह मुझे कहां ले जाता है और मैं कहां खड़ा हूं। सच्चे ब्रह्मचर्यकी साधनाका इच्छुक यदि स्त्रीके सम्पर्कको टाले या भयसे उससे दूर भागे, तो इसे मैं उसके लिए शोभाकी बात नहीं मानता। मैंने काम-वासनाको तृप्तिके लिए कभी स्त्रीका सम्पर्क न तो बढ़ाया और न चाहा। मैं यह दावा नहीं करता कि अपने भीतरसे काम-विकारको मैंने निर्मूल कर दिया है। लेकिन मेरा यह दावा जरूर है कि मैं उसे नियंत्रणमें रख सकता हूं।"

"हम नहीं जानते कि आपने अपने ये विचार कभी जनताके सामने रखे हैं। इसके विपरीत, हमने आपको वे ही विचार जनताके सामने रखते जाना है, जिनसे हम परिचित हैं और जिन्हें हमने ब्रह्मचर्यकी आपकी साधनाके साथ जोड़ रखा है। इस सम्बन्धमें आपका स्पष्टीकरण क्या है?"

गांधीजी : "जहां तक जन-साधारणका सम्बन्ध है, मैं आज उनके सामने आचरणके लिए वे ही विचार रखता हूं, जिन्हें आप मेरे पुराने विचार कहते हैं। साथ ही, यदि मेरी अपनी बात कहूं, तो जैसा मैने कहा है, आधुनिक विचारोंका मुझ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। हमारे देशमें भी तांत्रिक सम्प्रदाय है, जिसने जस्टिस सर जॉन वुडरोफ जैसे पाश्चात्य पंडितोंको प्रभावित किया है। मैंने यरवडा जेलमें उनकी पुस्तकें पढ़ी थीं। आप सब प्राचीन परम्परामें पले-पुसे हैं।

ब्रह्मचर्यकी मेरी व्याख्याके अनुसार आप सच्चे ब्रह्मचारी नहीं माने जा सकते। आप बार-बार बीमार पड़ते हैं; आप सब तरहकी शारीरिक पीड़ायें भोगते हैं। मेरा दावा है कि मैं सच्चे ब्रह्मचर्यका आप सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करता हूं। आप सत्य, अहिंसा, अस्तेय आदिके भंगको बहुत गंभीर मानते नहीं मालूम होते। परन्तु ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें—अर्थात् स्त्री-पुरुष-सम्बन्धके बारेमें—काल्पनिक भंग भी आपको पूरी तरह अस्वस्थ बना देता है। ब्रह्मचर्यकी इस कल्पनाको मैं संकुचित, जड़ और प्रगतिविरोधी मानता हूं। मेरे मन सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य सब समान महत्त्व रखनेवाले आदर्श हैं। इन सबकी साधनाके लिए समान प्रयत्न करना जरूरी है और इनमें से किसीके भी भंगको मैं समान चिन्ताकी बात समझता हूं। मैं दृढ़तापूर्वक कहना चाहता हूं कि मेरा आचरण किसी भी दृष्टिसे ब्रह्मचर्यके सच्चे आदर्शके विरुद्ध नहीं है। इसके विपरीत, जो ब्रह्मचर्य आज हमारे समाजमें प्रचलित है और जिसने अपने आपको रूढ़िगत विधि-निषेधों तक सीमित कर लिया है, वह समाजको हानि पहुंचाता है; उसने सच्चे आदर्शको नीचे गिराया है और उसके सच्चे तत्त्वसे उसे वंचित कर दिया है। इन परम्परागत विधि-निषेधोंको उनका उचित स्थान देना तथा ब्रह्मचर्यके सच्चे आदर्शको उसके वर्तमान बन्धनोंसे मुक्त करना—इसे मैं अपना सर्वोच्च कर्तव्य मानता हूं।"

"हमारा एक अन्तिम प्रश्न है। यदि आपका दृष्टिकोण और आचरण सच्चे आत्म-संयमके विकासमें इतनी प्रगति करनेवाला हो, तो उसका हितकारी प्रभाव आपके आसपासके वातावरणमें क्यों नहीं दिखाई देता? आपके आसपास हम इतनी अशान्ति और इतना दुःख क्यों पाते हैं? आपके साथी भावनात्मक दृष्टिसे इतने अस्थिर और परेशान क्यों दिखाई देते हैं?"

गांधीजी : "मैं अपने साथियोंके गुण-दोष दोनों जानता हूं । आप उनके दूसरे पहलूको नहीं जानते। आप ऊपरी निरीक्षणके आधार पर उतावले निर्णय कर लेते हैं, जो सत्य-शोधकको शोभा नहीं देता।"

गहरी भावुकतासे गांधीजीने आगे कहा: "आप लोग मानते मालूम होते हैं उतना गया-बीता मैं नहीं हूं। मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि आप मुझमें श्रद्धा रखें। मेरे लिए जो गहरी श्रद्धाकी वस्तु है, उसे आपके कहनेसे मैं छोड़ नहीं सकता। मुझे अफसोस है; मैं लाचार हूं।"

"हम ऐसा नहीं कह सकते कि आपकी बात हमारे गले उतर गई है। हम बहुत दुःखी हैं। इस बातको हम यहां नहीं छोड़ सकते। आपको समझानेका हमारा प्रयत्न जारी रहेगा। यदि आपके मनमें स्थापित नियमोंके खिलाफ जानेका प्रलोभन दुबारा पैदा हो, तो अपने दुःखी मित्रोंका विचार अवश्य रखिये।"

गांधीजी : "मैं जानता हूं। परन्तु यदि ऐसा करना मुझे अपना कर्तव्य मालूम हो, तो उस स्थितिमें मैं क्या कर सकता हूं? मैं ऐसी परिस्थितियोंकी कल्पना कर सकता हूं जब स्थापित नियमोंके विरुद्ध जाना मुझे अपना स्पष्ट कर्तव्य लग सकता है। ऐसी परिस्थितियोंमें मैं किसी भी प्रकारके बन्धनसे अपनेको बंधने नहीं दे सकता।"

मित्रोंसे ऊपरकी चर्चा हो जानेके बाद गांधीजीने अपनी १६ मार्च, १९४७ की डायरीमें लिखा:

> आज रात मैं दो बजे जाग गया। . . . 'क' और 'ख' के साथ हुई बातचीतका विचार करने लगा। मुझे 'क' का प्रश्न पूछनेका ढंग और उसके चेहरेकी मुस्कराहट पसन्द नहीं आई। मैं अपने धर्मका विचार करने लगा। यह ३-३० बजे तक चला। . . . ७-३० और ८-१० के बीच मैंने 'क' और 'ख' को अपनी स्थिति समझाई। . . . ब्रह्मचर्यकी मेरी व्याख्याके अनुसार मुझे उन लोगोंके ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी विचार दोषपूर्ण और अधूरे मालूम होते हैं; उनका मेरी व्याख्याकी दिशामें अधिक विकास होना जरूरी है। . . . जिस मार्गका मैंने आज तक अनुसरण किया है, उस पर चलनेसे मैं ब्रह्मचर्यको साधनामें आगे ही बढ़ा हूं और भविष्यमें अधिक प्रगति करनेकी आशा रखता हुं। . . . मैं उनके सामने अपनी स्थिति पूर्णतया स्पष्ट कर सका, इससे मन हलका हो गया है।

इसके बाद गांधीजी और इन मित्रोंके बीच लम्बा पत्र-व्यवहार चला। मित्रोंने पूछा: जब तक आप हमारे विचार या हम आपके विचार न बदल दें, तब तक आप प्रतीक्षा क्यों नहीं कर सकते? क्या आप पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं करते ? यदि करते हों तो प्राचीन परम्पराकी मर्यादाओंको तोड़नेकी यह अधीरतापूर्ण जल्दी किसलिए ? गांधीजीने उत्तर दिया कि मैं भी पुनर्जन्ममें विश्वास करता हूं। इस जन्ममें जो बात सिद्ध न की जा सके, वह अगले जन्ममें सिद्ध की जायगी। लेकिन मेरा यह विश्वास भी है कि इस जन्ममें मनुष्यको यथाशक्ति उत्तम प्रयत्न करना चाहिये। पुनर्जन्मके सिद्धान्तका आल्स्यके एक बहानेके रूपमें आश्रय लेना झूठा तत्त्वज्ञान होगा ।

अन्तमें गांधीजीको यह सुझाया गया कि चूंकि दोमें से कोई एक पक्ष दूसरेको अपनी बातकी प्रतीति नहीं करा सकता, इसलिए आधुनिक परिस्थितियोंके अनुसार काम-सम्बन्धी और स्त्री-पुरुषके बीचके व्यवहार-सम्बन्धी नये नैतिक नियम रचनेका सम्पूर्ण प्रश्न कुछ विशेष लोगोंके हाथों सौंप दिया जाना चाहिये। गांधीजीने इस प्रस्तावमें रहा भ्रम मित्रोंको दिखा दिया। उन्होंने कहा, यह प्रस्ताव मेरे सामने रखनेवाले मित्र ऐसा दृढ़ और अटल मत रखते हैं कि प्राचीन कालसे चली आई परम्परामें कोई परिवर्तन किया ही नहीं जा सकता, इसलिए वे रूढ़ बने हुए आचारमें रत्तीभर परिवर्तनकी बात भी सोचनेको तैयार नहीं हैं। दूसरी ओर मैं स्वयं अटल सत्य-शोधक होनेकी वजहसे ऐसी किन्हीं शर्तोंसे बंधनेके लिए तैयार नहीं हूं, जो मेरी शोधमें बाधक हों। इनमें से एक मित्रको गांधीजीने लिखा: “आप स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि नये नीति-नियम आपके लिए बन्धनकारी नहीं होंगे । जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं सिर्फ अपनी शर्तोंका बन्धन स्वीकार करूंगा। इसलिए आप और मैं वहीं खड़े रहेंगे जहां आज हैं। ऐसी स्थितिमें लोगोंको व्यर्थकी झंझटमें डालकर क्या लाभ होगा?”

कुछ दिन बाद इसी बातका उल्लेख करके गांधीजीने कहा कि यद्यपि मैं अपनेसे भिन्न मत रखनेवालोंको अपने विचारका बनानेमें असफल रहा, फिर भी मुझे पहलेसे अधिक इस बातकी प्रतीति हो चुकी है कि ब्रह्मचर्यकी मेरी शोध तथा उसकी साधनाके लिए मेरे द्वारा उठाया गया कदम एक अनोखा साहस है—मेरे जीवनका सबसे महान और अन्तिम साहस है।

*

गांधीजीका आत्म-निरीक्षण चलता ही रहा। हॉरेस एलेक्ज़ेंडरको लिखे पत्रमें, ठककर बापाके प्रेमके वश होकर "छूट" के रूपमें हैमचरमें जो निर्णय लिया गया था उसका उल्लेख करते हुए, गांधीजीने लिखा: "लेकिन परीक्षणका विषय मेरी मानसिक वृत्ति है; वह वृत्ति या तो सही है या . . . मेरी काम-वासनाका अवशेष है—फिर वह वासना कितनी ही अज्ञात क्यों न हो। ज्यों ही अपने भीतर मुझे यह दोष दिखाई देगा त्यों हो मेरा सम्पूर्ण मानसिक दृष्टिकोण बदल जायगा। केवल उसी स्थितिमें (यह माना जायगा कि) यह कमजोरी सम्भवतः १९०२ में मैने ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा ली उस समयकी होनी चाहिये । यह हो सकता है कि मुझसे भिन्न मत रखनेवालोंकी ब्रह्मचर्यकी व्याख्या मेरी व्याख्यासे भिन्न हो ।" अपनी इस बातको गांधीजीने राजकुमारी अमृतकौरके पत्रमें अधिक विस्तारसे समझाया:

> तुम्हें मेरा यह कथन शब्दश: स्वीकार करनेमें कठिनाई नहीं होगी कि हमारी मंडलीमें से कोई साथी ब्रह्मचर्यके सम्पूर्ण मूल्य और फलितार्थोंको नहीं जानता और इन अज्ञान लोगोंमें मैं सबसे कम अज्ञान और सबसे अधिक अनुभवी हूं। . . . मैंने शायद हजारों स्त्रियोंका स्पर्श किया है। परन्तु मेरे स्पर्शमें काम-विकार कभी नहीं रहा। . . . मेरा स्पर्श हम दोनोंकी उन्नतिके लिए रहा है। यदि किसीको इससे उलटा अनुभव हुआ हो, तो मैं चाहूंगा कि वह मेरे विरुद्ध सचाईसे इसका प्रमाण दे। . . .
>
> ब्रह्मचर्यका मेरा अर्थ यह है : "जो मनुष्य काम-वासनासे सर्वथा अलिप्त हो, जो सदा ईश्वर-परायण रहकर . . . अतिशय सुन्दर नग्न स्त्रियोंके साथ काम-विकारकी रत्तीभर भी उत्तेजना अनुभव किये बिना नग्नावस्थामें सो सके वही ब्रह्मचारी है। ऐसे व्यक्तिके लिए असत्य बोलना असम्भव होता है; ऐसे व्यक्तिके लिए सारे जगतमें एक भी पुरुष या स्त्रीका बुरा चेतना असम्भव होता है; ऐसा व्यक्ति क्रोध और ईर्ष्यासे मुक्त होता है और भगवद्गीताके अर्थमें अनासक्त होता है। ऐसा व्यक्ति पूर्ण ब्रह्मचारी है। ब्रह्मचारीका शाब्दिक अर्थ है ऐसा व्यक्ति, जो ईश्वरकी दिशामें प्रतिदिन स्थिर प्रगति करता है और

जिसका प्रत्येक कार्य एकमात्र इसी ध्येयकी सिद्धिके लिए होता है।" [गांधीजीका पत्र राजकुमारी अमृतकौरको, १८ मार्च १९४७]

*

बादशाह खान (अब्दुल गफ्फार खान) गांधीजीका शांति-स्थापनका कार्य करनेके लिए बिहार आये थे। वे एक धर्म-परायण मुसलमान हैं और वैयक्तिक शुद्धता, सत्यवादिता और निर्दोष प्रामाणिकताके अवतार हैं। उन्होंने ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी इस विवादसे अपनेको परिचित रखा था और इससे बड़ा दुःख अनुभव किया था।

एक दिन उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा: "महात्माजी, यह देखकर मुझे अचरज होता है कि बहुत ज्यादा विद्वान लोग कितने जड़ और विवेकशून्य हो जाते हैं। उनमें शिष्टताकी मर्यादा भी नहीं होती। वे लोग यह क्यों नहीं समझ सकते कि मनु आपके लिए छह महीनेकी बच्ची जैसी है? मुझे आपकी पवित्रता पर पूरा विश्वास है। आपकी जगह मैं होऊं तो शायद मैं ऐसा न कर सकूं, क्योंकि मुझमें इतना आत्म-विश्वास नहीं है। लेकिन ये भले मानस आपको कभी न खतम होनेवाली बहसमें लगाये रखते हैं; यह बात मुझे बिककुल बेमतलब और समय बिगाड़नेवाली मालूम होती है। मनु आपके साथ एक बिस्तरमें सोये, इसमें मुझे तो कोई गलत बात नहीं दीखती। समझदार और सयाने लोग इतनी-सी बात भी क्यों नहीं समझ पाते होंगे? क्या वे यह नहीं समझते होंगे कि आपने कितनी नामुमकिन बातोंको मुमकिन बनाकर दिखा दिया है? बहुतसे क्षेत्रोंमें आपने उनके खयालमें भी न आयें ऐसे नये रास्ते बनाये हैं। कोई आदमी अगर यह दलील करे कि अमुक काम मेरी ताकतसे बाहर है इसलिए दूसरोंको भी उसे करनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिये, तो मैं कहूंगा कि वह कितना ही बड़ा पंडित क्यों न हो, लेकिन उसमें बुद्धि नहीं है।"

मनुसे उन्होंने कहा: "मनु, इस बेमतलबके तूफानमें तेरे साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। तू यकीन रखना, आखिर सब भला ही होगा। बापूकी तू जैसी सेवा कर रही है, उसे देखकर मुझे तुझसे ईर्ष्या होती है। तब अगर दूसरे कई लोगोंको तुझसे ईर्ष्या हो, तो कोई अचरजकी बात

नहीं। दूसरे लोग जो कुछ कहें उसकी तू जरा भी परवाह न करना। हर बातमें तू अपने भीतरकी आवाजको सुनना और बापू जो सलाह-सीख दें उसी पर पूरी तरह चलना।"

मनुको देखकर बादशाह खानको पर्वतीय प्रदेश सीमाप्रान्तमें रहती अपनी बेटी मेहर ताजका स्मरण हो आया। आंखोंसे अपना समूचा प्रेम मनु पर बरसाते हुए उन्होंने आगे कहा: "तुझे बापूका काम करते देखकर मुझे अपार खुदी होती है । याद रखना, बापूकी सेवा करके तू केवल बापूकी ही नहीं बल्कि देशके करोड़ों गरीबों-अनाथोंकी सेवा करती है। गांधीजी ही उन दबे और कुचले हुए लोगोंकी एकमात्र आशा हैं।"

एक अंग्रेज महिला गांधीजीके ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी विचारोंसे अब तक भिन्न मत रखती थीं। परन्तु अपने ११ मार्च, १९४७ के पत्रमें उन्होंने गांधीजीको लिखा :

> मेरा इससे पहलेका पत्र आपको मिला होगा। . . . उसमें आपने देखा होगा कि मैं सारे समय ईश्वरके प्रकाशके लिए प्रार्थना करती रही हूं, ताकि मैं सत्यको प्राप्त कर सकूं।. . .
>
> मेरी पहलेकी स्थिति सर्वथा तर्कहीन थी। मैं जानती थी कि आप आध्यात्मिक शक्तिमें उत्तरोत्तर अधिक ऊंचे उठ रहे हैं; और . . . फिर भी . . . मुझे लगता था कि इस एक बातमें आप कुछ गलती कर रहे हैं। मैं यह नहीं समझ सकी कि यदि इस बातके सम्बन्धमें मैं सच्ची होऊं, तो फिर आपके विषयमें मेरी दूसरी समूची भावनायें झूठी होनी चाहिये।
>
> आज आपका पत्र पानेके बाद मैं बाहर निकली और कोई दो घंटे तक जंगलमें भटकती रही; और ईश्वरकी कृपासे मेरे भीतर सच्ची समझका उदय हुआ। और, मुझे सबसे ज्यादा पश्चात्ताप तो इस बातका हो रहा है कि मैं एक बार ही नहीं, किन्तु अनेक बार आपको कष्ट पहुंचाने और आपका बोझ बढ़ानेका कारण बनी हूं। आश्वासनकी बात इतनी ही कही जा सकती है कि इस सारे समयमें मैं अपने प्रति और आपके प्रति शत-प्रतिशत प्रामाणिक रही हूं। . . .

मेरे इन समस्त मूर्खतापूर्ण और अनादरपूर्ण व्यवहारोंमें आपने आश्चर्यजनक धीरज दिखाया है। आपके उस धीरजमें मुझे अहिंसाकी शुद्धतम अभिव्यक्तिके दर्शन होते हैं।

५

क्या अविवाहित स्थिति अथवा केवल स्त्री-संगका त्याग ब्रह्मचर्य कहा जा सकता है? गांधीजीके मतसे ब्रह्मचर्यमें अविवाहित स्थितिका समावेश होता है, परन्तु अविवाहित स्थिति ही सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं है। इसके सिवा, अविवाहित स्थिति ब्रह्मचर्य हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती; कर्मेन्द्रियोंका दमन तो ब्रह्मचर्य नहीं ही है; ऐसा दमन विविध प्रकारकी मानसिक व्याधियों, आसुरी क्रूताओं और आत्म-पीड़न आदिके रूपमें फूट पड़ता है या चित्तकी विचित्र ग्रन्थियोंका रूप धारण कर लेता है। एक समय किसीने गांधीजीको सलाह दी कि कौमी दंगोंके समय हिन्दू आत्मरक्षा कर सकें, इसके लिए उनमें शरीर-बलके विकासकी दृष्टिसे ब्रह्मचर्य-पालनका प्रचार किया जाना चाहिये । गांधीजीने 'यंग इंडिया' में इस विचारका वर्णन "भव्य आदर्शका दुरुपयोग" के रूपमें किया था !

दूसरे शब्दोंमें ब्रह्मचर्य इन्द्रियोंके कुछ व्यापारोंका आभाव या लोप नहीं, परन्तु उनका नियमन, संतुलन तथा उदात्तीकरण है। अज्ञात मानवके गूढ़ रहस्यों और मनोव्यापारोंके आधुनिक अनुसन्धानोंने हमें यह सिखाया है कि मनुष्यके चित्त और शरीरकी क्रियाओंके बीच मूलभूत एकता है और दोनोंके बीच निकटका सम्बन्ध है। गीतामें भी इसी सत्यकी घोषणा की गई है। समस्त वृत्तियां और चित्त तथा शरीरकी समस्त क्रियायें मूलतः एकरूप हैं और कामरूपी रजोगुणसे उत्पन्न होती हैं। काम और क्रोध एक ही सिक्केका सीधा और उलटा पहलू हैं; एकमें से दूसरेकी उत्पत्ति होती है और दोनोंका मूल संमोहमें निहित है। ब्रह्मचर्य अनेक बातोंका समूह है; अनेक यम-नियमों और व्रतोंके पालनका अंतिम फल है। जो मनुष्य अपने जीवन-व्यवहारमें, खान-पानमें, सोने और काम करनेमें मर्यादाका पालन नहीं करता, अपने स्वभाव पर और अपने राग-द्वेष पर नियंत्रण नहीं रखता, जो कठोर है, अतिशय लोभी है तथा अपने साथके और दूसरोंके साथके व्यवहारोंमें अप्रामाणिक और असत्यका आचरण करनेवाला है, वह स्थूल अर्थमें भी

ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिए चित्त और शरीरकी सूक्ष्म क्रियाओं पर समत्व और सन्तुलन सिद्ध नहीं कर सकता।

ब्रह्मचर्यके आदर्शको बाह्य आचारका रूप दे देनेमें बड़ा खतरा है। इसकी वजहसे हमारे समाजने अपनी दंभपूर्ण आत्म-सन्तोषकी भावनाके वश होकर विवाह-सम्बन्धकी प्रत्येक क्रूरता, नीचता, स्वार्थ-परायणता और कामुकताकी उपेक्षा की है, भूतकालमें स्त्रियोंकी पवित्रताके नाम पर—उन्हें तो जबरदस्ती करके भी "पवित्र और निष्कलंक," रखना ही चाहिये—समाजने सतीप्रथा और बाल-वैधव्यकी प्रथा उन पर जबरन् थोपी है और स्त्री-पुरुष-सम्बन्धमें पुरुषोंके लिए नीतिके दोहरे मापदण्ड स्थापित किये हैं। पुरुषकी पाशविक काम-वासनाकी शिकार बनी हुई निर्दोष स्त्रियोंको पतिता मानकर हम समाजसे बहिष्कृत कर देते हैं, जब कि गांधीजीके मतके अनुसार ऐसी स्त्रियां "शारीरिक दृष्टिसे भयंकर चोटका शिकार बने हुए व्यक्ति" की तरह हमारी सम्पूर्ण सहानुभूति और सावधानीकी पात्र होनी चाहिये।

स्त्री-पुरुष-सम्बन्धकी चर्चाके बारेमें हमारे भले कहे जानेवाले लोग इतने अधिक उत्तेजित क्यों हो जाते होंगे? वे शान्त और अनासक्त भावसे इसकी चर्चा क्यों नहीं कर सकते ? क्या इसका कारण यह है कि हम स्त्री-पुरुष-सम्बन्धको मूलसे ही "कलुषित" या "पापयुकत" मानते हैं ? क्या गृहस्थाश्रम ब्रह्मचर्याश्रमसे आवश्यक रूपमें निम्न कोटिका है ? गांधीजी एक समय यह मानते थे कि शायद ऐसा ही होगा; परन्तु बादमें उनका यह विचार बदला और वे इस निर्णय पर पहुंचे कि दोनों आश्रम एक ही कोटिके हैं और दोनों परमार्थके एकसे साधन बन सकते हैं। इस आदर्शको उन्होंने "परिणीत ब्रह्मचर्य" का नाम दिया—गृहस्थाश्रम द्वारा ब्रह्मका साक्षात्कार करनेका मार्ग । गांधीजीके इन विचारोंको जानकर उनकी एक अंग्रेज शिष्याको गहरा आघात लगा। वे बोल उठी: "बापू, यह तो मुझे ऐसा लगता है मानो आपने चरखेको चिता पार जलाकर भस्म कर दिया हो !" उत्तरमें उन्हें उलाहना देते हुए गांधीजीने कहा: तुम्हारे "मानसिक आलस्य" ने तुम्हें इस तरह सोचनेको प्रेरित किया है। ब्रह्मचर्यका आदर्श चित्तकी निरन्तर सावधानी रखनेका तकाजा करता है; यह आदर्श मानसिक प्रमादवाले अथवा आध्यात्मिक दृष्टिसे जड़ बने हुए मानवके लिए नहीं है।

हठयोगी अथवा तपस्वीकी कठोरता सच्चे तपका लक्षण है या वह अपने विषयमें उसके अविश्वासका—मर्यादासे बाहर जानेवाले आत्म-दमनका लक्षण है? गांधीजी कहते थे: "अपवित्र विचार ब्रह्मचर्यका भंग है। इसी तरह क्रोध भी ब्रह्मचर्यका भंग है।" [हरिजन, २३ जुलाई १९३८, पृ० १९२] इससे भी अधिक तो यह है कि दोनोंका **परिणाम एकसा** होता है—असंयम।

इसके सिवा, स्त्री-जातिकी पवित्रताके लिए अत्यधिक चिन्ता अथवा अपनी ही जातिके सदस्योंकी पवित्रताके लिए अत्यधिक चिन्ता मनुष्यकी आंतरिक पवित्रताको सूचित करती है या फिर सभ्य और संस्कृत मनुष्यके भीतर भी सुप्त रूपमें निहित पाशविक वासनाको सूचित करती है? इसका उत्तर स्पष्ट है। गांधीजीके तपमें इनमें से एकके लिए भी स्थान नहीं था। उनकी दृष्टिमें ब्रह्मचर्यका अर्थ था माधुर्य, समझदारी, व्यापक सहिष्णुता, शक्ति। उनकी वृत्ति भागवतके नारायण आख्यानमें वर्णित वृत्तिके जैसी थी। विद्वान लेखक नारायण ऋषिके बारेमें कहते हैं: वे निषेधात्मक कठोरतासे सर्वथा मुक्त थे, जो साधना करनेवाले तपस्वियोंका अपने भीतरकी अवशिष्ट काम-वासनाके आक्रमणोंसे जूझनेका एक सामान्य साधन होती है, परन्तु जो अपरिपक्कता और कभी कभी विकृतिका लक्षण होती है:

क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीन तितीर्य केचित्।
क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति॥

"कुछ लोगोंने भूख और प्यास पर, भूत-वर्तमान-भविष्य तीन कालों पर तथा सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों पर, प्राण-अपान-उदान-समान-व्यान इन पांचों प्राणों पर, जीभके रसों पर तथा विषय-वासना पर भी विजय प्राप्त की है। परन्तु वे विफल क्रोधके वश हो जाते हैं और अनन्त सागरको तैर कर पोखरमें डूब जानेवालोंकी तरह अपनी कठोर तपस्याको व्यर्थ बना देते हैं।"

पौराणिक कथा ऐसी है कि नारायण ऋषिकी तपस्यासे ईर्ष्यालु बनकर और अपने तपोबलसे ऋषि कहीं मेरा इन्द्रासन न हड़प लें इस भयसे प्रेरित होकर इन्द्रने उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिए वसंत तथा स्वर्गीय अप्सराओंके साथ कामदेवको भेजा। ऋषि ध्यानमग्न होकर

बैठे थे, उसी बीच उन्हें अपने भीतर वसंतके रसका रोमांच अनुभव हुआ। ऋषिने यह देखनेके लिए धीरेसे अपनी आंखें खोलीं कि आखिर बात क्या है। कवि कहते हैं: परन्तु क्रुद्ध होने या चिढ़नेके बजाय उन्होंने केवल "प्रेम, सहिष्णुता और करुणासे भरा स्मित" ही किया। अपनी धृष्टताके परिणामोंके भयसे भयभीत अप्सराओंको ऋषिने आश्वस्त किया और अपने आश्रममें आनेका निमंत्रण दिया। उन्होंने कहा: "स्वर्गीय अप्सराओ, तुम डरो मत। मेरा स्वागत स्वीकार करो और आतिथ्यको स्वीकार किये बिना लौटकर मेरे आश्रमको पुण्यसे वंचित मत करो ।" आश्रममें उन्होंने अप्सराओरोंको "सादे किन्तु सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाली और अद्‌भुत लावण्यवती" अनेक स्त्रियां दिखाई। वे स्त्रियां आश्रमके विभिन्न कार्योंमें लगी हुई थीं। आश्रमके सदाचारी गृह-जीवनके स्वाभाविक सौन्दर्यसे स्वर्गीय अप्सरायें इतनी प्रभावित हुईं कि उनके हृदयमें ईर्ष्या और स्पर्धा जाग उठी और वे ऋषिकी अनुमतिसे उनमें से एक स्त्रीको इन्द्रके दरबारमें ले गईं, जिससे वह भविष्यमें स्वर्गीय सौन्दर्यके आदर्शका काम दे सके !

*

जीवनके प्रति देखनेकी दो प्रसिद्ध दृष्टियां हैं—निषेधात्मक और विधेयात्मक अथवा समन्वयात्मक। गांधीजीके आलोचक पहली दृष्टिको स्वीकार करते थे; गांधीजी दूसरी दृष्टिकी जीवन्त मूर्ति थे।

गांधीजी विकृत आत्म-दमनके दोषसे सर्वथा मुक्त थे। वे अक्षुब्ध सौम्यता तथा प्रसन्नताको ईश्वरके साथ एकता सिद्ध करनेवाले व्यक्तिकी स्वाभाविक स्थिति मानते थे। "जिस व्यक्तिके लिए ब्रह्मचर्यका पालन स्वाभाविक हो जाता है, . . . उसे क्रोध और उसके साथ जुड़े हुए अहंकारादि आवेगोंसे मुक्त होना चाहिये। जिन तथाकथित ब्रह्मचारियोंके सम्पर्कमें हम सामान्यतः आते हैं, वे इस तरह व्यवहार करते हैं मानो जीवनमें उनका एकमात्र काम क्रोध करना और चिढ़ना ही हो !" [गांधीजी, 'की टु हेल्थ', अहमदाबाद, १९४८, पृ० ४३] उनका हृदय अत्यन्त कोमल था। दुःख और वेदनाका उन पर गहरा असर पड़ता था। परन्तु उनके फौलादी संकल्प-बलने सौन्दर्य-सम्बन्धी उनकी संवेदनशीलताको तथा दीन-हीन और दुर्बलोंके प्रति उनकी घनी करुणाको

कठोर आत्म-निग्रह और आत्मत्यागका रूप दे दिया था। प्रसंगवश और ऊपर ऊपरसे देखनेवाले लोग बहुत बार भूलसे गांधीजीके इन दो गुणोंको देह-दमन और आत्म-दमन समझ बैठते थे। परन्तु इन दोनोंके बीच आकाश-पातालका अन्तर था।

लोग कभी कभी गांधीजीके "तपस्यापूर्ण जीवन" का मजाक उड़ाते थे। वह जैसा भी रहा हो, परन्तु इतना निश्चित है कि वह "आध्यात्मिक आनन्द" से रहित नहीं था। जो लोग उनके निकट सम्पर्कमें आये थे उन पर यह गुण अदम्य प्रभाव डालता था। गांधीजी सर्वत्र अपने मूलभूत व्रतोंकी शक्ति ही साथ नहीं ले जाते थे, परन्तु उसके साथ उन व्रतोंकी मीठी सुगंध भी ले जाते थे। गांधीजीकी तपस्या उन्हें अपने मानव-बन्धुओंके विषयमें भयभीत बनाकर उनसे दूर रहनेकी प्रेरणा नहीं देती थी; इसके विपरीत वह उन्हें यथासम्भव बड़ेसे बड़े जन-समुदायके साथ शुद्ध और उदात्त सम्बन्ध स्थापित करतेकी सामर्थ्य प्रदान करती थी। एक बार उन्होंने सरोजिनी नायडूको लिखा था: "मैं आशा करता हूं कि मेरे भीतरकी नारीको तुमने जरूर पहचाना होगा।" इस लक्षणका साधु-संन्यासीके विषयमें प्रचलित कल्पनाके साथ मेल नहीं बैठता; परन्तु जैसा कि एक आधुनिक लेखक हमें याद दिलाते हैं, संत फ्रांसिसका उल्लेखनीय लक्षण था—"उनकी महती श्रद्धा, महती सहिष्णुता, महती भक्ति, महान धैर्य, महती कोमलता और महती सहानुभूति।" ['गांधीजी ऐज़ वी नो हिम' में श्रीमती पोलाक, संपा. चन्द्रशंकर शुक्ल, बम्बई, १९४५, पृ० ४७] श्रीमती पोलाकने कहा है: "अधिकांश स्त्रियां पुरुषोंको उनके सामान्यतः पुरुषोचित माने जानेवाले गुणोंके कारण प्रेम करती हैं। परन्तु महात्मा गांधीको बहुतसी स्त्रियोंका प्रेम उनके स्त्रीत्वके कारण मिला है—उन सारे गुणोंके कारण जिनका सम्बन्ध स्त्रियोंसे होता है। . . . स्त्रियां तुरल्त यह समझ लेती हैं कि गांधी हम जिस मार्ग पर यात्रा कर रही हैं उसी मार्गके एक यात्री हैं, परन्तु हमसे बहुत आगे बढ़े हुए सहयात्री हैं। हम उन्हें अपना गहरा, विशुद्ध और काम-वासनासे अलिप्त प्रेम बिना किसी डरके दे सकती हैं। संकटमें पड़ी हुई और मुसीबतमें फंसी हुई हर प्रकारकी स्त्रियां गांधीके पास गई हैं; और उनके जीवनकी ऐसी कोई समस्या नहीं जिसकी चर्चा वे चाहें तो गांधीके साथ मुक्त मनसे नहीं कर सकती । उन्हें इस बातका विश्वास होता है कि गांधी

उनकी कठिनाइयों पर कोई प्रकाश अवश्य डालेंगे और उनकी यात्राके मार्गको किसी हद तक सरल और सुगम बनायेंगे।" [वही]

सुप्रसिद्ध नृवंशशास्त्री वेरियर एल्विन गांधीजीके स्वभावके इस लक्षणका उल्लेख करते हुए कहते हैं: "मैं उनका सम्बन्ध खिलते हुए फूलोंके साथ, ताजे फलोंके साथ, विशाल और खुली नदीके साथ, प्रातःकालीन तारेके उगनेसे पूर्व की जानेवाली प्रार्थनाके साथ तथा उषाकालकी शुद्ध हवामें की जानेवाली सैरके साथ जोड़ता हूं।" [कनु देसाईके 'महात्मा गांधी' (रेखाचित्र) में वेरियर एल्विन]

*

जगतके इतिहासमें केवल गांधीजी ही ऐसे गुरु नहीं थे, जिन्होंने प्राचीन परम्पराके समर्थकोंको उलझन और परेशानीमें डाल दिया था। क्या "मदिरा बेचनेवालों और पापियों " के साथ मिलने-जुलने और व्यभिचारी स्त्रीसे यह कहनेके लिए कि "तूने बहुत प्रेम दिखाया है इसलिए तेरे बहुतसे पाप क्षन्तव्य हैं? ईसा मसीहकी भी टीका नहीं की गई थी?

ऐसे नाजुक प्रश्नको विकृत बनाना या उसका मजाक उड़ाना आसान है। परन्तु मनुष्य केवल स्वयंको नुकसान पहुंचा कर ही—एक महान आदर्शको समझनेसे अपनेको वंचित रखकर ही—ऐसा कर सकता है।

इन्द्रियोंके बाह्य जगतमें अधिकाधिक आसक्त बनकर मनुष्य भौतिक जगत पर तो प्रभुत्व जमा सका है, परन्तु इस प्रक्रियामें अपने भीतरकी अन्तरात्माके साथ वह अपना स्वाभाविक सम्पर्क खो बैठा है। इसके फल-स्वरूप उसका आत्मज्ञान उसके भौतिक ज्ञानसे पिछड़ गया है। उसके भौतिक ज्ञानने उसे अपने आप पर नियंत्रण रखनेकी कला नहीं सिखाई है। इसका फल यह हुआ है कि अपने आसपासके भौतिक वातावरण पर प्राप्त किया हुआ उसका प्रभुत्व ही उसके विरुद्ध जाने और उस पर हावी होनेकी धमकी दे रहा है। समाजको अपने सामने मुंह-बाये खड़ी सदाचार-विरोधी बलकी तथा अपनी शक्ति खो चुके धर्म और सदाचारकी दुहरी चुनौतीका उत्तर खोजना होगा या नष्ट हो जाना होगा।

जिराल्ड हर्ड कहते हैं कि आजकी हमारी समस्या नये ध्येय या उदात्त लक्ष्य खोजनेकी नहीं बल्कि साधन खोजनेकी है, "अपने आपको विफल न बना देनेवाले बलके उपयोगकी शक्ति खोजनेकी है;" [जिराल्ड हर्ड, 'दि इटर्नल गॉस्पेल', लन्दन, १९४६, पृ० २१२] कोई ऐसी वस्तु खोजनेकी है, जो धर्म और सदाचारको उनकी खोई हुई शक्ति पुनः प्रदान करे। क्या हम अपनी असन्तुलित भौतिक शक्तियोंकी बराबरी करनेवाली प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्तियां खोज सकते हैं, जिनकी खोज पर हमारी आधुनिक सभ्यताके जीवनका और मरणका आधार है? इस प्रश्नके उत्तरमें वे कहते हैं: "यदि हम अपने भौतिक ज्ञानके बराबर ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे, तो हमारे आजके समाजका नाश निश्चित है। यह . . . केवल विशिष्ट प्रकारकी तालीमके द्वारा ही हो सकता है। इस तालीमके द्वारा हमारे भीतर सुषुप्त अवस्थामें रहनेवाली और वेदना, काम-वासना तथा वैयक्तिक और सामूहिक मानसिक रोगोंके जरिये प्रकट होनेवाली शक्तिको हम चित्तकी उदात्त और शुद्ध प्रवृत्तियोंके रूपमें अभिव्यक्त कर सकते हैं। . . . इस प्रकार मानसिक शक्तियोंका उत्कर्ष सिद्ध करके अन्तमें हम कदाचित् समस्त मानव-सम्बन्धोंके लिए अहिंसक शक्ति, प्राणी-जगतके साथके अपने समस्त सम्बन्धोंके लिए नई दृष्टि तथा अचेतन सृष्टिके सम्बन्धमें नई अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।" [जिराल्ड हर्ड, 'पेन, सेक्स एण्ड टाइम', लन्दन, १९३९, पृ० ३१८-१९; रोमां रोलां कृत 'प्रॉफेट्स ऑफ दि न्यू इंडिया' भी देखें, न्यूयार्क, १९३०, पृ० ६४०-४३]

यह कहा गया है कि प्रकृतिमें मनुष्यकी प्रभूता अथवा प्रधानता इस कारणसे है कि केवल उसीमें आदि शक्ति अथवा ओजसका ऐसा अखूट भण्डार है, जिसका अभी तक उपयोग और विभाजन नहीं हुआ है। जिराल्ड हर्ड कहते हैं कि मनुष्यमें इस आदि शक्ति अथवा ओजसकी मात्रा सांड़से दस गुनी होती है । यह अनियंत्रित आदि शक्ति—जो हमारी प्रजनन-सम्बन्धी आवश्यकताओंसे कहीं अधिक मात्रामें हमारे भीतर है—एक ऐसी विकासशील शक्ति है, जो नई शक्तिमें परिवर्तित होनेकी प्रतीक्षा कर रही है। प्रसिद्ध नाड़ीशास्त्री डॉ. डब्ल्यू. ग्रे वॉल्टरने अपनी पुस्तक 'दि लिविंग ब्रेन' में मनुष्यकी शारीरिक क्रियाओं तथा उसकी उच्चतर शक्तियोंके विकासके परस्पर सम्बन्ध पर रसप्रद प्रकाश डाला है। उन्होंने यह प्रतिपादन किया है कि

मनुष्यके मस्तिष्कके दो भाग हैं। एक ऊपरी और दूसरा निचला। ऊपरका भाग विचार-प्रधान है। नीचेका भाग शरीरकी अपने आप होनेवाली क्रियाओंका संचालन करता है। निचला भाग ऊपरी भागके अधीन काम करता है। आरम्भमें प्राणीजगतकी सारी शारीरिक क्रियाओंके संचालनका भार मस्तिष्क पर ही पड़ता था। शरीरकी क्रियाओंके अपने आप होनेवाले संचालनका तन्त्र अभी तक अस्तित्वमें नहीं आया था। उदाहरणके लिए, ठंड हो या गरमी, मनुष्यके शरीरकी गरमी अपने आप एकसी बनी रहती है। परन्तु निचली श्रेणीके प्राणियोंमें यह शक्ति नहीं होती। ठंडके कारण जब उनका शरीर एक हदसे अधिक ठंडा हो जाता है तब उनका शरीर-व्यापार शिथिल हो जाता है और वे नशेकी स्थितिमें आ जाते हैं। परन्तु मनुष्यमें उसके मस्तिष्कके नीचेके भागमें रचा हुआ तंत्र उसके शरीरकी गरमीको अपने आप समान रखता है। शरीरकी अन्य अनेक क्रियाओंके बारेमें भी यही बात है। डॉ. ग्रे वॉल्टरका कहना है कि जब मनुष्यके मस्तिष्कको शरीरकी अनेक क्रियाओंके संचालन तथा नियमनके कार्यभारसे मुक्ति मिली तभी वह अपनी उच्चतर शक्तियोंका विकास कर सका। इसके फलस्वरूप वह सम्पूर्ण सृष्टिका स्वामी बना। इसी प्रकार जब मनुष्यका मस्तिष्क इन्द्रियोंकी सतत मांगोंसे पूर्णतया मुक्त हो जायगा केवल उसी समय मतुष्यका सर्वोच्च विकास संभव होगा—जिसकी ऋषि-मुनियोंने कल्पना की है और जिसकी सिद्धि मनुष्यके जीवनका परम लक्ष्य है।

जब मनुष्यकी आदि शक्तिके भंडारका सर्जक क्रियाके उच्चतर रूपमें परिवर्तन होता है तब वह काम-विकारके भानसे परे हो जाता है। आज मनुष्यकी इस शक्तिका उपयोग ऊर्ध्वीकरणकी दिशामें नहीं होता; उसे काम-विहारमें नष्ट कर दिया जाता है। इसके लिए मनुष्यने अनेक रास्ते खोज निकाले हैं। शारीरिक व्यभिचारके उपरांत, आजके मौजशौकके साधनों और तथाकथित सांस्कृतिक प्रवृत्तियोंका एकमात्र उद्देश्य मानो इस शक्तिका क्षय ही हो गया है। इस प्रकारके सूक्ष्म विषय-सेवनको डॉ. वॉल्टरने मानसिक रक्तस्रावका नाम दिया है। वे यह चेतावनी देते हैं कि इस प्रकारका अब्रह्मचर्य मानव-जातिकी अधोगति करनेवाली क्रिया हैं। इसका भयंकर परिणाम हो सकता है। आजके निरंकुश और मर्यादारहित विषय-भोगके बारेमें वे कहते हैं कि अनेक संस्कारी प्रजाओंने विषय-भोगको अंकुशमें रखनेके लिए तथा उसे

आध्यात्मिक विकासका साधन बनानेके लिए विधि-निषेधोंकी व्यवस्था निर्माण की है। इस व्यवस्थाके द्वारा कमसे कम मनुष्यके चित्तका नियंत्रण तो होता ही है। शरीरकी दृष्टिसे इस प्रकारका नियंत्रित विषय-भोग कला और संस्कृतिकी प्रवृत्तियोंके नाम पर किये जानेवाले निरंकुश, सतत और विफल सूक्ष्म विषय-सेवनकी अपेक्षा ज्यादा अच्छा है। यह कहना कठिन है कि इस प्रकारके सूक्ष्म विषय-सेवनसे मानव-जातिकी क्या गति होगी। . . . डॉ. वॉल्टर आगे चलकर कहते हैं कि अध्यात्म-प्रधान घर्मोंमें वर्णित निर्वाणकी स्थिति, योग-समाधि, अनिर्वचनीय शांति, आत्माके द्वारा आत्माका सुख, संक्षेपमें कहा जाय तो आत्म-प्रसादकी भव्य स्थिति—इसमें राग अथवा रोगके लिए कोई स्थान नहीं है—इन सबका ध्येय भी, शरीरकी भाषामें कहें तो, मनुष्यके मस्तिष्कको इन्द्रियोंके कार्यसे मुक्त करना है, जिससे मनुष्यको अपनी उच्चतर शक्तियोंका विकास करनेका अवसर मिले।

अपने आपको अधिक अच्छी तरह पहचाननेके लिए तथा स्वतःसिद्ध नियमोंको जाननेके लिए आवश्यक एकाग्रता और ध्यानकी शक्ति विकारमुक्त हुए बिना सिद्ध की ही नहीं जा सकती। जिराल्ड हर्डके शब्दोंमें कहें तो "अत्यन्त बुद्धिशाली मनुष्यका अनुभव ऐसा है कि जब वह अपने बौद्धिक कार्यमें पूर्ण रूपसे तल्लीन हो जाता है तब उसके विषय लुप्त हो जाते हैं और सतत अभ्यास तथा चिन्तनसे उसकी यह स्थिति चिरस्थायी बन जाती है।" [दि लिविंग ब्रेन, लन्दन, १९५३, पृ० ४६] गांधीजीके ब्रह्मचयके प्रयोग भी इसी उद्देश्यसे सोचे और किये गये थे। उनके पीछे रहे खतरेकी उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं की। परन्तु इस खतरेसे मनुष्य भाग नहीं सकता। वे बार-बार कहा करते थे कि ईश्वरका मार्ग आध्यात्मिक दृष्टिसे कायर मनुष्यके लिए नहीं है। "हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरनुं काम जो ने ।" एक बार फिर जिराल्ड हर्डके शब्दोंमें कहें तो "मनुष्यने परमाणुका परिवर्तन तो कर दिया है। . . . अब उसे स्वयं अपना परिवर्तन करना चाहिये। जो बात पहले आवश्यक थी, वह अब जीवन-मरणका प्रश्न बन गई है। दूसरा पक्ष (दुनियावी) बलिदान देनेके लिए तैयार किया गया है और बलिदान देनेके बाद उसे वही मिला है जो उसने मांगा है—अर्थात् बल और सत्ता। अब धार्मिक पक्षको बलिदान देनेके लिए तैयार करना चाहिये और यदि वह बलिदान देगा तो उसकी जरूरतकी वस्तु उसे मिलेगी—जिसके लिए

दुनिया तरस रही है—अर्थात् उसे दर्शन मिलेगा।" [वही, पृ० १७] इस आत्म-दर्शनसे मनुष्यको ऐसी शक्ति प्राप्त होती है, जिसके विषयमें प्राचीन कालसे यह कहा जाता रहा है कि "वह शक्ति यदि वस्तुत: शुद्ध हो तो 'काल भी यह कहनेमें असमर्थ रहेगा' कि वह क्या क्या कर सकती है।" [वही, पृ० १९]

साथ ही, पर्याप्त तैयारी और साधनाके बिना यंत्रवत् अनुकरण किया जाय तो कैसा खतरा पैदा हो सकता है, इसके सम्बन्धमें जितना कहा जाय उतना थोड़ा है। 'भागवत' के विद्वान लेखक कहते हैं:

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।

तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा॥

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।

विनश्यत्याचरन् मौढ्याद् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।

तेषां यत्स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥

"आत्म-संयमकी असाधारण शक्ति रखनेवाले प्रभावशाली पुरुष कभी कभी साहसपूर्वक सदाचारके निर्धारित नियमोंका उल्लंघन करते देखे जाते हैं। जिस प्रकार सर्वभक्षी अग्नि जिस पदार्थको जलाकर भस्म कर देती है उससे दूषित नहीं होती, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुषोंमें यह दोष नहीं माना जाता। परन्तु जिसमें यह शक्ति नहीं है उसे ऐसे पुरुषोंका अनुकरण करनेका विचार भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि शिवजीका अनुकरण करके विष पीनेकी तरह ऐसा करनेसे उसका सर्वनाश ही होगा। महापुरुषोंके उपदेश सबके लिए सच्चे होते हैं, परन्तु उनके कार्य सदा ऐसे नहीं होते। इसलिए बुद्धिमान मनुष्यको महापुरुषोंके केवल ऐसे आचरणका ही अनुकरण करना चाहिये, जो उनके उपदेशोंके अनुरूप हो।"

६

फरवरी १९४७ में जब ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी यह विवाद चरम सीमाको पहुंच गया था, गांधीजीके दो साथियोंने—जिन्होंने गांधीजीकी नोआखाली धर्मयात्राके दिनोंमें कुछ समयके लिए 'हरिजन' पत्रोंके संपादनकी जिम्मेदारी अपने हाथमें ली थी— विरोध और असहयोगके चिह्न के रूपमें अपने इस्तीफे पेश कर दिये थे। गांधीजीने उनसे कहा कि तुम्हारा यह निर्णय गलत है। परन्तु यदि तुम अपने निर्णय पर पुनर्विचार कर ही न सको और नवजीवन संस्थाके ट्रस्टी चाहते हों, तो मैं 'हरिजन' पत्रोंकी जिम्मेदारी संभालनेको तैयार हूं। परन्तु ऐसा लगता है कि ट्रस्टियोंके मनमें थोड़ा संकोच था। गांधीजीने नोआखालीसे ब्रह्मचर्य-विषयक जो प्रार्थना-प्रवचन 'हरिजन' साप्ताहिकोंमें प्रकाशनार्थ मेजे थे, उनके कुछ अंश ट्रस्टियोंने प्रकाशित नहीं किये थे। गांधीजीको जैसा लगे वैसा यदि वे न लिख सकें, तो उनके पत्र चलानेका क्या अर्थ? एक ट्रस्टीको उन्होंने लिखा: "मैं अच्छी तरह समझता हूं कि 'हरिजन' मेरा नहीं है। वह सचमुच आप लोगोंका है, जो उसे इतना परिश्रम करके चला रहे हैं। मेरा जो कुछ अधिकार है वह नैतिक है।" [जिराल्ड हर्ड, 'पेन, सेक्स एण्ड टाइम', लन्दन, १९३९, पु० ३१७] ट्रस्टियोंने विरोधमें कहा कि आप पर कोई नियंत्रण रखनेका हमारा इरादा नहीं है। अन्तमें गांधीजी उनकी इच्छाके वश हो गये, यद्यपि उनके मनमें थोड़ा दुःख रह गया। "बेशक, वैसे कोई नियंत्रण नहीं है, परन्तु मैं देख सकता हूं कि सब ट्रस्टी नियंत्रण चाहते हैं। आप मुझे अपना बुजुर्ग मानते हैं। इसलिए दूसरा आप क्या कह सकते हैं? . . . परन्तु आप सबकी इच्छाके वश न होनेका तकाजा करनेवाला कोई अवसर आयेगा, तो मैं देख लूंगा।" [जिराल्ड हर्ड, 'दि इटर्नल गॉस्पेल', लन्दन, १९४६, पृ० २१४]

पंडित नेहरूने गांधीजीको लॉर्ड माउन्टबेटनकी विभाजन-योजना पर चर्चा करनेके लिए दिल्ली आनेका निमंत्रण दिया था, जिसे स्वीकार करके गांधीजी २५ मई, १९४७ को सख्त गरमीमें पटनासे दिल्ली आये थे। उस समय 'हरिजन' के लिए फिरसे लिखना आरम्भ किया था। अपनी एकाकी यात्राके लिए नोआखालीमें जब गांधीजीने अपनी छावनी बिखेर दी थी, उस समय उन्होंने त्यागके एक भागके रूपमें छह माह तक 'हरिजन' में लिखना बन्द कर दिया था। गांधीजी बिहारमें थे उन दिनों ठक्कर बापाके प्रति रहे आदरके कारण उन्होंने तात्कालिक छूटके रूपमें

कुछ समयके लिए अपना ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी प्रयोग बन्द कर दिया था। अब दिल्लीमें स्थिर हो जाने पर गांधीजीने अपना वह प्रयोग, मतभेद रखनेवाले साथियोंको सूचना करनेके बाद, फिरसे शुरू कर दिया, जो जीवनके अन्त तक चलता रहा। गांधीजी अपना कठोर आत्म-निरीक्षण और आत्म-परीक्षण भी सदा ही करते रहे। उन दिनों 'हरिजन' में उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण लेखमाला लिखी, उसमें "शाश्वत मूल्यकी वस्तुओं" के बारेमें उन्होंने अपने अंतिम विचार स्पष्ट किये थे। २ जून, १९४७ के सर्वप्रथम लेखमें उन्होंने लिखा था:

> संसार अस्थायी मूल्य रखनेवाली चीजोंके पीछे दौड़ता दिखाई देता है। शाश्वत मूल्यकी वस्तुओंका विचार करनेके लिए उसके पास समय नहीं है। फिर भी जब हम थोड़ा अधिक गहरा विचार करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्तमें जीवनकी शाश्वत वस्तुओंका ही महत्त्व है। . . . ऐसी एक वस्तु ब्रह्मचर्य है।
>
> ब्रह्मचर्य क्या है? यह जीवनका एक मार्ग है, जो हमें ब्रह्मके पास ले जाता है। उसमें जननेन्द्रियका पूर्ण संयम आ जाता है। यह संयम मन, वाणी और कर्मसे होना चाहिये। जो मनुष्य विचारों पर संयम नहीं रखता, परन्तु वाणी और स्थूल कर्म पर संयम रखता है, वह ब्रह्मचारी नहीं माना जा सकता। . . . यदि मन पर संपूर्ण संयम सिद्ध हो जाय, तो वाणी और कर्मका संयम बच्चोंका खेल हो जाय । [वही, पृ० २१२]

दूसरा प्रश्न यह है: ईश्वर क्या है? मनुष्य यदि इसका उत्तर जानता, तो ईश्वरके पास पहुंचनेका मार्ग उसने जान लिया होता।

> ईश्वर मनुष्य नहीं है। . . . सच पूछा जाय तो ईश्वर एक शक्ति है, एक तत्त्व है। वह शुद्ध चैतन्य है, सर्वव्यापक है। फिर भी उसका आश्रय या उपयोग सबको प्राप्त नहीं होता; अथवा यह कहें कि सब उसका आश्रय प्राप्त नहीं कर सकते।
>
> बिजली एक प्रचण्ड शक्ति है। परन्तु सब लोग उससे लाभ नहीं उठा सकते। बिजलीको उत्पन्न करनेके कुछ अनिवार्य नियम होते हैं। उनका पालन किया जाय तो ही

बिजलीका लाभ मिल सकता है। बिजली जड़ है। उसके उपयोगके नियम चेतन मनुष्य परिश्रम करके जान सकता है।

चेतनमय महाशक्तिके, जिसे हम ईश्वर कहते हैं, उपयोगके भी नियम हैं ही; परन्तु यह स्पष्ट है कि उसे खोजनेमें बड़ा परिश्रम करना होता है। . . . उस नियमका संक्षिप्त नाम है ब्रह्मचर्य । [गांधीजी का पत्र जीवनजी देसाईको, १९ अप्रैल १९४७]

पतंजलि भगवानके पांच महाव्रतों अथवा यमोंमें से किसी एकको चुनकर उसकी साधना नहीं की जा सकती। ऐसा सम्भव हो तो केवल सत्यके विषयमें ही हो सकता है, क्योंकि दूसरे चार व्रत सत्यमें छिपे रहते हैं। और इस युगके लिए तो पांच व्रत नहीं परन्तु एकादश व्रत हैं। वे हैं: अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीर-श्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन, सर्वधर्म-समानत्व, स्वदेशी, स्पर्श-भावना। ये सब सत्यके पालनसे निकाले जा सकते हैं।

हममें यह मान्यता चली आई है कि मनुष्य सत्यका या अहिंसाका भंग करे, तो वह क्षंतव्य माना जाता है; कोई मनुष्य झूठ बोले या हिंसा करे, तो उस पर उंगली नहीं उठाई जाती; अस्तेय और अपरिग्रहको तो हम पहचानते ही नहीं। लेकिन यदि ब्रह्मचर्यका खंडन हुआ, तो खंडन करनेवालेकी शामत आई समझ लो। जिस समाजमें ऐसा होता है, उसमें कोई महादोष होना चाहिये । ब्रह्मचर्यका संकुचित अर्थ करनेसे वह निस्तेज बन जाता है, उसका शुद्ध पालन नहीं होता। उसकी सच्ची कीमत नहीं आंकी जाती और दंभ बढ़ता है। वैसी स्थितिमें ब्रह्मचर्यका स्थूल पालन भी असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य हो जाता है। इसलिए सारे व्रतोंका एकसाथ पालन होना चाहिये। ऐसा हो तो ही ब्रह्मचर्यकी व्याख्या सिद्ध की जा सकती है। सच्चा ब्रह्मचारी वही है जो मनसे, वाणीसे और कर्मसे समग्र एकादश व्रतोंका पालन करता है। [गांधीजीका पत्र, २९ अप्रैल १९४७]

इसके बाद गांधीजीने इस भव्य सिद्धान्तससे फलित होनेवाले उपसिद्धांतोंकी चर्चा की है। जिस मनुष्यने ब्रह्मचर्यका आदर्श सिद्ध कर लिया है, उसे नौ प्रकारकी मर्यादाओंकी आवश्यकता

नहीं रहती। वे मर्यादायें अपने आप खतम हो जाती हैं। परन्तु वे कहते हैं कि "जो ब्रह्मचारी बननेका प्रयत्न कर रहा है, उसके लिए तो अनेक मर्यादाओंकी जरूरत है।"

इतना स्पष्ट है कि यह बात सम्पूर्ण ब्रह्मचारीके लिए ही सत्य है। परन्तु जो मनुष्य ब्रह्मचारी होनेका प्रयत्न कर रहा है, उसे अनेक संरक्षणोंकी जरूरत है। उसी प्रकार जैसे आमके छोटे पेड़को सुरक्षित रखनेके लिए उसके आसपास मजबूत बाड़ रखना जरूरी होता है। छोटे बच्चेके लिए क्रमशः मांकी गोद, पालना, चालन-गाड़ी आदिकी जरूरत होती है। परन्तु जब वह बड़ा होकर बिना किसी सहारेके चलने लगता है तब वह सारे सहारे छोड़ देता है। यदि न छोड़े तो उसे नुकसान होता है। यह बात ब्रह्मचर्यके लिए भी पूरी तरह लागू होती है।

मुझे लगता है कि **सच्चे प्रयत्नशील ब्रह्मचारीके लिए भी ऊपर बताये नियंत्रणोंकी जरूरत नहीं है**। ब्रह्मचर्य बलात्कारपूर्वक अर्थात् मनके विरुद्ध जाकर पालन करनेकी वस्तु नहीं है। इस तरह उसका पालन हो ही नहीं सकता। मनको वशमें करना होता है। जो व्यक्ति स्त्रीके आवश्यक स्पर्शसे दूर भागता है, वह ब्रह्मचारी बननेका प्रयत्न ही नहीं करता ऐसा कहा जायगा।

ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले मनुष्यको कृत्रिम नियंत्रणोंसे भागना चाहिये। **उसे अपने लिए आवश्यक नियंत्रण स्वयं खड़े कर लेने चाहिये। और जब उनकी जरूरत न रहे तब उन्हें दूर कर देना चाहिये** ।

इस लेखका उद्देश्य तो यह है कि हम शुद्ध ब्रह्मचर्यको पहचानना सीखें । इसमें देशसेवाका सच्चा ज्ञान निहित है। और देशसेवा करनेकी शक्तिकी वृद्धि भी इसीमें समाई हुई है। [हरिजन, ८ जून १९४७, पृ० १८०] (मोटे टाइप मैने किये हैं।)

इस सब बाहरी नियंत्रणोंकी अपेक्षा "सच्चा और शाश्वत नियंत्रण तो रामनाम है।" दूसरे शब्दोंमें कहें तो ईश्वरकी कृपा द्वारा ही हम अपने आप पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। बुद्धि मनुष्यको बहुत दूर तक ले जा सकती है और प्रामाणिक प्रयत्न हार्दिक प्रार्थनासे अनिवार्य रूपमें

फलित होता है । परन्तु सच्ची कसौटीके समय तो एकमात्र ईश्वरकी कृपा ही मनुष्यका उद्धार करती है।

मैं विश्वासके साथ कह सकता हूं कि ब्रह्मचर्यके परम्परागत नियंत्रण केवल ऊपरी नियंत्रण हैं। सच्चा और शाश्वत नियंत्रण तो रामनाम ही है। रामका नाम जब जिह्वासे नीचे उतर कर हृदयमें वास करता है तभी उसका पूर्ण चमत्कार मालूम होता है। इस अमोध साधनको हस्तगत करनेके लिए एकादश व्रत तो हैं ही। साधन भी ऐसे होंगे कि यह कहना कठिन हो जाय कि उनमें से साधन कौनसे हैं और साध्य कौनसा है। एकादश व्रतोंमें से केवल सत्यको ही लें, तो यह पूछा जा सकता है कि सत्य साधन और राम साध्य है, अथवा राम साधन और सत्य साध्य है? [हरिजन, २२ जून १९४७, पृ० २००]

एक वाक्यमें ऐसा कहा जा सकता है कि रामभक्त और स्थित-प्रज्ञमें भेद नहीं होता। . . . ऐसा मनुष्य प्रत्येक श्वासके साथ रामनामका रटन करता है। सोते समय भी उसका राम जागता है। खाते, पीते, चलते, फिरते—हर क्रियामें उसका राम उसके साथ रहता है। ऐसे रामभकतके लिए रामका पवित्र साथ छूटना उसकी सच्ची मृत्यु है।

वह रामको अपने पास रखनेके लिए या स्वयंको रामके पास रखनेके लिए पंच महाभूतोंकी सहायता लेकर सन्तोष मानेगा। अर्थात् वह मिट्टी, पानी, हवा, प्रकाश और आकाशका सहज, निर्मल और विधिवत् उपयोग करके जो कुछ मिलेगा उसीसे सन्तोष करेगा। इस उपयोगको रामनामका पूरक नहीं मानना चाहिये; वह रामनामकी साधनाकी एक निशानी है। रामनामको इन सहायकोंकी जरूरत नहीं है। परन्तु रामनाममें विश्वास रखनेका दावा करना और साथ ही वैद्य-हकीमोंके पास दौड़ना—इन दोनोंका कोई मेल नहीं है।

एक ज्ञानीने मेरा लेख पढ़कर लिखा कि रामनाम ऐसा रसायन है कि वह शरीरकी कायापलट कर देता है। वीर्यका केवल संग्रह तो जमीनमें संग्रह किये हुए धनकी तरह है। उसमें से अमोध शक्ति केवल रामनाम ही उत्पन्न कर सकता है। वीर्यका संग्रह केवल

अकुलाहट पैदा करता है। किसी भी समय उसका पतन हो सकता है। परन्तु जब रामनामके स्पर्शसे वह गतिमान हो जाता है, ऊर्ध्वगामी बनता है, तब उसका पतन असंभव हो जाता है। [हरिजन, ८ जून १९४७, पृ० १८०]

इसके बाद इस प्रश्न पर चर्चा चली । एक उद्विग्न पत्रलेखकने गांधीजीको लिखा : " मेरे भीतरकी कोई चीज मुझसे कहती है कि (स्त्रीका) हर स्पर्श, फिर वह कितना ही मामूली क्यों न हों, निश्चित रूपसे विषय-वासनाको उत्तेजित करनेवाला सिद्ध होगा। . . . मेरी रायमें स्पर्शसुखके कारण मनुष्य यदि दुष्ट हो तो एक माह या एक सप्ताहमें और सज्जन हो तो धीरे धीरे दस वर्षमें भी पापाचारकी ओर मुड़े बिना नहीं रह सकता।"

गांधीजीने उत्तरमें लिखा: "ऐसे युवकोंके लिए एक ही उपाय है। उन्हें विजातीय व्यक्तिके हर सम्पर्क या स्पर्शको टालना चाहिये। हमारी पुस्तकोंमें बताये गये प्रतिबन्ध और नियंत्रण उस उस युगमें प्राप्त अनुभवोंके परिणाम हैं। बेशक, साधकोंके लिए वे आवश्यक थे। आज हर साधकको चाहिये कि वह उनमें से आवश्यक नियंत्रण चुन ले और अनुभवके आधार पर आवश्यक मालूम होनेवाले नये नियंत्रण भी उनके साथ जोड़े। यदि हम लक्ष्यके आसपास एक वर्तुल बनायें, तो मध्यबिन्दुके पास पहुंचनेवाले अनेक मार्ग हमें मिलेंगे। उनमें से जिन्हें जो मार्ग पसन्द हो वे जायें और अपने लक्ष्य पर पहुंचें। जो साधक अपने मनको नहीं जानता वह यदि दूसरोंकी नकल करेगा, तो जरूर ठोकर खायेगा।" [हरिजन, १५ जून १९४७, पृ० १९२] अन्तमें गांधीजीने लिखा

सावधानीके रूपमें इतना कहनेके बाद मुझे यह जोड़ना चाहिये कि . . . जिन लोगोंकी बात मेरे मनमें है, उनका राम उनके हृदयमें बसता है। वे न तो अपनेको धोखा देते हैं, न दूसरोंको धोखा देते हैं। उनकी दृष्टिमें अपनी बहनें और मातायें सदा बहनें और मातायें ही रहती हैं; तथा दूसरी सारी स्त्रियां उनकी दृष्टिमें बहनें और मातायें ही होती हैं। उन्हें इस बातका ज्ञान भी नहीं होता कि स्पर्शमात्र दूषित है। स्पर्शमात्रसे दोष उत्पन्न होनेका उन्हें मय नहीं रहता। वे सारी स्त्रियोंमें उसी एक ईश्वरका दर्शन करते हैं, जिसका

अपनेमें दर्शन करते हैं। ऐसे उदाहरण हमने देखे नहीं हैं इसलिए यह मानना नम्रताका आभाव बतायेगा कि ऐसे उदाहरण दुनियामें हैं ही नहीं। इससे ब्रह्मचर्यकी महिमा घटेगी। हमने ईश्वरका साक्षात्कार नहीं किया अथवा ईश्वरका साक्षात्कार करनेवाला कोई व्यक्ति हमें नहीं मिला, इस कारणसे ईश्वरके अस्तित्वसे इनकार करनेमें जितनी भूल है उतनी ही भूल पूर्ण ब्रह्मचर्यकी शक्तिको अपने मापदंडसे नापनेमें है।

अन्तमें लोक-संग्रहका प्रश्न उठाया गया। दूसरे एक भाईने लिखा: "मेरे ११ वर्ष पहले लिखे गये पत्र पर आपने जो विचार व्यक्त किये थे, उनसे मैं पूर्णतया सहमत हूं। परन्तु ऐसा करनेकी मुझमें हिम्मत नहीं है। फिर भी मेरी वृत्ति यह रहती है कि 'काजलकी कोठरीमें जाया ही क्यों जाय?' . . . मुझे लगता है कि आपके द्वारा वर्णित आदर्श पुरुषकी कल्पना लोगोंके सामने रखते हुए भी लोक-संग्रहकी दृष्टिसे जन-समुदायको बंधनोंकी वांछनीयताकी सलाह देना अधिक सुरक्षित है। . . . मुझे तो ऐसा लगता है कि उच्च कक्षाको पहुंचे हुए श्रेष्ठ जन ऐसा भय मनमें रखकर कि सामान्य शक्तिवाले लोग श्रेष्ठ जनोंका अविचारपूर्ण अनुकरण ही करेंगे, अपनी कक्षासे नीचेका बन्धनयुक्त आचरण करें—इसीमें समाजका कल्याण है।" इसका उत्तर गांधीजीने यह दिया:

हरएक आदमीको अपनी कमजोरी पहचानना सीखना चाहिये। जो आदमी अपनी कमजोरीको जानते हुए भी बलवानकी नकल करता है, उसका पतन निश्चित है। इसीलिए मैंने कहा है कि हर आदमीको अपनी मर्यादायें स्वयं रच लेनी चाहिये।

स्त्रीके निर्दोष संगको काजलकी कोठरीकी उपमा देनेमें मैं तो केवल अज्ञान ही देख सकता हूं। यह विचार ही पुरुष और स्त्रीका अपमान करनेवाला है। नौजवान बेटा क्या मांके साथ न बैठे? क्या भाई रेलमें अपनी बहनके साथ एक ही बेंच पर न बैठे ? जिसका मन ऐसे सम्पर्कसे उत्तेजित हो जाय, वह निश्चित ही दयाका पात्र है। [हरिजन, २२ जून १९४७, पृ० २००]

अंधी नकलके खतरेका जरूर विचार करना चाहिये और उससे सावधान रहना चाहिये। परन्तु निष्क्रियताका खतरा भी कम नहीं होता। केवल शब्दोंसे चिपटे रहना घातक है।

यद्यपि मेरा यह विश्वास है कि लोक-संग्रहके लिए हमें अनेक बातोंका त्याग करना चाहिये, फिर भी मैं मानता हूं कि ऐसे नियंत्रणोंके पालनमें भी विवेकके लिए स्थान है। . . . सिद्धान्तकी दृष्टिसे मैं ऐसा मानता हूं कि स्त्री-पुरुष बिलकुल नंगे घूमे-फिरें, तो भी कोई नुकसान नहीं है। कहा जाता है कि अपनी निर्दोष अवस्थामें आदम और हौवाके पास अपनी नग्नताको ढंकनेके लिए पेड़का पत्ता भी नहीं था। परन्तु ज्यों ही उन्हें अपनी नग्नताका भान हुआ, वे अपने अंगोंको ढंकने लगे और स्वर्गसे नीचे गिरे। क्या हम विरासतमें मिली हुई उसी पतित अवस्थामें नहीं हैं ? इस वस्तुस्थितिको यदि हम भूल जायं, तो हमें नुकसान ही होगा। इसे मैं लोक-संग्रहके लिए पाले जानेवाले निषेधका उदाहरण समझता हूं।

इसके विपरीत, लोक-संग्रहके लिए अस्पृश्यताका त्याग करना उचित और न्यायपूर्ण है। पहले लोक-संग्रहके नाम पर नौ बरसकी कन्याके विवाहका बचाव किया जाता था। इसी प्रकार लोक-संग्रहके नाम पर समुद्र-यात्रा पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया था। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। लेकिन हर प्रथा और हर रिवाजकी परीक्षा उसके गुण-दोषके आधार पर की जानी चाहिये।

बन्धन ऐसे तो होने ही नहीं चाहिये, जिनसे नर-नारीका भेद हम कभी भूल ही न सकें। यह बात याद रखनी चाहिये कि हमारे अधिकांश दैनिक व्यवहारोंमें इस भेदके लिए कोई स्थान नहीं है। जहां तक मैं जानता हूं, इस भेदका एकमात्र अवसर उस समय खड़ा होता है जब मनुष्य काम-विकारका अनुभव करे। जिन स्त्री-पुरुषोंका काम-विकार सारे दिन जाग्रत रहता है, उनका मन सड़ा हुआ है। ऐसे मनवाले लोग लोक-कल्याण नहीं कर सकते। [हरिजन, २९ जून १९४७, पृ० २१२]

इस प्रकार जहां तक गांधीजीका सम्बन्ध था, इस वाद-विवादका अन्त हुआ । इसके बाद उन्होंने तर्क द्वारा दूसरोंको प्रतीति करानेका प्रयत्न बन्द कर दिया; और वे रामनामकी शक्ति पर उसके संपूर्ण अर्थोंके साथ आधार रखने लगे। इसका अर्थ, अन्य अनेक वस्तुओंके साथ, था सम्पूर्ण अनासक्ति—स्तुति और निन्दाके प्रति उदासीनता।

बाकीकी बातें कालचक्रने पूरी कर दीं। गांधीजीके दो साथियोंने, जो अपने विरोधमें अधिकसे अधिक प्रामाणिक और अटल थे और जिन्होंने गांधीजीके साथके अपने मतभेदको 'हरिजन' साप्ताहिकोंके संपादकीय स्थानसे त्यागपत्र देने तक पहुंचा दिया था, गांधीजीके निर्वाणके बाद और जब वे स्वयं भी गांधीजीके पास जानेकी तैयारी कर रहे थे उस समय यह महसूस किया कि हमने ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी प्रयोगके बारेमें गांधीजीको समझनेमें मयंकर भूल की। उनमें से एक श्री नरहरि परीखने मुझे लिखा कि उन्होंने गांधीजीके साथ घोर अन्याय किया था। अपने पत्रमें उन्होंने आगे लिखा कि मेरे मित्र किशोरलाल घ. मशरूवालाने मुझसे भी पहले अपनी गलती समझ ली थी।

१९४३ में गांधीजी पूनाके आगाखान महलमें नजरबन्द थे उस समय उन्होंने अपनी 'आरोग्यकी कुंजी' नामक पुस्तिकामें संशोधन और परिवर्धन किया था। उसमें उन्होंने ऊर्ध्वरेता पुरुषके शारीरिक लक्षणोंका इस प्रकार वर्णन किया है: "वह तुलनामें बहुत कम भोजनसे अपना शरीर बना सकेगा। अल्पाहारी होते हुए भी वह शारीरिक श्रममें किसीसे कम नहीं रहेगा। मानसिक श्रममें उसे कमसे कम थकान मालूम होगी। बुढ़ापेके सामान्य चिह्न ऐसे ब्रह्मचारीमें देखनेमें नहीं आयेंगे। जिस प्रकार पका हुआ पत्ता या फल वृक्षकी टहनीसे सहज ही नीचे गिर जाता है, उसी प्रकार समय आने पर ऐसे ब्रह्मचारीका शरीर सारी शक्तियां रखते हुए भी गिर जायेगा । उसका शरीर आयु होने पर देखनेमें भले क्षीण मालूम हो, परन्तु उसकी बुद्धिका तो क्षय होनेके बदले नित्य विकास ही होगा और उसका तेज भी बढ़ेगा।" [हरिजन, ६ जुलाई १९४७, पृ० २२०] इससे भी अधिक, इस शक्तिको उस अनासक्तिमें प्रकट होना चाहिये, जो मनुष्यको ईश्वरकी शरणमें अपने आपको समर्पित कर देनेसे तथा केवल उसीकी इच्छा पूरी करनेके लिए जीनेसे प्राप्त होती है। "यदि मैं अपने सुधारके लिए मेरी तपस्या, उपवास और प्रार्थनाओं पर

आशा लगाये बैठा रहूं, . . . तो उनका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन मैं आशा रखता हूं कि ये सब आत्माकी अपने सर्जनहारकी गोदमें अपना थका हुआ सिर रख देनेकी अधीरताके लक्षण हैं। यदि ऐसा हो तो तपस्या, उपवास, प्रार्थना सब अमूल्य वस्तुएं हैं।" [हरिजन, २७ जुलाई १९४७, पृ० २५२]

गांधीजीने इसी कसौटी पर स्वयंको कसना आरम्भ कर दिया था। एक दिन उन्होंने कहा: "यद्यपि मेरे कुछ पुराने और परखे हुए आश्रमी साथियोंने मेरा साथ छोड़ दिया है, फिर भी इस समय मैं ऐसी समता, स्थिरता और दृढ़ता अनुभव करता हूं जैसी मैंने आजसे पहले कभी अनुभव नहीं की थी। इससे मुझे अपार शान्ति और आनन्द मिलता है। यह बताता है कि मैं उत्तरोत्तर स्थितप्रज्ञके अपने आदर्शके निकट पहुंच रहा हूं।" इसके समर्थनमें उन्होंने निद्रा पर अपने अद्‌भुत नियंत्रणका, अपनी निरन्तर बनी रहनेवाली ताजगी और मानसिक जागृतिका तथा दूसरे सब लोगोंके साथ स्वयं उन्हें भी आश्चर्यमें डालनेवाली शारीरिक सहन-शक्ति और सतत बनी रहती मानसिक एकाग्रताका उल्लेख किया था।

*

मनुष्य अपने वीर्य अथवा ओजसका ऊर्ध्वीकरण करनेका प्रयास आदि कालसे करता आया है। आधुनिक विज्ञान ऐसे ऊर्ध्वीकरणकी सम्भावनाको तो सामान्यतः स्वीकार करता है, परन्तु यह वस्तुतः किस प्रक्रियासे होता है यह अभी तक वह पूरी तरह समझ नहीं पाया है। उदाहरणके लिए, फ्रायड लिखता है: "यह स्पष्ट है कि किसी भी बौद्धिक कार्य पर तीव्र मानसिक एकाग्रताके फलस्वरूप वीर्य अथवा ओजस उत्तेजित होता है।" इस परसे फ्रायड यह तर्क करता है कि दूसरी सारी शारीरिक क्रियाओं तथा कामके बीच दोनों ओरसे परस्पर लेन-देनका सम्बन्ध संभव होना चाहिये। अर्थात् शारीरिक क्रियाओं और चित्तके व्यापारोंका परस्पर सम्बन्ध है। जिस प्रकार तीव्र मानसिक प्रयासके फलस्वरूप वीर्य अथवा ओजस उत्तेजित होता है, उसी प्रकार ऐसा माननेका कारण है कि वीर्यके उत्तेजित होनेसे अमुक समयमें मनुष्यकी एकाग्रताकी शक्तिमें वृद्धि होती है । इसके आधार पर फ्रायड यह अनुमान निकालता है: "ऐसा मानना चाहिये

कि जिस मार्गसे अन्य शारीरिक क्रियाएं वीर्यको उत्तेजित करती हैं, उसी मार्गसे वोर्यके उत्तेजित होनेकी वजहसे उसका रूपांतर अन्य उद्देश्योंकी सिद्धिमें भी होता है । हम केवल इतना जानते हैं कि ये मार्ग हैं और उन पर संभवत: दोनों दिशाओंसे आना-जाना हो सकता है; इसके सिवा इन मार्गोंके बारेमें हम कुछ नहीं जानते, यह अन्तमें हमें स्वीकार करना पड़ता है।"

गांधीजीकी ब्रह्मचर्यकी साधनाका केन्द्रीय आशय और महत्त्व यह है कि रामनामका रसायन—अणुभट्ठीमें 'शामक द्रव्य' काम करता है उसी प्रकार— मनुष्यमें निहित सुषुप्त शक्तिको स्फोटक रूप धारण करनेसे रोकता है और उसे शक्तिके अखूट और निरन्तर प्रवाहमें बदल डालता है । साधक ध्यानावस्थित होकर उस तत्त्वके साथ लीन हो जाता है, जिसका वाचक रामनाम है, और अपना मन, वचन, काया सर्वथा उसे अर्पण करके अपने समग्र जीवनको सर्वथा उस साधनाके अनुरूप बना लेता है । इसके बाद वह अपनी सम्पूर्ण चेतन-शक्तिको समस्त क्षेत्रोंसे खींच कर किसी ऐसी गूढ़ ग्रन्थिमें केन्द्रित करता है जहां समस्त शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका योग होता है। इसके फलस्वरूप द्रष्टा और दृष्यका भेद मिट जाता है और साधक एकके बाद एक ईश्वरके जिन गुणोंका ध्यान करता है उन गुणोंके साथ, भ्रमर-कोट न्यायसे, एकरूप हो जाता है। रोमां रोलांकी भाषामें कहें तो साधक इस प्रकार ईश्वरके जितने गुणोंको आत्मसात् करेगा उतने प्रमाणमें वह ईश्वररूप बनेगा। अन्तमें जब साधक ईश्वरके समस्त गुणोंको आत्मसात् कर लेगा तब वह शून्यताका अनुभव करेगा। जिस प्रकार मेघ-धनुषके सारे रंगोंका सुयोग होने पर उन सबके समन्वयसे मेघ-धनुष श्वेतवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार शून्यता जगतके व्यवहारमें भावनाकी भूमिका पर शुद्ध करुणाका रूप धारण करती है। इसका कारण यह है कि भावनाकी भूमिका पर शून्यताका ही नाम करुणा है। इस शून्यताकी स्थितिमें से केवल व्यक्तिकी ही नहीं, परन्तु सारे ब्रह्माण्डकी संपूर्ण प्रवृत्तिका जन्म होता है। चीनी तत्त्वज्ञानी लाओत्सेका एक महत्त्वपूर्ण वचन है: "रथके चक्रके तीस दृश्य आरे होते हैं, परन्तु उसकी गति तो उसकी नाभिके शून्यसे ही उत्पन्न होती है ।" खगोलशास्त्री कहते हैं कि सारे नक्षत्र-मंडल आकाशके शून्य अवकाशसे ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार गांधीजी कहते हैं: "अहंकारकी बेड़ियां तोड़कर जब हम मानव-जातिके समुद्रके साथ एकरूप हो जाते हैं . . . तब हम ईश्वरके साथ

एकरूप हो जाते हैं। . . . ईश्वर स्वयं निरन्तर कर्म करता रहता है। . . . ज्यों ही हम ईश्वररूपी समुद्रमें मिल जाते हैं त्यों ही हमारा आराम खतम हो जाता है, हमें आरामकी जरूरत ही नहीं रह जाती। यह स्थिति ही हमारा सच्चा आराम है। इस महती अशांतिमें ही वर्णनातीत शांतिकी कुंजी है। . . . इस उदात्त स्थितिका वर्णन . . . करना कठिन है, परन्तु वह अनुभवगम्य है।" [हरिजनबन्धु, २७ जुलाई १९४७, पृ० २१६]

गांधीजीका स्वार्पण जैसे जैसे गहरा होता गया और ईश्वरसे अलग रहकर जीनेकी उनकी इच्छा जैसे जैसे नहींवत् बनती गई, वैसे वैसे उनकी अहिंसाका सामर्थ्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया; और जो ईश्वर अथवा सत्य है और जो मानव-सम्बन्धोंमें अहिंसा अथवा प्रेमके रूपमें प्रकट होती है, उस अनन्त और सर्वव्यापी शक्तिके साथ गांधीजी अधिकाधिक तद्रूप होते गये। अगस्त १९४७ में उनके द्वारा कलकत्तेमें किये गये उपवासने, लॉर्ड माउन्टबेटनके शब्दोंमें कहें तो "एक आदमीकी सीमा-सेना" ने, वह कार्य सिद्ध कर दिखाया, जो पंजाबमें "पचास हजार सैनिक" नहीं कर पाये। और दिल्लीका गांधीजीका अन्तिम उपवास तो इस शक्तिकी चरम सीमा था। उसमें परमाणुके भेदनसे उत्पन्न होनेवाली आधुनिक भौतिकशास्त्रीकी शृंखला-प्रतिक्रियाके सभी लक्षण दृष्टिगोचर होते थे।

तीसरा भाग

पश्चात्तापके लिए पुकार

बारहवां अध्याय
'जितना बड़ा पापी उतना ही बड़ा सन्त'

१

इस प्रकार नोआखालीका गत्यवरोध चल रहा था उसी समय बिहार जानेके लिए गांधीजी पर दबाव बढ़ता गया। ६ फरवरो, १९४७ को उन्होंने पंडित नेहरूको लिखा: "बिहार जानेके लिए मुझ पर बहुत बड़ा दबाव डाला जा रहा है, क्योंकि सब लोग कहते हैं कि बिहार सरकारकी ओरसे मुझे ठीक ढंगसे सारी बातें नहीं बताई जातीं | मैं सावधानीसे देख रहा हूं।"

कोई दिन ऐसा नहीं जाता था जब पत्रोंका ढेर न आता हो—गुस्सेसे भरे हुए, धमकियोंसे भरे हुए और कभी कभी गालियोंसे भरे हुए पत्र भी आते थे। अधिकांश पत्र लीगियोंके होते थे। ये लोग जानना चाहते थे कि गांधीजी बिहार क्यों नहीं जा रहे हैं। गांधीजी हर पत्रकी सावधानीसे जांच करते थे, ताकि उसमें सत्यका कोई अंश हो तो उसका पता चल जाय; और सारे आरोपोंकी उस समय तक जांच कराते थे जब तक कि वे तथ्योंसे सत्य न सिद्ध होते या गलत न ठहरते। जिला मुस्लिम लीग, मुंगेर (बिहार) के अध्यक्षका पत्र नमूनेदार था: "बिहारके हिन्दुओंके अत्याचारोंकी कोई मिसाल इतिहासमें नहीं है। . . . परन्तु इस प्रान्तके मुस्लिम पीड़ितोंके लिए सहानुभूतिका और अपराधियोंके लिए उलाहनेका एक भी शब्द आपके मुंहसे नहीं निकला। फिर भी आप मुसलमानोंसे यह कहते हैं कि वे आपके बताये राष्ट्रवादमें, आपके समर्थनवाली 'राष्ट्रीय' कांग्रेसमें और आपके आश्रयमें काम करनेवाले 'राष्ट्रीय' नेताओंमें विश्वास रखें। . . . इसलिए मेरा अनुरोध है कि यदि आप मानवताकी सेवा सचमुच करना चाहते हैं, तो जल्दीसे जल्दी बिहार चले आइये ।" [पत्र, ५ जनवरी १९४७] इसका जवाब गांधीजीने यह दिया:

> आपका पत्र . . . अतिशय उत्तेजनामें लिखा गया हे है। . . . आप मुझे यह बताइये कि बिहार जाकर मैं मुसलमानोंकी अधिक सेवा कैसे कर सकता हूं ? मैं आपके इस कथनका तो समर्थन नहीं करता कि बिहारके हिन्दुओंके अत्याचारोंकी कोई मिसाल

इतिहासमें नहीं मिलती, परन्तु मैं यह मान लेता हूं कि तुलनामें वे नोआखालीसे बहुत बड़े थे। मुंगेर जिला मुस्लिम लीगके अध्यक्षके नाते आपसे मैं आग्रहके साथ कहूंगा कि प्रमाणित तथ्यों तक ही आप सीमित रहिये। मुझे कहते दुःख होता है कि आपने ऐसा नहीं किया। [पत्र, २५ जनवरी १९४७]

अलीगढ़के एक वकील साहब तो और भी तेज निकले। उन्होंने लिखा, "आक्रमणकारी कौमके नेताकी हैसियतसे" आपको उन जगहोंका दौरा करना चाहिये था, जहां "आपकी कौमने भयंकर अत्याचार किये हैं।" आपके "डर छोड़ोके नारे" और आपके द्वारा "सवर्ण हिन्दुओंको दी गई "मारो और मरो" की सलाह "कलकत्तेके भीषण संहार और . . . बिहारके हत्याकांडके लिए जिम्मेदार है।" इसके बाद उन्होंने लिखा, "यदि आप हिन्दू-मुस्लिम-एकताका दावा सच्चे दिलसे करते हैं, तो आपको उन क्षेत्रोंका दौरा करना चाहिये जहां आपकी कौम आक्रमणकारी रही है।" [पत्र, ११ जनवरी १९४७] गांधीजीने उत्तर दिया:

> आपने एक महान विश्वविद्याल्यमें शिक्षा ली है और आप एम. ए. की डिग्री रखते हैं। परन्तु मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि आपके पत्रमें संतुलन बिलकुल नहीं है। आप मुझे अपने ही उत्तम ढंगसे हिन्दुओं, मुसलमानों और दूसरे लोगोंकी सेवा करने दीजिये। अगर मैं इसमें सफल नहीं हुआ, तो मुझे अफसोस होगा। परन्तु जो राय मेरी बुद्धिको नहीं जंचती, उसके अनुसार मैं अपना कार्यक्रम नहीं बदल सकता। . . . मैं आक्रमणकारी और अनाक्रमणकारी कौमोंमें कोई भेद नहीं करता। . . . धर्म मेरी व्यक्तिगत वस्तु है। उससे एक भारतीय नागरिकके नाते मेरे कर्तव्यमें कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। [पत्र, २५ जनवरी १९४७]

पटनासे एक बैरिस्टरने लिखा कि यह "सचमुच बड़े आश्चर्य" की बात है कि आप अपना समय नोआखालीमें "बरबाद कर रहे हैं।" "(बिहार सरकारकी तरफसे) जो शिष्ट-मण्डल हालमें हीं आपके पास गया था, आपको सारी जानकारी गलत दी और मुझे ताज्जुब है कि (बिहारके रिलीफ कमिश्नर) श्री हॉल्टन भी, जो एक यूरोपियन हैं, इसमें शरीक हैं ! बिहारकी करुण

घटनाका एकमात्र कारण मंत्रि-मंडलकी उपेक्षा है। . . . आपको यहां आना चाहिये . . . और आपके कांग्रेसी मंत्रि-मंडलके व्यवहारकी जोरदार टीका करनी चाहिये।" अनुलेखमें पत्रलेखकने यह लिखा: "सारी दिक्कत तो यह है कि आपने अपनी कौमके लिए स्वराज्य हासिल करनेकी वकालत और लड़ाई की, जो बिलकुल अयोग्य है और यह नहीं जानती कि सरकार कैसे चलाई जाती है।" [पत्र, ११ जनवरी १९४७]

इस पत्रकी कटुता पर ध्यान न देकर गांधीजीने बिहार सरकारसे विस्तृत उत्तर मंगाया, जो टाइप किये हुए ढाई फुल-स्केपके पन्नोंमें था और पत्रमें उठाये गये तमाम मुद्दोंकी उसमें विस्तृत चर्चा की गई थी। अपने क्रुद्ध पत्रलेखकको गांधीजीने उत्तर दिया:

> क्या आप मेरे पुराने अथक पत्रलेखक नहीं हैं, जिन्हें मैं किसी भी तरह प्रतीति नहीं करा सका था ? आपने एक जोरदार रायसे पत्रकी शुरुआत की है और इस बातकी जांच करनेकी परवाह नहीं की कि मैं अपना समय कैसे बिता रहा हूं; आपने मुझे यह भी नहीं बताया कि किस आधार पर आप इस नतीजे पर पहुंच गये। आपने मुझ अभियुक्तकी बात सुने बिना ही मुझे दोषी करार दे दिया। आपने यह भी कानून बना दिया कि नोआखालीकी अपेक्षा बिहारको मेरी ज्यादा जरूरत है। चूंकि दूसरे किसी व्यक्तिकी अपेक्षा मैं अधिक यह जाननेकी स्थितिमें हूं कि नोआखालीमें मैं अपना समय बरबाद कर रहा हूं या नहीं, इसलिए मेरा यह मानना उचित होगा कि बिहारके बारेमें आपका निर्णय उतना ही गलत है जितना कि नोआखालीके बारेमें।
>
> आपके पत्रका दूसरा पैरा भी उतना ही निराशाजनक है जितना पहला। आपको इस बातकी कोई जानकारी नहीं हो सकती कि (बिहारके शिष्ट-मंडलने) . . . मुझसे क्या कहा और फिर भी आप फैसला दे देते हैं और कहते हैं कि (उसने) . . . मुझे "सारी जानकारी गलत" दी और श्री हॉल्टन भी उसमें शरीक थे। . . . जहां तक मुझे मालूम है, एक स्वतन्त्र जांच-कमीशन बैठनेवाला है; और अगर ऐसी बात है तो मेरे खयालसे आपका और मेरा यह फर्ज है कि हम अपना फैसला मुलतवी रखें। [पत्र, १८ जनवरी १९४७]

इसी पत्रलेखकके एक और पत्रके अन्तमें यह सुझाव दिया गया था: "बिहारको और अधिक विपत्तिसे बचानेके लिए, मुझे आशा है कि, आप यह घोषणा करनेका साहस करेंगे कि बिहार मंत्रि-मंडलको पदच्युत कर देना चाहिये, वहां धारा-९३ लागू कर देनी चाहिये और इस भ्रष्ट मंत्रि- मंडलके साथ-साथ वर्तमान गवर्नरको भी बदल देना चाहिये।" [पत्र, १८ फरवरी १९४७] इसका जवाब गांधीजीने यों दिया: "आपके इस सुझाव पर मुझे आश्चर्य हुआ कि मैं बिहारके मंत्रि-मंडलकी बात सुने बिना ही उसे दोषी करार दे दूं। इस बातसे मैं लज्जित हूं कि आजके समयमें आप धारा-९३ लागू करनेका सोचते हैं। भ्रष्टाचार जहां भी हो, उसका भंडाफोड़ करनेके अनेक सम्मान-पूर्ण मार्ग हैं। परन्तु धारा-९३ का प्रयोग उनमें से नहीं है।"[पत्र, १ सार्च १९४७]

शहीद सुहरावर्दीने गांधीजीकी "अन्तरात्माकी आवाज" के बारेमें कहीं तुच्छतापूर्ण उल्लेख कर दिया। इससे गांधीजीको चोट पहुंची। उन्होंने कोमलतासे शहीदको सुझाया कि आप सुनना चाहें तो आपके भीतर भी अन्तरात्माकी आवाज है: "मैंने अखबारोंमें एक बयान देखा है, जो आपका बताया जाता है। उसमें मुझ पर कटाक्ष किया गया है। मैं आपसे ऐसी आशा नहीं रखता था। मैं यह विश्वास रखकर चलता था कि आप यह मानते हैं कि मैं अन्तरात्माकी आवाजका अनुसरण करके चलता हूं । मेरा विश्वास है कि सारी मानव-जातिके भीतर यह आवाज होती है। परन्तु अधिकांश लोगोंकी यह आवाज बाहरके शोरगुलके कारण उन्हें सुनाई नहीं पड़ती। जब मेरी अन्तरात्माकी आवाज कहेगी तब मैं अन्य किसीकी प्रेरणाके बिना ही बिहार पहुंच जाऊंगा।" [गांधीजीका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, २२ फरवरी १९४७]

इस प्रकार लोगोंके क्रोध अथवा उपहाससे प्रभावित होनेसे इनकार करके गांधीजी सचाई तक पहुंचनेका सतत प्रयत्न करते रहे। उन्होंने आजाद हिन्द फौजके कर्नल निरंजनसिंह गिलको बिहार जाकर रिपोर्ट देनेके लिए प्रोत्साहित किया। यद्यपि कर्नल गिलकी रिपोर्टसे मुस्लिम लीग द्वारा प्रचारित अनेक झूठी बातोंका भंडाफोड़ हो गया, फिर भी वह बिहार सरकारके लिए काफी हानिकारक थी। उससे गांधीजी विचारमें पड़ गयें। बिहारके एक मंत्री डॉ. सैयद महमूदको एक पत्रमें उन्होंने लिखा, "मुस्लिम लीगकी रिपोर्टमें और जो रिपोर्ट मुझे दूसरे जरियोंसे मिली है उसमें

सचाई कहां है, इसका मैं निर्णय नहीं कर सकता। मैं चाहता हूं कि आप मुझे लिखें कि लीगकी रिपोर्ट कहां तक सही है।" [गांधीजीका पत्र डॉ. सैयद महमूदको, ३१ दिसम्बर १९४६] डॉ. महमूद चुप रहे। गांधीजीके बार-बार याद दिलाने पर भी उनकी चुप्पी बनो रही । गांधीजीको यह विचित्र लगा। इससे वे सचाई तक पहुंचनेके लिए अधीर हो गये।

२

इस समय बंगालके भूतपूर्व मुख्यमंत्री मौलवी फजलुल हक सामने आये। जहां तक उचित-अनुचित उपायोंका और अन्त:करणके लचीलेपनका संबंध था, बंगालके तत्कालीन मुख्यमंत्री और हक एक ही थैलीके चट्टे-बट्टे थे। लेकिन उन्हें अपने राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वीसे दो दो हाथ करने थे। जबसे जिन्नाने अपना हुक्म न माननेके कारण मौलवी साहबको मुस्लिम लीगसे निकाल दिया था तबसे दोनों एक-दूसरेसे घृणा करते थे। परन्तु अगस्त १९४६ में कलकत्तेकी "सीढ़ी कार्रवाई" के समय एक मुस्लिम भीड़ने "लीग-विरोधी" और "गद्दार कार्रवाइयों" के कारण उन पर भी सीधी कार्रवाई लागू करनेकी धमकी दी थी। तबसे वे अक्लमन्द हो गये थे और "वफादारों" में फिरसे शामिल होना चाहते थें। उन्हें क्षमा करके वापस लीगमें भरती कर लिया गया। उसके बाद वे मुस्लिम लीगमें खोई हुई लोकप्रियता और प्रतिष्ठाको फिरसे प्राप्त करनेके लिए उत्सुक थे।

गांधीजीका नोआखाली शान्ति-मिशन मुस्लिम लीगके उच्च नेताओंकी आंखोंमें बुरी तरह खटक रहा था। शहीद सुहरावर्दीका उस मिशनके साथ चाहा-अनचाहा संबंध था और नोआखालीके दंगोंके बाद उनकी सरकारको कुछ अप्रिय कदम उठाने पड़े थे। इससे आक्रमणके लिए मौलवी फजलुल हकको एक आदर्श लक्ष्य मिल गया। एक पत्थरसे दो चिड़ियां मारनेका मौका था। बारीसालमें एक सार्वजनिक भाषणमें मौलवी फजलुल हकने मांग की कि गैर-मुस्लिम होनेके कारण गांधीजीको इस्लामकी शिक्षाका "उपदेश" नहीं देना चाहिये। उनके स्वभावमें अविचारीपन तो था ही, लगे एक मनगढ़न्त कहानी सुनाने : गांधीजीके दक्षिण अफ्रीकासे लौटने पर मैंने उनसे इस्लाम स्वीकार करनेके लिए कहा था। इस पर गांधीजीने मुझे

विश्वासमें लेकर स्वीकार किया था कि सचमुच दिलसे तो वे मुसलमान ही हैं। परन्तु जब मैंने उनसे खुल्लमखुल्ला यह ऐलान करनेके लिए कहा, तो गांधीजीने इनकार कर दिया !

इस पर उत्तेजित होनेके बजाय गांधीजीने मौलवी साहबके भाषणके पहले हिस्सेका तो समुचित उत्तर दे दिया और दूसरे भागके बारेमें उनसे अपील की कि "अपनी ही ख्यातिके लिए" वे उसका खंडन कर दें। सारा भाषण चुनावका एक सस्ता प्रदर्शन था। एक ऐसे व्यक्तिकी तरफसे, जो बंगाल प्रान्तीय मुस्लिम लीगकी अध्यक्षताकी आकांक्षा रखता हो, यह सब और भी दुर्भाग्यपूर्ण था। अध्यक्षताके चुनावकी घोषणामें मौलवी फजलुल हकने अन्य बातोंके साथ साथ यह भी कहा था: "यदि मुझे इस पदके लिए चुन लिया गया, तो मैं मांग करूंगा कि (१) गांधीजीको नोआखालीसे हटा कर तुरन्त बिहार भेज दिया जाय; और (२) नोआखाली और टिपरासे जल्दी ही सेना हटा ली जाय।" उसी भाषणमें मौलवी साहबने शहीद सुहरावर्दीकी सरकारकी यह कहकर निन्दा की थी कि उसने गांधीजी और दूसरे "बाहरवालों" को नोआखालीमें आकर काम करनेकी इजाजत दी। उन्होंने कहा, मुझे आश्चर्य है कि नोआखाली और टिपराके मुसलमानोंने इतने दिन तक गांधीजीका वहां रहना कैसे बरदाश्त किया। वाक्शूरताके जोशमें आकर उन्होंने कह दिया कि अगर गांधीजी मेरे अपने जिले बारीसालमें जाते, तो मैं उन्हें और उनकी बकरीको 'खाल' में ढकेल देता ! साथ ही, उन्होंने गांधीजीसे "दिल खोलकर" बातें करनेके लिए तार द्वारा मुलाकात मांगी ! कई दिनों बाद २७ फरवरीको हैमचरमें दोनोंकी भेंट हुई।

जब भूतपूर्व मुख्यमंत्रीनें चार और आदमियोंके साथ गांधीजीके कमरेमें प्रवेश किया, तब गांधीजी वहां नहीं थे। मौलवी साहब पाजामा और कोट पहने हुए थे। उनकी फैज टोपी टेढ़ी-सी लगी हुई थी और उनके गलेमें मुरझाये हुए फूलोंकी माला पड़ी थी। स्पष्ट था कि उनके प्रशंसकोंने वह माला उन्हें पहनाई थी और वह लोकप्रिय नेताके स्वागतकी घोषणा कर रही थी। दिनमें गर्मी थी। मौलवी साहबकी सांस फूली हुई थी और पसीना निकल रहा था। उन्होंने अपना भारी शरीर गांधीजीके काठके तख्ते पर रख दिया और अपने आप पंखा झलने लगे । इतनेमें ही गांधीजी आ गये।

ज्यों ही मौलवी साहबने उठकर गांधीजीसे हाथ मिलाया, गांधीजी बोले, “नहीं, नहीं, खड़े न होइये। जब मैं आपसे पिछली बार मिला था तब आप मुख्यमंत्री थे !” साधारण शिष्टाचार पूरा होनेके बाद मौलवी साहबने कहा: “मैं आपसे साफ साफ बातें करूंगा। कहना कुछ और मनमें कुछ और, इससे कोई फायदा नहीं।” गांधीजीने सिर हिलाकर पूरी सहमति प्रकट की।

मौलवी साहब कहने लगे: आप बिहार नहीं गये। आपका स्थान नोआखालीके बजाय बिहारमें है। नोआखालीके मुसलमान आक्रमणकारी हैं ही नहीं; उलटे वे पुलिसके दमनके शिकार हैं। हिन्दू पुलिस अफसर बेगुनाह मुसलमानोंको सता रहे हैं और उन्हें झूठे मुकदमोंमें फंसा रहे हैं। उन्हें हटा देना चाहिये। मुसलमान लोग अपराधी नहीं हैं और स्त्रियोंको भगानेवाले भी नहीं हैं। इस्लाम ऐसा कभी नहीं सिखाता।

जहां तक इस्लामकी सैद्धान्तिक शिक्षाओंका संबंध था, गांधीजीने फिरसे अपनी सहमति प्रकट की। मौलाना साहबने आगे कहा: “बहुत कम लोग इस्लामको समझते हैं। वे उसे तलवारका धर्म कहते हैं। मुस्लिम राज्यमें अल्पसंख्यकोंके प्रति बहुसंख्यकोंकी खास जिम्मेदारी होती है । गैर-मुस्लिम ज़िम्मी (इस्लामी राज्यके गैर-मुस्लिम प्रजाजन) हैं।” मौलवी साहबका आखिरी मुद्दा यह था कि नोआखालीमें हिन्दुओंके लिए मुस्लिम बहुमतसे डरनेका कोई कारण नहीं है; इसके विपरीत वहां मुसलमानोंको हिन्दुओंके प्रभुत्वका भय है ! हिन्दुओंको डर छोड़कर पाकिस्तानको मान लेना चाहिये। सम्राट्की सरकारका २० फरवरी, १९४७ वाला वक्तव्य तो भारतमें गृहयुद्ध ही लायेगा।

जब उन्होंने मित्रतापूर्ण हावभावसे अपनी बात खतम की, तो गांधीजीने मौलवी साहबके कुछ दिन पहलेके कटाक्षका उल्लेख करते हुए चुटकी ली और पूछा: “तो यदि मैं बारीसाल आया तब तो मेरे नसीबमें वहां ‘खाल’ ही होगा न?”

“नहीं, नहीं, महात्माजी, आप वहां कभी भी आ सकते हैं। वह तो सिर्फ एक मजाक था। मैं अपने बापसे भी मजाकमें नहीं चूकता। यह मेरा स्वभाव है !” मौलवी साहबने नीचे देखते हुए उत्तर दिया, परन्तु उनके ओठों पर शरारती मुसकान खेल रही थी।

मौलवी साहबकी अन्तिम बातको पहले लेकर गांधीजी बोले, मैने जिन्नासे हमेशा कहा है कि मुझे पाकिस्तानका मर्म और गूढ़ार्थ समझा दें। मेरी योजना मुस्लिम लीगके नेता और देशके सामने है; और जहां तक मेरा संबंध है, वह आज भी वैसी ही है। जहां तक फौजदारी मुकदमोंको वापस लेनेका सवाल है, यह बंगाल सरकारके हाथकी बात है। "रही बात बिहारकी, सो मैं जल्दी ही वहां जा सकता हूं।" "लेकिन आपको खुश करनेके लिए नहीं जाऊंगा।" यह बात उन्होंने इसलिए कही कि मौलवी साहबको उनके बिहार जानेकी बातसे शहीद साहबके और उनके राजनीतिक संघर्षमें अनुचित लाभ उठानेका मौका न मिले। उन्होंने मौलवी साहबसे कहा, मैं डॉ. महमूदके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। लेकिन अगर आप मुझे यह भरोसा दिला दें कि नोआखालीकी बहुसंख्यक कौम अल्पसंख्यक कौमकी सुरक्षाकी जिम्मेदारी ले लेगी, तो मुझे तुरन्त बंगालसे चले जानेकी स्वतन्त्रता मिल जायगी। क्या आप ऐसा आश्वासन दे सकते हैं?

इसका मौलवी साहबने कोई सीधा उत्तर नहीं दिया। इसके बजाय वे बंगालमें मिली-जुली सरकारकी बातें करने लगे और बोले कि बंगालके सब रोगोंकी दवा यही है !

इस मौके पर फजलुल हकके एक साथी बोल उठे: "मैं खिलाफत आन्दोलनमें एक कार्यकर्ता था। आप पहले नेता हैं, जिन्होंने मुझे राजनीति सिखाई।"

गांधीजीने उत्तर दिया, "अगर आपने मुझसे राजनीति सीखी होती, तो आपने इससे कहीं अच्छा कार्य किया होता।"

वे सज्जन बिना घबराये आगे कहने लगे: "उस दिन यहां आते हुए आप मेरे घरके पाससे गुजरे थे, परन्तु मैं आपसे मिलनेके लिए बाहर नहीं निकला; क्योंकि मुझे अपने राजनीतिक मित्रोंके नाराज होनेका डर था। आज आपको अपने इन सम्मान्य नेताके साथ देखकर मैं आ गया हूं और आपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई है।"

फजलुल हककी तरफ मुड़कर गांधीजीने पूछा: "आपका और सुहरावर्दीका क्या झगड़ा है? यह मुझे अच्छा नहीं लगता।" परन्तु मौलवी साहबने फिर प्रश्नको टाल दिया और अपने धन्धे

और पुरानी बीमारी—अर्थात् पैसेकी कमीकी बात करने लगे ! इस पर गांधीजीने उनकी फिजूल-खर्चीकी आदतका मजाक उड़ाया और हंसते हंसते उन्हें विदा कर दिया।

किसी न किसी तरह गांधीजीसे मिलनेके बाद लोग पहले जैसे नहीं रह पाते थे। मौलवी फजलुल हकका भी यही हाल हुआ। कुछ दिन बाद मैमनसिहके वकीलोंसे अनौपचारिक चर्चा करते हुए उन्होंने कहा, "गांधीजी पूर्व बंगालके अशान्त प्रदेशमें अपने सद्भावना-मिशनके द्वारा जो काम कर रहे हैं, वह सचमुच प्रशंसनीय है। मेरा भी इरादा है कि महात्मा गांधीकी तरह हिन्दु-मुसलमानोंमें सद्भावनाका प्रचार करनेमें अपना बाकी जीवन बिताऊं। उससे बंगाल सुखी और सम्पन्न बनेगा।"

३

फजलुल हकके चले जानेके बाद गांधीजी अपनी पदयात्राके तीसरे दौरके लिए योजनाएं बनाने लगे। वह २ मार्च, १९४७ को शुरू होनेवाला था। उन्होंने यात्राका लम्बा-चौड़ा ब्योरेवार कार्यक्रम बनाया था, जिसमें सारे चरमंडल और नोआखाली तथा टिपराके कुछ हिस्सोंका समावेश हो जाता था। अन्तमें उन्हें वापस श्रीरामपुर आना था, जहांसे वे २ महीने पहले शुरूमें चले थे। वहांसे दुबारा रवाना होकर नोआखाली और टिपराके बाकी हिंस्सोंकी पदयात्रा उन्हें करनी थी । इस प्रकार जिस शोधके लिए वे निकले थे उसके सफल होने तक यात्रा चालू रहनेवाली थी।

परन्तु 'बंदेके मन और है, साईके कछु और'।

दूसरे ही दिन डॉ. महमूदका सचिव उनका एक पत्र लेकर आ पहुंचा। वह एक दर्दबरा लम्बा पत्र था। उसमें वही बात दोहराई गई थी, जो डॉक्टर महमूदने गांधीजीको पहले लिखी थी—इस दावानलकी राखमें से शायद हम अपने सपनोंका नया और सुखी भारत बना सकेंगे। साम्प्रदायिक समस्याकी जड़में मुसलमानोंका यह डर है कि अगर हिन्दुओंके हाथमें शासनकी सत्ता आ गई, तो हमारा सफाया कर दिया जायगा। बिहारके दंगोंने मुसलमानोंके इस सन्देह और भयको दूर करनेका ईश्वर-प्रदत्त अवसर दिया है। पंडित नेहरूने यह काम आरंभ कर दिया

है। इसके फलस्वरूप उनके बिहार पहुंचनेके ४ दिनके भीतर ही मुसलमानोंकी सारी मनोवृत्ति भयंकर मुसीबतोंके बावजूद बदलने लगी है। "में अब फिरसे अपना सिर ऊंचा करके मुसलमानोंसे कह सकता हूं, 'देख लो, मैं जो बात तुमसे कहा करता था वह सच है न? कांग्रेसके उच्च कक्षाके नेता हिन्दू-मुसलमानमें कोई फर्क नहीं समझते । वे हमेशा पीड़ितोंका पक्ष लेंगे, अत्याचारियोंका कभी नहीं।' " [डॉ. सैयद महमूदका पत्र गांधीजीको, १७ फरवरी १९४७] परन्तु पटनामें हिन्दू विद्यार्थियोंने पंडित नेहरूके विरुद्ध जो अशोभनीय प्रदर्शन क्रिया, उससे पंडित नेहरूने मुस्लिम मानस पर जो अच्छा असर पैदा किया था वह सब खतम हो गया और मुसलमानोंका डर और शक गहरा हो गया। डॉ. महमूदने आगे लिखा: "मैं पहले अंग्रेजोंसे कहा करता था कि अगर आप गांधीजीके जीते-जी भारतसे निबटारा नहीं करेंगे, तो बादमें आपको पछताना पड़ेगा। इसी तरहसे आज में भारतीय मुसलमानोंसे कहता हूं कि अगर वे आपके जीवन-कालमें साम्प्रदायिक प्रश्नको नहीं निबटा लेंगे, तो फिर वह कभी नहीं निबटेगा । वह मौका हाथसे लगभग निकल गया मालूम होता है । परन्तु अगर आप अब भी बिहार आ जायं, तो शायद हिन्दुओंको पश्चात्ताप हो और परिस्थितिको अभी भी बचाया जा सके।"

सबसे दुःखद बात यह थी कि यदि तथ्य वैसे ही थे जैसे बताये गये थे, तो कांग्रेसी लोग दोषमुक्त नहीं माने जा सकते थे । मुसलमानों पर अवर्णनीय बर्बरताएं करनेके किस्से सामने आये थे। बादमें गांधीजीके दलके एक सदस्यने लिखा, "मैं और मेरे पास बैठी हुई कई बहनें मुश्किलसे अपने आंसू रोक सकीं। बापू गहरे विचारमें डूब गये | बेचारे मुजतबा साहब (डॉ. महमूदके सचिव) का कंठ रुंध गया। वे डॉ. महमूदका पत्र और आगे न पढ़ सके। ज्यों ही उन्होंने पत्र पूरा किया त्यों ही बापूने बिहारके मुख्य-मंत्रीको तार भेज कर पुछवाया: 'क्या मैं बिहारके लिए रवाना हो सकता हूं? डॉ. सैयद महमूद और दूसरे लोग भी चाहते हैं कि मैं बिहार आऊं। . . . क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं? कृपया बताइये, आपका क्या खयाल है।' " [मनु गांधी, २८ फरवरी १९४७ को]

सन्ध्याको जब सतीशचन्द्र दासगुप्त गांधीजीके साथ उनकी यात्राके कार्यक्रमकी चर्चा करने आये तब गांधीजीने यात्राके बजाय बिहार जानेका अपना निर्णय उन्हें बताया और शामकी

प्रार्थना-सभामें उसकी घोषणा कर दी। भाषणमें उन्होंने कहा, कल तक मैं अपनी यात्राके तीसरे दौर पर रवाना होनेकी योजना बना रहा था, परन्तु उसके बजाय अब निश्चित समय पर मैं बिहार जानेकी तैयारी कर रहा हूं। उन्होंने कहा, " बिहारके हिन्दुओंने टिपरा और नोआखालीके अत्याचारोंसे कहीं अधिक बर्बरतापूर्ण अत्याचार किये हैं, ऐसे समाचार मुझे मिले हैं। मैं मानता था कि यहां बैठे बैठे मैं बिहारका काम कर सकूंगा। लेकिन डॉ. महमूदके मंत्री अभी अभी उनका पत्र लेकर मेरे पास आये हैं।" डॉ. महमूदके आमंत्रणको मैं टाल नहीं सकता। मुझे तो हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी भलाईकी चिन्ता है। मेरे मन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। मैंने बिहारके मुख्यमंत्रीको जरूरी तार भेजा है। बहुत संभव है कि अभी तो हमारा यह अन्तिम मिलन हो। कुछ दिनकी मेरी अनुपस्थितिमें आपको भाइयोंकी तरह मिलकर रहना चाहिये। यह आप तभी कर सकेंगे जब दोनों तरफसे आप अपनी भीतरी कमजोरियां दूर कर देंगे और जिसे आप पवित्र समझें उसकी रक्षाके लिए बदला लिये बिना अपने प्राण देनेको तैयार रहेंगे।

दूसरे दिन, अर्थात् १ मार्चको, भी बिहारके मुख्यमंत्रीका कोई उत्तर नहीं आया। सारे दिन गांधीजी बहुत गम्भीर बने रहे। रातको सोनेसे पहले उन्होंने आदेश दिया कि दूसरे दिन यात्राके किए सामान तैयार रखा जाय। सारा अतिरिक्त सामान—पुस्तकें, कागज-पत्र, फाइलें वगैरा—जो उनके नोआखाली पहुंचनेके समयसे इकट्ठा हो रहा था, बांधकर काजिरखिल शिविरमें सुरक्षित रखनेके लिए भेज दिया गया। काजिरखिल नोआखालीमें गांधी-शिविरोंका मुख्य केन्द्र था । जो चीजें उन्होंने खास तौर पर अपने साथ ले जानेके लिए रखीं, उनमें एक थी 'बंगला शिक्षक', एक बंगला शब्द-कोष और एक नोटबुक, जिसमें वे रोज बंगला लिखनेका अभ्यास किया करते थे। दैनिक बंगला पाठ उनके लिए प्रार्थनाके समान था। गांधीजीने सुबहकी प्रार्थनामें एक बंगला भजन गानेका नियम भी बनाया था। ये भजन सुदूर बिहारमें बैठे बेठे गांधीजीको नोआखालीके जंगलोंके निमंत्रणकी याद कराते थे, जिन गरीबोंको वे झोंपड़ियोंमें छोड़ आये थे उनके भयंकर कष्टोंकी याद दिलाते थे और उन लोगोंको दिये हुए "करने या मरने " के वचनकी याद दिलाते थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही गांधीजीके शिविरमें हलचल शुरू हो गई। वायुमंडल चिन्तासे भरा हुआ था। सबके चेहरों पर वियोगकी वेदना दिखाई देती थी। परन्तु सबने दुगुने परिश्रमसे कर्तव्य-पालनमें लगकर उस वेदनाको भूलनेकी कोशिश की। उस स्थान पर गहरा कोहरा छाया हुआ था । जंगलमें पेड़ोंसे गिरनेवाले पत्तोंकी खड़खड़ाहटसे ही शान्ति भंग होती थी। ११ बजे दिनको कोहरा हटा और सूरज निकला। परन्तु लोगोंके भीतरका अन्धकार प्रयाणकी घड़ी निकट आनेके साथ साथ गहरा होता गया। अन्तमें यात्राकी सब तैयारियां पूरी हो गईं। विभिन्न केन्द्रोंसे बहुतसे साथी गांधीजीको प्रणाम करने और अन्तिम आदेश प्राप्त करनेके लिए आ गये थे। इन सबमें अधिक-से-अधिक सक्रीय ७८ वर्षके बूढ़े ठककर बापा थे। हर काम निश्चित और व्यवस्थित ढंगसे करनेकी आदत होनेके कारण उन्होंने तब तक चैन नहीं लिया, जब तक उन्होंने खुद देखकर सन्तोष न कर लिया कि सब बातें योजनानुसार पूरी हो गई हैं और सारा सामान सुरक्षित रूपमें जीपमें रख दिया गया है। अन्तमें गांधीजी अपनी कुटियासे बाहर निकले। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने विदा ली; सदाकी भांति उनके शरीरका ऊपरी भाग खुला था। दो महीने बाद पहली बार वे फिरसे चप्पल पहने हुए देखे गये । भीड़ने उन्हें घेर रखा था । उसमें से वे जीप तक मुश्किलसे पहुंच सके। उनके साथ प्रो. निर्मलकुमार बोस, मनु गांधी, देवप्रकाश नय्यर और हमीद हुनर थे। देवप्रकाशको उन्होंने अपने साथ इसलिए रख लिया था कि नई तालीमकी उनकी शिक्षा पूरी हो जाय और हुनरको इसलिए रखा था कि उन्हें हिन्दुस्तानीके कामका प्रशिक्षण मिल जाय, क्योंकि हिन्दुस्तानीका प्रचार गांधीजीके हिन्दू-मुस्लिम-एकताके कार्यक्रमका एक अविभाज्य अंग था। अपने दलके और सब सदस्योंको, जो शुरूमें उनके साथ आये थे, वे अपना काम जारी रखनेके लिए अपनी अपनी जगहों पर छोड़ गये। गांधीजीकी तरह इन लोगोंको भी अपने अपने स्थान पर "करना या मरना" था । अपनी अनुपस्थितिमें अधिकारियोंके साथ कामकाज निबटानेके लिए सतीशचन्द्र दासगुप्तको उन्होंने अपना प्रतिनिधित्व करनेका अधिकार दिया था।

गांधीजीकी मंडली तीसरे पहर ३-२० बजे चांदपुर पहुंची और पिछले चार मासकी शान्तिके स्थान पर शहरी जीवनकी धांधली और शोरगुल फिर सामने आया। गांधीजीके

ठहरनेकी व्यवस्था चांदपुरके पितामह स्वर्गीय हरदयाल नागके यहां की गई थी। अपार भीड़ने उस घरको घेर लिया । शामको नदीके किनारे भी भीड़ गांधीजीके पीछे पीछे गई। वहां पूर्व बंगालकी उनकी अन्तिम प्रार्थना-सभा हुई। उसमें लगभग ३० हजार लोग आये थे।

इस विराट् सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने कहा, जिस कारणसे मैं नोआखाली और टिपरा आया था, उसी कारणसे अब बिहार जा रहा हूं। मुझे दुःख है कि मैंने पहले उस आग्रहपूर्ण विनती पर ध्यान नहीं दिया, जो मुसलमान भाइयोंकी तरफसे बिहार जानेके बारेमें मुझसे की गई थी। मैंने यह मान लिया था कि मैं बंगालमें बैठकर भी बिहारके हिन्दुओं पर अपना प्रभाव डाल सकूंगा । परन्तु डॉ. महमूदके पत्रने सिद्ध कर दिया कि मेरे बिहार जानेकी जरूरत है । मैं जल्दीसे जल्दी अपने चुने हुए सेवाक्षेत्र—नोआखाली—में वापस आनेकी आशा रखता हूं। डॉ. महमूदके सचिवने मुझसे कहा है कि वे लोग मुझे एक पखवाड़ेसे अधिक बिहारमें नहीं रोकेंगे। इस बीच मैं आशा करता हूं कि यहांके मुसलमान हिन्दू शरणार्थियोंके इस भयको गलत साबित कर देंगे कि उन्हें नोआखालीमें शान्तिसे नहीं रहने दिया जायगा। मैं सरकारी अधिकारियों और पुलिससे अपील करता हूं कि वे इस तरहका आचरण रखें, जिससे जनता उन्हें अपने ऐसे मित्र और सेवक समझे, जिनके कौशल और स्वेच्छापूर्ण सहयोग पर वह कठिनाईके समयमें भरोसा रख सके।

श्रोताओंमें से एक आदमीने उठकर पूछा: जिनके प्रियजन और घर चले गये हैं—वे घर जिन्हें उन्होंने बरसोंके परिश्रम और त्यागसे बनाया था—वे लोग कैसे क्षमा कर सकते और भूल सकते हैं? जो कुछ हो चुका है उस सबके बाद वे उस समुदायको, जिसमें से गुंडे आये थे, भ्रातृभावकी दृष्टिसे कैसे देख सकते हैं? गांधीजीने उत्तर दिया, भूलने और क्षमा करनेका उपाय है बिहारका विचार करना, जहां नोआखाली और टिपरासे कहीं भयंकर बातें हुई हैं। क्या आप चाहते हैं कि बिहारके हिन्दुओंके अत्याचारोंका बदला मुसलमान लें ? मुझे विश्वास है कि आप ऐसा नहीं चाहते। इससे आपको भूल जाना और क्षमा कर देना सीखना चाहिये, यदि आप बर्बरताके गहरेसे गहरे गढ़ेमें गिरना नहीं चाहते।

रातके साढ़े नौ बजें गांधीजीकी मंडली आगबोट पर चढ़ीं। घाट पर भी भारी भीड़ जमा हो गई थी। विदा लेनेवालोंमें आखिरी कर्नल जीवनसिंह थे। उनके आजाद हिन्द फौजवाले दलका किसी न किसी कारण सतीशचंद्र दासगुप्तकी योजनाके साथ मेल नहीं बैठ पाया था। इसके बारेमें पहले कई बार चर्चाएं हो चुकी थीं। जब गांधीजीने अपना अन्तिम आदेश लिख दिया कि वे अपने आदमियोंको नोआखालीसे भेज दें, तो जीवनसिंहको बड़ा आघात और दु:ख पहुंचा और उन्होंने यह समझा कि यह एक तरहसे उनकी बर्खास्तगी है। वे युद्धके एक तपे हुए महारथी थे और उन्होंने अपने सैनिक जीवनकी उज्ज्वल आशाओंको ठुकरा दिया था, क्योंकि अहिंसाकी आवश्यकता पर दिनोंदिन उनका विश्वास अधिक बढ़ता जा रहा था । इस विश्वासमें नेताजी बोसके अन्तिम आदेशसे उन्हें बल मिला था और एक सैनिककी अखण्ड निष्ठाके साथ नेताजीकी वे पूजा करते थे । वे भारी हृदयसे विदा लेने ही वाले थे कि गांधीजीने कागजकी एक और पर्ची पर लिखा: "स्वयं आपको मैं खोना नहीं चाहता।" बूढ़े सरदारका चेहरा खिल उठा। वे गांधीजीकी मृत्युके बाद भी नोआखालोंमें बने रहे और भारत तथा पाकिस्तानके आन्तर-औपनिवेशिक संबंधोंकी कहानीमें उन्होंने एक नया अध्याय जोड़ दिया।

यद्यपि सारी स्पेशियल आगबोट गांधीजी और उनकी मंडलीके कामके लिए सौंप दी गयी थी, फिर भी उन्होंने पत्र-प्रतिनिधियोंके साथ डेक पर ही सोनेका निश्चय किया, जैसा कि गरीबोंके प्रतिनिधिके अनुयायियोंको शोभा देता था । जब आगबोटने गोआलंदोमें लंगर डाला तब पत्रकारोंकी मंडली, जो नोआखालीकी धर्मयात्रामें आरंभसे अन्त तक गांधीजीके साथ रही थी, उनसे विदा लेने आई । गांधीजीकी अनुमतिसे उसने अन्तिम बार 'एकला चलो रे' गीत गाकर उन्हें सुनाया। यह गीत पिछले ३ महीनेके उनके अनुभवके साथ कितना ओतप्रोत हो गया था और वह अनुभव भी कैसा अद्‌भुत था !

गोआलंदोसे मंडली रेलगाड़ीसे रवाना हो कर रातके ९। बजे सोदपुर पहुंची । दूसरे दिन ४ मार्च, १९४७ को पौने नौसे दस बजे तक गांधीजीने बंगालके मुख्यमंत्रीके साथ एकान्तमें बातें कीं। उन्होंने शहीदके सामने स्वीकार किया कि बिहारमें परिस्थितियां उतनी अच्छी नहीं हैं जितनी उन्हें बतायी गयी थीं। इससे शहींदको मौका मिल गया । अपने स्वरमें कटुता और

विजयका पुट लगाकर उन्होंने गांधीजीसे कहा, पंडित नेहरू और डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादने आपके साथ "विश्वासघात" किया है । इससे गांधीजीको गहरी चोट लगी। बादमें जब उनसे पूछा गया कि क्या मुख्यमंत्रीसे आपकी बातचीतका कोई फल निकलनेकी संभावना है, तो गांधीजीने उत्तर दिया : कोई संभावना नहीं है। "वे बकवासकी कलामें उस्ताद हैं। वे गोलगोल बातें करते रहे । जो चीज मेरे मनमें सबसे अधिक थी, उसे तो उन्होंने मुझे छूने भी नहीं दिया। खैर, देखते हैं ईश्वरकी क्या इच्छा है।"

४

हावड़ा स्टेशन पर गाड़ी रवाना हुई उससे आध घंटे पहले तक हरिजन-कोषके लिए लंबाये हुए गांधीजीके हाथमें छोटे-बड़े सिक्कोंका प्रवाह बहता रहा। इन सिक्कोंकी गिनती पूरी करनेके लिए गांधीजीकी मंडलीके तीन सदस्योंको रातमें देर तक बैठना पड़ा।

मंडलीके एक सदस्यने गांधीजीसे कहा: "हावड़ा स्टेशन पर आधे घंटेमें आपने जितने पैसे इकट्ठे किये, वे हम सबने मिलकर विभिन्न स्टेशनों पर सारी रात जो पैसे इकट्ठे किये उनसे ज्यादा निकले।"

महात्माजी बोले : "बड़े दुःखकी बात है कि मैं सब स्टेशनों पर जाग कर लोगोंकी जेब ज्यादा हलकी नहीं बना सका !"

गांधीजीको पटनासे १८ मील दूर फतवा स्टेशन पर उतार लेनेके बारेमें काफी गुप्तता रखी गई थी, फिर भी अखबारोंके संवाददाता और फोटोग्राफर लोग सदाकी भांति रेलवे स्टेशन पर मौजूद थे। गांधीजी कह उठे, "सर्वशक्तिमान भगवान भी अखबारवालोंकी नजरसे बच नहीं सकते !"

स्टेशन पर जमा हुई भारी भीड़में गांधीजीकी आंखोंने डॉ. सैयद महमूद और बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मुसलमान अध्यक्ष प्रोफेसर अब्दुल बारीको देख लिया। दोनों गांधीजीके पुराने साथी तथा पक्के राष्ट्रवादी थे। गांधीजीने नीरस और हर्षविहीन हंसी हंसनेका प्रयत्न करते

हुए कहा, "तो आप लोग अभी तक जिन्दा हैं !" उस हंसीसे अधिक दु:खद वस्तु शायद ही कोई हो सकती थी।

ज्यों ही गांधीजी डॉ. महमूदके घर पहुंचे, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद बिहारके मंत्रि-मंडल और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंको साथ लेकर उनसे मिले। जब गांधीजी अपने परखे हुए अनुभवी साथियोंसे घिरे हुए बैठे थे, तब उनका सिर झुका हुआ था। बिहारकी स्थिति अच्छी नहीं थी। नेताओंका रवैया क्षमा-याचनाका था। उन्होंने कहा, हमसे जो कुछ हो सकता था हमने किया और आप जो कुछ कहेंगे वह सब हम करेंगे। परन्तु जो हो चुका था उसमें ऐसा कहनेसे कोई अन्तर नहीं पड़ता था । डॉ. राजेन्द्रप्रसादने गांधीजीसे कहा कि लोगोंमें सच्चा पश्चात्ताप नहीं है। बंगाल, बिहार और शेष भारतमें यह मान्यता है कि बिहारने बंगालको "बचा लिया"। गांधीजीके चेहरेकी उदासी और गहरी हो गई।

सभा जल्दी ही समाप्त कर दी गई। गांधीजीको आरामकी जरूरत थी । उनके कमरेके नीचे कुछ ही गजके फासले पर गंगा बह रही थी। शीतकालके प्रात:कालीन सूर्यमें वह शान्त और देदीप्यमान लग रही थी। वह गांधीजीके स्थितप्रज्ञके आदर्शकी संपूर्ण प्रतिमा दिखाई देती थी। अगले सप्ताहोंमें अपने तीव्र मनोमंथन तथा उदासोके बीच—जो उनके भाग्यमें लिखे हुए थे—गांधीजी समय समय पर गंगाकी असीम स्वस्थता और शांतिका पान करनेके लिए उसके शान्त और अक्षुब्ध विशाल पट पर नजर डाल लेते थे। सायं-प्रार्थनेके बाद गांधीजी अपने दैनिक प्रार्थना-प्रवचन लिखनेके लिए उसके तटके समीप बैठते उस समय अथवा शामकी अपनी विचारपूर्ण सैरमें वे मुलाकातियोंसे बातचीत करते उस समय गंगाका पट निरन्तर उनके विचारोंका साथी बना रहता था । रातमें जब वे आरामके लिए लेटते थे तब गंगाके प्रवाहका मधुर कलकल नाद उन्हें नींदकी गोदमें सुला देता था और प्रात: वह नाद उन्हें जगाकर मूक सन्देश सुनाता था। वह सन्देश प्रात:कालीन प्रार्थनाके भजनोंके साथ संपूर्ण एकरागसे मिल जाता था।

स्नान, दोपहरके भोजन और थोड़ीसी नींदके बाद गांधीजी फिर लोगोंसे मिलनेके लिए तैयार हो गये। पहले-पहल दो कार्यकर्ता उनके सामने लाये गये, जिन्हें बादशाह खान (अब्दुल

गफ्फार खान) पटनामें अपने पीछे छोड़ गये थे । उन्होंने जो रिपोर्ट दी, वह निराशाजनजक थी । उसके बाद सी. पी. एन. सिनहा आये। वे उस समय पटना विश्वविद्यालयके उप-कुलपति थे।

सिनहा: "अब आप आ गये हैं, तो हमारा बोझ हलका हो गया।"

गांधीजी : "में उसे हलका करने ही आया हूं। मैंने बादशाह खानको भी आनेके लिए तार दिया है।"

सिनहा: "यहां जो काम हो रहा है उसके बारेमें बादशाह खानका क्या विचार है?"

गांधीजी : "उन्होंने कहा है कि मंत्रि-मंडल जो कुछ वे कहते थे उसे मान लेता था। परन्तु अधिकारी लोग समस्याका सामना नहीं कर सकेंगे। यह काम बिहारके लोग ही कर सकते हैं। उन्होंने यह भी सुझाया है कि इस कामके लिए एक समिति होनी चाहिये, परन्तु उसका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध न रहे। मुझे भी ऐसा ही लगता है।"

सिनहा : " बहुतसे हिन्दू ऐसे हैं, जिन्होंने दंगोंके दिनोंमें अच्छा काम किया | जहां ऐसे कार्यकर्ता थे वहां बहुत कम हानि हुई है। मुसलमानोंको अब भी उनमें श्रद्धा है।"

गांधीजी : "ये सब बातें कभी नहीं होनी चाहिये थीं।"

सिनहा : "लोग अपने आपको थोड़ी देरके लिए भूल गये। जहां थोड़ी सावधानी रखी गई वहां कुछ नहीं हुआ। कांग्रेसके कार्यकर्ताओंने सब जगह दंगोंको रोका नहीं, जैसा उन्हें करना चाहिये था।"

गांधीजी : "यह सच है। यह दोष स्वीकार करनेमें लाभ है। तभी उसका इलाज किया जा सकता है।"

सिनहा : "कुछ स्थानों पर हिंन्दुओंने मुसलमानोंको बचानेकी भरसक कोशिश की। परन्तु इस समस्याके लिए तमाम वर्गोंके हार्दिक सक्रिय सहयोगकी जरूरत है। वे सहयोग देनेको तैयार हैं।"

इसके बाद डॉ. राजेन्द्रप्रसादसे दूसरी मुलाकात हुई। दिनमें पहले उन्होंने जो कुछ कहा था वह अब भी गांधीजीके मनमें कांटेकी तरह खटक रहा था । डॉ. राजेन्द्रप्रसादने बताया कि किस प्रकार मुस्लिम लीग और उसके नेशनल गार्ड लड़ाईकी तैयारियां कर रहे थे। दंगे छिड़ जानेके बाद भी अलीगढ़से ढेरके ढेर हथियार प्रान्तमें लाये गये। किन्तु गांधीजीको कोई भी ऐसी बात, जिसमें अपने बचावकी जरा भी बू आती हो, सच्चे पश्चात्तापके विपरीत मालूम होती थी। वह उन्हें खटकती थी।

डॉ. राजेन्द्रप्रसादने उन्हें मुसलमानोंके आर्थिक बहिष्कारके समाचार बताये । सारे छोटे छोटे धंधे मुसलमानोंके ही हाथमें थे। ब्राह्मणोंके विवाहोंमें मुसलमान फेरीवाले चूड़ियां देते थे। इसी तरह नाई भी मुसलमान थे। उसके बिना कोई शादी नहीं हो सकती थी। वे ही पूजाके लिए फूल देते थे। जब हिन्दू-मुसलमानोंके जीवन एक-दूसरेसे इतने गुंथे हुए हों तब दोनोंको अलग कर देना किसी जिन्दा आदमीके हाथ-पैरोंको काट कर अलग कर देनेके बराबर होगा।

प्रान्तीय विधान-सभाके मुस्लिम लीगी सदस्य और बिहार प्रान्तीय मुस्लिम लीगके भूतपूर्व अध्यक्ष नवाब इस्माइल क्षयरोगसे पीड़ित होकर रोगशय्या पर पड़े थे। प्रसिद्ध मुस्लिम लीगी और मुसलमानोंके जोरदार हिमायती सैयद अब्दुल अजीज भी तिल-तिल करके मर रहे थे। उनकी ईमानदारी और योग्यताके लिए राजनीतिक विरोधी भी उनका आदर करते थे। गांधीजीको लगा कि पहले उन दोनोंसे सलाह-मशविरा करना चाहिये। लीग गांधीजीको मुसलमानोंका दुश्मन नंबर- १ मानती थी। अब्दुल अजीज भी ऐसा ही मानते थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'रिफ्लेक्शन्स ऑन दि बिहार ट्रेजेडी' में गांधीजीके बारेमें जो उद्गार प्रगट किये, वे स्पष्टतः एक कड़वे बने हुए मनके जान-बूझ कर किये हुए अन्यायपूर्ण आक्षेप थें। परन्तु "प्रकृतिका एक ही स्पर्श सारी दुनियाको अपनी बना लेता है"। गांधीजीने सैयद अब्दुल अजीजके साथ एक घंटा बिताया। उनकी तन्दुरुस्तीके बारेमें पूछताछ की और उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा करानेके लिए राजी किया। बादमें उनके इलाजके लिए गांधीजीने कलकत्तेसे एक प्राकृतिक चिकित्सकको बुलवा दिया।

गांधीजीके व्यक्तित्वका अत्यन्त गहरा मानव-पक्ष किस प्रकार अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त करता था, यह अब्दुल अजीज द्वारा गांधीजीके नाम लिखे गये एक पत्रसे दिखाई देता है: "आप पटना पहुंचे उसी दिन मेरहबानी करके मुझसे मिलने आये थे; तबसे पूरा डेढ़ महीना बीत चुका है। अगर मैं बैसाखीके सहारे भी आ सकता, तो आपसे मिलने आनेमें मुझे बहुत खुशी होती।" [सैयद अब्दुल अजीजका पत्र गांधीजीको, २१ अप्रैल १९४७] और बाकीका पत्र गहरे मतभेदोंसे भरा हुआ था, तो भी उसमें उन्होंने यह बात लिखी थीं। (देखिये इस खंडका अध्याय-१५)

सैयद अब्दुल अजीजके यहांसे लौटनेके बाद गांधीजीकी बिहारके मंत्रियोंके साथ एक और लम्बी बैठक हुई । उन्होंने मंत्रियोंसे कहा, "हमें अपनी भूल सार्वजनिक रूपमें स्वीकार कर लेनी चाहिये।" उस तारीख तक कोई जांच-कमीशन नियुक्त नहीं किया गया था। "अगर हम इस मामलेमें शीध्रता नहीं करेंगे, तो उसका असर मारा जायगा। अगर हम कमीशन नियुक्त नहीं करते, तो कहा जायगा कि हमने लीगका केस स्वीकार कर लिया है।" मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिनहाने यह भय प्रगट किया कि लीग इससे राजनीतिक लाभ उठायेगी। गांधीजीने स्वीकार किया कि ऐसा होना असंभव नहीं है । परन्तु न्याय यह विचार कभी नहीं करता कि उसका दुरुपयोग किया जायगा। "मेरे साठ वर्षके अनुभवने मुझे यदि यह नहीं सिखाया, तो कुछ नहीं सिखाया। नोआखालीकी मेरी तीन मासकी तपस्यासे भी मुझे यही पाठ मिला है। मैं तो अंधेरेमें टटोल रहा था, परन्तु मैंने वही बात कही जो मुझे सत्य प्रतीत हुई। जो लोग मुझे अपना शत्रु समझते थे, वे उसका दुरुपयोग कर सकते थे। परन्तु मुझे विश्वास था कि वे देरसे नहीं, बल्कि जल्दी ही अपनी भूल समझ लेंगे । कुछ भी हो, मेरी एकमात्र शक्ति अहिंसामें है। यही बात आप पर भी लागू होती है। आप उसे समझ लें तो आपका डर दूर हो जायगा । उस स्थितिमें आप बाहरी विचारोंसे विचलित न होकर न्याय ही करेंगे।"

अपने साथियोंसे सलाह लिये बिना गांधीजीको बुलानेके कारण डॉ. सैयद महमूद शंकाके पात्र बन गये थे। गांधीजीने अपने पुराने मित्रको अनुचित सन्देहसे मुक्त करनेकी बार-बार कोशिश की: डॉ. महमूदका पत्र, जो मुझे बिहारमें लाया है, मेरी अनिवार्य पूछताछके उत्तरमें

लिखा गया था; डॉक्टरने अपने साथियोंके साथ बेवफाई नहीं की है। डॉ. राजेन्द्रप्रसादने समझाया कि सचमुच कोई मतभेद नहीं है। बिहारके मंत्री आपके जल्दी आ जानेके विरुद्ध कभी नहीं थे । परन्तु उन्होंने सोचा कि स्थितिको अंकुशमें लानेके लिए सख्त उपाय काममें लेनेकी जरूरत हो सकती है; इस संदर्भमें वे आपको कैसे बुला सकते हैं?

मुख्यमंत्रीने बीचमें ही कहा, हमने अत्याचारोंको "घटाकर बताने" की कभी कोशिश नहीं की। इससे गांधीजीकी अवरुद्ध भावना उत्तेजित हो गई। "जो कुछ मैं सुनता रहा हूं, उससे मुझे मालूम होता है कि बिहारका हत्याकांड जलियांवाला बागके हत्याकांड जैसा ही था। डॉ. महमूदकी पत्नी आज मेरे पास कुछ मुसलमान औरतोंको लेकर आई थीं। मेरे पास उनके आंसुओंका कोई जवाब नहीं था।" डॉ. राजेन्द्रप्रसाद इसे और अधिक सहन नहीं कर सके। उन्होंने जो कुछ पहले गांधीजीसे कहा था उसीको दोहरा दिया कि बहुतसे बिहारी यह मानते हैं कि हमने जो कुछ किया वह अच्छा ही किया। गांधीजीने उत्तर दिया: इसी पापसे उन्हें बचानेको मैं यहां आया हूं । मैंने नवाब इस्माइलसे कह दिया है कि मैं बिहारमें "करूंगा या मरूंगा" के मंत्रका पालन करूंगा।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद : "मुझे पूरा विश्वास है कि हमें सफलता मिलेगी। आप हमें आज्ञा दीजिये।"

गांधीजी : "चम्पारनमें किसीने किसीको आज्ञा नहीं दी थी। सहज निष्ठासे लोगोंने सारा काम किया था। आपने वह चमत्कार देखा था। यदि यहां वही बात हो जाय, तो हम लीगका भी दिल जीत लेंगे।"

दुःखद हृदय-मंथनका दिन पूरा हुआ। शामकी प्रार्थनाका समय हो गया था। सभामें अपार भीड़ थी। मुसलमान बड़ी संख्यामें आये थे। अनेक परदेवाली महिलाएं अपनी मोटरोंमें बैठे बैठे ही प्रार्थतामें शरीक हुई।

गांधीजी बोले: मैंने अपने मनको यह कहकर समझा लिया था कि जिसे मैं स्नेहपूर्वक अपना बिहार कहता रहा हूं, वहां जाना मेरे लिए अनावश्यक होगा। परन्तु 'बीती ताहि बिसार दे,

आगेकी सुध ले' वाली बात है। मुझे आशा है कि आपने भरसक हानिकी क्षतिपूर्ति कर दी होगी या आप कर देंगे; और वह आकारमें उतनी ही बड़ी होगी जितना आपका अपराध था, बशर्ते आपका पश्चात्ताप सच्चा हो। अंग्रेजीमें इस आशयकी एक कहावत है: जितना बड़ा पापी होगा उतना ही बड़ा सन्त वह बनेगा। यदि आप सारा दोष गुंडों पर थोपकर आत्म-सन्तोषकी वृत्ति धारण कर लेंगे और यह कहेंगे कि उन गुंडोंके लिए बिहारके कांग्रेसी जिम्मेदार नहीं ठहराये जा सकते, तो आप कांग्रेसको एक मामूली राजनीतिक संस्था बना देंगे। फिर कांग्रेस एकमात्र ऐसी संस्था नहीं रहेगी, जो सेवाके अधिकारसे सारे भारतकी प्रतिनिधि-संस्था होनेका दावा करती है, जिसमें केवल कांग्रेसी और कांग्रेसके समर्थक ही नहीं, बल्कि उसके विरोधी भी शामिल हैं। इस दावेको सच्चा सिद्ध करनेके लिए कांग्रेसको सभी कौमों और वर्गोंके दुष्कृत्योंके लिए अपनेको जिम्मेदार मानना चाहिये। यह कहना सही नहीं होगा कि कोई कांग्रेसी इस पागलपनसे भरे उत्पातमें शरीक नहीं था। अनेक कांग्रेसियोंने अपने मुसलमान भाइयोंको बचानेके लिए अपनी जान जोखममें डाल दी थी, यह उस आरोपका कोई उत्तर नहीं है जो क्षुब्ध और पीड़ित मुसलमानोंने बिहारके हिन्दुओं पर ठीक ही लगाया है। मुसलमानोंने तो अपनी कड़वाहटके कारण बिहारके अपराधको "इतिहासमें अद्वितीय" तक बतानेमें संकोच नहीं किया है।

गांधीजीने आगे कहा : इस कथनको चुनौती दी जा सकती है । परन्तु मैं अपराधोंकी तुलनात्मक भयंकरताको सोनेके तराजूमें तौलनेका दोषी नहीं बनना चाहता । मुझे यह देखकर दुःख होता है कि भारतके सभी भागोंमें ऐसे विचारहीन हिन्दू हैं, जो इस झूठी मान्यताको पकड़े बैठे हैं कि बंगालमें मुसलमानोंने जो दुष्टता शुरू की थी उसे बिहारने "रोक दिया"। इस प्रकार सोचने और कार्य करनेका मार्ग विनाश और दासत्वका मार्ग है। यह मानना कायरता है कि जिस प्रकारकी बर्बरता भारतने हालमें देखी है, वह कभी लोगोंकी संस्कृति, धर्म अथवा स्वतंत्रताकी रक्षा कर सकती है। मैं दावेसे कहता हुं कि जहां कहीं इन दिनों ऐसी निर्दयता हुई है वहां उसकी जड़में कायरता थी; और कायरतासे कभी किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्रका उद्धार नहीं होता। इसलिए नोआखालीका बदला लेनेका तरीका उन बर्बर कृत्योंकी नकल करना नहीं है, जो नोआखालोने

करके दिखाये हैं, परन्तु बर्बरताका मुकाबला बहादुरीसे करना है; और बहादुरी बदला लेनेका विचार किये बिना और अपनी इज्जतकों हानि पहुंचाये बिना मरनेके साहसमें है।

५

गांधीजी सचाईको खोजनेके प्रयत्नमें लगे थे। वे मंत्रियों और लीगके नेताओंसे मिले । पीड़ित मुसलमान आये और अपने दुःखोंकी कहानी उनके सामने उंड़ेल गये। फ्रेण्ड्स सर्विस यूनिटने उन्हें अपनी रिपोर्ट दी। अधिकारियोंके आलस्य, उपयुक्त कष्ट-निवारण संगठनके अभाव और शक्तिशाली हिन्दू नेतृत्वकी कमीसे काम रुक रहा था।

५ मार्च, १९४७ को सुबह डॉ. राजेन्द्रप्रसादने गांधीजीसे लम्बी मुलाकात की। गांधीजीने उनसे कहा, मेरी योजना अभी तैयार नहीं हुई है। परन्तु एक दो बातोंमें मैं निश्चित निर्णय पर पहुंच गया हूं। मैं कुछ शर्तों पर मुसलमानोंको एक जगह एकत्र होने दूंगा, परन्तु न तो उन्हें हथियार दूंगा और न मुस्लिम पुलिस और सेना दूंगा। इसके बजाय मैं उन्हें सफल संरक्षण दूंगा।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद सहमत हुए। पिछले अनुभवने दिखा दिया था कि एक जगह किसी कौमके लोगोंको केन्द्रित करनेका खतरा यह रहता है कि उस कौमके लोग मूर्खतासे आक्रामक वृत्तिके बन जाते हैं और उनका ऐसा व्यवहार विरोधी कौममें भी ऐसी ही प्रतिक्रिया पैदा करता है। जहां मुसलमान अल्पमतमें होते थे वहां हिन्दू उनकी रक्षा करते थे, परन्तु जहां मुसलमानोंकी आबादी एक जगह केन्द्रित होती थी वहां वे समझते थे कि हिन्दुओंको वे दबा सकते हैं। बुरीसे बुरी दुर्घटनाएं वहां हुई थीं जहां मुसलमानोंकी शक्ति मध्यम थी। यह जो कुछ हुआ उसका बचाव नहीं था, परन्तु स्पष्टीकरण था। सरकार तो वही करनेको तेयार थी जो गांधीजी सुझाते ।

शामकी प्रार्थना फिर बांकीपुर मैदानमें हुई। गांधीजीका प्रार्थना-प्रवचन होलीके विषय पर हुआ, जो दूसरे दिन पड़ती थी। मुसलमानोंमें यह डर था कि इस मौके पर फिरसे उन पर हमले हो सकते हैं। गांधीजीने जैसे नोआखालीके हिन्दुओंसे कहा था वैसे ही बिहारके मुसलमानोंसे कहा कि उन्हें मनुष्यका डर छोड़कर ईश्वरमें ही विश्वास रखना चाहिये। हिन्दुओंसे उन्होंने कहा

कि अपने मुसलमान भाइयोंका भय मिटाना आपका काम है। उन्होंने यह आशा प्रगठ की कि होली पर दोनों कौमोंके पुराने मित्रतापूर्ण संबंध फिरसे सजीव हो जायंगे।

दूसरे दिन कई प्रभावशाली स्थानीय मुसलमान गांधीजीसे मिलने आये। उन सबने दंगोंमें भारी हानि उठाई थी। उन्होंने बिहार आनेके लिए गांधीजीके प्रति जो असाधारण कृतज्ञता प्रगट की, उससे गांधीजीको अवर्णनीय दुःख हुआ। उनके शोकको हंसीमें टालनेकी कोशिश करते हुए गांधीजीने उनसे कहा, आपको अपनी विपत्तियां भूल जाना चाहिये और नोआखालीमें जाकर काम करना चाहिये, जैसे कि मैं बिहारमें कर रहा हूं। जब तक आप लोग नोआखालीमें अपना मानव-दयाका काम करते रहेंगे उस बीच बिहारमें अगर कोई दुर्घटना होगी, तो उसकी कीमत मैं अपने प्राण देकर भी चुकाऊंगा।

एक गरीब अन्धा भिखारी आशीर्वादके लिए गांधीजीके पैर छूनेकी प्रतीक्षामें खड़ा था, क्योंकि वह गांधीजीको देख नहीं सकता था। यह उस समयकी बात है जब गांधीजी सुबहकी सैरसे लौट रहे थे। उसने चार आनेके पैसे उनके चरणोंमें रख दिये, जो उसने भीख मांगकर इकट्ठे किये थे। ये उस कोषके लिए उसका पत्र-पुष्प था, जो गांधीजीने बिहारमें आनेके बाद पीड़ित मुसलमानोंके कष्ट-निवारणके लिए शुरू किया था। गांधीजीका हृदय हर्षसे भर गया। वे बोले, "चार आनेका यह दान मेरे लिए चार करोड़ रुपयेसे अधिक है, क्योंकि इस गरीब आदमीने जो कुछ उसके पास था वह सब दे दिया है !" उन्होंने प्यारसे अन्धेकी पीठ थपथपाई और उससे कहा कि भीख मांगना तुरन्त छोड़ दो। उन्होंने अपनी मंडलीके एक आदमीसे कहा कि यदि सूरदास कातना सीखनेको तैयार हो, तो उसे एक तकली दे दी जाय। अन्यथा उन्होंने आदेश दिया कि प्रान्तीय कांग्रेसके प्रधान कार्यालय सदाकत आश्रममें उसे अपनी रोजी कमानेके लिए कोई योग्य काम दे दिया जाय।

७ मार्चको सोनेके सिवा बाकी सारा समय गांधीजीने रिपोर्ट सुननेमें खर्च किया। मुस्लिम स्टुडेन्ट्स फेडरेशन नामक लीगी मानसवाली संस्थाके सदस्य यह मानते थे कि सटी हुई मुस्लिम आबादीको सधन क्षेत्रोंमें बसाने और बिहारके विभाजनकी शर्त पर ही यहांके मुसलमान बिहारमें

रह सकते हैं। परन्तु गांधीजी इस विचारको माननेके लिए तैयार नहीं थे कि हिन्दू और मुसलमान सदाके लिए अलग हो गये हैं। वे यह देखनेकी कोशिश कर रहे थे कि दोनों कौमोंकी एकतामें जो भंग हो गया है उसे कैसे ठीक किया जाय।

जमीयत-उल-उलेमाके शिष्ट-मंडलने शिकायत की कि मुसलमानोंको डराने-धमकानेकी घटनायें अब भी हो रही हैं। मजलिसे-अहरारने उसके मतका समर्थन किया। एक और मुसलमान सज्जन आये और उन्होंने यह खबर दी कि मुस्लिम शरणार्थियोंकी फसलें अब भी दूसरे लोग काट कर ले जा रहे हैं। वे भाई अपनी फसलें काटनेके लिए सैनिक सहायता चाहते थे।

समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण दो दिन पहले गांधीजीसे मिल चुके थे। उनके सबूत सरकार और कांग्रेसके लिए बहुत हानिकारक थे। मोमिन समुदायने और भी बुरी शिकायत की । वे हमेशा कांग्रेसके साथ रहे थे, फिर भी सबसे अधिक कष्ट उन्हींको उठाना पड़ा। उनका आरोप यह था कि कांग्रेसके बहुतसे ऊंचे पदाधिकारियोंने भी दंगोंमें भाग लिया था।

और भी कई हिन्दू और मुसलमान गांधीजीसे मिलने आये, परन्तु कोई गांधीजीको यह विश्वास नहीं दिला सका कि परिस्थिति सामान्य हो गयी है। शाम तक इन निराशाजनक कहानियोंका सम्मिलित प्रभाव इतना भारी हो गया कि प्रार्थना-सभामें जानेसे पहले गांधीजीको कुछ देर आराम लेना पड़ा। इससे वे स्थितप्रज्ञके अपने आदर्शकी तराजूमें स्वयंको तौलने लगे। जब मनुष्य सचमुच उस स्थितिमें पहुंच जाता है तब उसके विचारोंमें इतनी शक्ति आ जाती है कि वे अपने आप काम करने लगते हैं और आसपासके वायुमंडलको बदल देते हैं। यह शक्ति उन्हें अपनेमें दिखाई नहीं दी। उनके भीतर यह भावना बढ़ रही थी इसीलिए कुछ समयसे वे गंभीरतापूर्वक सोचने लगे थे कि उन्हें नोआखालीकी तरह बिहारमें भी गांव गांव कूच करना चाहिये, ताकि उनके विचार सीधे उन लोगों तक पहुंचाये जा सकें जिनसे वे पश्चात्ताप कराना चाहते हैं।

संध्याकी प्रार्थना-सभामें गांधीजी बोले, बिहार रामायणकी भूमि है। बिहारी कितने ही अशिक्षित या गरीब क्यों न हों, उनके हृदयकी तंत्री उस महान काव्यके संगीतसे बज उठती है।

वे जानते हैं कि पाप क्या है और पुण्य क्या है । जिन दुष्कृत्योंके वे अपराधी हैं, वे भयंकर हैं । क्या उनका प्रायश्चित्त भी उसी प्रकारका नहीं होना चाहिये? उनको इसी वृत्तिसे उन लोगोंके पास जाना चाहिये, जिन्हें दंगोंमें कष्ट पहुंचा है और उनके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये। मैं कल शामको कह चुका हूं कि जो मुस्लिम स्त्रियां हिन्दू घरोंमें बन्द बताई जाती हैं, उन्हें लौटा देना चाहिये। यह सचमुच बहादुरीकी बात होगी कि अपराधी लोग सामने आकर अपने पापोंको खुले रूपमें स्वीकार करें और प्रयाश्चित्तके रूपमें दंड मांगें। यदि उनमें इतनी हिम्मत नहीं है तो वे लड़कियोंको मेरे पास या डॉ. राजेन्द्रप्रसादके पास पहुंचा दें। उन्हें कोई हानि होनेका डर नहीं रखना चाहिये । लूटका माल मालिकोंको वापस कर देना चाहिये और उन्हें जो नुकसान हुआ हो उसका मुआवजा चुका देना चाहिये । जो मालिक अब जीवित नहीं हैं उनकी लूटी हुई सम्पत्ति अथवा नुकसानका मुआवजा बचे हुए सम्बन्धियोंको देना चाहिये। कमसे कम इतनी आशा तो मैं बिहारियोंसे रख ही सकता हूं, क्योंकि वे रामायणकी भूमिमें रहते हैं और उस पवित्र ग्रन्थकी शिक्षाके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करनेका प्रयत्न करते हैं।

८ मार्चको मोहम्मद यूनुस गांधीजीसे मिलने आये। जब १९३७ में कांग्रेसने अन्तिम रूपसे पद-ग्रहण करनेकी बात स्वीकार की, उससे पहलेकी बिहारकी अन्तरिम सरकारके वे मुख्यमंत्री थे। वे इस बातसे सहमत थे कि जिन लोगोंने दंगे कराये या उनमें भाग लिया, वे कांग्रेसके हितैषी नहीं हो सकते, भले ही वे कांग्रेसका बिल्ला लगाये फिरें। उनकी शिकायत यह थी कि लीगके लिए कांग्रेस जिम्मेदार है। अगर कांग्रेसियोंने पहले दीर्घदृष्टि और हृदयकी उदारता दिखाई होती, तो यह स्थिति पैदा ही न होती।

मोहम्मद यूनुस पुराने मित्र थे। गांधीजीको लगा कि उनके साथ खुल कर बात की जा सकती है। उन्होंने मोहम्मद यूनुस जैसे मुस्लिम मित्रोंके दिलमें जो हमेशा कमजोर स्थान रहता था उस पर उंगली रखी: "क्या जिन्नाको चित्रसे बाहर रखा जा सकता है? जो मुसलमान यह समझते हैं कि जिन्ना गलत रास्ते पर चल रहे हैं, क्या उनका यह फर्ज नहीं है कि वे जिन्नाको सुधारनेकी कोशिश करें?" मोहम्मद यूनुसने जवाब दिया: "अफसोस ! यह नहीं हो सकता । या तो जिन्नाके पीछे पीछे चलो या मुस्लिम लीगसे निकल जाओ।" गांधीजी बोले : " तब तो इस्लाम

और भारत दोनोंके लिए सचमुच भविष्य अन्धकारमय है—भारतके बजाय इस्लामके लिए अधिक अन्धकारमय है।"

इस सवालके जवाबमें कि आप कब तक बिहारमें रहनेकी आशा रखते हैं, गांधीजीने कहा, "मैंनेकोई समयकी मर्यादा नहीं रखी है। इस्लाम अभी कर्बलाको नहीं भूला है, जहां भाईका हाथ भाई पर उठा था, यद्यपि उस बातको १३०० वर्ष हो गये हैं। तब मैं अपने कर्बला बिहारको कैसे भूल सकता हूं?"

इसके बाद एक और मुसलमान सज्जन आये । वे एक सोडा-वाटर फैक्टरीके मालिक थे । गांघोजीने शिष्टाचारके खातिर उन्हें सोडा-वाटरके विषय पर बातचीतमें लगा लिया और सोडा-वाटर बनानेकी प्रक्रियाके बारेमें अपना थोड़ासा ज्ञान उन्हें बताया। परन्तु यह उनकी गम्भीर भूल थी। वे सज्जन अपने साथ इस्लामकी एक पुस्तक गांधीजीसे चर्चा करनेके लिए लाये थे । वह उन्हींकी लिखी हुई थी । उन्हें इस बातसे अपमान जैसा लगा कि एक धर्म-संबंधी ग्रन्थकारसे गांधीजीने सोडा-वाटरकी बातें कीं ! वे बहुत नाराज होकर उठ गये । उनके चेहरे पर निराशाका भाव छाया हुआ था।

उस दिन शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने कहा, मुझे इस आशयका एक तार मिला है कि मुझे बिहारके हिन्दुओंकी "निन्दा" नहीं करनी चाहिये । मुझे इस पर दुःख हुआ । तार भेजनेवालेने यह चेतावनी देकर न तो भारतकी सेवा की है और न हिन्दू धर्मकी। मेरा हिन्दू होनेका दावा मिट जायगा, यदि मैं अपने हिन्दू भाइयोंके बुरे कामोंका समर्थन करूं।

*

बिहारके मुख्यमंत्रीने गांधीजीसे कहा कि चित्रका दूसरा पहलू भी है, जो उनके (गांधीजीके) सामने नहीं आया है । बिहार मंत्रि-मंडलके एक सदस्य विनोदानन्द झा ९ मार्चको गांधीजीके सामने वह पहलू पेश करने आये। उन्होंने विरोध किया कि सरकार पर स्थितिसे निबटनेमें शिथिलता दिखानेका झूठा आरोप लगाया गया है। दंगे छिड़ जानेके बाद तुरन्त मुख्यमंत्रीने मुझे गया और फिर भागलपुर भेजा था। उपद्रव कांग्रेसके राजनीतिक विरोधियोंके,

जो कांग्रेसके आर्थिक सुधारोंवाले कार्यक्रमके विरुद्ध थे, और ब्रिटिश कर्मचारियोंके "सम्मिलित षड्यंत्र" के कारण हुए थे। इसके प्रमाण-स्वरूप उन्होंने एक पुस्तिका हिन्दू महासभा द्वारा और दूसरी जमींदारों द्वारा निकाली गयी गांधीजीके सामने पेश की। एक और पुस्तिकामें लोगोंसे संगठित होकर बंगालका बदला लेनेको कहा गया था, क्योंकि कांग्रेस नोआखाली और कलकत्तेकी हिन्दू स्त्रियोंके अपमानकी परवाह करती मालूम नहीं होती थी । मंत्रीजीने शिकायत की कि भागलपुरमें दंगे मुस्लिम लीगके प्रचारके कारण हुए। उसीने मुसलमानोंको बड़ी तादादमें जमा करके कौमी आग भड़काई। सरकारके पास इसकी जानकारी है कि मुसलमानोंकी रक्षाके लिए जिन हथियारोंकी इजाजत उसने दी थी, वे मुस्लिम नेशनर गार्डसके पास पहुंच गये थे।

गांधीजी : "मैं तो हथियार देनेके विरुद्ध हूं।"

मंत्रीजीने अपनी बात जारी रखते हुए कहा: "दंगोंके बाद लीगने प्रमुख हिन्दुओंको जान-बूझकर फंसाया। लीग नहीं चाहती कि मामला ठंडा पड़े।"

गांधीजी : "इसी तरह नोआखालीमें मुसलमानोंको यह शिकायत थी कि हिन्दू गलत आदमियों पर आरोप लगा रहे हैं। मैंने उनसे कहा कि हमें झूठे मुकदमोंसे डरना नहीं चाहिये, परन्तु सही मामलोंको हमें छिपाना भी नहीं चाहिये। मैं नहीं चाहता कि एक भी अपराधी दण्डके बिना रहे। लोगोंको स्वयं आगे आ कर अपना अपराध स्वीकार करना चाहिये।"

मंत्री : "यह सब बंगालकी घटनाओंकी प्रतिक्रिया थी।"

गांधीजी : "हमें किसी भी कारणसे अपने कर्तव्य-पालनसे विमुख नहीं होना चाहिये।"

शामकी प्रार्थना-सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने कहा: सद्विचार ही सत्कर्मका आधार है। देखादेखी किया जानेवाला कर्म बाहरसे सच्चा लगने पर भी दूसरों पर वह असर नहीं कर पाता। इसके विपरीत, जब सत्कर्म सद्विचारका परिणाम होता है तब वह दूसरोंके विचारों पर भी अपने आप असर डालता है । यदि लोगोंके विचारोंमें रही अप्रामाणिकता दूर हो जाय, तो जो घटनाएं बिहारमें हुई वे कभी दोहराई नहीं जायंगी। ऐसा हृदय-परिवर्तन कानून बनानेसे नहीं होता; केवल

सद्विचारकी प्रेरणा देनेसे हो सकता है । जब सच्चा हृदय-परिवर्तन हो जायगा तब कानूनके पृष्ठबलकी जरूरत नहीं रहेगी।

दूसरे दिन गांधीजीने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंसे कहा: सरकारी प्रवक्ताके बचावको जितना मैं सुनता हूं उतनी मुझे आत्म-निरीक्षणकी जरूरत महसूस होती है। मुझे पता नहीं कि नोआखालीमें रहनेका मेरा पहलेका निश्चय कहीं मेरा "निरा दुराग्रह" ही तो नहीं था।

दूसरोंके लिए अपनेको दोष देनेकी गांधीजीकी बातसे एक सदस्यको पीड़ा हुई। उन्होंने पूछा: "हमें बताइये, हम अपना पाप कैसे धो सकते हैं? आपका आदेश क्या है?"

गांधीजी बोले : आदेश देना मुझे हमेशा नापसन्द रहा है । नोआखालीमें मैं आदेश नहीं दे सकता था । बिहारमें दे सकता हूं, परन्तु मैं देना नहीं चाहता। यह काम ही ऐसा है, जिसमें आदेश देनेकी गुंजाइश नहीं है। मैं तो आपके अन्त:करणको जगाकर बुद्धिपूर्वक आपका सहयोग लेना चाहता हूं। सत्ताके हाथमें आनेके बाद कांग्रेसी अपना कर्तव्य-पथ भूल गये । एक प्रकारसे मुसलमान जिन्नाके इस आरोपको मानने लगे हैं कि कांग्रेस सबकी नहीं है, जो मुसलमान कांग्रेसके साथ हैं वे कांग्रेसके हाथोंकी कठपुतली मात्र हैं और वे इस्लामको हानि पहुंचाकर और उसे बरबाद करके अपना ही उल्लू सीधा करनेवाले हैं। यदि हिन्दू सच्चे और बहादुर हों, तो जो थोड़ेसे मुसलमान हिन्दुओंके साथ हैं वे इस झूठे दोषारोपणको झूठा साबित करके मुसलमानोंको समझा सकते हैं कि उन्हें गुमराह किया जा रहा है और इस तरह शायद उन्हें गुमराह होने बचा सकते हैं।

गांधीजीने आगे कहा, मैंने पहले बिहारकी सेवा की है। अब मैं फिरसे आपके पास आया हूं; शायद यह मेरी अन्तिम यात्रा हो। यदि मैं यहां काम करते हुए मर जाऊं, तो मैं अपना कर्तव्य पूरा कर दूंगा। सब बातोंका आधार सत्य, साहस और ज्ञान पर है। यदि इनमें से एक भी गुण न हो, तो सचमुच बिहारका और भारतका भविष्य अन्धकारमय है।

एक कांग्रेसी यह कहनेको उठा कि कुछ कांग्रेसियोंने दंगोंमें अवश्य ही भाग लिया था। दूसरे कांग्रेसीने उसे बीचमें ही रोककर भारपूर्वक कहा कि किसी भी कांग्रेसीने दंगोंमें भाग नहीं

लिया। गांधीजीको इससे आघात लगा। वे बीचमें ही बोले, ये महाशय जानते नहीं मालूम होते कि वे क्या बात कह रहे हैं। आपके अपने साथियोंने ही स्वीकार किया है कि कुछ कांग्रेसियोंने दंगोंमें भाग लिया था। यदि आप आधे मनसे दोष स्वीकार करेंगे, तो इससे आपको कोई लाभ नहीं होगा। मैं काफी कह चुका हूं। आप सब जिम्मेदार लोग हैं। आपको अपने दिल टटोलने चाहिये।

इसके बाद मुख्यमंत्री और कुछ दूसरे लोगोंके अतिरिक्त सब चले गये। मुख्यमंत्रीने समझाया कि दंगे किस तरह फूट पड़े और कैसे सरकारने दंगोंके पहले, दंगोंके दौरान और दंगोंके बाद भरसक प्रयत्न किया। दंगे एकाएक फूट पड़े, जिसके लिए हम तैयार नहीं थे। गवर्नर अनुपस्थित थे। मुख्य सचिव और पुलिसके इन्स्पेक्टर-जनरल दोनों अंग्रेज थे। उन्होंने हमें धोखा दिया। अंग्रेज अफसरोंने १९४२ का बदला लिया। मुझे विश्वास है कि जांच हो तो बिहार सरकार पूरी तरह निर्दोष सिद्ध होगी। अलबत्ता, हम पंडित नेहरूकी तरह जोरदार कार्रवाई नहीं कर सके। उन्होंने तो अफसरोंको पूरी तरह हिला डाला । यदि यह साबित हो जाय कि सरकारने एक भी मुसलमानको जान-बूझकर मरने दिया, तो हमें पदारूढ़ रहनेका कोई अधिकार नहीं होगा।

गांधीजी बोचमें बोले, तब यह मानना पड़ेगा कि दीर्धदृष्टिका अभाव था। आपको गवर्नर अथवा अंग्रेज अफसरोंको बीचमें नहीं लाना चाहिये। **लोकप्रिय मंत्रियोंको इस तरह काम करना चाहिये, मानो गवर्नर है ही नहीं**। मान लीजिये कि आप जान-बूझकर कर्तव्यकी अवहेलना करनेके अपराधी नहीं थे, फिर भी जो कुछ सचमुच हुआ उसके लिए कोई न कोई तो जिम्मेदार था ही। इसके लिए बुद्धि, हिम्मत और हृदयकी शुद्धता चाहिये। मेरे जीवनमें इतना भगीरथ कार्य मेरे सामने कभी नहीं आया। अब सारा दारमदार इस बात पर है कि मैं बिहारके साथ और बिहारियोंके साथ क्या कर सकता हूं। अगर मैं बिहारमें सफल हो जाता हूं, तो भारत बच जायगा, पंजाबकी स्थिति अंकुशमें आ जायगी और सीमाप्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान अपनी अपनी मूल स्थितिको प्राप्त कर लेंगे।

कई पत्रलेखकोंने गांधीजीको लिखा था कि वे अपनी प्रार्थना-सभाओंका उपयोग अपने राजनीतिक विचारोंके प्रचारके लिए कर रहे हैं। गांधीजीने उत्तर दिया: मुझे इस बारेमें कभी ऐसा नहीं लगा कि ऐसा करके मैं कोई दोष कर रहा हूं। जीवनको संकुचित विभागोंमें नहीं बांटा जा सकता और न नीतिशास्त्रको राजनीतिसे अलग किया जा सकता है। दोनोंकी एक-दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती है।

> सचमुच यह कहा जा सकता है कि जो नियम विश्वको एक सूत्रमें बांधकर रखता है, वह नियमके स्त्रष्टासे भिन्न नहीं है। मानव-भाषामें कहूं तो ईश्वर स्वयं नियमके चक्रके अधीन है। हमें यह कहनेकी आदत पड़ गई है कि 'राजा कोई गलती नहीं कर सकता'। परन्तु ईश्वरके विश्वमें यह भेद भी नहीं किया जा सकता। इतना ही कहा जा सकता है कि नियममें कोई बुराई नहीं हो सकती, क्योंकि नियम और नियमका स्त्रष्टा एक ही हैं। घासकी एक पत्ती भी इश्वरीय नियमोंके नियंत्रणसे मुक्त नहीं हो सकती।

एक और मित्रने तर्क किया था: धार्मिक सहिष्णुता पर आपके सारे "उपदेश" अप्रस्तुत और अनावश्यक हैं, क्योंकि हिन्दू-मुसलमानोंका झगड़ा धार्मिक नहीं, राजनीतिक है। धर्मका उपयोग तो लोगोंके विचारोंको भड़काने और उनका दुरुपयोग करनेके लिए किया जाता है। गांधीजीने उत्तर दिया: मान लीजिये कि यह प्रश्न राजनीतिक है । तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि शिष्टता और सदाचारके सारे ही नियम ताकमें रख दिये जायं? यदि हम अपने राजनीतिक मतभेदोंको शिष्टता और भ्रातृभावकी वृत्तिसे निबटाना नहीं सीखेंगे, तो हमारे भाग्यमें घोर दासता ही रहेगी।

प्रार्थना-सभा समाप्त होनेके बाद गांधीजी मुस्लिम शरणार्थियोंके लिए रुपया एकत्र करनेको ठहर गये। भीड़ इतनी बड़ी और उसकी भागदौड़ इतनी अधिक थी कि बहुतोंके कुचल जानेका डर था। दृश्य अत्यन्त हृदयस्पर्शी था। पुरुष, स्त्री और बच्चे धक्कम-धक्काके बावजूद गांधीजीकी ओर बराबर बढ़ते जा रहे थे; बूढ़ी औरतें अपनी फटी हुई साड़ियोंके छोरमें बंधे हुए

पैसे निकालकर कांपते हाथों और अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गांधीजीको भेंट कर रही थीं। उस दिन शामका चंदा कोई दो हजार रुपये हुआ। इसके अलावा गहने भी मिले थे, जिन्हें नीलाम करना बाकी था।

मुलाकातोंका रोजाना दौर ११ मार्चको भी चलता रहा। मुस्लिमोंकी अलग बस्तियोंका और साम्प्रदायिक ढंगसे बिहारके विभाजनका विचार मुस्लिम मानसमें बस गया था। जमीयत-उल-उलेमा तो एक राष्ट्रवादी संस्था थी, परन्तु उसे भी इसमें कोई हानि दिखाई नहीं देती थी । कांग्रेस पर दंगोंमें भाग लेनेका आरोप लगाया गया था। गांधीजीको गालियोंसे भरा एक पत्र मिला। उन्होंने कहा: वायुमंडलमें जो हिंसा भरी है, उसका एकमात्र उत्तर शुद्ध और अमिश्र अहिंसा ही हो सकती है। उन्होंने इसी विचारको शामकी प्रार्थना-सभाके प्रवचनका विषय बनाया। अहिंसाका पाठ तो प्रत्येक धर्ममें मौजूद है, परन्तु अकेले भारतमें ही उसके पालनको एक शास्त्रका रूप दे दिया गया है। तपश्चर्याकी इस भूमिमें असंख्य सन्तोंने तपश्चर्याके लिए ही अपने जीवन अर्पण कर दिये, यहां तक कि कवियोंको ऐसा लगा कि उनके त्याग और तपस्यासे ही शुद्ध होकर हिमालय श्वेत हिमसे सुशोभित हो गया है। परन्तु अहिंसाकी वह परम्परा इस समय लगभग खतम हो गई है । यदि मानव-जातिको जीना है, तो क्रोधके बदले प्रेम और हिंसाके बदले अहिंसाके शाश्वत धर्मको पुनः जीवित करना होगा। इस सनातन नियमकी पुनर्स्थापना विदेह जनक और सियावर रामचन्द्रजीकी इस पुण्यभूमिमें नहीं होगी तो और कहां होगी ?

तेरहवां अध्याय
परदा उठा

१

आखिर क्या हो गया था? "कोमल स्वभावके बिहारी" को किस चीजने इतना निर्दय बना दिया कि वह ठंडे दिलसे स्त्रियों और बच्चोंकी हत्या कर सका? सामूहिक पागलपनके विश्लेषणमें जानेसे कंपकंपी पैदा होती है। आगे जो कुछ लिखा गया है उसे निर्णय न समझ कर रोगीके रोगका इतिहास ही समझना चाहिये।

इस तरहकी सभी घटनाओंकी तरह १९४६ के बिहारके उपद्रवोंका भी एक लम्बा और पेचीदा इतिहास था। कुछ विशेष अपवादोंको छोड़ दें, तो बिहार एक प्रान्तके रूपमें सबसे अधिक शान्त रहा था। बिहारके कुछ कांग्रेसी नेताओंका, खास तौर पर डॉ. राजेन्द्रप्रसादका, हिन्दू और मुसलमान समान आदर करते थे और उनसे प्रेम करते थे। सन् १९२० से १९२९ के आसपासके कांग्रेस और खिलाफत आन्दोलनोंने वहांके साम्प्रदायिक सम्बन्ध और भी सुधार दिये थे। परन्तु धीरे धीरे परिस्थितियोंमें परिवर्तन आने लगा।

सम्प्रदायवादके उत्थानके इतिहासका और लोकतंत्रके बढ़ते हुए ज्वारके विरुद्ध लड़े जानेवाले संग्राममें प्रतिक्रियावादी बलोंने उस पर कैसे अधिकार कर लिया इसका वर्णन पहले एक अध्यायमें किया जा चुका है। (देखिये खंड-१, अध्याय-४) १९३७ के चुनावोंमें बुरी तरह हार जानेके बाद लीगने निराश होकर सारा विवेक त्याग दिया था। साथ ही दूसरा पक्ष जीतके घमंडमें लीगकी धमकियोंके बारेमें अधिक तुनुकमिजाज बन गया था।

विभिन्न प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंकी सफलतासे मुस्लिम लीग आग-बबूला हो गई। मुस्लिम अल्पमत पर सारे भारतमें कांग्रेसके "अत्याचारों" का झूठा किस्सा गढ़कर एक पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित किया गया, जो लेखकके नामसे 'पीरपुर रिपोर्ट' कहलायी। पटनाके

किसी बैरिस्टर शरीफकी तरफसे एक और रिपोर्ट दो भागोंमें छापी गई। और तो और, स्वयं मुहम्मद इस्माइलने, जो मुस्लिम लीगकी कार्यसमितिके प्रमुख सदस्य थे और किसी समय बिहार प्रान्तीय मुस्लिम लीगके अध्यक्ष थे, इस रिपोर्टके बारेमें हुई बातचीतके दौरान डॉ. राजेन्द्रप्रसादसे कहा बताते हैं कि "उसे विधान-सभाके प्रांगणमें पचहत्तर फी सदी असत्य मान लिया गया था और बाकी पच्चीस प्रतिशत वह असत्य साबित हो चुकी है !" जब कांग्रेसके अध्यक्षकी हैसियतसे डॉ. राजेन्द्रप्रसादने अपनी तरफसे प्रस्ताव रखा कि मुस्लिम लीगकी शिकायतोंकी जांच किसी निष्पक्ष अधिकारीसे करा ली जाय और इस कामके लिए संघ-न्यायालयके मुख्य न्यायाधीश सर मॉरिस ग्वायरका नाम सुझाया, तो जिन्नाने यह कहकर उस सुझावको ठुकरा दिया कि "मामला अब हिज़ एक्सिलेन्सी (वाइसरॉय) के विचाराधीन है और हमारी (मुस्लिम लीगकी) अपेक्षायें पूरी करने और जिन प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडल शासन चला रहे हैं उनमें सुरक्षाकी भावनाको पुनः स्थापित करनेके लिए उचित कार्रवाई और उचित उपाय करनेके लिए योग्य अधिकारी वे ही हैं।" [डॉ. राजेन्द्रप्रसाद कृत 'इण्डिया डिवाइडेड' में उद्‌धृत, बम्बई, १९४७, पृ० १४७] जहां तक मालूम हुआ है, वाइसरॉयने इस विषयमें कोई कार्रवाई नहीं की और जिन्नाने भी मामलेको वाइसरॉयके सामने आगे बढ़ानेका कष्ट नहीं किया।

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि जिन प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडल काम करते थे उनके किसी गवर्नरने या लॉर्ड जेटलैण्डने—जो कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंके समूचे कार्यकालमें भारत-मंत्री रहे—"कभी मुसलमानों पर या और किसी अल्पसंख्यक कौम पर कांग्रेसकी तरफसे अत्याचार होनेका कोई प्रश्न नहीं उठाया।" [डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, 'इण्डिया डिवाइडेड', बम्बई, १९४७, पृ० १४७; ब्रेल्सफोर्ड कृत 'सब्जेक्ट इंडिया' भी देखें, बम्बई, १९४६, पु० १०१: "(अत्याचारोंके) इस आरोपमें कोई सचाई नहीं है; यदि कोई सचाई होती तो गवर्नरोंने हस्तक्षेप किया होता; परन्तु उन्होंने कभी भी ऐसा नहीं किया। क्रिप्स मिशनकी असफलताके बाद ब्रिटिश प्रचारने कांग्रेसको बदनाम करनेके लिए यथासंभव सब कुछ किया है। परन्तु उसने 'अत्याचारों' के इस आरोपको नहीं दोहराया, जो कि उसका सबसे अधिक परिणामकारी शस्त्र सिद्ध होता।'] इसके विपरीत, एकसे अधिक भारतीय प्रान्तोंके गवर्नरोंने यह प्रमाण-पत्र दिया कि कांग्रेसी राज्य "निष्पक्ष" था, हालांकि

उसने "लोक-तांत्रिक प्रणालीके गुण और दोष दोनों ही प्रशासनमें दाखिल कर दिये हैं।" [लन्दनके कैक्सटन हॉलमें दिये गये सर हैरी हैगके भाषणकी 'पायोनियर' में प्रकाशित रिपोर्ट, लखनऊ, ३० अप्रैल १९४६] इन प्रमाण-पत्र देनेवालोंमें उत्तर प्रदेशके गवर्नर सर हैरी हैग भी थे, जिनकी डॉ. राजेन्द्रप्रसादके शब्दोंमें "कांग्रेसके लिए कोई कोमल स्थान रखनेकी जरा भी कुख्याति नहीं थी।"

१९३९ में ब्रिटिश सत्ताने भारतको उसकी स्वीकृतिके बिना ही युद्ध लड़नेवाला देश घोषित कर दिया। इसे भारतीय स्वाभिमानका अपमान समझ कर विरोधमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंने अपने पदसे त्यागपत्र दे दिये थे। मुस्लिम लीगने इस घटनाको "मुक्ति-दिवस" के रूपमें मनाया ! ज्यों ज्यों तनाव बढ़ता गया "हिन्दुओंमें क्षोभकी भावना तीव्र होती गई, क्योंकि उन्होंने मुस्लिम लीगके रवैयेको देशद्रोही और अत्यन्त आपत्तिजनक समझा।" [पंडित नेहरू द्वारा बिहारके दंगोंके सम्बन्धमें गांधीजीको भेजा गया नोट, ६ नवम्बर १९४६] वे रोज-रोज लीगी नेताओंकी बलपूर्वक पाकिस्तान लेनेकी तरह तरहकी धमकियां अखबारोंमें पढ़ते थे। मुस्लिम लीगी अखबारोंमें हिन्दू धर्म और उसके रीति-रिवाजों पर गंदे हमले किये जाते थे। "हिन्दुओं" और "हिन्दू कांग्रेस" को बहुधा "हमारे दुश्मन" बताया जाता था। इन सब बातोंकी हिन्दू मानस पर सारे भारतमें, विशेषतः बिहारमें, अत्यन्त बुरी प्रतिक्रिया होती थी।

फिर १९४२ का "भारत छोड़ो" संग्राम आया। बिहारके हिन्दू जन-साधारणको विदेशी सरकारके दमनकी अधिकांश चोट सहनो पड़ी। उनके लिए "भारत छोड़ो" आन्दोलन लगभग जीवन-मरणका संग्राम था। परन्तु लीगने उसका विरोध किया। इससे बिहारमें दोनों कौमोंके बीचकी खाई और भी चौड़ी हो गई। साथ ही, अधिकांश मुस्लिम नेता सामाजिक दृष्टिसे प्रतिक्रियावादी थे। इससे बिहारकी और अन्य भागोंकी भी सामान्य हिन्दू जनतामें यह भावना पैदा हो गई कि "मुस्लिम लीग न केवल देशकी स्वतंत्रतामें बाधक है, बल्कि हमारी अपनी सामाजिक मांगोंकी पूर्तिमें भी बाधक है।" [वही] उन्होंने लीगको ब्रिटिश सत्ताका हथियार कहकर उसकी निन्दा की।

मुस्लिम लीगके प्रचारका मुस्लिम जनताके मन पर क्या असर हुआ, इसको एक बहुत ही सुन्दर उदाहरणसे बताया जा सकता है। दंगोंके बाद फ्रेंड्स सर्विस यूनिटके दो अमरीकी सदस्य बिहारके उपद्रव-ग्रस्त इलाकोंमें दौरा कर रहे थे। एक गांवमें एक मुसलमान शिक्षकने उन्हें भूलसे अंग्रेज समझकर उनसे अंग्रेजीमें बात की और कहा: "यदि यहां हमारी अपनी ब्रिटिश सरकार होती, तो सब ठीक हो जाता। परन्तु हम इन लोगों (हिन्दुओं) का भरोसा नहीं करते। [हॉरेस एलेक्ज़ेडरका पत्र गांधीजीको, १ फरवरी १९४७]

*

अगस्त १९४६ को कलकत्तेकी "सीधी कार्रवाई" ने आघातकी दोहरी लहर फैलायी । एक तो नोआखालीकी ओर गई और दूसरी बिहारकी ओर। बिहारमें नोआखालीकी लहरने लौटकर उस लहरको कई गुना जोरदार बना दिया। कलकत्तेमें दस लाखसे अधिक बिहारी दुकानदार, रिक्षावाले, दरबान आदिके रूपमें अपनी रोजी कमाते थे। १६ अगस्त और उसके बादकी कलकत्तेकी घटनाओंमें बहुतसे बिहारी मारे गये थे। १९११-१२ तक बिहार बंगाल प्रान्तका एक भाग था। इस कारण बिहारमें बंगाली हिन्दुओंकी बड़ी आबादी है। उनके भी बहुतसे सम्बन्धी कलकत्तेमें मारे गये थे। जो लोग कलकत्तेमें मारकाटसे अथवा दूसरी तरह पीड़ित हुए, वे बिहारमें शरणार्थी बन कर आ गये। वे गांवोंमें फैल गये और अपने साथ दंगोंकी भयंकर कहानियां भी ले गये, जिनमें से कुछ अत्युक्तिपूर्ण थीं।

फिर जलती आगमें घी डालनेवाली नोआखालीकी खबरें आईं। जबरदस्ती धर्म-परिवर्तनकी, स्त्रियोंको भगा ले जानेकी और उन पर बलात्कारकी असंख्य घटनायें कहीं भी भावनाओंको भड़का देती हैं। अपनी स्त्रियोंके प्रति किये जानेवाले अपराध हिन्दुओंकी भावनाको खास तौर पर उत्तेजित कर देते हैं। पाकिस्तानकी मांगके साथ जुड़ी हुई राजनीतिक कशमकशमें इस घिनौने पहलूके दाखिल हो जानेसे जितनी भयंकर घटनाएं हुईं उतनी भयंकर और किसी एक कारणसे नहीं हुईं। बिहारी भयंकर रूपमें उत्तेजित हो गये और बिहारमें रहनेवाले बंगाली उनसे भी ज्यादा उत्तेजित हो गये।

कलकत्तेके उपद्रवोंके बाद कई रहस्यपूर्ण इश्तिहार लोगोंमें बांटे गये। उनमें से कुछ पर तो बनावटी नाम थे और दूसरे गुमनाम थे। एक नोटिस, जो मुस्लिम लीगकी तरफसे जारी की हुई मानी गई थी, भारतके अनेक भागोंमें और खास तौर पर बिहारमें व्यापक रूपमें बांटी गई। उसमें ये सूचनायें थीं कि पाकिस्तानकी स्थापनाके लिए हिन्दुओं और उनके नेताओंको मार डाला जाय, उनकी सम्पत्ति लूट ली जाय और भिन्न भिन्न प्रकारके अन्य घृणित अपराध किये जायं। यह नोटिस किसने जारी की, यह किसीको मालूम हो ऐसा नहीं लगता | परन्तु जाहिर है कि वह बंगालसे आयी थी। यह भी संभव नहीं कि कोई जिम्मेदार आदमी मुस्लिस लीगकी तरफसे ऐसी विज्ञप्ति निकाल सकता था। फिर भी कलकत्ते और नोआखालीकी घटनाओंसे पैदा होनेवाली घबराहटके वातावरणमें जिन्होंने उसे पढ़ा "उन्हें पूरा यकीन हो गया कि मुस्लिम लीग सीधी कार्रवाईकी अपनी नीतिके अनुसार अत्यन्त घृणास्पद अपराध करने पर तुली हुई है। उनका खयाल था कि इसका विरोध हर कीमत पर किया जाना चाहिये और अगर दूसरा पक्ष इतना सिद्धान्तहीन बन जाता है, तो हिन्दुओंको भी सिद्धांतसे चिपटे नहीं रहना चाहिये।" [पंडित नेहरू द्वारा बिहारके दंगोंके सम्बन्धमें गांधीजीको भेजा गया नोट, ६ नवम्बर १९४६]

दुर्भाग्यवश, मुस्लिम लीगके कार्योंसे इस वर्गके बुरेसे बुरे डरको पुष्टि होती थी । समय समय पर भिन्न भिन्न स्थानोंसे अफवाहें और खबरें छनकर आती थीं कि मुसलमान गुप्त रूपसे हथियार चलानेकी तालीम ले रहे हैं और हिन्दुओं पर पूरी ताकतसे हमला करनेकी योजना बना रहे हैं। मुस्लिम लीग अंग्रेजोंके आनेसे पहले भारतमें स्थापित मुस्लिम राज्यकी परम्पराकी याद दिलाकर "जातीय" श्रेष्ठताका प्रचार खुले रूपमें करती थी। उसने मुसलमानोंके मानसको इतना रंग दिया था कि वे बिहारमें अपनी स्पष्ट मर्यादाओंको भी भूल गये । उन्होंने बालिशतासे तलवार पर विश्वास कर लिया, जब कि तलवारकी ताकत ही चली गई थी और वह सिर्फ आक्रमणकी भावनाका प्रतीक मात्र रह गई थी। यह विश्वास उनके लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ।

सितम्बर १९४६ के अन्तमें मुजफ्फरपुर जिलेके बेनीबाद नामक स्थानमें एक घटना हुई, जिसने एकत्र हुई इस स्फोटक सामग्रीमें आग लगा दी। एक स्थानीय मुसलमानके बारेमें यह खबर मिली कि वह कलकत्तेसे एक हिन्दू लड़कीको भगा लाया है। लड़कीको पेश करनेकी मांग

की गई। अन्तमें मुसलमानने २-३ दिनमें उसे पेश करनेका वचन दिया। नियत दिन पर उसके यहां भीड़ पहुंची । उसने देखा कि लड़कीको दूसरे स्थान पर हटा दिया गया है और वह मुसलमान भी गायब हो गया है। इस पर भीड़के लोग बेकाबू बन गये। कुछ मुसलमान मारे गये और उनके घर जला दिये गये । यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना टल जाती, यदि संयोगवश एक मजिस्ट्रेट और सशस्त्र पुलिसको गांवमें ले जानेवाली पुलिसकी ट्रक बीचमें ही न रुक गयी होती।

प्रान्तीय हिन्दू सभाने इस मौके पर 'प्रेज़ेन्ट मिज़रोज़ ऑफ दि हिन्दुज़् ऑफ बिहार' (बिहारके हिन्दुओंके वर्तमान दुःख) नामक एक पुस्तिका निकाली। उससे इसका चित्र मिलता है कि बेनीबाद जैसी घटनाओंका उन लोगों पर, जिनकी प्रतिनिधि हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक संस्थाएं थीं, क्या असर हुआ। पुस्तिकाका सार यह था: यह सिद्ध करनेके लिए काफी प्रमाण हैं कि बिहारमें मुसलमान हिन्दुओं पर संगठित हमला करनेकी योजना बना रहे हैं। कलकत्ता और नोआखालीके हमारे सहधर्मियोंकी तरह हम भी अचानक होनेवाले आक्रमणके शिकार हो जाते। परन्तु हिन्दुओंने "समय रहते सावधान हो जानेकी बुद्धिमानी की है" और मुसलमानोंके बुरे इरादोंकी भ्रूणहत्या कर डाली है। "हिन्दुओंके इस राष्ट्रीय, बुद्धिमत्तापूर्ण और वीर कार्य" का बदला कांग्रेस सरकार अत्यन्त कठोरतासे चुका रही है। इसलिए हिन्दुओंको कांग्रेससे स्पष्ट कह देना चाहिये कि जो सत्ता उसे दी गई है उसका दुरुपयोग नहीं होने दिया जायगा।

बात यह है कि एक कौमके विरुद्ध दूसरी कौमने आगजनी, हत्या और बलात्कारका जो व्यवस्थित कार्यक्रम एक राजनीतिक हथियारके रूपमें अपनाया, वह बंगालकी मुस्लिम लीगी सरकारकी अघोषित मददसे अपनाया हुआ लगता था। इससे लोगोंके मनको इतना धक्का लगा कि वे भयंकरसे भयंकर बातों पर विश्वास करने लगे और जिम्मेदार नेताओं तकने ऐसे वक्तव्य दे डाले, जो अन्तमें अतिशयोक्तिपूर्ण सिद्ध हुए। मुस्लिम हिंसाके फैलावको रोकनेके लिए परिणामकारी कदम उठानेमें केन्द्रीय अन्तरिम सरकार समर्थ नहीं थी। इस कारण धीरे धीरे कांग्रेसमें एक वर्ग ऐसा पैदा होता गया, जो कांग्रेसकी अधिकृत नोतिके विरुद्ध जानेकी खुली हिम्मत तो नहीं करता था, परन्तु गुप्त रूपसे हिन्दुओंमें नये पैदा होनेवाले सम्प्रदायवादके साथ

सहानुभूति रखता था। गांधीजीने बिहार सरकारसे यह पूछा था कि उसने 'सर्चलाइट' के सम्पादकके विरुद्ध कार्रवाई क्यों नहीं की। उसका जवाब विशिष्टता लिये हुए था: "('सर्चाइट') का . . . लेख . . . आपत्ति-जनक था, परन्तु हमारी कठिनाई . . . यह है कि 'डॉन' और 'मॉर्निंग न्यूज' में—जो हमारे प्रान्तमें आते हैं—बहुत ही उत्तेजित करनेवाले लेख प्रकाशित होते हैं । अगर हम ('सर्चलाइट' के विरुद्ध) कार्रवाई करते हैं, तो न्यायकी मांग होगी कि हम कमसे कम आधे दर्जन मुस्लिम पत्रों और उनके संपादकोंके विरुद्ध भी कार्रवाई करें।" [के. बी. सहायका पत्र गांधीजीको, २४ फरवरी १९४७]

इस प्रकार जहां बिहार सरकार अनिश्चय अथवा विचारोंकी गड़बड़ीके कारण समय पर कदम उठानेसे झिझकती थी, वहां नोआखाली और कलकत्तेके मामलेमें कोई परिणामकारी कदम उठानेकी केन्द्रीय अन्तरिम सरकारकी लाचारीने धीरे धीरे लोगोंमें यह भावना पैदा कर दी कि हिन्दुओंके प्रति न्याय करने, उनके जान-मालकी रक्षा करने अथवा उनकी स्त्रियोंकी इज्जत बचानेके लिए ब्रिटिश सत्ता अथवा अन्तरिम सरकारसे कोई आशा नहीं रखी जा सकती, जो या तो मुसलमानोंके आक्रमणको रोकनेकी इच्छा नहीं रखती या सामर्थ्य नहीं रखतीं। ऐसी भावनाका परिणाम अन्तमें यह होता है कि आम लोग कानूनको अपने ही हाथमें ले लेते हैं।

स्वामी सहजानन्दके नेतृत्वमें सन् १९३० से १९३९ के बोच बिहारमें एक अत्यन्त उग्र स्वरूपका किसान-आन्दोलन चला था । उसमें हिंसा और वर्ग-विग्रहकी खुली हिमायत की गई थी। उसने कांग्रेसके उच्च कक्षाके नेताओंको बड़ी परेशानीमें डाल दिया था। इस आन्दोलनने किसानोंमें जो असंतोष उत्पन्न किया उसने मुस्लिम जमींदारोंके हिन्दू काश्तकारोंको अपने भूस्वामियों पर आक्रमण करनेका बहाना देकर अधिक व्यापक आन्दोलनका पोषण किया। अजीब बात तो यह थी कि कुछ हिन्दू और कुछ मुसलमान जमींदारोंने भी, अपने कियेका नतीजा समझे बिना, किसानोंका ध्यान जमींदारीके प्रश्नसे हटा कर साम्प्रदायिक द्वेषकी तरफ मोड़ देनेकी कोशिश की। इसी प्रकार चोरबाजारी करनेवालोंके खिलाफ भी लोगोंमें उग्र भावना थी। इन लोगोंने मुसलमानोंके विरुद्ध हिन्दुओंकी भावनाका लाभ उठाकर हिन्दू जातिके नेताओंके रूपमें फिरसे अपना स्थान बना लेनेकी कोशिश की । साथ ही, किसी भी उपद्रवके समय मुस्लिम

गुंडे हमेशा उनकी दुकानों पर आक्रमण करते थे। अनेक उदाहरणोंमें गुंडोंको सम्पन्न व्यापारी खिलाते-पिलाते थे और कुछ दूसरे उदाहरणोंमें गुंडोंके पास बन्दूकें पाई गई, जो स्पष्टत: जमींदारोंकी दी हुई थीं।

अंग्रेज अफसरोंको भी बिहार सरकारसे शिकायत थी। १९४२ से इन अफसरोंके विरुद्ध लोगोंमें बड़ी कटु भावना थी। स्वतंत्रताका निकट आना उन्हें पसन्द नहीं था, क्योंकि उसमें उत्तकी दीर्धकालीन विशेषाधिकारोंवाली स्थिति नहीं रहनेवाली थी। वे लोकप्रिय सरकारको अपयश दिलानेके लिए उत्सुक थे । जैसा पं. नेहरूने प्रमाण दिया था, इस नाजुक अवसर पर कुछ स्थायी अधिकारियोंके आचरणसे लोगोंमें यह भावना पैदा हो गयी थी, चाहे वह उचित हो या न हो, कि "प्रान्तीय सरकारकी इस नई परेशानीसे वे बहुत नाखुश नहीं थे।" [पंडित नेहरू द्वारा बिहारके दंगोंके सम्बन्धमें गांधीजीको भेजा गया नोट, ६ नवम्बर १९४६] २८ अक्तूबर और ५ नवम्बर, १९४६ के बीच जब बिहारके सामने इतना बड़ा संकट था, प्रान्तके गवर्नरकी रहस्यपूर्ण अनुपस्थिति पर 'स्टेट्समैन ने भी लिखा था: "अकेली घटनाके रूपमें भले ही वह बहुत अर्थपूर्ण न हो। फिर भी द्रुतगामी संचार-व्यवस्थाके इस जमानेमें इतने लम्बे अरसे तक उनका (गवर्नरका) बराबर अनुपस्थित रहना और वह भी ऐसे नाजुक दिनोंमें सचमुच समझमें नहीं आता।" [दि स्टेट्समैन, ९ नवम्बर १९४६]

अखबारोंने भी अतिशयोक्तिपूर्ण तथा विवेकशून्य समाचार छाप कर इस जहरको फैलानेमें अपना हिस्सा अदा किया। पत्रोंके सम्पादकीय लेखोंकी सामान्य ध्वनि यह थीं कि लीगी लोग भयंकर उत्तेजना पैदा कर रहे हैं। इसकी गंभीर प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं, जिन पर देशको पछताना पड़ सकता है। फिर भी हिन्दुओंको बदला नहीं लेना चाहिये, क्योंकि बदलेकी भावना गांधीजीकी शिक्षाके विरुद्ध है और इससे उनका अपना नैतिक दिवाला निकल जायगा। एक उदाहरण लीजिये :

> हम बदला लेनेकी नीतिको नहीं मानते। बदला लेनेसे उसका अपना हेतु भी विफल होता है। परन्तु हमारा यह आग्रह अवश्य है कि संपूर्ण देशके लिए यह देखना सम्मानकी

बात है कि पूर्व बंगालके गैर-मुस्लिम अल्पमतके अस्तित्वका एक धर्मान्ध बहुमतके पशुबल द्वारा नाश न होने दिया जाय ?. . . हम मुस्लिम लीगियोंसे कह देना चाहते हैं कि वे अत्याचार जारी रहने देंगे तो खतरा उठायेंगे।

पूर्व बंगाल कोई सारा भारत नहीं है । साथ ही वह समय चला गया जब देशके एक भागकी घटनाओंका असर सारे देश पर नहीं होता था। . . . बंगाल सरकार और बंगालके लीगियोंको जल्दी ही साफ तौर पर यह कह देना चाहिये कि जिस ढंगसे वे जीवनकी शिष्ट मानी जानेवाली बातोंकी अवहेलना कर रहे हैं, उसके फलस्वरूप अत्यन्त दुःखी और अपमानित बने हुए भारतको मजबूत होकर जल्दी या देरसे उनके कान ऐंठने पड़ेंगे । जो मुस्लिम लीगी अविचारपूर्वक गृहयुद्धकी बात करते हैं, वे यह नहीं समझते कि वे क्या कर रहे हैं और जल्दी ही अपनी इस मुर्खतापूर्ण धृष्ठताका उन्हें क्या परिणाम भोगना होगा । “तेरे पाप तेरा अन्त करेंगे” यह सूत्र भूतकालकी तरह आज भी सत्य है | पूर्व बंगाल भारतके पौरुषके लिए एक चुनौती है। [सर्चलाइट, २० अक्तूबर १९४६]

किन्तु गांधीजीके आदर्शोंकी यह मौखिक स्तुति सतहके नीचे जो हिंसा फैल रही थी उसे छिपा नहीं सकती थी, और न ही उसने इस हिंसाको छिपाया । अखबार अवसरके अनुरूप अपने कर्तव्यका पालन नहीं कर सके और लोगोंको सही मार्गदर्शन नहीं दे सके। कानून और व्यवस्थाके लिए जिम्मेदार भारतीय अधिकारी भी दोषके भागी होनेसे बच नहीं सकते। उन पर भी प्रचलित साम्प्रदायिक द्वेषने अधिकार कर लिया था। सरकारी अधिकारियों और पुलिसमें इस प्रकार जो सम्प्रदायवाद पैठ गया था, उसका विशाल पैमाने पर होनेवाले विनाशमें काफी हाथ था। पंडित नेहरूने गांधीजीको लिखा, “यह अजीब बात है कि इन्हीं अधिकारियोंने अंग्रेजी राज्यके दौरान भारतके राष्ट्रीय हितोंकी विरोधी नीतियों पर किस प्रकार अमल किया होगा।”

२

कुछ समयसे सारन जिलेके मुख्य केन्द्र छपरा शहरमें साम्प्रदायिक स्थिति बराबर बिगड़ती चली जा रही थी। १९४६ के उत्तरार्धमें मुस्लिम गुंडों द्वारा हिन्दू स्त्रियोंके साथ

छेड़छाड़की कई घटनाएं हुईं, जिनके कारण तनाव बढ़ गया था। दिवाली २४ अक्तूबरको पड़ती थी। पहले बताये जा चुके अनेक कारणोंसे यह त्योहार अधिकांश स्थानोंमें "काली दिवाली" के रूपमें मनाया गया। कुछ दुष्ट व्यक्तियोंने इसका अनुचित लाभ उठा कर बिहारके हिन्दुओंसे कहा कि जो लोग हमारी दिवालीको "काली" बनानेके लिए जिम्मेदार हैं, उनसे बदला लेनेके दिनके रूपमें यह दिन मनाया जाय। उधर छपरा शहरके एक प्रमुख मुस्लिम लीगीने बड़ी मूर्खता करके अपने सहधर्मियोंसे एक मस्जिदमें कहा : "आज हिन्दुओंके घरमें मातम हो रहा है। हम लोगोंको आज जशन मनाना चाहिये।"

२५ अक्तूबरको कई शहरोंमें पूर्व बंगालके अत्याचारोंका विरोध करनेके लिए सभाएं की गईं। इन सभाओंको रोका नहीं गया, क्योंकि यह सोचा गया था कि दबी हुई भावनाओंको किसी न किसी उचित ढंगसे प्रकट नहीं होने दिया जायगा, तो कोई भयंकर विस्फोट होगा। लगभग इसके तुरन्त बाद छपरा शहरमें तूफान फट पड़ा। करीब ९ जगहों पर तीसरे पहर और शामको दंगे हुए। कुछ मिलाकर ५० घटनाओंके समाचार मिले। तीन अलग अलग स्थानों पर पुलिसने तीन बार गोली चलाई। २६ अक्तूबरको भी छुरा भोंकने और दंगा-फसादकी कई घटनायें हुईं। पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टने हिन्दुओंकी एक बड़ी भीड़को २६ अक्तूबरके दिन नदीकी तरफसे शहरकी तरफ बढ़नेसे ३० बार गोलियां चला कर रोका। परन्तु इस बीच जिलेके देहाती इलाकोंमें तूफान फैल गया था और वहां लगभग ५ दिन तक जारी रहा। फिर वह अचानक शान्त हो गया और ३१ अक्तूबरके बाद छुटपुट हमले ही हुए।

स्थानीय कांग्रेसी नेता २६ अक्तूबरसे शहरमें पहुंचने लगे। उन्होंने भीतरी भागोंमें दौरा करना शुरू किया। रास्तेमें उन्हें कभी कभी पचास पचास हजारकी भीड़ मिलती थी। जब भीड़से कहा जाता था कि जो कुछ वह कर रही है उससे गांधीजीका जीवन खतरेमें पड़ सकता है, तो वह लौट जाती थी। २७ अक्तूबर तक जिलेके सारे कांग्रेसी नेता पहुंच गये थे। टोलियां बनाकर वे गांवोंमें घूमने लगे। २८ अक्तूबरके बाद जिलेके किसी भी स्थान पर किसी योजनाबद्ध आक्रमणके समाचार नहीं मिले। मुख्यमंत्री २८ अक्तूबरको अपने साथी डॉ. सैयद महमूदके साथ छपरा पहुंचे । जो कुछ उन्होंने देखा उससे वे दंग रह गये:

हम लोग २८ अक्तूबरको (रांचीसे विमान द्वारा) रवाना होकर उसी रात छपरा पहुंचे। लगभग १०० घर शहरमें जला दिये गये थे। कोई ६ हजार आदमियोंने जिला स्कूलमें शरण ली थी और उनकी हालत बहुत बुरी थी। दूसरे दिन हम पैगम्बरपुर गये। यह बड़ा गांव है। यहां करीब ५० घर जला दिये गये थे। इतने ही पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंकी हत्या कर दी गयी थी और इन घरोंमें उन्हें जला दिया गया था। पुलिस वहां मौजूद थी। मूसलमानोंने कहा कि थानेदार उपद्रवियोंके साथ मिल गया था।

ज्यों ही हम छपरा पहुंचे, हमने ३-४ कांग्रेसियोंको भेजा। . . . वे ३ बजे प्रात:काल पैगम्बरपुर पहुंचे। उस समय भी उन्होंने ३ आदमियोंको आगसे निकाल कर उनके प्राण बचाये। उस समय तक पुलिस गायब हो गई थी। जब श्रीबाबू (मुख्यमंत्री) और मैं वहां गये, तो हमने देखा कि कुछ भयभीत स्त्रियां एक पेड़के नीचे बैठी रो रही हैं। जब हम गलियोंमें चल रहे थे तो हमारे पैरोंके नीचे खोपड़ियां और हड्डियां पड़ी दिखाई देती थीं। एक घरमें एक आदमी, जो जल कर कोयला हो गया था, बैठी हुई स्थितिमें पाया गया। एक और घरमें आग अब तक जल रही थी। बाहरसे दरवाजे पर ताला लगा दिया गया था। एक स्त्रीने हमारे पैर पकड़ लिये और रोने लगी। उसने कहा कि गांवके चौकीदारने मेरे बच्चेको मेरी गोदसे छीन कर उसके दो टुकड़े कर डाले। श्रीबाबू अपने आंसू रोक नहीं सके। दूसरे दिन उन्होंने मुजफ्फरपुरके अपने भाषणमें इस घटनाका उल्लेख किया। एक और स्त्रीने कहा कि मैंने अपनी सारी बचतका कई हजार रुपया इसलिए दे दिया कि उपद्रवी मेरे दो छोटे बच्चोंको छोड़ दें ? रुपया तो ले लिया गया, परन्तु बच्चे मेरे सामने ही कत्ल कर दिये गये। यहांके अधिकांश ग्रामजन मध्यम वर्गके थे। कई मुसलमानोंने शिकायत की कि छपराके हिन्दुस्तानी कलेक्टरने दंगेमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया। कुछ बातें, जो उसके द्वारा कही और की हुई बताई गईं, अवर्णनीय थीं। [डॉ. सैयद महमूद द्वारा गांधीजीके सामने प्रस्तुत रिपोर्ट, १७ फरवरी १९४७]

३१ अक्तूबरको वे लोग पटना लौट आये। पटना जिलेके दंगोंकी खबरें भी इस बीच आने लगी थीं। "हमने सेनाके अधिकारी ब्रिगेडियरको फौजी मददके लिए बुलाया। उसने कहा कि

इसकी जरूरत नहीं। . . . शामको समाचार आये कि घायलोंकी बड़ी संख्या, जिसमें कुछ बूढ़े आदमी, स्त्रियां और बच्चे भी हैं, पटना और तरेगना स्टेशनों पर आ पहुंची है। घायल स्त्रियोंमें से दो गर्भवती थीं। . . . लगभग ५० लाशें २-३ दिन बाद तक तरेगना स्टेशन पर पड़ी हुई थीं।" [वही]

दूसरे दिन वे सेनाके जनरलसे मिलने रांची गये। आकाशसे उन्होंने एक बड़ा गांव जलते हुए देखा। १० हजारकी भीड़ने उस गांवको घेर रखा था। "लोग अक्षरशः अपने घरोंमें कैद कर दिये गये थे। स्त्रियां और बच्चे अपनी छप्परोंकी छतों पर जमा होकर बुरी तरहसे रो और चिल्ला रहे थे। जब हमारा विमान ऊपरसे गुजरा तो वे पागलोंकी तरह अपने हाथ हिला हिला कर हमारा ध्यान खींच रहे थे। श्रीबाबू इसे बरदाश्त नहीं कर सके। वे रो पड़े।" [वही]

२ नवम्बरको जब जनरलसे मिलकर वे पटना लौट रहे थे तब उन्होंने फिर कई गांवोंको जलते और भीड़को लूटपाट करते हुए देखा। कुछ गांव बिलकुल वीरान हो गये थे और कुछको भीड़ने घेर रखा था। तीसरे पहर उन्होंने पटना जिले पर एक और उड़ान ली और कई अन्य गांवोंको जलते हुए देखा। ये सारी घटनाएं प्रान्तकी राजधानी पटनासे १०-१५ मीलके फासले पर हुईं। डॉ. महमूदने गांधीजीको रिपोर्ट दी, "जिलेके अधिकारियोंकी उदासीनता और उपेक्षाका वर्णन नहीं किया जा सकता। पंडित नेहरूके शब्दोंमें, 'वे पैदल भी जाते तो घटना-स्थल पर समयसे पहुंच सकते थे। !' " [वही]

डॉ. महमूदकी रिपोर्टमें आगे कहा गया है: "कोई साढ़े तीन लाख मुसलमान बिहारसे विभिन्न स्थानोंको भाग गये बताये जाते हैं। उन्होंने अपने सोनेके गहने और अपने घर और सम्पत्तिको कौड़ियोंके मोल बेच दिया था। तिलहारीके एक ही गांवमें मैंने ५ कुएं लाशोंसे भरे हुए देखे और घारला गांवमें १०-१२ कुएं इसी तरह मुर्दोंसे ऊपर तक भरे हुए थे। जहां पासमें कोई नदी थी वहां मुर्दोंको उसमें फेंक दिया गया। उनकी संख्याका निश्चित पता नहीं लग सकता। मारे गये लोगोंमें काफी संख्या बूढ़े पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंकी भी थी। . . . अस्पतालोंमें आये हुए घायलोंमें बहुतसे दूधपीते बच्चे थे। . . . कुछ स्त्रियोंने मुझे बताया कि कैसे उनके बच्चोंका उनकी गोदमें ही वध कर दिया गया।"

इन दृश्योंके साथ साथ डॉ. महमूदने कुछ दृश्य दूसरे प्रकारके भी देखे । ऐसी एक घटना अपने सामने होती देखकर वे गद्गद हो गये। वे फतवा स्टेशनसे कुछ शरणार्थियों और घायलोंको लौटा लानेके लिए एक स्पेशियल गाड़ी लेकर गये थे। "उस समय रातके २ बजे थे। शरणार्थी अपने सामानके साथ गाड़ीमें चढ़नेके लिए इन्तजार कर रहे थे। उनके कुछ हिन्दू भाई उनकी गठरियां अपने सिरों पर रखकर उनके साथ आये थे। अलग होते समय वे रोने लगे और मुसलमानोंके साथ गाड़ी पर चढ़ने लगे। कारण पूछने पर उन्होंने जवाब दिया, 'जब वे गाड़ीसे उतरेंगे तब उनका सामान उठानेमें कौन मदद करेगा ?' मैं उनके पास ही पीछे खड़ा था। आगजनी, रक्तपात और बर्बरताके बीचमें मानवता कैसे अनोखे रूपमें प्रकट हो रही थी ! अवश्य ही मनुष्य पशु और देवदूतका अजीब मिश्रण है। जैसा श्रीबाबूने कहा, यह हिन्दू-मुसलमानका संघर्ष नहीं था, बल्कि बर्बरता और मानवताका संघर्ष था।" [डॉ. सैयद महमूदका पत्र गांधीजीको, ८ नवम्बर १९४६]

छपरा (सारन जिला) से दंगे मुंगेर, भागलपुर, संथाल परगनों, पटना और गया जिलोंमें फैले। सबसे उग्र दंगे पटना जिले और पटना शहरमें हुए। २५ अक्तूबरको 'पूर्व बंगाल दिवस' मनानेके लिए पटनामें एक जुलूस निकाला गया। अन्तमें बांकीपुर मैदानमें वह एक बड़ी सभाके रूपमें बदल गया। उसके सभापति प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष प्रो. अब्दुल बारी थे। जुलूसके संगठनकर्ताओंके आश्वासनके बावजूद जुलूसके एक भागने अत्यन्त आपत्तिजनक नारे लगाये। सभामें एक वर्गने नोआखालीका बदला लेनेके लिए हिन्दुओंका आह्वान करनेवाला एक प्रस्ताव पास करनेकी कोशिश की। इसका प्रतिकार सभापति और कुछ दूसरे प्रमुख व्यक्तियोंने किया। दूसरे दिन भी सभा हुई और जुलूस निकाला गया। परन्तु छपराकी तरह एक छुरा भोंकनेकी घटनाके सिवा और कोई वारदात नहीं हुई और अधिकारियोंकी पूरी सावधानीके कारण उपद्रव टल गया।

मुसलमानोंने पहलेसे तैयार होनेका प्रमाण दिया। २७ अक्तूबरकी रातको घातक हथियारोंसे सुसज्जित होकर वे 'अल्ला-हो-अकबर' के नारे लगाते हुए निकल पड़े और बिखरे हुए मुसलमानोंको निश्चित केन्द्रों पर जमा करने लगे। वे रेलवे लाइनके एक तरफ एकत्र हो गये।

उनके नारोंको सुनकर आसपासके मोहल्लोंके हिन्दू हजारोंकी संख्यामें बाहर निकल आये और लाइनकी दूसरी ओर जमा हो गये। समय पर पुलिसके पहुंच जाने और कांग्रेसियोंके हस्तक्षेपसे एक गंभीर संघर्ष टल गया। परन्तु लौटती हुई भीड़ने गांवोंमें तरह तरहकी अफवाहें फैलाईं। नतीजा यह हुआ कि भीड़का एक हिस्सा पटना शहरके नजदीक कुमारहर गांवकी तरफ मुड़ा। एक और भीड़ एक दूसरे गांवमें इकट्ठी होने लगी। दोनों स्थानों पर कांग्रेसके कार्यकर्ताओंने पुलिसकी सहायतासे भीड़को नियंत्रणमें ले लिया। यह २८ अक्तूबरकी बात है। उसके बाद पटना उप-विभागके ग्रामीण क्षेत्रोंमें यह आग विद्युत्-गतिसे फैल गई।

२९ और ३० अक्तूबरको (पटना जिलेके) फुलवारी शरीफ और पून-पून पुलिस-थानोंसे उपद्रवके समाचार आये और उसके बाद मसौढ़ीका पहला भयंकर हत्याकांड हुआ। फिर उपद्रवोंकी एक लहर दक्षिण-पूर्ण दिशामें बिहार शरीफकी ओर और दूसरी लहर गया जिलेमें जहानाबाद उप-विभागकी उत्तरी सीमाकी ओर फैली ।

२७ अक्तूबरको पटनाके स्थानीय अधिकारियोंने कमिश्नरके आदेश पर स्थानीय सेनासे मदद मांगी थी। परन्तु ३१ अक्तूबर तक पुलिसके इन्स्पेक्टर- जनरल श्री क्रीडका, जो इस मामलेमें फैसला करनेके लिए सबसे योग्य मुल्की अधिकारी थे, यह निश्चित मत रहा कि स्थिति अच्छी तरह पुलिसके काबूमें है। ३१ अक्तूबरको पटनामें सैनिक सहायताके लिए फिर जोर दिया गया। परन्तु ब्रिगेडियरको उस समय भी ऐसा नहीं लगा कि सैनिक सहायताकी जरूरत खड़ी हुई है। उसने कहा कि स्थिति अभी तक "उतनी खराब नहीं हुई है जितनी १९४२ में थी"। [पंडित नेहरू द्वारा बिहारके दंगोंके सम्बन्धमें गांधीजीको भेजा गया नोट, ६ नवम्बर १९४६]

३ और ४ नवम्बरके बीच मजिस्ट्रेटों और सैनिकोंने दल बनाकर पटना उप-विभागके भीतरी क्षेत्रोंमें अपने अपने स्थान संभाल लिये । ५ नवम्बरको बिहारके उपद्रवोंके प्रायश्चित्त स्वरूप गांधीजीका आंशिक उपवास शुरू हो गया था। लोगोंका पागलपन चालू रहनेकी स्थितिमें आमरण उपवास करनेके गांधीजीके निश्चयकी घोषणा करनेवाले तथा उपद्रव बन्द करनेका लोगोंसे अनुरोध करनेवाले परचे वायुयानसे बहुत बड़े क्षेत्रोंमें गिराये गये। परिणामस्वरूप जितनी

तेजीसे पागलपन लोगोंके दिलों पर सवार हुआ था उतनी ही तेजीसे वह शान्त भी हो गया। उससे पहले अश्रुगैसके बम आकाशसे डाले गये थे। पंडित नेहरूके कथनानुसार, "भीड़ उनसे बहुत भयभीत मालूम नहीं हुई"। [वही]

३ नवम्बरको पंडित नेहरू और सरदार पटेल लियाकतअली खां तथा सरदार अब्दुररब निश्तरके साथ पटना पहुंचे। उसके बाद जल्दी ही डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, मौलाना आजाद और आचार्य कृपलानी पंडित नेहरूसे आ मिले और पीड़ित क्षेत्रोंमें दौरा करने लगे। उनके बाद वाइसरॉय आये।

६ नवम्बरको पटनामें एक बड़ी सभामें भाषण देते हुए पंडित नेहरूने कहा, "मेरे लिए यहां आकर आपसे यह कहना शर्मकी बात है कि आप नागरिकोंके सभ्य आचरणके आधारभूत सिद्धान्तोंका पालन कीजिये। यह ऐसा समय है जब हमारे सामने अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं हैं और उनको हल करनेकी जरूरत है। . . . उपद्रवके कार्य और पड़ोसियोंकी हत्या नागरिकोंके सभ्य व्यवहारके किसी भी पैमानेसे उचित नहीं ठहराये जा सकते। चूंकि कुछ लोगोंका दूसरी जगहोंमें सिर फिर गया, सिर्फ इसीलिए हैवानियत पर उतर आना किसी भी तरह उचित नहीं हो सकता। . . . इस प्रान्तमें जो कुछ हो रहा है वह निरा गुंडापन है और आपका पहला और सबसे बड़ा कर्तव्य हर कीमत पर इसे तुरन्त बन्द कर देना है। आप सिर्फ यह कह कर जिम्मेदारीसे बच नहीं सकते कि आपने व्यक्तिगत रूपमें इसमें भाग नहीं लिया।"

डॉ. राजेन्द्रप्रसादने अपने प्रान्तको याद दिलाया कि बिहारका सुन्दर नाम कलंकित हो गया है। जो कुछ हुआ वह अत्यन्त लज्जाजनक है और उसे एक दिन भी अधिक जारी नहीं रहने दिया जा सकता। सरकारने हर कीमत पर इसे दबा देनेका संकल्प कर लिया है। परन्तु यदि उसे बल-प्रयोग करना पड़ा, तो वह लज्जाकी बात होगी। आचार्य कृपलानी बोले, "ऐसी करतूतें करके आपने देशके भीतरी और बाहरी शत्रुओंको सहायता ही पहुंचाई है और आप देशके ध्येयके लिए द्रोही सिद्ध हुए हैं।"

पीड़ित क्षेत्रोंमें हुई इन सभाओंमें चारों ओरके गांवोंसे बहुत बड़ी संख्यामें किसान उपस्थित हुए। प्रत्येक सभाके अन्तमें पंडित नेहरूने हाथ उठवा कर श्रोताओंसे प्रतिज्ञा कराई कि इस प्रकारका दुराचरण फिर कभी नहीं करेंगे। बादके समाचारोंसे पता चला कि इस प्रकार प्रतिज्ञा लेनेवाले इन किसानोंने अपने वचनका महत्त्व समझा "और सचमुच दूसरोंसे उन्होंने कहा कि जब हम वचन दे चुके हैं तो हमें उसका पालन करना ही होगा।" [वही]

परन्तु भीतरी भागके बड़े बड़े क्षेत्र इन सभाओंसे अछूते ही रहे। प्रान्तीय सरकारके पास उस समय जो अपर्याप्त पुलिस थी उससे वह उपद्रवियोंसे सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकी। भीड़ एक जगह तितर-बितर हो जाती और फिर दूसरी जगह सामने आ जाती। सेनाके आ जानेसे अव्यवस्था फैलानेवाली शक्तियोंके साथ पहली बार सफल सम्पर्क स्थापित करना संभव हुआ। चोटीके कांग्रेसी नेताओंकी उपस्थिति और उनके मार्गदर्शनसे सारे प्रशासन-तंत्रमें बिजली दौड़ गई। जाब्ता फौजदारीके मातहत निषेधाज्ञाएं जारी की गईं, करफ्यू लगाया गया और कई स्थानों पर गोली चलाई गई। इस प्रकार अराजक तत्त्वोंकी कमर तोड़ दी गई। इसके फलस्वरूप ६ नवंबरकी रातको ही पंडित नेहरूने गांधीजीको रिपोर्ट दी: "कुल मिलाकर स्थिति शान्त हो रही है।" ७ नवम्बरको पटना, मुंगेर और गया पर विमानमें उड़ते हुए उन्होंने देखा कि, "सामान्य स्थिति बहुत शान्त है और किसान खेत जोत रहे हैं।" [वही, ७ नवम्बर १९४७] ८ नवम्बर तक वे गांधीजीको यह रिपोर्ट दे सके: "जहां तक मैं मानता हूं, मुसलमानोंके खिलाफ सामूहिक आन्दोलन समाप्त हो गया है।" [वही, ८ नवम्बर १९४७] एक नई वृत्ति भी दिखाई दे रही थी और वह आशाजनक थी: " मुसलमानोंने सुझाया कि जहां उनके गांव अब भी मौजूद हैं वहां निराश्रितोंको लौट जाना चाहिये, ताकि वे जल्दी जल्दीमें छोड़ी हुई अपनी सम्पत्तिकी देखभाल कर सकें और पकी हुई अपनी धानकी फसलको काट सकें; वरना इस बातका खतरा है कि दूसरे लोग उसे काट कर ले जायंगे। इस प्रकार आत्मरक्षाकी प्रारम्भिक वृत्तिका स्थान सम्पत्तिका प्रेम ले रहा था। इससे भी पता चलता था कि कुछ हद तक साधारण स्थिति फिर वापस आ रही थी।" [वही]

बिहारमें एक सप्ताह ठहरनेके बाद १४ नवंबरको पंडित नेहरूने केन्द्रीय विधान-सभामें एक वक्तव्यमें कहा: "एक सप्ताहके बाद बिहारकी स्थिति पर पूरी तरह काबू पा लिया गया है। . . . एक व्यापक आन्दोलन, जो दूसरे जिलोंमें भी फैलनेवाला ही था, जल्दी ही समाप्त हो गया है, यह उल्लेखनीय बात है। सेना तो आई ही। . . . परन्तु शांति और व्यवस्थाकी पुनर्स्थापनामें कहीं अधिक बलशाली तत्त्व असंख्य लोगोंका, मुख्यतः बिहारियोंका प्रयत्न था, जो गांवोंमें सब तरफ फैल गये और आम लोगोंके सीधे सम्पर्कमें आये। महात्मा गांधीके प्रस्तावित उपवासके समाचारोंका भी जबरदस्त असर हुआ।"

१६ जिलोंमें से ६ जिलोंको उपद्रवोंसे हानि पहुंची। ६ उपद्रव-ग्रस्त जिलोंके कुल १८८६९ गांवोंमें से ७५० गांव उनमें शरीक हुए। सरकारकी जानकारीके अनुसार कुल ९८६९ घरोंको हानि पहुंची अथवा वे नष्ट कर दिये गये। पुलिस और फौजने कुल २१८६ बार गोलीबार किया, जिससे ३९३ से अधिक आदमी मारे गये और लगभग १०० आदमी घायल हुए। मरे हुए लोगोंका निश्चित अनुमान बताना कठिन होगा। मृत मुसलमानोंका अन्तिम सरकारी आंकड़ा ५४०० के आसपास था। फ्रेंड्स सर्विस यूनिटका अन्दाज यह था कि मृतकोंकी संख्या १० हजारसे अधिक नहीं हो सकती। शायद सचाई इन दोनों संख्याओंके बीचमें कहीं होगी।

स्त्रियोंको भगाकर ले जाने, उन पर बलात्कार करने और जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन करनेकी घटनाएं बिहारमें भी हुईं। उनकी संख्याका पता नहीं लगा। पंडित नेहरूके शब्दोंमें, "उपद्रवोंका स्वरूप इस प्रकारका था कि उनके साथ इन घटनाओंका कोई मेल नहीं बैठता था।" [पंडित नेहरूका पत्र गांधीजीको, १ जनवरी १९४७] परन्तु वास्तविक संख्याका कोई महत्त्व नहीं है। सत्य यह है कि बिहारके हिन्दुओंने बंगालके मुसलमानोंकी तरह ही काली करतूतें की थीं और भारतके नामको कलंक लगाया था।

३

बिहारके १९४६ के उपद्रवोंने अखंड भारतके स्वप्नको अन्तिम रूपमें छिन्नभिन्न कर दिया। इससे जिन्ना आबादियोंकी अदला-बदलीकी अपनी प्रिय कल्पनाको आगे बढ़ा सके। यह कल्पना

अब तक व्यावहारिक राजनीतिकी बात नहीं समझी गयी थी। जिन्नाने संविधान-सभाको अनिश्चित कालके लिए स्थगित करनेका भी आग्रह किया। पंडित नेहरू इस आग्रहको संविधान-सभाकी मृत्युका साधन मानते थे और कायदे आजम इसे लीगके लिए जीवन और मरणका प्रश्न समझते थे।

बिहारके उपद्रवोंका लीगने तुरन्त लाभ उठा लिया। बिहारके दंगों पर बिहार मुस्लिम लीगकी १ दिसम्बर, १९४६ की रिपोर्टके कुछ शीर्षक इस प्रकार थे: "बिहारमें जातिनाशका अन्तर्राष्ट्रीय अपराध।" "हिन्दू कांग्रेसी फासिस्टवाद द्वारा इतिहासका सबसे बड़ा हत्याकांड।" "५० हजारसे अधिक मुसलमानोंका हत्याकांड ।" "५ लाख लोग आश्रयरहित शरणार्थी बना दिये गये।" कांग्रेस दल और कांग्रेसी सरकारके नेताओं पर यह आरोप लगाया गया कि "उन्होंने मुसलमानोंके खिलाफ एक गुप्त युद्ध-परिषद् रच ली थी, जो मुसलमानोंकी हत्याओंकी योजना बनाती थी, उस पर अमल करती थी और सामूहिक हत्याकांडकी मुहिमके मुख्य संचालनका काम करती थी।" बिहारके मुख्यमंत्रीको मुसलमान भी अपना सच्चा मित्र मानते थे। परन्तु उनके लिए यह कहा गया कि उन्होंने "अपने ही हस्ताक्षरोंसे सरकारी अधिकारियोंके नाम लिखित आज्ञाएं जारी की थीं कि स्थानान्तरण तथा रक्षाके कार्यके लिए कोई सहायता न दी जाय और इस आज्ञाका कठोरतासे पालन किया जाय।" जयप्रकाश नारायण कट्टर राष्ट्रवादी हैं, परन्तु उन्हें "सम्प्रदायवादी" और "पीछे रहकर दंगे करानेवाला" बताया गया। लीगके आरोप इतने विवेकहीन थे कि पंडित नेहरूको यह कहना पड़ा कि लीगका यह दस्तावेज "इतना वाहियात और उत्तरदायित्वहीन है . . . कि जो कुछ उसमें कहा गया है, उसे महत्त्व देना असंभव है।" [पंडित नेहरूका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, २९ दिसम्बर १९४६]

गांधीजीके सामने नोआखालीमें जो प्रमाण प्रस्तुत किये गये थे, उन सबकी परिश्रमपूर्वक जांच करनेके बाद उन्होंने अपना विचारपूर्ण निर्णय दिया। वह निर्णय उन्होंने अपने एक "पुराने और अथक पत्रलेखक" बेरिस्टर अली हुसैनको १८ जनवरी, १९४७ के अपने पत्रमें इस प्रकार बताया था: " बिहारके हिन्दुओं द्वारा किये गये अपराधमें बिहार मंत्रि-मंडलका भले हाथ न रहा हो; परन्तु मेरा यह दृढ़ मत है कि जिम्मेदार मंत्रियोंके नाते उन्हें अपने अधिकार-क्षेत्रमें आम

लोगों द्वारा किये गये आचरणकी जिम्मेदारीसे मुक्त नहीं किया जा सकता; और यह उनके लिए शर्म और बदनामीकी बात है।"

वस्तुस्थिति यह थी कि लीगके बढ़ाचढ़ा कर प्रस्तुत किये बिना भी सत्य काफी भयंकर था। मुसलमानोंने बताया कि सरकारको बहुत पहलेसे दंगोंकी आगाही मिल चुकी थी। प्रान्तमें एक व्यापक कांग्रेस संगठन मौजूद था। फिर भी यह करुण घटना हुई। जब उपद्रव शुरू हुए तब सरकारी सहायता क्वचित् ही समय पर पहुंची, यद्यपि मुसलमानोंकी ओरसे स्थानीय और उच्च अधिकारियोंसे सम्पर्क साधकर इस दिशामें बहुत कोशिश की गई । यह उस स्थितिमें हुआ जब कि पुलिस-थाने पास ही थे । सैयद अब्दुल अजीजने कुछ पीड़ित गांवोंसे पुलिस-थानोंकी दूरीका कोष्ठक बनाया था। उससे जाहिर होता था कि यद्यपि मुसलमानोंका पुलिस-थाने या मजिस्ट्रेकके स्थानसे कभी कभी चन्द गजकी दूरी पर—और अधिकसे अधिक २ मील पर—वध और अंगभंग किया गया, फिर भी कई दिनों तक उनके जान-मालकी रक्षाके लिए कोई कदम नहीं उठाया गया । उदाहरणके लिए, पूनपून और हिलसा गांव पुलिस-थानेसे १०० गजके भीतर थे; मसौढ़ी और तरेगना रेलवे स्टेशन क्रमशः ३०० और ४०० गजके भीतर थे; चिश्तीपुर और पलवलपुर आधे मीलके अन्दर थे; आटासराय और मनौरा गांव एक एक मीलके भीतर तथा कैला पुलिस-थानेसे डेढ़ मीलके अन्दर था। कुछ जगहों पर अधिकारियोंकी उप-स्थितिमें दंगा होता रहा और उन्होंने खुद भीड़को भड़काया। इससे सैयद अब्दुल अजीजको यह कठोर बात कहनेका कारण मिल गया कि "यदि सरकारी कर्मचारी और पुलिसको अपने कर्तव्यका कुछ भी भान और मुसलमानोंको बचानेका उनका थोड़ा भी निश्चय होता, तो कमसे कम १०० पुलिसके सिपाहियों, १५ सब-इन्स्पेक्टरों, १० इन्स्पेक्टरों, २ जिला पुलिस- सुपरिन्टेन्डेन्टों, १० मजिस्ट्रेटों और २ जिला-मजिस्ट्रेटोंको अपने क्षेत्रके हजारों पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंकी क्रूर हत्या हो इसके पहले स्वयं मर जाना था या घायल हो जाना चाहिये था।"

मुसलमानोंका यह सामान्य खयाल था कि मुसलमानोंके प्रति निर्दयता दिखानेवाले पुलिस अधिकारियोंकी मुसलमानोंके प्रति दया दिखानेवाले अधिकारियोंसे ऊपरके पदों पर तरक्की कर दी गई और कमसे कम एक-दो उदाहरणोंमें उनका सन्देह सर्वथा निराधार नहीं था। दंगोंके

बाद दंगाइयोंके नेताओंको दंड नहीं दिया गया। नोआखालीकी तरह वहां भी दूसरी कौमके विरुद्ध उलटे मुकदमे चलाये गये। मंत्रि-मंडल अपने आदेशोंमें समान रूपसे दृढ़ नहीं रहा और उसकी घोषित नीति तथा आज्ञाओं पर हमेशा उचित प्रशासनिक कार्रवाई नहीं की गई। बेनीबादमें पीड़ित मुसलमानोंमें बांटनेके लिए ४५ हजार रुपये मंजूर किये गये, परन्तु गांधीजीके पहुंचने तक वे बांटे नहीं गये थे । कुल मिलाकर सरकारी कर्मचारियोंने—खास तौर पर स्थानीय स्तर पर—उस कार्य-कुशलता, दृढ़ता और निष्पक्षताका परिचय नहीं दिया, जिसकी कानून और व्यवस्थाके संरक्षकोंसे आशा की जाती है। सम्भव है, ऐसे भी उदाहरण रहे हों, जिनमें इस कर्तव्य-विमुखताके पीछे ऊपरके अधिकारियोंका हाथ रहा हो—जो उतने ही साम्प्रदायिक विचारके हों।

वस्तुस्थिति यह मालूम होती है कि वायुमंडल अतिशय स्फोटक बन गया था और छोटीसी घटना भी बारूदखानेको भड़का देनेके लिए पर्याप्त थी। कुछ स्थानों पर व्यक्तिगत शत्रुतासे उत्पन्न होनेवाली हिन्दू-मुसलमानोंके बीचकी छोटी-छोटी घटनाओंने गंभीर साम्प्रदायिक रूप धारण कर लिया और हिन्दुओंकी भीड़ने मुसलमानों पर हमले कर दिये। कहा जाता है कि मरहौरा पुलिस-थाने (सारन जिला) में बंगाल पुलिसके एक सिपाहीने भीड़का नेतृत्व किया था, जिसका पिता नोआखालीमें मारा गया था। हसुवा थाने (गया जिला) में एक ग्वालेने भीड़का नेतृत्व किया था, क्योंकि उसके घरके कई आदमी कलकत्तेके दंगोंमें मारे गये थे। मसौढ़ी, पूनपून, एकनगर-सराय और हिलसा थाने (पटना जिला) की घटनाओंके लिए जिम्मेदार भीड़का नेता घोसी थाने (गया जिला) का कोई मथुरासिंह था, जो पुराना बदमाश था। कहा जाता है कि हिलसाके एक मंदिरमें रहनेवाले बाबाजीने एक हिन्दू लड़केकी मौतका बदला लेनेके लिए पड़ोसके हिन्दुओंको भड़काया था। उस लड़केको हिलसा बाजारमें एक मुसलमान डॉक्टरने गोलीसे मार दिया था। इत्यादि इत्यादि। [ये उदाहरण श्री हमीद, डी. आई. जी., सी. आई. डी., बिहारकी रिपोर्टसे लिये गये हैं, १ जनवरी १९४७]

जब आम लोगों पर लड़ाईका भूत सवार होता है और उनकी भावनाओंको उभाड़ दिया जाता है, तब यह जरूरी नहीं कि पहला वार बलवान पक्षकी तरफसे ही हो । बहुधा यह घबराहटका परिणाम होता है । कभी कभी सिर्फ उबाल आकर शान्त हो जाता है। मुस्लिम

लीगकी आम युद्ध-प्रिय नीतिने अधिकांश मुसलमानोंमें आक्रामक मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी थी। असंगठित सामूहिक उपद्रवोंमें आक्रमण और प्रत्याक्रमण छुटपुट होते हैं और उनका आधार किसी वर्ग या किसी व्यक्तिकी सनक या क्षणिक आवेश पर रहता है। उसके अविवेकका नतीजा बहुत लोगोंको भोगना पड़ता है। स्थानीय लाभकी भावना परिस्थितिकी यथार्थताको धुंधला बना देती है और बहुत बार लोगोंमें आत्म-विश्वासकी एक झूठी भावना पैदा करती है, जिससे अक्सर वे मुर्खतापूर्ण उत्तेजनात्मक आचरण कर बेठते हैं। अनेक स्थानों पर जहां हिन्दुओंकी संख्या थोड़ी थी वहां उन्हें अपने प्राण बचा कर भागना पड़ा। [नीचे ऐसे कुछ उदाहरण दिये गये हैं, जिनकी सूचना सरकारको की गई थी: (१) २ अक्तूबर १९४६ को बिहार सब-डिविजनके केओरीबीघागांवमें उसी गांवके मुसलमानोंने वहांके कुछ हरिजनों पर आक्रमण किया था, जिसकी वजहसे हरिजनोंको आसपासके गांवोंमें भाग जाना पड़ा था। (२) ४ नवम्बर १९४६ को अलग अलग गांवोंसे आकर हजारों मुसलमान माफी गांवमें एकत्र हो गये थे। उनमें से कुछने नजामपुर गांव पर हमला किया। उन्होंने तीन हिन्दुओंको मार डाला और हिन्दुओंके घरोंमें लूटपाट मचानेके बाद उनमें आग मगा दी। इस पर समूची हिन्दू आबादीने उस गांवको खाली कर दिया। (३) माफी गांवमें मुसलमान बहुत बड़ी संख्यामें एकत्र हुए हैं, यह जानकर माफीके बिलकुल निकटके गांव कटहरीके हिन्दू घबरा गये और अपना माल-असबाब वहीं छोड़कर आसपासके गांवोंमें भाग गये। उसके बाद ७ नवम्बर १९४६ को माफी गांवके मुसलमानोंने कटहरी गांवके हिन्दू घरोंको लूटा। (४) माफी गांवकी यह मुस्लिम भीड़ आसपासके हिन्दू गांवों पर बार-बार हमला करती थी। एक अवसर पर इस भीड़का सामना रास्तेको घेर कर खड़ी रहनेवाली मिल्टिरी पुलिससे हो गया, जब भीड़ हिन्दू गांवों पर अपना योजनाबद्ध आक्रमण करके लौट रही थी। पुलिसको मजबूर होकर इस भीड़ पर गोली चलानी पड़ी। इस गोलीबारसे कोई १४ मुसलमान घायल हुए थे, जिनमें से ३ आदमी मर गये थे। १८ मुसलमान वहीं गिरफ्तार कर लिये गये, जिनके पास घातक हथियार और एक बन्दूक थी। ये उदाहरण सिर्फ एक ही पुलिस-थानेके हैं। दूसरे थानोंसे भी ऐसी ही रिपोर्ट मिली थीं।]

मुस्लिम बहुमतवाले क्षेत्रोंमें हिन्दू अब तक दब कर रहे थे । उनमें से अधिकांश गरीब थे और अपनी आजीविकाके लिए सम्पन्न मुस्लिम जमींदारों अथवा दूसरे धनी मुसलमानों पर निर्भर करते थे। दीर्धकालसे वे वर्ग-अत्याचारके शिकार रहे थे । उदाहरणार्थ, पूनपूनमें मुसलमानोंने बरसोंसे उन्हें कालीका जुलूस नहीं निकालने दिया था । गांधीजीके पहुंचनेके बाद १९४७ में ही गांधीजीकी मंडलीके एक आदमीके बीच-बचावसे जुलूस निकाला जा सका । इन दीर्धकालीन शिकायतोंको ब्रिटिश राज्यकी शान्तिने दबाकर तीव्र कर दिया था और इसलिए बदला और भी निर्मम हो गया; और आसपासके हजारों गांवोंने इन मुसलमान बस्तियों पर धावे कर दिये। जब उनका प्रतिकार किया गया, और सामान्यतः उनका प्रतिकार किया गया था, अथवा जब मुसलमानोंने आक्रमण शुरू किया तब हिन्दुओंने अधिक शक्ति बटोर कर उसका जवाब दिया।

प्रशासनिक मदद अधिकतर देरसे मिली; क्योंकि उपद्रव अचानक और विशाल पैमाने पर फूट पड़े, बरसातके कारण संचार-व्यवस्थाकी कठिनाई खड़ी हो गई थी और अधिकारियोंके पास कानून और व्यवस्थाकी सामान्य शक्तियां पर्याप्त नहीं थीं। परन्तु इसका कारण यह भी था कि सरकारी कर्मचारियोंमें विभागीय लाल फोताशाहीके साथ सम्प्रदायवाद भी घुस गया था। परन्तु प्रान्तीय सरकारके आदेश स्पष्ट थे: भीड़को दबाया जाय और शरणार्थियोंको रक्षाके साथ सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया जाय। परन्तु कई जगह स्थानीय अधिकारी या तो सम्प्रदायवादके कारण या डर अथवा निरी अक्षमताके कारण अवसरके अनुरूप कार्य नहीं कर सके । परिणाम एक अभूतपूर्व करुण घटनाके रूपमें आया।

८ नवम्बर, १९४६ को 'दि स्टेट्समैन' ने 'डिस्प्रेस्ड ऑल्सो' (कलंकित भी) शीर्षकसे अपने अग्रलेखमें लिखा: "इतने बड़े पैमाने पर कोई हत्याकांड पूर्व-सूचनाके बिना शायद हो ही सकता है। फिर भी . . . स्थानीय अधिकारियोंके लिए यह सब अचानक हुआ मालूम होता है।" १३ नवम्बरको एक और लेखमें उसने लिखा:

> बिहारकी करुण घटना बंगालकी अधिक करुण घटनाके साथ केवल भीषणतामें ही समानता नहीं रखती। कई दूसरी बातोंमें भी दोनोंके बीच करुण साम्य खोजा जा

सकता है। गवर्नर धीमी गतिसे काम करते हैं या स्थल पर उपस्थित नहीं होते; मंत्रीगण शुरूमें इस विषयमें एकमत नहीं थे कि अमुक हद तक उपद्रव होना अच्छा है या बुरा; और बादमें हत्याकांडके संकट-कालमें लोगोंकी भीड़को नियंत्रणमें रखनेमें असमर्थ थे। शासन-तंत्रमें स्पष्ट दृष्टि और दूर-दर्शिताका अभाव था और अंशतः बुनियादी मानसिक कमजोरीके अस्वस्थ बना देनेवाले लक्षण दिखाई पड़ते थे।

'दि स्टेट्समैन' ने आगे लिखा:

लेकिन बिहार कमसे कम एक बातमें जरूर अधिक भाग्यशाली रहा: जहां बंगालको उसके आरंभके कई संकटोंमें बड़े बड़े व्यक्तियोंकी सेवाओंका लाभ नहीं मिला, वहां बिहारको वह तुरन्त मिल गया। नाजुक समय पर गवर्नरकी अनुपस्थितिकी अवश्य आलोचना हुई है। परन्तु केन्द्रसे आनेवाले प्रभावशाली लोगोंमें पंडित नेहरू, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और श्री कृपलानी सबने अपने सहधर्मियों द्वारा कम संख्यावाले लोगों पर की गई बर्बरताओंकी कड़ीसे कड़ी निन्दा की है।

पंडित नेहरूने एक बार फिर न केवल आदर्श शारीरिक और नैतिक साहसका परिचय दिया है; बल्कि इससे भी महत्त्वपूर्ण बात उन्होंने यह की है कि भारत और मानवताके हितमें प्रान्तके भीतर और बाहर दोनों जगह अपने ही समुदायके संकीर्ण विचारवाले लोगोंकी कड़ी आलोचनाकी उन्होंने बिलकुल परवाह नहीं की।

मानवतावादियोंके लिए सान्त्वनाकी एक बात और भी थी। इस व्यापक पागलपनके बीचमें ऐसे लोग भी थे, जिनका सयानापन बना रहा और जिन्होंने अपने प्राणोंको खतरेमें डाल कर भी मुसलमानोंको बचाया। एक मुसलमान अधिकारी हमीदने, जो गुप्त पुलिस-विभागके डी. आई. जी. थे, अपनी १८ दिसम्बर, १९४६ की रिपोर्टमें नीचे लिखी घटनाओंका उल्लेख किया है:

गंज (बाढ़ पुलिस-थाने) के ग्वालोंनें अहीजनके ६०० मुसलमानोंके प्राण बचाये। एक और गांवमें हिन्दुओंनें आसपासके गांवोंके लगभग ४०० मुसलमानोंको दरण दी । जब एक हिन्दू भीड़ने गांवकों घेर कर वहांके हिन्दुओंसे कहा कि मुसलमानोंको उनके हवाले कर दें, तो हिन्दू

एक होकर भीड़से लड़नेको तैयार हो गये। नतीजा यह हुआ कि भीड़को मुंहकी खाकर लौटना पड़ा। "गांव पर फिर हमला किया गया। . . . फिर वही परिणाम हुआ।" एक और स्थान पर हिन्दू भीड़ने मुसलमानोंको मारनेके लिए कुछ गांवों पर धावा किया, परन्तु स्थानीय हिन्दुओंने मिलकर मोर्चा लिया और आक्रमण-कारियोंसे साफ कह दिया कि लड़े बिना किसी मुसलमानको छूने नहीं दिया जायगा। अन्तमें भीड़ वापस चली गई। राजपूतों और मुसलमानोंके एक मिले-जुले गांवमें राजपूत लोग संगठित होकर आक्रामक भीड़से लड़नेको तैयार हो गये और उसका विचार पलट दिया। कानसारी (फतवा पुलिस-स्टेशन) के एक निवासीने ३८ मुसलमानोंको १४ दिन तक अपने ही घरमें छिपाकर रखा। "भीड़ने उसके घर पर दो बार आक्रमण किया और मुसलमानोंको मांगा। परन्तु . . . अपने गांववालोंकी सहायतासे . . . (उसने) उनके प्रयत्न विफल कर दिये।" हिलसा पुलिस-थानेके एक गांवमें हिन्दू और मुसलमान निवासियोंने मिलकर एक आक्रामक भीड़से टक्कर ली; १० को मार डाला और कइयोंको घायल कर दिया। पारसा बाजारमें कई हिन्दू कांग्रेसी जब एक मुसलमान डॉक्टरकी जान बचानेकी कोशिश कर रहे थे, तब एक हिन्दू भीड़ने उन पर जोरदार आक्रमण कर दिया। अन्तमें उन्होंने डॉक्टरको बचा लिया। "महाराजगंज (सारन जिला) में एक मुसलमानने एक हिन्दू स्त्री पर आक्रमण किया।" इस पर एक हिन्दू भीड़ने गांवके मुस्लिम क्षेत्र पर आक्रमण किया। वह सारे मुसलमानोंको मार डालना और उनके घरोंको जला देना चाहती थी। एक घरको उन्होंने आग लगा भी दी। जब यह सब हो रहा था तब एक राजपूत लड़की "सामने आई और भीड़को वापस चले जानेके लिए समझानेकी भरसक कोशिश करती रही । जब समझाने-बुझानेसे काम नहीं चला, तो उसने जलते हुए घरमें कूद पड़नेकी धमकी दी। इसका वांछित परिणाम हुआ और भीड़ लौट गई।" हिन्दुओं द्वारा मुसलमानोंके जान-मालकी रक्षा करनेके ऐसे समाचार उपद्रव-पीड़ित क्षेत्रोंमें कई जगहोंसे मिले थे।

४

बिहारके दंगोंने इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण दे दिया कि निर्वाचकोंकी उचित राजनीतिक शिक्षाके बिना लोकतंत्र ऐसा ही है जैसे बालू पर बना हुआ कोई घर। जब आम लोग अज्ञानी हों

तब भाषण-स्वातंत्र्य एक खतरनाक हथियार बन जाता है। गुमराह हो जाने पर वे अपनी ही सेवक सरकारको अपने पंजेमें पकड़ रखते हैं। दूसरे, जब बहुमत अल्पमतके विरुद्ध हो जाता है तब कोई सरकार, खास तौर पर लोकतांत्रिक सरकार, अल्पमतको नहीं बचा सकती। प्रत्येक व्यक्तिके पास पुलिसका एक सशस्त्र सिपाही रखना असंभव है। और जब विष फैलता है तब सरकारी नौकर उससे उतने ही प्रभावित हो सकते हैं जितने कि दूसरे लोग। तब वे सरकारकी निष्पक्ष नीतियोंकी अवज्ञा और भी धृष्ट होकर कर सकते हैं। कोई लोक-तांत्रिक सरकार अपने तमाम अधिकारियोंको बरखास्त नहीं कर सकती या सब लोगोंको गोलीसे नहीं मार सकती। इसीलिए गांधीजीको नोआखालीमें कहना पड़ा कि अगर बहुसंख्यक कौम अल्पसंख्यक कौमको अपने बीच रहने देना नहीं चाहती, तो मेरे पास उन्हें स्थानांतर करनेके लिए कहनेके सिवा और कोई चारा नहीं रह जायगा। अल्पसंख्यक लोग बहुसंख्यक लोगोंके बीचमें उनकी मित्रता सम्पादन करके ही रह सकते हैं। इसलिए जिन्होंने बहुमतको अपना "शत्रु" समझना अल्पमतको सिखाया और दोनोंके पुराने मित्रताके सम्बन्ध काट डाले, उन्होंने उन लाखों लोगोंके—जिनकी हिमायत करनेका वे दावा करते हैं—जीवनके साथ गहरा सोचे बिना खिलवाड़ ही किया। दंगोंका तीसरा महत्त्वपूर्ण पाठ यह था कि सरकारी तंत्र काठकी तरह बेजान हो गया था। साधारण समयमें भी वह केंचुएकी चालसे चलता था। किन्तु इस संकट-कालमें तो वह बिलकुल अयोग्य और अपर्याप्त सिद्ध हुआ।

जब मार्च १९४७ में गांधीजी बिहार पहुंचे तब हिन्दू जनता शान्त हो गई थी। मुस्लिम लीगने सरकारके विरुद्ध पूरे जोरसे हमला शुरू कर दिया था। जो करुण घटनाएं हुई थीं, उनसे सरकार हक्की-बक्की रह गई थी। कांग्रेस संगठनमें भीतरी ---- के लक्षण प्रकट होने लगे थे और वह ---- स्वाधीनताके तुरन्त पहले और बादमें बहुत स्पष्ट दीखता था।

बिहार सरकारके सामने शरणार्थियोंके कष्ट-निवारण और पुनर्वासकी एक विकट समस्या खड़ी थी। मुस्लिम लीग और बंगाल सरकारके रवैये और करतूतोंके कारण वह कहीं ज्यादा कठिन हो गई। जो मुसलमान हालकी घटनाओंसे पहले ही स्तब्ध हो गये थे, उनके मनमें वे

भविष्यके बारेमें व्यवस्थित रूपमें भयका संचार कर रही थीं और बंगालरमें मुफ्त जमीनें देनेके वचनोंसे उन्हें ललचा रही थीं।

५ नवम्बर, १९४६ तक ऐसा लगने लगा कि सरकारके सामने निराश्रितोंकी एक विकट समस्या आनेवाली है। इसलिए रिलीफ कमिश्नर श्री हॉल्टन, आई. सी. एस., के मातहत निराश्रितोंका एक संगठन खड़ा किया गया । शहरोंमें सरकारी शिविर स्थापित किये गये। परन्तु पता नहीं क्यों, मुस्लिम लीग कुछ स्थानोंके चुने जाने पर सम्मत नहीं होती थी। और चूंकि शुरूमें अनावश्यक संघर्ष और गलतफहमीसे बचनेके लिए मुस्लिम लीग और दूसरे स्वेच्छापूर्ण संगठनोंकी सलाह और सम्मतिसे कष्ट-निवारणके सारे उपाय करनेमें बुद्धिमानी मानी गई, इसलिए अनिवार्य रूपसे विलम्ब हुआ। गांवोंमें, जहां कष्ट-निवारण शिविर खोलनेके लिए एक ही समयमें प्रबन्ध किया गया, यह काम ज्यादा आसान था; क्योंकि मुस्लिम लीग उनके लिए व्यवस्था करनेको पूरी तरह तैयार नहीं थी।

प्रारम्भमें राजनीतिक संस्थाओंको उतने निराश्रितोंके लिए, जितनोंकी देखसाल करनेका उनका दावा था, मुफ्त राशन दिया गया। निराश्रितोंके उचित संगठन और संरक्षणके लिए सरकारी शिविर खोले गये। परन्तु मुश्किलसे ही लीगको समझा-बुझा कर इस बातके लिए राजी किया गया कि वह निराश्रितोंको सरकारी शिविरोंमें जाने दे, हालांकि लीगके स्वयंसेवकोंको ही शिविरोंका ब्योरेवार प्रबन्ध करने दिया जाता था।

निराश्रितोंको खिलानेका खर्च महीनों तक होता रहा, क्योंकि लीग उनके पुनर्वासमें बाधक हो रही थी और मुसलमान—केवल मुस्लिम लीगी ही नहीं—बहुत कुछ सरकारमें विश्वास खो चुके थे। सरकारने उपद्रव आरम्भ होनेके बाद जो कड़ी कार्रवाई की और कई स्थानों पर फौजने हिन्दुओं पर जो गोलियां चलाईं, उनका हिन्दू महासभाके नेताओंने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया। साथ ही, साम्प्रदायिक दंगों वगैराके संबंधमें बहुतसी गिरफ्तारियां भी हुईं। इन बातोंसे सरकार हिन्दू जनतामें भी अप्रिय हो गई।

लोकांत्रिक व्यवस्थातकी बाल्यावस्थामें प्रशासनिक तंत्रके शिथिल हो जानेके कारण तथा लड़ाईके बादके भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और घोखेबाजीके कारण—अन्य प्रान्तोंके साथ बिहारमें भी ये दुर्गुण पर्याप्त मात्रामें थे—बिहार सरकारका काम और भी मुश्किल हो गया था। जमींदारीके प्रस्तावित उन्मूलनके कारण जमींदार सरकारसे अप्रसन्न थे और किसान इसलिए अप्रसन्न थे कि ये बातें बहुत तेजीसे नहीं हो रही थीं। अन्न और वस्त्रकी कमी और चोरबाजारी युद्धकालसे अखिल भारतीय वस्तु बन गई थी । सरकारके विरोधी इसका दोष भी सरकारके ही मत्थे मढ़ते थे। वे ऐसे अवसरका अनुचित लाभ उठानेको अत्यंत उत्सुक थे। सरकारी नौकरोंके काममें हस्तक्षेप किया जाता था। सरकारके सामने एक भगीरथ कार्य था, लेकिन उसके शत्रु बहुत थे और मित्र थोड़े थे।

मुस्लिम लीग इस स्थितिका दुरुपयोग करनेके लिए खुले मैदानमें आ गई थी। इस्पहानी मोटर-लॉरो गांव गांव जाकर उन मुसलमानोंको, जो दंगोंमें अपने घरोंमें ही रहे थे, डराती थी और उन्हें अपने घर छोड़नेको कहती थी, ताकि वे शिविरोंमें जाकर निराश्रितोंकी संख्या बढ़ायें अथवा बंगाल चले जायं जिसका उनके सामने स्वर्गभूमिकी तरह वर्णन किया जाता था। अनुमान लगाया गया था कि जनवरी १९४७ के मध्य तक लगभग ७५ हजार आदमी बंगाल चले गये थे। मुस्लिम लीगके स्वयंसेवक घूम घूम कर लोगोंसे कहते थे और उन्हें समझाते थे कि वे अपने घर छोड़कर चले जायं और सामान्यतः उनमें अविश्वास और भयकी मनोवृत्ति पैदा करते थे।

नोआखालो में गांधीजीको भेजे एक पत्रमें डॉ. राजेन्द्रप्रसादने लिखा: “मुझे एक ही बातकी चिन्ता है। मुस्लिम लीगके स्वयंसेवक अलग अलग दिशाओंसे और दूर-दूरके स्थानोंसे यहां आये हैं। उनमें से बहुतसे गणवेष पहने हुए हैं। सुना जाता है कि कई स्थानों पर उन्होंने ऐसी बातें कही है, जिनसे उत्तेजना फैल सकती है। . . . मुस्लिम लीग अब भी अपने ही रास्ते पर जा रही है। यह प्रचार किया जा रहा है कि यदि पाकिस्तान स्थापित नहीं हुआ, तो इसी तरहकी दु:खद घटनाएं बार-बार होती रहेंगी । इसलिए डर यह है कि तनाव ही बना रहेगा। यदि दोनों पक्षोंको एकसी चिन्ता होती, तो सब बातें बहुत जल्दी तय हो जातीं। परन्तु शांति-स्थापन का काम वास्तवमें एक ही पक्षकी ओरसे हो रहा है।” [डॉ. राजेन्द्रप्रसादका पत्र गांधीजीको, १८ नवम्बर, १९४६]

उपद्रव-पीड़ित मुसलमानोंमें विश्वास पैदा करनेके लिए सरकारने निराश्रित शिविरोंका कार्य मुस्लिम लीगके स्वयंसेवकोंके सुपुर्द कर दिया था। यह दोहरी भूल थी। लीगियोंने अपनी जड़ जमा ली थी। उनके स्वयंसेवक सरकारी राशन पर गुजर करते थे, लेकिन निराश्रितोंसे वे कहते थे कि राशन "जिन्ना साहब भिजवाते हैं"। सरकार और हिन्दुओंके विरुद्ध अविश्वास और द्वेषकी भावना बहुत अधिक भड़का दी गई थी, जिसने निराश्रितोंको अपने गांवोंकी ओर लौटनेसे रोक दिया था। शहीद सुहरावर्दीको पंडित नेहरूने एक पत्रमें लिखा: "जब मैं वहां (पटनामें) था तब भी मैंने पाया कि सरकार निराश्रितों और विस्थापितोंको मदद देनेकी जो कोशिश कर रही थी उसमें मुस्लिम लीग बाधा डालती थी। वह नहीं चाहती थी कि यह सहायता मुसलमानोंको सीधी दी जाय; वह चाहती थी कि सिर्फ लीगके जरिये ही यह सहायता उन्हें दी जाय। यह बात मुझे अटपटी मालूम हुई, क्योंकि असलमें बिहार सरकार राहत-कार्यमें हर तरहसे लीगका सहयोग ले रही थी। लीगने . . . पहले तो निराश्रितोंकी सरकारके शिविरोंमें जाने नहीं दिया और उन्हें शहरके बहुत ही गन्दे वातावरणमें रखा। अन्तमें हैजा फैल जानेसे लीगको अपनी नीति बदलनी पड़ी। मुझ पर यह छाप पड़ी कि बिहार लीगकी दिलचस्पी विस्थापितोंको ठीक जगह वगैरा प्राप्त करनेमें मदद देनेके बजाय परिस्थितियोंसे राजनीतिक लगाम उठानेंमें अधिक थी। मेरी यह छाप बनी रही है और बादकी रिपोर्टोंसे वह मजबूत हुई है।" [पंडित नेहरूका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, २९ दिसम्बर १९४६]

निराश्रितोंके शिविर लीगके अड्डे बन गये थे। किसी कांग्रेसी अथवा सरकारी नौकरको उनमें घुसने नहीं दिया जाता था। अगर वे लोग वहां जाते तो उनका अपमान किया जाता था और उन्हें गालियां दी जाती थीं। बंगालके मुख्यमंत्रीके नाम लिखे अपने दूसरे पत्रमें पंडित नेहरूने कहा: "मैं यह भी आपको बता दूं कि अभी भी पटनामें सरकारी शिविर ज्यादातर मुस्लिम लीगके स्वयंसेवक ही चलाते हैं और वे कभी कभी सरकारी नौकरोंको शिविरोंके भीतर नहीं जाने देते। आप समझ सकते हैं कि किसी सरकारके लिए यह कितनी अटपटी स्थिति है कि वह किसी शिविरको संगठित करे, उसका सारा खर्च दे और फिर भी उसके ही प्रतिनिधियोंके साथ बाहरके

स्वयंसेवक इस तरहका बरताव करें।" [पंडित नेहरूका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, १ जनवरी १९४७]

एक और चाल मुस्लिम लीगियोंने यह चली : वे लीगी अखबारोंमें बिहार मंत्रि-मंडलके विरुद्ध जहरीला प्रचार करते थे और बाहरके लीगी नेताओंको—खास तौर पर बंगालके मुख्यमंत्रीको—तरह तरहसे तोड़-मरोड़ कर समाचार भेजते थे। बंगालके मुख्यमंत्री तो बिहार सरकारके मामलोंमें लगभग अपमानजनक रस लेते थे। बंगाल सरकारके कष्ट-निवारण निर्देशक (डाइरेक्टर ऑफ रिलीफ) ने १६ दिसम्बर, १९४६ को एक वक्तव्य निकाला था। वह १८ दिसम्बरके 'दि स्टेट्समैन' (डाक संस्करण) में इस शीर्षकसे निकला था: "बिहारके निराश्रित बंगालमें: अभी तक उन्हें अपने स्थानोंमें पुन: बसानेकी कोई व्यवस्था नहीं।" इस वक्तव्यमें कष्ट-निवारण निर्देशकने यह बताया था कि बंगाल सरकारने बिहार सरकारको एक पत्र लिखा है, जिसमें उस प्रान्तसे बंगालमें आये हुए निराश्रितोंकी समस्याके आकार और कठिनाइयोंका उल्लेख है और इस बारेमें जानकारी मांगी गई है कि निराश्रितोंको पुन: अपने स्थानोंमें बसानेकी बिहार सरकारकी क्या योजना है। परन्तु अभी तक उस पत्रका कोई उत्तर नहीं मिला है। वास्तवमें बंगाल सरकारका यह पत्र बिहार सरकारको १६ दिसम्बरको मिला, जिस दिन कष्ट-निवारण निर्देशकने अखबारोंमें अपना वक्तव्य निकाला था। [बिहार सरकारकी प्रेस-विज्ञप्ति, २५ दिसम्बर १९४६]

बिहार मुस्लिम लीगने विकृत सत्य और घोर झूठ शहीद सुहरावर्दीके पास पहुंचाये और बंगालके मुख्यमंत्रीने वे ही बातें नोआखालीमें गांधीजीके पास भिजवा दीं। एक नमूनेका उदाहरण देखिये: मुंगेरके जिला-मजिस्ट्रेटको, जो मुसलमान हैं, यह जरूरी मालूम हुआ कि उनकी देखरेखमें चलनेवाले निराश्रित-शिविरोंमें अनधिकृत व्यक्तियोंका प्रवेश रोक दिया जाय। इसलिए उन्होंने "पासके द्वारा ही प्रवेश करने" का आदेश जारी कर दिया। बंगालके मुस्लिम लीगी नेता ख्वाजा नाजिमुद्दीनको संतरीने फाटक पर रोक दिया, क्योंकि उनके पास पास नहीं था। बिहारके रिलीफ कमिश्नर श्री हॉल्टनको भी इसी तरह कुछ दिन पहले रोक दिया गया था, क्योंकि वे अपना पास लाना भूल गये थे। एक और मुस्लिम लीगी नेता मलिक फीरोजखां नून इससे कुछ दिन

पहले शिविर देखने आये थे। वे अपना पास लाये थे, इसलिए उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। इस प्रकार स्पष्ट था कि ख्वाजा नाजिमुद्दीनको शिविरमें प्रवेश करनेसे रोकनेका कोई इरादा नहीं था। ये तथ्य शहीद सुहरावर्दीने गांधीजीके पास इस तरह प्रस्तुत किये: "सारे निराश्रित सैनिक पहरेमें हैं। किसी बाहरवालेको शिविरोंमें जानें नहीं दिया जाता और न निराश्रितोंको किसी बाहरी व्यक्तिके सम्पर्कमें आने दिया जाता।" [शहीद सुहरावर्दीका पत्र गांधीजीको, १५ दिसम्बर १९४६] और आश्चर्यकी बात तो यह है कि शिविरोंमें सेनाके आदमी शरणार्थियोंकी और लीगकी स्पष्ट इच्छा पर रखे गये थे, "लगभग सभी सरकारी शिविरोंकी संपूर्ण व्यवस्था आरंभसे मुख्यतः मुस्लिम लीगके स्वयंसेवको और नेताओंके हाथमें रही है" [गांधीजीके नाम के. बी. सहायका नोट, ४ जनवरी १९४७] और मुस्लिम लीगके कार्यकर्ताओं और जनताके दूसरे लोगोंको सभी शरणार्थी-शिविरोंमें जानेकी स्वतंत्रता रही थी। हां, थोड़े समयके लिए मुंगेरके कुछ शिविरोंमें यह सुविधा नहीं थी। उन शिविरोंमें भी "मुस्लिम लीगके स्वयंसेवकोंको जाने दिया जाता था और आज भी उन्हें शरणार्थियोंमें काम करने दिया जाता है।" [वही]

बिहारकी प्रान्तीय मुस्लिम लीगका बुद्धि-चातुर्य खोज सके ऐसे बिहारसे आनेवाले विकृत और अतिशयोक्तिपूर्ण समाचारोंको फैलानेका काम बंगाल सरकारने जारी रखा। बंगाल सरकारने उसके बाद एक और असाधारण बात की। उसने अपने एक अधिकारीको इस प्रकट उद्देश्यसे बिहार भेजा कि वह बंगालसे आये हुए मुस्लिम कष्ट-निवारण दलोंके कामका "संयोजन" करे। वस्तुत: इस अधिकारीकी मुख्य प्रवृत्ति और चिन्ता यह मालूम होती थी कि निराश्रितोंको बंगाल चले जानेके लिए प्रेरित करे तथा बिहार सरकारके विरुद्ध धौंस जमानेकी सामग्री जमा करे और गढ़े। बिहार सरकारने एक पड़ोसी प्रान्तकी सरकारके द्वारा अपने कामकाजमें इस तरह किये जानेवाले अकारण हस्तक्षेप पर आपत्ति की और उस अधिकारीको सूचित कर दिया कि आपकी प्रवृत्तियां हमें पसन्द नहीं हैं और आपको वापस बंगाल चले जाना चाहिये।

बंगालकी दिशामें निराश्रितोंके इस निर्गमनका एक खतरनाक पहलू भी था। इधरसे जानेवालोंको जिन जिलोंमें बसाया गया या बसानेकी योजना थी, वे सब बिहारकी सीमा पर थे।

स्पष्ट ही इसके पीछे लक्ष्य यह था कि इन सरहदी क्षेत्रोंको मुस्लिम बहुमतवाले प्रदेश बना दिया जाय। यह सरहद बिहारके संथाल परगनोंसे मिलो हुई थी। एक गुप्त दस्तावेजसे यह रहस्य प्रकट हुआ था कि मुस्लिम लीगकी वहां छोटा नागपुर और संथाल परगनों के आदिवासियों द्वारा स्वाधीन झारखंड राज्यके लिए एक आन्दोलन खड़ा करनेकी योजनाएं थीं। यह झारखंड मध्यप्रदेशके आदिवासियोंसे जुड़ जाय और अन्तमें हैदराबादके साथ मिल जाय। और, हैदराबाद भारतके पश्चिमी समुद्र-तट पर गोआमें समुद्री मार्ग चाहता था। (देखिये अध्याय- १५) मुसलमानोंके लिए एक-दूसरेसे लगी हुई बस्तियां हों और अन्तमें बिहारका विभाजन कर दिया जाय, यही रहस्य मुस्लिम लीगकी इस मांगका था। इसकी चर्चा आगे की जायगी। (देखिये अध्याय-१५) अलबत्ता, ये मांगें अस्वीकार कर दी गईं। लीगके अनुचित रवैयेसे मजबूर होकर अन्तमें सरकारको उसके साथ आगे बातचीत बन्द करनी पड़ी। इस पर लीगका पुण्य-प्रकोप भड़क उठा और उसने सरकारके साथ "असहयोग" की घोषणा कर दी। स्पष्ट शब्दोंमें इसका यह अर्थ था कि निराश्रितोंको अपने घरोंमें लौटनेसे रोका जाय, निराश्रित-शिविरों पर लीगकी पकड़को मजबूत बनाया जाय और लीगी अखबारोंमें जहरीला प्रचार जारी रखा जाय।

गांधीजीकी नेकनीयती पर भी सन्देह किया गया, यद्यपि कुछ मुस्लिम लीगी आकर विवेकपूर्ण भाषामें उनसे कहते थे कि आप ही हमें बचा सकते है। सैयद अब्दुल अजीज भी उन्हें इस तरह लिख सके : "क्या कोई शांतचित्त देशभक्त और व्यावहारिक राजनीतिज्ञ उस अवस्थामें कटुतासे मुक्त शान्त और साधारण राजनीतिक प्रवृत्तियोंकी आशा रख सकता है, जब गांधीजीका प्रचार उनकी प्रार्थना-सभाओं द्वारा और उनकी विशेष कार्य-पद्धतिके साथ सारे भारतमें और विदेशोंमें रोज रेडियो द्वारा प्रसारित होता है? क्या दुनियामें कोई भी धार्मिक नेता अथवा राजनीतिक दार्शनिक, ऋषि अथवा विद्वान ऐसा है, जिसके व्यक्तिगत और राजनीतिक कार्य, भाषण और लेख रोज ब्योरेवार अखबारोंमें छपते हों ? क्या कोई एक राजनीतिक दल ऐसा है, जो भारतमें कांग्रेसकी तरह एक उप-महाद्वीपके लगभग सारे अखबारों पर नियंत्रण रखता हो? गांधीजीने इसका पूरा लाभ उठाया है और वे लगातार साम्प्रदायिक प्रश्नोंके बारेमें अपने विचार और आलोचना ऐसे शब्दोंमें प्रकट करते हैं, जो अक्सर उत्तेजक और उतने ही सूक्ष्म होते हैं।

गांधीजीने नोआखालीमें अपना निवास-काल अनिश्चित रूपसे क्यों लम्बा कर दिया है और रोज अधिकसे अधिक २-३ मीलकी ही हास्यास्पद यात्रा वे क्यों करते हैं, इस सवालका जवाब देना आसान नहीं है।" [सैयद अब्दुल अजीज, 'रिफ्लेक्शन्स ऑन दि बिहार ट्रेजेडी', नं० २, पु० ७]

कहा जाता है कि ज्यों ही दंगे बन्द हुए और निराश्रित लोग अपने शिविरोंमें सुरक्षित हो गये, त्यों ही लीगके प्रभावमें काम करनेवाले मुसलमान कभी कभी उन्हीं लोगोंके विरुद्ध मुकदमे चलाने लगे जिन्होंने उन्हें बचाया था। कांग्रेसवालोंने फिरसे होश संभालनेके बाद कुछ सुन्दर काम किया। ये दंगे जल्दीसे दबा दिये गये, यह बहुत-कुछ उन्हींकी कोशिशोंका फल था। कभी कभी अपनी जानको जोखिममें डालकर भी उन्होंने हजारों मुसलमानोंको बचाया था। परन्तु लीग द्वारा कांग्रेस और हिन्दुओंके खिलाफ चलाई गई निन्दाकी मुहिमने, लीगी स्वयंसेवकों द्वारा किये गये कांग्रेसी नेताओं और कांग्रेसके स्वयंसेवकोंके अपमान और तिरस्कारने, मुस्लिम स्वयंसेवकोंके—जो अपनी देखभालमें रहनेवाले निराश्रितोंको अपनी कुछ असभ्यताकी छूत सफलतासे लगा सके थे—धृष्टतापूर्ण व्यवहारने और निराश्रित-शिविरोंमें फैले हुए साम्प्रदायिक घृणाके सामान्य वातावरणने कांग्रेस-जनोंके एक वर्गके दिल खट्टे कर दिये थे और उन्हें मुसलमानोंके भाग्यके प्रति उदासीन बना दिया था। उनमें से कई यह पूछने लगे कि सरकार आवश्यकतासे अधिक उदार तो नहीं बन रही है। और इसलिए जब वे मार्च १९४७ के आरम्भमें गांधीजीसे मिले तब उनका मन आत्म-संतोषकी भावनासे भरा हुआ था।

आम हिन्दुओंमें से अधिकतरको अब भी अपने कियेका कोई पछतावा नहीं था। वे शहरोंमें मुसलमानोंके एकत्रित होनेसे तो डरते थे, परन्तु गांवोंसे उन पर धौंस जमाते थे। उनके बहुतसे रोटी कमानेवाले सम्बन्धी जेलमें थे। जो कुछ उन्होंने किया था उसकी कांग्रेसने निन्दा की थी, इसलिए वे रूठे हुए थे। चोरीका माल लौटाया नहीं गया था। कभी कभी जब मुसलमान पाससे निकलते तो गैर-जिम्मेदार युवक अपशब्द बोल देते थे। कहीं कहीं मुसलमानोंका आर्थिक बहिष्कार किया जाता था। उनकी फसलें काट कर ले जाई जाती थीं। वीरान घरोंके किवाड़ वगैरा तक लोग ले गये थे। मुसलमानोंको परेशान करनेकी छुटपुट घटनाएं होती रहती थीं। इन घटनाओके प्रति हिन्दू जनताका साधारण रवैया उदासीनताका था।

मुस्लिम जनता पर अभी तक भयका भूत सवार था और भयके सगे भाई द्वेषसे वह घिरी हुई थी। सरकार, कांग्रेस और सामान्यतः हिन्दू कौमके प्रति उनके मनमें अविश्वास था। इस डर और अविश्वासके लिए बहुत-कुछ शिविरोंमें पैदा की गई अत्यन्त अनुकूल परिस्थिति ही जिम्मेदार थी, जहां निराश्रितोंके मानस पर लीगी स्वयंसेवकोंका नियंत्रण था।

इस प्रकार गांधीजी बिहार आये उस समय वहांका वातावरण अराजकता और हिंसासे भरा हुआ था। उन्हें लोगोंसे आत्म-निरीक्षण और आत्म-परीक्षण कराना था; कठोर हृदयोंसे सच्चा पश्चात्ताप कराना था; मित्रोंको स्थिर करना था और शत्रुओंको जिसे वे भूलसे अपना स्वार्थ समझते थे उसकी हानि समझा कर जीतना था; जो लोग अपने कष्टोंके कारण हिल गये थे उनमें फिरसे साहस भरना था और जहां द्वेष और धूर्तताका राज्य था वहां प्रेमकी प्रस्थापना करनी थी तथा एक ऐसे शक्तिशाली संगठनको—जो अपना स्वरूप भूल गया था—फिरसे कर्तव्य-पथ पर लाना था और ऐसा करके लोकतंत्रकी हिलती हुई जड़ोंको स्थिर करना था। गांधीजीकी अहिंसाकी सर्वोच्च परीक्षाका अवसर बिहारमें आ गया था और बिहार उनके "करो या मरो" के मिशनका दूसरा क्षेत्र बन गया था।

चौदहवां अध्याय
'जिसे तोड़ा उसे फिर जोड़ो'

१

१२ मार्च, १९४७ को गांधीजी गांवोंके लोगों तक अपनी आवाज सीधी पहुंचानेके लिए बिहारके भीतरी क्षेत्रोंमें जानेके लिए रवाना हुए। उन्हींके शब्दोंमें कहें तो वे जो कुछ हुआ था उसका रहस्य "गांवोंके लोगोंके चेहरोंसे पढ़ लेना" चाहते थे।

पहला गांव, जहां गांधीजी गये, कुमारहर था। वह पटना जंक्शनसे ३ मील दूर था। जब लम्बी फहराती सफेद दाढ़ीवाला एक बूढ़ा उन्हें खंडहरमें ले गया और उसके घर तथा उसके रिश्तेदारोंके घरोंको जो नुकसान पहुंचा था वह उसने दिखाया, तो गांधीजीका हृदय रो पड़ा। पुस्तकालय और मस्जिदको भी नहीं छोड़ा गया था। पूजाके स्थानोंको भ्रष्ट करनेकी बातसे गांधीजीको हमेशा गहरी पीड़ा होती थी। उन्होंने शामके प्रार्थना-प्रवचनमें अपने मनोभावोंको व्यक्त करनेके लिए बहुत तीखी भाषाका प्रयोग किया। उन्होंने कहा, आप यह दलील नहीं दे सकते कि मुसलमानोंने हिन्दू मन्दिरोंको भ्रष्ट किया है। क्या इससे मन्दिरकी रक्षा करने अथवा हिन्दू धर्मकी सेवा करनेमें किसी भी तरह मदद मिली है? मैं स्वयं तो जितना मूर्तिपुजक हूं उतना ही मूर्तिभंजक भी हूं। और आप मानें या न मानें, यह बात आप हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों पर उतनी ही लागू होती है। मानव-जातिको प्रतीककी लालसा हमेशा रहती है । क्या वास्तवमें मस्जिद और गिरजे वैसे ही नहीं हैं जैसे मन्दिर हैं? ईश्वरका निवास तो सब जगह है। परन्तु मनुष्य कुछ विशेष स्थानों और वस्तुओंको दूसरोंकी अपेक्षा अधिक पवित्र मानता है। यह भावना आदरके योग्य है, यदि इससे दूसरोंकी वैसी ही स्वतंत्रतामें कोई बाधा न पड़ती हो। मैं स्वयं तो किसी मूर्तिको छातीसे लगा कर उसकी रक्षा करनेमें अपने प्राण दे दूंगा, परन्तु अपनी पूजाकी स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबन्ध सहन नहीं करूंगा। मैं यह समझनेमें आपकी मदद करने आया हूं कि आप किस हद तक पागल बन गये थे। मैंने आज मुसलमानोंके नष्ट हुए जो घर देखे, उनसे

मेरी आंखोंमें आंसू आ गये। परन्तु मैंने अपना दिल फौलादका बना लिया है। बिहारमें बुद्धने भ्रमण किया था और उपदेश दिया था। ऐसे इस बिहारमें अवश्य इतना ऊंचा उठनेकी शक्ति है कि वह सारे भारत पर अपना प्रकाश फैला सके । यह दर्जा बिहारको विशुद्ध अहिंसासे ही प्राप्त हो सकता है।

गांधीजीने आगे कहा, १९४२ के आन्दोलनमें आप लोगोंने अहिंसाका सीधा रास्ता छोड़ दिया था। आपके हालके पागलपनके लिए शायद वही जिम्मेदार है। गांधीजीने बिहारके लोगोंमें पैठी हुई अराजकताकी वृत्तिके उदाहरण देते हुए कहा, आप लोग बिना टिकिट रेलमें सफर करते हैं, आप गैर-कानूनी रूपमें अथवा मूर्खतापूर्ण प्रतिशोधकी भावनासे रेलगाड़ियोंकी जंजीर खींच लेते हैं, जमींदारोंकी फसल या माल-असबाबको जला देते हैं—वगैरा वगैरा । आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओंमें सुधार करानेका उत्तम उपाय है कष्ट-सहनके राजमार्ग पर चलना। उस मार्गसे हटनेका परिणाम केवल बुराईका रूप बदलनेमें आयेगा, जड़मूलसे उसका नाश होनेमें कभी नहीं आयेगा।

दूसरे दिन गांधीजी पारसाका विनष्ट गांव देखने गये। रास्तेमें सिपारा गांवमें ग्रामवासियोंने उनकी मोटर रोक कर एक थैली उन्हें भेंट की। उसे खोलने पर गांधीजीको सिक्कोंके साथ सिपाराके ग्रामवासियोंका हस्ताक्षर किया हुआ पश्चात्तापका पत्र भी मिला:

> कृपया हमारे घोर पापके लिए हमें क्षमा करें। हमारे हाथों हमारे मुसलमान भाइयोंके जान-मालकी जो हानि हुई है, उसके लिए हम बड़े लज्जित हैं। अपने पापके पश्चात्ताप और प्रायश्चित्तके रूपमें हम उपद्रवोंके शिकार बने मुसलमानोंके कष्ट-निवारणके लिए यह थैली आपको भेंट करते हैं। हम आपसे फिर क्षमा मांगते हैं और यह विश्वास दिलाते हैं कि भविष्यमें ऐसी बात फिर कभी नहीं होगी।

उस दिन शामको अब्दुल्ला चकके अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने कहा, मैं चाहता हूं कि प्रत्येक भारतवासी यह समझे कि भारतमें कहीं भी किये गये बुरे कार्यमें उसका भी भाग है

- फिर वह किसीने भी किया हो और किसीके भी विरुद्ध किया गया हो - और उसे सुधारनेकी जिम्मेदारी सबकी है।

खुसरूपुरमें गांधीजीने कहा, देशके सामने दो ही मार्ग हैं। एक, वारके बदलेमें वार करनेका है; और दूसरा, विशुद्ध अहिंसाका। १९१७ का चम्पारन सत्याग्रह अहिंसाकी शिक्षाका मार्ग था। परन्तु हालकी बिहारकी घटनाओंने मुझे इस निर्णय पर पहुंचनेके लिए मजबूर कर दिया है कि आपकी अहिंसा दुर्बलोंकी अहिंसा है। जो संकट हमारे सामने खड़ा है, उसमें ऐसी अहिंसा काम नहीं आयेगी। उसमें केवल बलवानोंकी अहिंसा ही कारगर सिद्ध हो सकती है। यदि बलवानोंकी अहिंसाका मार्ग आपके हृदय और आपकी बुद्धिको जंचता हो, तो उसकी ओर पहले कदमके तौर पर आपको सामने आकर सच्चे पश्चात्तापके चिह्न-स्वरूप मुसलमान भाइयोंको पहुंचाये गये नुकसानकी क्षतिपूर्ति करनी चाहिये। इसके विपरीत, यदि आप ईमानदारीसे ऐसी अहिंसामें विश्वास न रखते हों और यह सोचते हों कि समयकी चुनौतीका उचित उत्तर हिंसाका मार्ग ही है, तो आपको साफ शब्दोंमें और सचाईके साथ ऐसा कह देना चाहिये। "मुझे सचाईसे चोट नहीं पहुंचेगी, परन्तु अहिंसाके उपायकी असफलताको देखनेके लिए मैं जीवित रहना पसन्द नहीं करूंगा। मेरी दृष्टिमें इस बातका बड़ा महत्त्व नहीं है कि अपने प्रिय सपनेकी सिद्धिके लिए मैं अपने प्राणोंकी आहुति कहां देता हूं। मेरे लिए तो भारतमें सभी स्थान बराबर हैं। बिहार जो उदाहरण प्रस्तुत करेगा, उसी पर हमारे देशका भविष्य निर्भर करेगा।"

१५ मार्चको फुलवारी शरीफकी मुस्लिम लीग कष्ट-निवारण समितिके कुछ सदस्य गांधीजीकी सेवामें उपस्थित हुए। उन्होंने निराश्रितोंकी तरफसे कई प्रश्न गांधीजीसे पूछे। गांधीजीके उत्तरोंसे यह प्रकट हुआ कि जिन कई प्रश्नों पर पहले उन्होंने अपनी राय देनेमें संकोच किया था, उनके विषयमें गांवोंको देखनेके बाद वे निश्चित निर्णय पर पहुंच गये थे।

उनसे पूछा गया: "आजकी अस्थिर परिस्थितिमें क्या आप मुसलमानोंको वापस जाकर अपने गांवोंमें बसनेकी सलाह देंगे?"

गांधीजीने उत्तर दिया, "यदि आपके भीतर साहस हो और ईश्वरमें आवश्यक श्रद्धा हो, तो मैं आपसे कहूंगा कि आप वापस चले जाइये। मैं यह स्वीकार करता हूं कि अगर मेरे साथ ऐसी ही बातें होतीं, तो शायद मैं स्वयं वापस न जा पाता। मृतकोंका विचार मुझे सताता। परन्तु मेरी यह आकांक्षा जरूर है कि ईश्वर पर भरोसा करके मैं उन लोगोंके बीच भी रह सकूं, जो मेरे घोर शत्रु बन गये हैं।"

मुसलमानोंकी "सधन बस्तियों" (पॉकेट्स) के बारेमें गांधीजीका यह विचार था कि जिन गांवोंमें मुसलमानोंकी बड़ी संख्या है वहांके मुसलमान अगर मुस्लिम निराश्रितोंका स्वागत करें और वे भी वहां जाना चाहें, तो उन्हें कोई रोक नहीं सकता। इसी प्रकार यदि निराश्रित सदाके लिए प्रान्त छोड़ना चाहते हों, तो भी उन्हें कोई रोक नहीं सकता।"

बर्बरताके कृत्योंके लिए जो लोग जिम्मेदार थे, उनके बारेमें गांधीजीकी यह राय थी कि उन्हें कठोर दंड मिलना चाहिये। बिहार सरकारने सजा न देनेकी कसम नहीं खाई थी। "जो सरकार अपराधका दंड देनेमें विश्वास करती है और फिर भी जाने हुए अपराधियोंको दंड नहीं देती, वह सरकार कहलानेके योग्य ही नहीं है।"

एक और प्रश्न सदस्योंका यह था: किसी ऐसी निजी संस्थाके प्रति, जिसने अनाथों और विधवाओंकी देखभालका प्रबन्ध किया है, बिहार सरकारका क्या रवैया होना चाहिये ? गांधीजीने उत्तर दिया, विधवाओं और अनाथोंकी देखभालकी जिम्मेदारी बेशक सरकारकी है। कोई संस्था अपने ढंगसे यह कार्य करना चाहे, तो वह ऐसा करनेको स्वतंत्र है। परन्तु उस दशामें वह सरकारसे सहायताकी आशा नहीं रख सकती। "यह जिम्मेदारी या तो सरकारको उठानी चाहिये या जिस ढंगको सरकार पसन्द करे उस ढंगसे कोई और उठाये।"

"बहुसंख्यक कौमने पागल बनकर अल्पसंख्यक समुदायकी जो ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक हानि की है, उसकी क्षतिपूर्ति कैसे हो सकेगी?"

"ऐसी हानिकी पूर्ति नहीं की जा सकती। बर्बरताके ऐसे कृत्य उस समय तक होते ही रहेंगे जब तक हम सहिष्णु बनकर यह बात समझ न लें कि सभी धर्म ईश्वरके पास पहुंचाते हैं। जब

तक यह परिवर्तन नहीं हो जाता तब तक ऐसी बर्बरताको और उससे होनेवाली अपूरणीय हानिको रोकना असंभव है।"

"उन अधिकारियोंके साथ क्या व्यवहार किया जाय, जिन्होंने दंगाइयोंका खुला साथ दिया अथवा दूसरी तरहसे पक्षपातका दोष किया था?"

"जिन अधिकारियोंके विरुद्ध ऐसे आरोप सिद्ध किये जा सकते हों, उनके लिए सरकारमें कोई स्थान नहीं हो सकता।"

अन्तिम प्रश्न यह था: "जैसी दुःखद घटनाएं हालमें हुई हैं, उनकी पुनरावृत्तिको रोकनेके लिए आप क्या कदम उठाना चाहते हैं?"

गांधीजीने उत्तर दिया, " मैं मंत्रियोंसे ऐसे कानून बनानेके लिए कहूंगा, जिनसे किसी स्थान-विशेषके मुसलमानोंकी सुरक्षाकी जिम्मेदारी उस स्थानके हिन्दुओं पर डाली जाय। यह बात उस जगहके लिए है, जहां मुसलमानोंकी संख्या थोड़ी हो। परन्तु जरूरत इस बातकी है कि दोनोंके दिल फिरसे मिलें। यहांके मुसलमानोंसे मैं वही बात कहुंगा, जो मैंने नोआखालीके हिन्दुओंसे कही थी: "ईश्वरके डरके सिवा दूसरा सारा डर आपको छोड़ देना चाहिये।' "

*

१५ मार्चको तीसरे पहर गांधीजी शिष्टाचारके नाते बिहारके गवर्नर सर हुग डॉसे मिलने गये। गवर्नर से हुई बातचीतकी गांधीजी पर यह छाप पड़ी कि गवर्नर यह मानते हैं कि मंत्रियोंका रवैया विलम्बकारी है; कि स्थायी अधिकारियोंने इसका यह मतलब समझा है कि मंत्री नहीं चाहते थे कि वे कोई तेज और असरकारी कदम उठायें; कि अपराधियोंके साथ ठीक ढंगसे बरताव नहीं किया गया; और यह कि लीगकी मांगें गुण-दोषके आधार पर नहीं ठुकराई गईं, बल्कि केवल लीगकी मांगें होनेके कारण ही ठुकरा दी गईं। गांधीजीको लगा कि ये बातें मंत्रियोंको बताना उनका कर्तव्य है। दूसरे दिन उन्होंने ऐसा किया।

गांधीजीका पत्र गवर्नरके नाम

१७ मार्च, १९४७

उपस्थित मंत्रियोंने इन सब आक्षेपोंका पूरी तरह खंडन किया है और मुख्यमंत्रीने इन पर बड़ा आश्चर्य प्रगट किया है। मुख्यमंत्रीने कहा कि कई प्रश्नों पर, जिनमें अल्पसंख्यकोंका प्रश्न भी है, उनका और उनके साथियोंका आपके साथ अक्सर मतभेद रहा है । परन्तु उन्होंने अपनी और अपने साथियोंकी ओरसे आपको यह विश्वास दिला दिया था कि अल्पसंख्यकोंका प्रश्न निबटानेमें वे आपकी राय तुरन्त मान लेंगे, भले ही आपके और उनके बीच मतभेद हों।

गवर्नरका उत्तर ध्यान देने योग्य था। उनकी यह राय थी कि दंगोंके बाद शुरूसे ही मंत्रियोंको अपना यह इरादा घोषित कर देना चाहिये था कि जिन लोगोंको दंगोंमें क्षति पहुंची है उनकी क्षतिपूर्ति की जायगी। यदि ऐसा तुरन्त किया जाता तो मंत्रि-मंडलके कदमोंका इतना संगठित विरोध न हुआ होता । हुआ यह कि घोषणा बड़ी देरके बाद की गई। साथ ही गवर्नर उन कठिनाइयोंको पूरी तरह समझते थे जो "अज्ञात आर्थिक भार स्वीकार करनेके बारेमें" [बिहार गवर्नरका पत्र गांधीजीको, १७ मार्च १९४७] मुख्यमंत्रीको मालूम होती थीं।

गवर्नरने आगे चलकर कहा, यह सच है कि कुछ अधिकारियोंने इससे यह अनुमान निकाला कि मंत्रि-मंडल क्षतिपूर्तिकी इस बातको इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं समझता। जब मैं जनवरी १९४७ के मध्यमें छपरा गया तो मैंने देखा कि सचमुच कोई पैसा या सामग्री बांटी नहीं गयी थी, यद्यपि दंगे अक्तूबरके अन्तमें हुए थे, और मलबा वैसे ही पड़ा हुआ था जैसा दंगाई उसे छोड़ गये थे । मैंने लौट कर अपने विचार मुख्यमंत्रीको बताये और मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि मुख्यमंत्रीने तुरन्त ही जरूरी कदम उठाये; जिला अधिकारियोंसे उन्होंने भारपूर्वक कहा कि उनके सामने सबसे जरूरी काम निराश्रितोंके पुनर्वासका है। "मेरा बेशक आपसे यह कहनेका इरादा नहीं था कि मंत्रि-मंडल स्वयं इस मामलेमें किसी भी प्रकार आधे मनसे काम कर रहा था।

परन्तु मेरी रायमें कुछ महीनोंसे कई मातहत अधिकारियोंका यही विचार था; और इसका कारण शुरूमें किया जानेवाला विलम्ब था।"

अपराधियोंको सजा देनेके बारेमें गवर्नरने विरोध करते हुए कहा कि वास्तवमें उनके विचार गांधीजीने समझे उससे उल्टे थे। "मैं नहीं समझता कि अदालतमें बहुत थोड़े अपराधियोंके सिवा किसीको दण्ड देना संभव होगा । उस प्रयत्नमें पुलिसका और मजिस्ट्रेटोंका, जिनके समयका ज्यादा अच्छा उपयोग किया जा सकता है, समय बरबाद होगा।" उनका खयाल था कि इस मामलेमें सबसे कारगर उपाय यह है कि "सामूहिक जुर्माने किये जायें"।

उनका यह विचार भी नहीं था कि मंत्रि-मंडलने लीगकी मांगोंको सिर्फ इसी वजहसे ठुकरा दिया कि वे लीगकी मांगें थीं। "परन्तु मेरा ऐसा खयाल है कि बिहारकी हिन्दू जनताको यह पसन्द नहीं था, और शायद अब भी नहीं है, कि जिस उदारताका व्यवहार बंगालमें हिन्दू निराश्रितोंके साथ किया जाता है उससे अधिक उदारता मुसलमान निराश्रितोंके प्रति दिखाई जाय। और आरंभमें वृत्ति 'ठहरो और देखो' की रही।"

"सधन बस्तियों" की मुस्लिम मांगके प्रश्न पर गवर्नरकी स्थिति वही थी जो गांधीजीकी थी। "हमें करना यह चाहिये था कि हम ऐसे प्रस्तावोंका उनकी योग्यताके आधार पर विचार करनेको तैयार होते और निश्चित योजनाएं सुझानेकी तथा वे स्वीकृत हो जायं तो उन्हें अमलमें लानेकी जिम्मेदारी खुद मुसलमानों पर डाल देते। मैंने इसकी चर्चा मुख्यमंत्रीसे की है; वे मेरे विचार जानते हैं और मेरा खयाल है कि वे उनके विरुद्ध नहीं हैं । जब हम किसी पीड़ितको मुआवजा चुका देते हैं तो यह निर्णय हमें उसी पर छोड़ देना चाहिये कि वह उसे कहां और किस तरह खर्च करे—जैसा कि वह किसी बीमा कंपनीसे मुआवजा पाने पर करता।"

गवर्नरने इस बातका समर्थन किया कि आम तौर पर अल्पसंख्यकोंके बारेमें उनके और मंत्रियोंके बीचके मतभेद इस हद कभी नहीं पहुंचे कि मित्रतापूर्ण चर्चा द्वारा वे दूर न किये जा सकें :

हालके दंगोंके सम्बन्धमें मुझे मंत्रियोंकी सलाहके विरुद्ध किसी विशेष अधिकारका उपयोग करनेकी बात सोचनेका कभी अवसर नहीं आया। दोनों बड़े समुदायोंके बीच फिरसे विश्वास स्थापित करनेका प्रश्न एक असाधारण कठिन प्रश्न है। और मैं चाहता हूं कि आप ऐसा खयाल न बनायें कि इस विषयमें मेरे और मंत्रियोंके बीच सहयोगका कोई अभाव रहा है।

गवर्नर और गांधीजीके बीच अत्यन्त हार्दिक सम्बन्ध पैदा हो गये। गवर्नरने अपने व्यक्तिगत बागका उपयोग करनेका प्रस्ताव गांधीजीके सामने रखा : "वह बड़ा है और शान्त है और कभी प्रात:काल या सन्ध्याकालमें वहां घेर लेनेवाली भीड़से दूर चुपचाप टहलना या आराम करना आपको पसन्द आ सकता है।" [बिहार गवर्नरका दूसरा पत्र गांधीजीको, १७ मार्च १९४७] उन्होंने यह भी कहा: "आशा है, आपके पटना लौट आनेके बाद शीघ्र ही हम आगे बातचीत कर सकेंगे और आप कोई सलाह दे सकें तो उसके लिए मैं आपका आभार मानूंगा। क्या मैं यह कह सकता हूं कि जहां तक मैं समझ पाया हूं प्रान्तमें आपके आनेसे दोनों कौमोंमें सद्भावना पैदा करनेमें बड़ी मदद मिली है और मिल रही है? आपने अवश्य ही यह अनुभव कर लिया होगा कि अभी कितना काम करना और बाकी है।" [बिहार गवर्नरका पत्र गांधीजीको, २२ मार्च १९४७] शिष्टाचारके इस आदान-प्रदानमें कूटनीतिक शिष्टतासे कुछ अधिक बात थी।

उसी दिन शामको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने गवर्नरके यहां जानेका उल्लेख किया। उन्होंने कहा, मैं पुराने जमानेकी तरह कृपा या सेवा मांगनेके लिए या उसकी आशा रख कर प्रान्तोंके गवर्नरोंके पास नहीं जा सकता। जिम्मेदार हुकूमतमें, जैसी कि आपके यहां मानी जाती है, सेवाओं और कृपाओंकी आशा मंत्रियोंसे ही रखी जा सकती है, जो जनताके प्रतिनिधि हैं। गवर्नरके पास अल्पसंख्यकों सम्बन्धी सत्ता अवश्य है, परन्तु वह बड़े संयमके साथ ही काममें लेनेके लिए है। गांधीजीने इस अवसर पर लोगोंके मनसे यह धारणा हटानेका प्रयत्न किया कि हमें अंग्रेजोंसे सत्ता "छीननी" पड़ेगी। अहिंसक असहयोगमें सत्ता "छीनने" की कोई गुंजाइश नहीं होती। अंग्रेजोंने स्वाभाविक रूपमें और स्वेच्छापूर्वक अपनी बहुत-कुछ सत्ता और अधिकार छोड़ दिया है। अब यह भारतवासियोंका काम है कि अहिंसाकी दृष्टिसे वे अपने कर्तव्यका पालन करें,

यदि उन्हें **आम लोगों पर और आम लोगोंके लिए** पूरा नियंत्रण अपने हाथमें रखना है । बिहारकी ताजी घटनाएं तो उस मार्गसे विचलित होनेकी हो निशानी हैं।

गांधीजी पड़ोसके तीन गांवोंमें गये थे। इन छोटी मुलाकातोंमें उन्हें जो अनुभव हुआ, उससे वे इस परिणाम पर पहुंचे कि परिस्थितियां इतनी स्थिर हो गई हैं कि निराश्रित लोग अपने पुराने घरोंको सुरक्षित रूपमें लौट सकते हैं, यदि जो घटनाएं हुई हैं उनका डर वे छोड़ दें। गांधीजीकी बातें सुननेको हजारों ग्रामीण जमा हुए थे और गांधीजीकी सख्त फटकार और पश्चात्तापके उपदेश उन्होंने एकाग्र होकर सुने । गरीबसे गरीब लोगोंने भी उपद्रव-पीड़ित मुसलमानोंके कष्ट-निवारण कोषमें पैसा-पैसा देनेमें एक-दूसरेसे होड़ लगाई । यह स्वयं एक आश्वासन देनेवाला लक्षण था। शायद गांधीजीकी सूक्ष्म दृष्टिने ग्रामवासियोंके चेहरोंमें कोई ऐसी चीज भी देखी, जिससे उन्हें उन पीड़ित मुसलमानोंको, जो दिनमें उनसे मिलने आये थे, यह विश्वास दिलानेका साहस हुआ कि बिहारमें इस तरहकी दुःखद घटनाएं फिर कभी नहीं हो सकतीं। गांधीजीने बताया कि कैसे उन्होंने एक सम्पन्न व्यापारीसे कहा था कि वह पूरा विश्वास रखकर अपना व्यापार फिरसे शुरू करतनेमें डर न रखे, क्योंकि उन्हें विश्वास है कि बिहारके हिन्दू अपने वचनका पालन करेंगे।

*

खान अब्दुल गफ्फारखांको कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी लोगोंने बिहारकी करुण घटनाके बाद बिहार जानेके लिए राजी कर लिया था। आधुनिक इतिहासकी यह सबसे रोमांचक घटना है कि इस कठोर पठान सरदारने अहिंसाके सिद्धांतो स्वीकार किया और उस आदर्शकी सिद्धिके लिए उनके नेतृत्वमें खुदाई खिदमतगार आन्दोलनका ऐसे लोगोंमें उदय हुआ, जो दुनियामें सबसे ज्यादा लड़ाकोंके रूपमें मशहर रहे हैं और जिनके खूनमें “सदियोंकी अराजकता” मौजूद थी। [कॉलिन डेवीज़, 'दि प्रॉब्लेम ऑफ नॉर्थ-वेस्ट फ्रंटियर', पृ० ८०] बादशाह खान बिहारमें सबके लिए शक्तिके आधार-स्तंभ बन गये और हर तूफानमें वे अडिग खड़े रहे। उनकी चट्टान-सी

दृढ़ता, अहिंसा और मानव-स्वभावमें उनकी अटल श्रद्धाने रात्रिके तूफानी अन्धकारमें प्रकाश-स्तंभका काम किया।

वे बात बनाकर नहीं कहते थे। उनकी निःस्वार्थ सेवा, सचाई और नैतिक उत्कटताके कारण उनका इतना सम्मान था कि वे हिन्दू और मुसलमान दोनोंसे अधिकारपूर्वक बात कर सकते थे। बिहारके मंत्री उनकी सीधी और स्पष्ट बातोंको आदरके साथ सुनते थे। वे इस अधिकारके योग्य पात्र थे। उनकी श्रद्धा पलभर भी विचलित नहीं हुई। पागलपनके शोरगुलसे ऊपर उठकर उनकी आवाज शान्त और स्पष्ट रूपमें सुनाई देती थी।

पटना शहरमें सिक्खोंके गुरु गोविन्दसिंहके जन्मस्थान गुरुद्वारा हर मन्दिरमें हुई हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खोंकी एक संयुक्त सभामें वे बोले : "भारत आज पागलपनका नरक बन गया है और मेरा हृदय अपने ही हाथों जलाये हुए हमारे घरोंको देखकर रोता है। मुझे आज सारे भारत पर अंधकारका राज्य छाया दिखाई देता है और मेरी आंखें चारों तरफ घूम कर प्रकाशको देखना चाहती हैं, लेकिन प्रकाश दिखाई नहीं देता।" मैं सत्ताकी राजनीतिसे ऊब गया हूं और सारे भारतमें द्वेषका जो उपदेश दिया जाता मैं देख रहा हूं उससे मुझे गहरी पीड़ा होती है। एक "खुदाई खिदमतगार" के नाते मैं तो केवल पीड़ित मानव-जातिकी सेवा करनेको आतुर हूं। सभा समाप्त होने पर हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान एक मस्जिदमें गये, जो गुरुद्वारसे लगी हुई थी, और वहां सब एक-दूसरेको अभिवादन करके गले मिले।

एक पत्रके संवाददाताने लिखा: "इस पुरुषकी सचाई एक एक शब्दमें इतनी स्पष्ट दिखाई देती है कि उसका श्रोताओं पर बड़ा गहरा असर पड़ा है। उन्होंने जो कुछ कहा उसमें कोई नई बात नहीं थी। . . . फिर भी एक उद्विग्न हृदयसे जो थोड़ेसे सीधे-सादे शब्द निकले, उन्होंने अधिकतर श्रोताओंकी हृत्तंत्रीको झंकृत कर दिया। सीमाप्रान्तके गांधीकी एक सभामें भ्रातृभावके जो दृश्य दिखाई दिये और पूजास्थानोंमें सब कौमोंके लोग जिस तरह एकत्र होकर गले मिले उससे खिलाफतके दिन याद आते हैं।"

एक और सभामें खान अब्दुल गफ्फारखां बोले: "भारत एक ही राष्ट्र है, जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों सम्मिल्ति हैं।" कुछ प्रान्त ऐसे हैं, जहां हिन्दू नगण्य अल्पमतमें है। और कुछ प्रान्त ऐसे हैं, जहां मुसलमानोंकी ऐसी ही स्थिति है। बिहार और नोआखालीमें जो कुछ हुआ है वह यदि अन्य स्थानों पर दोहराया गया, तो समझ लीजिये कि राष्ट्रका भाग्य अवश्य फूट गया है। लोकप्रिय मंत्रियोंके मातहत प्रान्तीय सरकारोंने इतनी मजबूती नहीं दिखाई, जिससे इतने बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक उत्पातोंका होना रोका जा सके । मुस्लिम लीगको उन्होंने स्मरण कराया कि इस्लाम दुनियामें सबसे सहिष्णु धर्म है । "यदि हम सच्चे मुसलमान बनना चाहते हैं, तो हमें . . . अपने भाइयोंमें सहिष्णुता फैलानेकी पूरी कोशिश करनो चाहिये। . . . आज . . . दूसरी कौमें कहीं अधिक सहिष्णु हैं। सच्चे मुसलमान बननेके लिए . . . हमें अपना यह दोष सुवारना चाहिये।"

जब गांधीजी पटना पहुंचे, तब खान अब्दुल गफ्फारखां कहीं भीतरी क्षेत्रमें थे। गांधीजीको एक पत्रमें उन्होंने लिखा: "आप ठीक ही कहते हैं। हमारी अहिंसा कड़ी कसौटी पर चढ़ी हुई है। जब मैं चारों ओर राजनीतिज्ञोंको ईश्वर और धर्मका नाम लेकर द्वेषका प्रचार करते देखता हूं, तो मुझे राजनीतिसे घृणा होने लगती है।" उनका पता मालूम होते ही तुरंत गांधीजीने उन्हें आनेके लिए तार दिया। उस समयसे वे गांधीजीके सदाके शान्त साथी बन गये और अपना मुंह वे तभी खोलते थे जब गांधीजी चाहते थे।

१६ मार्चको गांधीजीका साप्ताहिक मौन शुरू हो गया था, इसलिए उन्होंने बादशाह खानसे प्रार्थना-सभामें भाषण देनेको कहा। गहरी वेदनाके साथ बादशाह खानने स्वीकार किया कि मैं चारों ओर अंधेरेसे घिर गया हुँ और जितना ही अधिक मैं भारतके भविष्यका विचार करता हूं उतना ही यह अंधकार बढ़ता जाता है। लाख कोशिश करने पर भी मुझे प्रकाश दिखाई नहीं देता। भारत दावानलकी ज्वालाओंमें जल रहा है। हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों और ईसाइयोंको चाहिये कि वे अच्छी तरह समझ लें कि अगर भारत जल कर भस्मीभूत हो गया तो हम सबका नुकसान होगा। मैं एक खुदाई खिदमतगार हुं। इस नाते और एक सच्चे मुसलमानके नाते मैं पीछे नहीं रह सकता, जब दूसरोंकी सेवाका अवसर मिलता है। और इसीलिए मैं आज आपके बीच हूं। आपकी जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है, खास तौर पर अंग्रेजोंकी इस घोषणाके बाद कि वे पन्द्रह

महीनेके भीतर भारत छोड़कर चले जायंगे। आपको याद रखना चाहिये कि जो चीज प्रेमसे मिल सकती है, वह द्वेष या पशुबलसे हरगिज नहीं मिल सकती। यूरोपकी मिसाल चेतावनीके तौर पर हमारे सामने है। मुस्लिम लीगियोंको दृष्टिमें रखकर उन्होंने कहा, मैं मुस्लिम लीगवालोंके लिए जो कुछ कह रहा हूं, वह उनके भलेके लिए ही है। वे पाकिस्तान चाहते है; पर पाकिस्तान वे प्रेम और राजीखुशीसे ही ले सकते हैं। पशुबलसे कायम किया हुआ पाकिस्तान एक संदिग्ध वरदान ही साबित होगा। अन्तमें मैं हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खोंसे हार्दिक अपील करता हूं कि जिस आगमें बंगालसे बिहार तक और बिहारसे पंजाब और सरहद प्रान्त तक भारत फंस गया है, उसे बुझानेकी कोशिश करें। उन्हें सारे भारत और उसके निवासियोंके भलेकी दृष्टिसे सोचना चाहिये।

२

मसौढ़ीसे गांधीजी ज्यादा गहरे पानीमें उतरे। उस क्षेत्रमें दंगोंके दिनोंमें एक अत्यन्त भयंकर और करुण घटना हुई थी। गांवके गांव साफ कर दिये गये थे। लगभग प्रत्येक घर धराशायी बना दिया गया था। फिर भी वहां और बिहारमें अन्यत्र भी हिन्दू और मुसलमान किसी समय मित्र थे। अधिकांश संस्थाएं, जैसे स्थानीय सहकारी बैक, हाईस्कूल, मन्दिर तथा मस्जिद तक हिन्दू-मुसलमानोंके सम्मिलित प्रयत्नोंसे स्थापित हुए और बने थे।

स्थानीय हिन्दुओंके मनमें सन्देह पैदा कर दिया गया था कि मुसलमान गुप्त रूपमें सामूहिक पैमाने पर अपनेको संगठित और शस्त्र-सज्जित कर रहे हैं। दूसरे स्थानोंकी घटनाओंकी रिपोर्टके बाद मुसलमानोंके एक जगह इकट्ठे होनेंसे यह सन्देह और मजबूत हो गया। एक हद तक डर अपना सामर्थ्य बतानेके रूपमें प्रगट होता है। ३० अक्तूबर, १९४६ की रातको मुस्लिम मुहल्लोंसे अल्लाहो-अकबरके नारे आकाशमें गूंजने लगे। इससे स्थानीय हिन्दू घबराकर अपने घरोंसे बाहर निकल आये और उनमें भगदड़ मच गई । इस पर मिलका भोंपू बजाया गया और आसपासके गांवोंसे हजारों हिन्दू 'महावीर स्वामीकी जय' पुकारते हुए वहां जमा हो गये। इस मिलका मालिक और बड़े कर्मचारी हिन्दू महासभासे सहानुभूति रखनेवाले कहे जाते थे और उन पर इस बातका प्रबल सन्देह किया जाता था कि मुसलमानों पर हुआ

हमला उन्हींने संगठित किया था। मुसलमान शान्त हो गये। कुछ कांग्रेसियोंके प्रयत्नसे—कुछ अन्य कांग्रेसियोंके बारेमें आक्रमणकारियोंके साथ मिल जानेका सन्देह था—भीड़को वापस भेज दिया गया। दूसरे दिन सुबह वचनानुसार पटनासे सहायता नहीं पहुंची । मुसलमानोंने पटनाकी गाड़ी पकड़नेके लिए रेलवे स्टेशनकी तरफ भागना शुरू कर दिया। तीसरे पहर अचानक यह अफवाह फैली कि स्टेशन पर उत्पात शुरू हो गया और कुछ हिन्दुओंको चोटें आई हैं। उसी समय मिलका भोंपू बजा और जो मुसलमान ३ बजेकी गाड़ीसे ले जाये जानेका इन्तजार कर रहे थे उन पर एक बहुत बड़ी हिन्दू भीड़ने आक्रमण कर दिया और उन्हें निर्दयतासे मौतके घाट उतार दिया। पास खड़ी हुई एक मालगाड़ीके इंजन-ड्राइवरने समय-सूचकतासे काम लेकर इंजनको गाड़ीसे अलग कर लिया और घटना-स्थल पर सशस्त्र पुलिसको ले आया। उस समय ४ बजे थे। कुछ मुसलमानोंने टिकट-घरमें शरण ले ली थी। भीड़ने उसे आग लगा दी। किन्तु सशस्त्र पुलिसके आ जानेसे उनके प्राण बच गये।

पहली नवम्बरको सुबह मसौढ़ीके एक मुहल्ले मलकाना पर भीड़ने हमला कर दिया। मुसलमान अपने एक घरकी छत पर जमा हो गये। उनमें से एकने दो गोलियां चलाईं। कहा जाता है कि उससे एक हिन्दू मारा गया। यह खबर आगकी तरह फैल गई। मिलका भोंपू बजा और लगभग २० हजारकी भीड़ने हमला शुरू कर दिया। सेनाके होनेसे उसे पीछे हटना पड़ा। परन्तु बिखरते हुए भीड़के लोगोंने रहमतगंज, पुराना बाजार और मसौढ़ी बाजार पर आक्रमण कर दिया, दुकानें लूट लीं, घर जला दिये और कुछ मुसलमानोंको मार डाका। तीसरे पहर २ बजे एक स्पेशियल गाड़ी वहां आ पहुंची और मलकानासे तमाम मुसलमानोंको ले जाया गया। गांधीजीके आनेसे पहले जहां मसौढ़ी खासमें दंगेसे पूर्व लगभग एक हजार मुसलमान थे वहां अब सिर्फ २५ रह गये थे। हिन्दू आम तौर पर रूठे हुए बताये जाते थे। इसका एक कारण यह था कि अनेक निर्दोष हिन्दुओंको दंगेके मुकदमोंमें फंसा दिया गया बताया जाता था।

इन परिस्थितियोंमें १७ मार्चकी शामको गांधीजीने मसौढ़ीमें अपनी पहली प्रार्थना-सभामें भाषण दिया। उसमें ३० से ४० हजार पुरुष और स्त्रियां उपस्थित थीं। कुरानकी आयतें संपूर्ण शान्तिसे सुनी गईं। क्या ये वही लोग हो सकते थे, जिन्होंने पागलपनके ये सारे काम किये थे?

गांधीजीने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें कहा, मुझे दी गई एक रिपोर्टमें यह कहा गया है कि मसौढ़ीमें हमला मुसलमानोंकी तरफसे शुरू किया गया था। उत्पात वास्तवमें कैसे आरम्भ हुआ, इससे मेरा कोई मतलब नहीं। मुझे तो यह जाननेसे मतलब है कि जो हिन्दू इतने भारी बहुमतमें हैं, वे निरपराध लोगोंकी हत्या करनेकी नीचता कैसे कर सके ? मुसलमानोंने यह शिकायत भी की है कि सरकार उनके कष्टों पर ध्यान नहीं देती। परन्तु मैं यहां न्याय करने नहीं आया हूं। मेरा काम अपराधियों पर मुकदमा चलानेवाले सरकारी वकीलका या न्यायाधीशका नहीं है। मेरा तो एक सुधारक और मानवतावादीका नम्र कार्य है। मैं अपराधियोंसे उनकी मूर्खताके लिए पश्चात्ताप कराने आया हूं। सरकार पहले ही घोषणा कर चुकी है कि वह इन भयंकर दंगोंके कारणोंकी जांचके लिए और भविष्यमें ऐसी बातें न होनेके उपाय ढूंढ़नेके लिए एक निष्पक्ष कमीशन नियुक्त करेगी। कमीशन सरकारको यह भी सलाह देगा कि पीड़ितोंको क्या मुआवजा दिया जाय। जिन्हें शिकायत करनी हो, वे कमीशनके सामने अपनी शिकायतें और सबूत रखें।

प्रार्थना-प्रवचनके बाद गांधीजी मुस्लिम कष्ट-निवारण कोषके लिए रुपया इकट्ठा करनेको ठहर गये। इस पर सभामें हड़बड़ी मच गई, क्योंकि हर आदमी अपना धेला-पैसा महात्माजीके हाथमें पहले रखनेके लिए आगे बढ़ने लगा। जब वे चंदा लेनेके लिए हाथ बढ़ाकर आगे झुके, तो उन्होंने लोगोंके चेहरों पर भावनाका कंपन पढ़ लिया। यह इसका असंदिग्ध प्रमाण था कि अन्तमें उनके हृदयोंमें पश्चात्तापकी भावना पैदा हुई थी।

दूसरे दिन गांधीजी मसौढ़ी खासके बरबाद हुए घरोंको देखने गये। जहां कहीं वे जाते और जिस रास्तेसे भी गुजरते, वहां एक बड़ी भीड़ हमेशा उन्हें घेर लेती थी। उससे जो धूल उड़ती थी, उसमें होकर निकलना टेढ़ी खीर थी। मार्चका महीना था, इसलिए गर्मी भी पड़ने लगी थी। नोआखालोमें लोगोंकी भीड़ थोड़ी होती थी और मखमली जमीनसे धूल नहीं उड़ती थी, क्योंकि ओस सुबहमें धूलको जमा देती थो और यात्रा बिना कष्टके जारी रहती थी। वहांके ऊंचे ऊंचे नारियल और सुपारीके पेड़, बांसके घने कुंज तथा उनकी गहरी हरी पत्तियां और सुन्दर चूड़ीदार तने, भव्य ताड़वृक्ष, शीतल मन्द सुगन्ध समीर और तरह तरहके खिले हुए रंग-बिरंगे फूल—इन सबका बिहारमें अभाव था और धूल तथा धूपके कष्टोंको बिहारके ग्राम-प्रदेशमें जहां-तहां खड़े

विशाल आम्रकुंज ही कुछ हद तक हलका करते थे। ये ही आम्रकुंज अनेक स्थानों पर अक्तूबर और नवम्बरके उन अभागे दिलोंमें अनेक नंगी लाशोंके कब्रिस्तान बन गये थे। ऐसा मालूम होता था कि गांधीजीको इस धूलका, उन आम्रकुंजोंका और भक्तिभावसे उमड़ती भीड़का कोई मान नहीं था। ऐसा लगता था कि उन्हें केवल उस करुण घटनाका ही भान था, जिसके ये सब मूक साक्षी रहे थे और जो प्रायश्चित्तकी पुकार कर रही थी। उन्होंने शामके प्रार्थना-प्रवचनमें अपनी यह भावना प्रगट की। गहरी वेदनासे उन्होंने उस विनाशका वर्णन किया, जो उन्होंने अपनी आंखोंसे देखा था और अपने मुसलमान भाइयोंको विश्वास दिलाया कि यदि ऐसी विपत्ति बिहारमें फिर कभी आई, तो उस आगमें जलकर मरनेवाला मैं सबसे पहला आदमी होऊंगा। मेरी ईश्वरसे यही प्रार्थना है कि वह मुझे ऐसी भयंकर आपत्ति देखनेके लिए जीवित न रखे।

जब वे उस दिन शामकी प्रार्थना-सभामें जा रहे थे तब दो पत्र उनके हाथमें दिये गये। एकमें लिखा था:

> हम साइनवालोंको . . . जो घटनाएं हुई हैं उन पर अत्यन्त खेद है। परन्तु यहां हम हिन्दू और मुसलमान व्यापक अराजकताके होते हुए भी भाइयोंकी तरह रहे हैं और आपको यह बताते हुए हमें हर्ष और गर्व होता है कि हम आज भी भाइयोंकी तरह ही रहते हैं। हमें आशीर्वाद दीजिये कि हम सदा प्रेम और स्नेहपूर्वक रहें।

पत्रके साथ पीड़ितोंकी सहायता लिए एक छोटीसी थैली भी थी। दूसरा पत्र बारनीके निवासियोंका था:

> जब सब तरफ दंगा हो रहा था तब हमने एक शान्ति-समिति रच ली थी और उपद्रवको हमारे क्षेत्रमें घुसने नहीं दिया था। हमारे यहां हिन्दुओं और मुसलमानोंमें कोई भेद नहीं है। हम आज भी उसी ढंगसे काम कर रहे हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम सदा भाइयोंकी तरह रहेंगे।

गांधीजी पर जिस बातका विशेष रूपमें प्रभाव पड़ा वह यह थी कि ये लोग न केवल व्यापक पागलपनसे ही अछूते रहे, बल्कि जो कृत्य दूसरोंने किये उनके लिए भी इन्हें गहरा दुःख था। गांधीजीने कितनी बार कहा था कि एकका दोष सबका दोष होता है !

१८ मार्चको गांधीजीने मसौढ़ीमें निराश्रितोंसे भेंट की। उनके साथकी चर्चासे प्रगट हुआ कि मुस्लिम लीग जिन आत्मघाती उपायोंका समर्थन कर रही थी, उन्होंने फिलहाल तो मुस्लिम मानस पर अधिकार जमा लिया था। जैसा एक लीगीने कहा, मुस्लिम लीगके उपाय इस बुनियादी धारणा पर आधारित थे कि हिन्दू कभी मुसलमानोंके दोस्त हो ही नहीं सकते। गांधीजीके उपायोंका आधार इस दृढ़ धारणा पर था कि जो लोग किसी समय भाइयोंके समान थे और फिर वैसे ही बन सकते हैं, उनमें मूलभूत एकता और स्नेह है। यह मूलभूत एकता हिल सकती है, परन्तु नष्ट नहीं हो सकती। गांधीजीकी कोशिश यह थी कि जो मीठे सम्बन्ध दोनोंके बीच किसी समय थे और फिरसे स्थापित हो सकते हैं, उनकी पुनर्स्थापना की जाय।

परन्तु गांधीजीके लिए यह कार्य आसान नहीं था। आगे चट्टानें खड़ी थीं। १९ मार्चको बीरमें स्थानीय कांग्रेसियोंके साथ उन्होंने जो बातचीत की, उसमें इस बातका उन्हें पक्का विश्वास हो गया।

कमरा खचाखच भरा हुआ था। जिला कांग्रेसके मुस्लिम अध्यक्ष शाह उज़ैर मुनीमीने पटना जिलेके विनाशका वर्णन समाप्त कर दिया था। ग्रांधीजीने सभाके लोगोंसे पूछा, “आगे क्या किया जाय, इसके बारेमें आपने कुछ सोचा है ?” शाह उज़ैरने जवाब दिया, अगर हमें थोड़े भी ईमानदार आदमी मिल जायं, तो सब-कुछ ठीक किया जा सकता है। इससे गांधीजीको संकेत मिल गया। उन्होंने वहां एकत्रित कांग्रेसियोंको खूब फटकारा। उन्होंने उनसे पूछा, क्या यह सच है कि बहुतसे कांग्रेसियोंने दंगोंमें भाग लिया था ? यदि लिया था तो आपकी कमेटीके १३२ सदस्योंमें से कितने उनमें शामिल थे? यह बड़ी बात होगी, अगर यह कहा जा सके कि आपमें से किसीका भी दंगोंसे कोई सम्बन्ध नहीं था। परन्तु मैं जानता हूं कि ऐसा नहीं कहा जा सकता। मैं आपसे एक सीधा-सा सवाल पूछना चाहता हूं : जैसा कहा जाता है, आप अपनी आंखोंके

सामने एक १०० वर्षकी बुढ़ियाका वध होते देखकर जिन्दा कैसे रह सके ? मैंने बिहारमें "करो या मरो" की प्रतिज्ञा ले ली है। मैं न खुद चैन लूंगा और न दूसरोंको चैन लेने दूंगा। मैं सब जगह घूम-घूम कर इधर-उधर बिखरे हुए नर-कंकालोंसे पूंछूंगा कि यह सब हुआ कैसे। मेरे भीतर ऐसी आग जल रही है कि मुझे तब तक शान्ति नहीं मिलेगी जब तक मैं उस चुनौतीका उत्तर न पा लूं, जो हालकी घटनाओंने हम सबको दी है।

गांधीजीने बताया कि नोआखालीके समय भी मुझे इसी तरहकी बेचैनीने दबा लिया था। मेरे भीतरकी आग मुझे चैन नहीं लेने देती थी और इसलिए मैंने गांव-गांव नंगे पैर घूमना शुरू कर दिया था। मुझे ऐसा लगता है कि बिहारमें भी मुझे उसी कड़ी अग्नि-परीक्षासे पार होना पड़ेगा। गहरी वेदनासे उन्होंने घोषणा की: यदि मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे साथी मुझे धोखा दे रहे है, तो मैं इतना पागल हो जाऊंगा कि आपने मुझे जिस मुलायम गद्दी पर बिठाया है उसे मैं फेंक दूंगा और नोआखालीमें मैने प्रतिज्ञा की थी उसी तरह मेरा मिशन बिहारमें पूरा न हो जाय तब तक अथवा मेरी मृत्यु न हो जाय तब तक मैं नंगे पैरों आगे ही आगे बढ़ता रहूंगा। पहले भी बिहारमें ही मैंने ऐसी सुख-सुविधाओंका त्याग किया था। उसके लिए मैं बिहारका ऋणी हुं; क्योंकि जब मैंने बिहारको बनाया उस समय बिहारने ही मुझे बनाया था।

उन्होंने १९१७ में हुए चम्पारनके प्रथम सत्याग्रह संग्रामकी याद दिलाई। उन्होंने कहा, उस समय राजेन्द्रबाबू, ब्रजकिशोरबाबू, धरणीबाबू, गोरखबाबू और बिहारके दूसरे नेता बहुत बड़ी कमाई तथा सुख-चैनका जीवन छोड़कर मानवताके विनीत सेवक बन गये थे। वे एक ही भोजनालयमें खाते थे, अपने कपड़े और बरतन आप धोते थे और अन्य छोटे नीरस काम नौकरोंसे करानेके बजाय खुद ही करते थे। यह उनके हृदय-परिवर्तनका चिह्न था। चम्पारनकी सफलता बिहारकी तपस्याका परिणाम था। क्या चम्पारनके लोग फिरसे अवसरके अनुरूप अपने भीतर शक्ति पैदा करके चम्पारनकी परंपराको सजीव करेंगे ?

उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें इस बारेमें संदेह है । वे बोले : मेरी आपसे प्रार्थना है कि यदि आप सचाईके साथ मुझसे सहयोग नहीं कर सकते, तो मुझे अकेला छोड़ दीजिये । परन्तु

आपको समझ लेना चाहिये कि आप मुझे छोड़ देंगे, तो भी मैं आपको या बिहारको नहीं छोड़ूंगा। मैं तो बिहारमें जम गया हूं। मैं यहींसे नोआखालोके लिए और सारे भारतके लिए काम करूंगा। चम्पारनके अन्याय और अत्याचारके विरुद्ध मैंने जो अहिंसक लड़ाई छेड़ी थी, उसने सारे भारतमें नये प्राणोंका संचार किया था। यदि बिहारी अपनी जिम्मेदारी पूरी करेंगे, तो इतिहास अपनेको दोहरायेगा। मैं जानता हूं कि इस बार बिहारका काम पहलेसे कहीं ज्यादा कठिन है। प्रश्न यह है कि हिन्दू धर्म और इस्लाम साथ साथ रह सकते हैं या नहीं ? बहुतेरे लोगोंका विचार है कि दोनों साथ साथ नहीं रह सकते । इसके विपरीत, मुझे विश्वास है कि हम सबको मिलकर और बराबरीके बनकर रहना होगा।

जब गांधीजी अपनी जगह पर बैठ गये तो एक कांग्रेसीने उठकर कहा, लोगोंका पतन नहीं हुआ है, बल्कि कांग्रेसियोंका पतन हुआ है । इस दलदलसे कांग्रेसको कैसे निकाला जा सकता है?

गांधीजीने स्वीकार किया कि अंग्रेजोंसे लड़ना बहुत आसान था, परन्तु अपनी ही कमजोरियों पर विजय पाना कठिन होता है । बिहारमें कुंजी हिन्दुओंके हाथमें है । उनका कर्तव्य है कि वे अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर मुसलमानोंकी रक्षा और सुरक्षाकी गारंटी दें और पुलिसका बोझ हल्का करें, क्योंकि मुसलमान उनकी घरोहर हैं । कांग्रेस-जन जनताके प्रतिनिधि हैं, इसलिए अपने क्षेत्रमें वे शान्तिके लिए जिम्मेदार हैं। या तो वे शांति स्थापित करें या उसके प्रयत्नमें मर जाय।

सभा विसर्जित हुई। गांधीजी बड़े उद्विग्न दिखाई देते थे। धीमे भाव-भीने स्वरमें उन्होंने बादशाह खानके सामने अपनी पीड़ा प्रगट की। बादशाह खान गम्भीर बने गांधीजीकी व्यथा सुनते रहे। वे भी जल्दी ही चले गये और कमरेमें केवल गांधीजीके एक सचिव ही रह गये। गांधीजीने दुःखपूर्वक उनकी तरफ मुड़ कर कहा, “तुमने देख लिया, मेरी क्या स्थिति है !”

उस दिन बादमें गांधीजी १५-२० मंडलोंके प्रतिनिधियोंसे मिले । उन्होंने गांधीजीसे कहा, परामर्शके बाद हमने ११ सदस्योंकी एक समिति नियुक्त की है, जिसने इन मंडलोंके निराश्रितों

और दंगोंके शिकार बने लोगोंकी स्थिति सुधारनेकी जिम्मेदारी अपने सिर ले ली है। हमने एक स्वयंसेवक-दल और पंचायत बनानेका भी निश्चय कर लिया है। गांधीजीने उन्हें चेतावनी दी कि आपके भीतर बूरे तत्त्व न घुस जायं इसका ध्यान रखना । आपको गुप्त मतदानकी प्रणाली काममें लेनी चाहिये । जिन लोगोंने दंगोंमें भाग लिया हो अथवा जिन पर ऐसा शक हो, उन्हें न तो पंचायतके लिए खड़ा होना चाहिये और न उन्हें पंचायतमें रखना चाहिये । सफलता इस बात पर निर्भर करेगो कि संगठित लोकमत दृढ़तापूर्वक प्रकट किया जाय। सरकार खुद इस बारेमें बहुत नहीं कर सकेगी।

उस दिन शामको प्रार्थना-सभामें जाते हुए रास्तेमें गांधीजी अन्दारी और गोरैयाखारी नामक गांवोंमें गये । ये मसौढ़ी क्षेत्रके दो गांव हैं। दंगोंसे पहले अन्दारीमें ४६२ हिन्दुओं और १६८ मुसलमानोंकी आबादी थी। ३० अक्तूबर, १९४६ को आसपासके गांवोंके मुसलमान अन्दारीमें इकट्ठे हुए । जब गोरैयाखारोके हत्याकांडके समाचार गांवमें पहुंचे, तो सेनाने उन्हें गांव खाली कर देनेकी सलाह दी । परन्तु उन्हें भरोसा था कि वे एक बन्दुक और एक पिस्तौल लेकर किसी भी हमलेको खदेड़ सकते हैं। जब २ नवम्बर, १९४६ को भीड़ने अन्दारी पर आक्रमण किया, तो पुलिसके तीन सिपाहियोंने, जो ड्यूटी पर मौजूद थे, गोली चलाकर ७ आदमियोंको मार दिया। परन्तु बादमें वे हट गये। (सरकारी रिपोर्टमें ऐसा कहा गया है कि) बढ़ती हुई भीड़का आकार देखकर वे पीछे हटे थे। मुसलमानोंको स्वभावत: विश्वासघातका सन्देह हुआ। वे अपने घरोंकी छतों पर चढ़ गये और प्राणोंकी बाजी लगाकर अपना बचाव करने लगे। उनमें से कुछने जिहादकी निशानीके तौर पर हरी पगड़ियां पहन ली थीं और कहा जाता है कि कुछ लोगोंने अपनी स्त्रियोंको अपने ही हाथोंसे मार भी डाला था, ताकि वे भीड़के हाथोंमें न पड़ें । परन्तु उनकी गोलियां खतम हो गयीं। इस पर भीड़ अपने ७ आदमियोंकी मौतसे पागल बनकर ज्वारकी तरह बढ़कर उन पर टूट पड़ी और उन्मत्त क्रोधमें अपना बचाव कर रहे मुट्ठीभर मुसलमानोंका उसने सफाया कर दिया। जब गांधीजी इस गांवको देखने गये, तब वहां एक भी मुसलमान नहीं था। सरकारी रिपोर्टके अनुसार सरकारने यह कार्रवाई की थी: “(क) मामले दायर किये गये—१; (ख) २९ अभियुक्तोंमें से एकको गिरफ्तार किया गया, दूसरेने अदालतमें

आत्म-समर्पण कर दिया, बाकी अभियुक्तोंके खिलाफ वारंट जारी किये गये; (ग) क्षेत्रके १३ व्यक्तियोंको बिहार शान्तिरक्षा अध्यादेश, १९४६ के मातहत नजरबन्द किया गया।" और यह सब हुआ दंगोंके ४ महीने बाद मार्चके मध्यमें !

इस भयंकर करुण घटनाका एक ही अच्छा पहलू था। वह यह कि पूजाके किसी स्थानको हानि नहीं पहुंचाई गई। एक व्यक्तिने, जो दंगोंमें भाग ले चुका था, स्वेच्छासे आत्म-समर्पण कर दिया। गांधीजीको एक पश्चात्तापका पत्र भी मिला:

पूज्य बापूजी,

आपके पवित्र चरणोंमें हम अन्दारी और आसपासके गांवोंके लोग ईश्वरको साक्षी मानकर यह कहते हैं कि जो कुछ हुआ उसका हमें बहुत ही अधिक दुःख है। जिस कारणसे आपको यहां आना पड़ा और इतना कष्ट उठाना पड़ा, वह हमारे लिए लज्जाजनक है। हम आपके सामने यह शपथ लेते हैं कि हम अन्दारी और इर्दगिर्दके गांवोंके लोग आगेसे मुसलमानोंको अपने सगे भाई समझेंगे, जैसा कि इस दुर्भाग्यपूर्ण घटनासे पहले हम उन्हें समझा करते थे। हमने जो पाप किया है, उसके लिए आपसे और ईश्वरसे हम क्षमा मांगते हैं।

अन्दारी और आसपासके गांवोंके लोग

इस पत्र पर ६० आदमियोंके हस्ताक्षर थे।

गोरैयाखारीके दृश्यसे किसीका भी दिल हिल जाता। गांव ऊंचे स्थान पर बसा हुआ था और नीचे हरेभरे खेत थे, इसलिए वह सचमुच एक छोटासा सुन्दर गांव रहा होगा। उसमें ४०० मुसलमानों और २० हिन्दुओंकी आबादी थी। सरकारी रिपोर्टमें भी यह कहा गया था कि इनमें से १०० मुसलमान मारे गये, ११ घायल हुए और १२ लापता थे। उनके सारे घर नष्ट हो गये थे और दंगाई भीड़की बर्बरताका प्रमाण दे रहे थे। गांव बिलकुल वीरान हो गया था। किसी भी घरमें घुसना लगभग असंभव था, क्योंकि प्रवेश-द्वार मलबेसे बन्द हो गये थे। वायुमंडलमें सड़ती हुई लाशोंकी दुर्गन्ध फैल रही थी। गांधीजी भारी हृदयके साथ मृतकोंके मुहल्लोंमें घूमे। इसका

संक्षिप्त वर्णन उन्होंने थोड़ेसे वाक्योंमें मसौढ़ीमें किया। परन्तु उससे उनके मनमें जो कुछ चल रहा था वह प्रकट होनेकी अपेक्षा छिपा अधिक रहा था। परन्तु गोरैयाखारीमें उस दिन शामको उनका हृदय इतना भरा हुआ था कि वे एक शब्द भी नहीं बोल सके। इसके बजाय उन्होंने प्रार्थनासे पहलेके समयका उपयोग सभासे महापापके प्रायश्चित्तके रूपमें पीड़ित मुसलमानोंके लिए चन्दा इकट्ठा करनेमें किया।

जब प्रायश्चित्त उपयुक्त कार्योंकी मांग करता हो तब शोक मनाना एक विलास हो जाता है। अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने श्रोताओंसे कहा, आप लोग और कुछ न कर सकें, तो सच्चे प्रायश्चित्तके चिह्न-स्वरूप हिन्दीके सिवा उर्दू भाषा और उर्दू लिपि सीख लीजिये। इससे मुसलमानोंके साथ आपका सम्पर्क बढ़ेगा और वह सहानुभूतिका ठोस और समुचित प्रमाण भी होगा। आपको अपने पड़ोसके बरबाद हुए गांवोंको फिरसे बसानेके लिए भरसक कोशिश करनी चाहिये। आपको मुसलमानोंसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वे पिछली बातोंको भूल जायं और उनकी रक्षा तथा सुरक्षाका पूरा आश्वासन देकर उनसे अपने घरोंमें लौट आनेके लिए अनुनय-विनय करना चाहिये; स्वयंसेवकोंको ईश्वरके सच्चे सेवक बन जाना चाहिये और जो लोग अपराधी हैं उन्हें मनमें कोई दुराव न रखकर अपने अपराध स्वीकार कर लेने चाहिये तथा उनके लिए उचित प्रायश्चित्त करना चाहिये।

दो दिन बीर गांवमें ठहर कर २० मार्चको गांधीजी मसौढ़ी लौटे। बीरसे वे आसपासके कई गांव देखने गये। अपने प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने कहा, मैंने ऐसी बरबादी देखी है कि रो पड़नेके डरसे उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। कोई भी वहां जाकर स्वयं उस बरबादीको देख सकता है। यह आपके लिए कलंककी बात है कि रक्तपातके महीनों बाद भी अभी तक मलबा हटाया नहीं गया है और परित्यक्त मुस्लिम घरोंसे माल-सामान रोज चुराया जा रहा है। आपने जो कुछ नष्ट किया है उसे फिरसे बना देना आपका धर्म है। आपने जब अपराध किया है तो प्रायश्चित्त भी आपको ही करना होगा। मुसलमानोंकी क्षतिपूर्ति करनेमें प्रत्येक हिन्दूको भाग लेना चाहिये। जो लोग तैयार हों वे अपना नाम लिखा दें, ताकि इस कामके लिए अलग अलग स्थानोंमें स्वयंसेवक-दल संगठित किये जा सकें। जो मकान बरबाद कर दिये गये हैं उनकी जगह आपको

ऐसे सुन्दर मकान बनाने चाहिये कि देखनेवालेको शंका भी न हो सके कि यहां कभी कुछ हुआ था। अगर आप अपना कर्तव्य पालन करेंगे, तो मुसलमान पिछली बातें भूलकर अपने घरोंको लौट आयेंगे और इसकी खुशबू सारे भारतमें फैल जायगी।

*

इस प्रकार जब गांधीजी बिहारके काममें व्यस्त थे तभी पंजाब और नोआखालीसे अशान्तिकारक समाचार आने लगे। २० फरवरी, १९४७ की श्री एटलोकी घोषणाके बाद मुस्लिम लीगने पंजाबमें संपूर्ण शक्ति और साधनोंके साथ सत्ता हथियानेका प्रयत्न आरंभ कर दिया और इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिए "सीधी कार्रवाई" की मुहिम छेड़ दी। (देखिये अध्याय-१, खंड-३) हिन्दुओंने भी विरोध स्वरूप बिहारमें "पंजाब दिवस" मनानेका निश्चय कर लिया। ऐसी ही एक खबर नोआखालीसे आई थी कि वहां लोग "पाकिस्तान दिवस" मनाना चाहती है। परिणामस्वरूप वहांके हिन्दू घबराने लगे थे। गांधीजीने दोनों पक्षोंसे यह विचार छोड़ देनेकी अपील की। बंगालके मुख्यमंत्रीने उन्हें बिहार जानेको कहा था। इसलिए गांधीजीने कहा, अगर वे यह चाहते हैं कि मैं बिहारमें अपना काम अबाधित रूपमें करता रहूं, तो उन्हें नोआखालीमें प्रस्तावित "पाकिस्तान दिवस" मनानेकी मनाही कर देना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं कि मुसलमानोंको पाकिस्तानकी मांग छोड़ देनी चाहिये। मैं यही चाहता हूं कि वे पाकिस्तानकी योग्यता दूसरोंको समझा कर उसके लिए प्रयत्न करें। इसी तरह अगर वे "पाकिस्तान दिवस" मनाना चाहते हैं, तो उन्हें अल्पसंख्यकोंका डर दूर करके ही मनाना चाहिये।

दूसरे दिन २१ मार्चको गांधीजी अपना शिविर हसडीह गांवमें ले गये। वहां वे इर्दगिर्दके कई गांवोंके मुस्लिम निराश्रितोंसे मिले। तीसरे पहर गांवके प्रतिनिधियोंसे उनकी मुलाकात हुई। उन्होंने गांधीजीसे कहा, लोगोंका खयाल है कि जब नोआखालीके हिन्दुओंकी लूटी हुई सम्पत्ति लौटा दी जायगी तभी बिहारमें मुसलमानोंका लूटा हुआ माल वापस किया जा सकेगा। दिलोंको फिरसे मिलानेके लिए अभियुक्तोंके विरुद्ध दायर किये गये मामले वापस ले लेना जरूरी है। इस मामलेमें भी नोआखालीकी-सी स्थिति है। गांधीजी यह सुनकर जल उठे। उन्होंने पूछा: क्या

आपके कहनेका अभिप्राय यह है कि अगर मुसलमान गुंडे बन जायं तो हिन्दुओंको भी गुंडे बन जाना चाहिये ? बेशक, नोआखालीमें शर्मानाक घटनायें घटी हैं। परन्तु जिस ढंगसे आप लोगोंने बिहारमें बच्चों और बूढ़ी स्त्रियों तककी हत्याएं की हैं और जिस पैमाने पर की हैं, उसके सामनें नोआखालीकी घटनायें बहुत फीकी पड़ गयी हैं। आप पंजाबको अपनी चिन्ता स्वयं क्यों नहीं कर लेने देते ? आप अपने घरको ही ठीक कर लें तो भी काफी है। क्या भारतकी मानवता इतनी नीचे गिर गई है? क्या आप धर्मको पशुतामों की जानेवाली प्रतिस्पर्धाका रूप देना चाहते हैं? आपको समझना चाहिये कि जहां तक मेरा सम्बन्ध है, किसी मुसलमानकी हानिको मैं अपनी ही हानि समझता हुं। मैं यहां उन लोगोंको, जो अलग हो गये हैं, मिलाने अथवा इस प्रयत्नमें मर जानेके लिए आया हूं।

शामकी प्रार्थना घोरुआंमें हुई। इस छोटेसे गांवमें २०० हिन्दुओं और ८० मुसलमानोंकी आबादी थी। यहां पुरुष, स्त्रियां और बच्चे अमानुषिकतासे मौतके घाट उतार दिये गये थे। विनाशके ये ताजे दृश्य देखकर गांधीजीके दिलको फिर गहरा आघात पहुंचा। प्रार्थना-सभामें जो लोग उनके सामने इकट्ठे हुए थे उनसे गांधीजीने कहा, जो लोग बर्बरताके शिकार हुए हैं उनके शोकमें आप गम्भीर शांति धारण करके बैठिये । लोग इस विश्वाससे गंगास्नान करने जाते हैं कि इससे उनके पाप धुल जायंगे। आपके सामने जो बरबादी नजर आती है वह उस पापकी याद दिलाती है, जो आपने निःसहाय स्त्रियों और बच्चोंके प्रति किया है। जो लोग अपराधी हैं वे अथवा उनके रिश्तेदार पीड़ितोंके पास सच्चे पश्चात्तापपूर्ण हृदयसे जाकर उन्हें विश्वास दिलायें कि जो हो गया सो हो गया, अब उसकी पुनरावृत्ति नहीं होगी और उन्हें मना कर घर वापस ले आयें, तो उनके महापापका थोड़ासा प्रायश्चित्त हो सकता है।

गांधीजीने उन बहादुर स्त्री-पुरुषोंकी बड़ी प्रशंसा की, जिन्होंने हिंसक भीड़के क्रोधकी परवाह न करके पागलपनभरे तूफानके दिनोंमें मुसलमानोंके जान-मालकी रक्षा की। उन्होंने कहा, मैं जानता हूं कि उन्हें धन्यवाद नहीं चाहिये, फिर भी में उन्हें धन्यवाद देता हुं। गांधीजी मसौढ़ी पहुंचे उसके दूसरे दिन लगभग ५० आदमियोंने, जिनकी दंगोंसे सम्बन्धित मुकदमोंके बारेमें खोज हो रही थी, आत्म-समर्पण कर दिया। गांधीजीने आशा प्रगट की कि दूसरे अनेक

लोग भी, जिन्होंने दंगोंमें भाग लिया था, आकर जो कुछ उन्होंने किया उसे साफ शब्दोंमें स्वीकार कर लेंगे और जो भी सजा दी जायगी उसे स्वीकार करेंगे। यदि अधिकारियोंके सामने समर्पण करनेका साहस न हो, तो वे मेरे पास अथवा मेरे साथियोंके पास आकर अपना अपराध स्वीकार कर सकते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल पटना लौटते समय गांधीजी पीपलवन गांवमें कुछ मुसलमान निराश्रित स्त्रियोंसे मिले। दुर्बलों और पीड़ितोंके दुःखोंसे सदा दुःखी होनेवाले गांधीजी इन स्त्रियोंकी दुःखगाथाएं सुनकर द्रवित हो गये। उनमें से बहुतोंके पति, बच्चे और प्रियजन मारे गये थे। गांधीजीने उनसे कहा कि जो कुछ हुआ है उसे देखते हुए हिन्दुओंके विरुद्ध आपका सन्देह समझमें आ सकता है, फिर भी यदि हिन्दू केवल शब्दों द्वारा नहीं किन्तु उचित कार्यों द्वारा सच्चा पश्चात्ताप प्रगट करें, तो कमसे कम जहां हत्यायें नहीं हुई हों वहां तो आपको वापस चले जाना चाहिये। परन्तु आप लौटना पसन्द करें या न करें, आपको पापियोंके लिए मनमें कोई वैरभाव नहीं रखना चाहिये और न उनसे बदला लेनेकी इच्छा रखनी चाहिये। यह सच्ची बहादुरी होगी।

मसौढ़ीके पीड़ित क्षेत्रमें किये गये ६ दिनके दौरेके संस्मरणोंका सार २२ मार्चको पटनाकी प्रार्थना-सभामें सुनाते हुए गांधीजी बोले : जिन भंयकर घटनाओंके अवशेष मैंने देखे, वे तो ऐसे हैं कि मनुष्य मानव-जातिसे लगभग निराश हो जाता है। परन्तु मैंने नवयुगके उदयके असंदिग्ध चित्र भी देखे हैं। जो कुछ हुआ उस पर ग्रामवासियोंको केवल सच्चा पछतावा ही नहीं है, बल्कि मैं जैसा बताऊं वैसा प्रयाश्चित्त करनेको भी वे तैयार हैं। उन्होंने मुसलमानोंके कष्ट-निवारणके लिए यथाशक्ति उदारताके साथ चन्दा दिया है। रास्तेमें उन्होंने जगह जगह मेरी मोटरको रोक कर थैलियां भेंट की हैं। उन्होंने मुझे पत्र लिखकर मुसलमानोंको फिरसे बसानेमें सहायता देनेकी तैयारी और इच्छा व्यक्त की है। कई स्थानों पर खुद मुसलमानोंने आकर मुझसे कहा कि वहां दुर्घटनाएं न होनेका कारण स्थानीय हिन्दुओंकी बहादुरी थी। दंगोंके सिलसिलेमें जिन लोगोंकी खोज की जा रही थी ऐसे बहुतसे लोगोंने आकर अधिकारियोंके सामने आत्म-समर्पण कर दिया है मुझे आशा है कि और अधिक लोग आगे आकर अपना अपराध स्वीकार करेंगे। अपराध

स्वीकार करनेसे न केवल उनके साहसके लिए आदर पैदा होगा, बल्कि सारे प्रान्तकी प्रतिष्ठा भी अन्तमें बढ़ेगी।

दूसरे दिन गांधीजी मुस्लिम लीगकी कार्यसमितिके एक सदस्यसे मिले, जिसने कहा कि उनके बिहार आनेसे मुसलमानोंमें फिर विश्वास पैदा हो गया है। परन्तु सारे भारतकी राजनीतिमें बहुत बुरी सड़ांध फैल गई थी। एक जगह रोगके लक्षण शांत होते थे कि तुरन्त दूसरी जगह रोग अधिक जोरोसे फूट पड़ता था। सरदार पटेलने गांधीजीको लिखा कि सैनिक कार्रवाईके जरिये पंजाबमें एक तरहकी शांति स्थापित हो गयी है। गांधीजीको स्मशानकी शांतिमें कोई शांति दिखाई नहीं देती थी। उनकी पैनी दृष्टि ऊपरी सतहके नीचे गहरे उतर कर और वर्तमानको भेदकर देख सकती थी। १८५७ का सिपाही-विद्रोह अधिक सशक्त हथियारों द्वारा दबा दिया गया था। ऊपर ऊपरसे शान्ति हो गई थी। परन्तु थोपे हुए राज्यके विरुद्ध द्वेष भीतर ही भीतर गहरा होता गया था और अंग्रेजोंने उस समय जो बीज बोये थे उसके फल वे अब तक-काट रहे थे। यदि पंजाबको ज्यादा अच्छे हथियारोंके बल पर दबाया गया हो, तो हिन्दू-मुसलमानोंके बीच अधिक लड़ाई और अधिक कटुताके बीज हमेशाके लिए बो दियें गये समझना चाहिये। गांधीजीके पास जो सूचनाएं पहुंची थीं उनसे यह मालूम होता था कि पंजाबके लोग चुपके-चुपके खुली और अधिक भयंकर लड़ाईकी तैयारी कर रहे हैं। हथियार इकट्ठे किये जा रहे थे। गांधीजीने भविष्य-वाणीके रूपमें चेतावनी दी: यदि यही हाल रहा तो मुझे सूर्यकी भांति स्पष्ट दिखाई देता है **कि अमुक स्थिति पर पहुंचनेके बाद परिस्थितिको नियंत्रणमें रखना फौजके लिए भी असंभव हो जायगा**। सच्ची शान्ति तभी स्थापित होगी जब दोनों नहीं तो कमसे कम एक पक्ष अहिंसाकी सच्ची बहादुरीको अपना लेगा। परिस्थितिका मेरा अध्ययन यह बताता है कि बिहारने इसे समझ लिया है कि स्त्रियों और बच्चोंको मारनेमें कोई बहादुरी नहीं है। वह निरी कायरता है। यदि बिहार शान्त शक्तिकी सच्ची वीरताका परिचय दे सके और इस प्रकार भारत और संसारको मार्ग दिखा सके, तो वह बहुत बड़ी बात होगी।

पन्द्रहवां अध्याय
कड़वी बातें

१

२६ मार्च, १९४७ को गांधीजी जहानाबाद रेलवे स्टेशन पर पहुंचे तब एक विशाल जन-समूह वहां उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। गांधीजी और उनकी मंडलीको स्टेशनसे इन्स्पेक्शन बंगलेमें ले जाया गया। उनके ठहरनेकी व्यवस्था वहीं की गई थी। परन्तु भीड़ने रास्ता रोक रखा था। बंगलेका अहाता भी खचाखच भर गया था। उनकी मोटरके भीतर जानेके लिए रास्ता मुश्किलसे साफ किया जा सका।

गया जिलेके जिन तीन उपविभागोंमें उपद्रव हुए थे, उनमें जहानाबादके उपद्रव सबसे खराब थे। दंगाइयोंके दो स्थानीय नेताओंके मातहत दो दंगाई दलोंने सबसे भयंकर अपराध किये थे। भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थानीय आवारा लोग भी उनके साथ शरीक हो गये । विनाश-कूच आगे बढ़ता गया त्यों त्यों अनेक लोग उसमें शरीक होते गये; उसी तरह अनेक लोग यह सोच कर कि जितना हमें चाहिये या जितना हम उठा कर ले जा सकते हैं उतना हमें मिल गया है, अलग भी होते जाते थे। आम लोगोंकी दंगाइयोंके साथ गुप्त सहानुभूति थी और संगठनका उनमें अभाव था, इसलिए जनताका सयाना वर्ग गुंडोंका कोई उल्लेखनीय प्रतिकार नहीं कर सका। परन्तु तुलनामें कुछ अज्ञात कांग्रेसी कार्यकर्ताओंने उज्ज्वल अपवाद उपस्थित किये। समय समय पर उन्होंने अपनी जानको जोखिममें डाल कर मुसलमानोंके प्राण बचाये। ऐसे एक व्यक्ति थे एक स्थानीय मुख्याध्यापक सकलबाबू। अपने विद्यार्थियों और कुछ अन्य कार्यकर्ताओंके साथ वे दौलतपुर, नगामा और रसलपुर गांवोंमें दिन-रात उस वक्त तक गश्त लगाते रहे जब तक कि सारी मुस्लिम आबादीको जहानाबाद न पहुंचा दिया गया। उनके उदाहरणसे प्रेरणा प्राप्त करके दौलतपुरके हिन्दू दंगोंके ९ महीने बाद भी अब तक मुस्लिम घरों पर पहरा लगा रहे थे। एक

मुसलमानने गांधीजीकी मंडलीके एक सदस्यसे गद्गद होकर कहा, एक मूली मैं पीछे छोड़ गया था; वह भी ज्योंकी त्यों अपनी जगह पर सूख गई।

थोड़े आरामके बाद गांधीजीकी मंडली काकोके कष्ट-निवारण शिविरके लिए रवाना हुई। गांधीजीके आगमनके समय काकोमें ५०० निराश्रित रहते थे। निराश्रितोंको जिस इमारतमें रखा गया था उसके चबूतरे पर और उसके अहातेमें स्त्री-पुरुष फटे कपड़ोंमें एकत्र हुए थे। गांधीजी एक खाली बेन्च पर बैठे, जो निराश्रितोंने उनके लिए वहां रख दी थी। गांधीजीने उन्हें सान्त्वना दी : दुःखके मारे हिम्मत हारना बहादुरोंको शोभा नहीं देता। उनमें से कुछ लोग घोसी थानेके शाइस्ताबाद गांवसे आये थे। उस उपविभागमें सबसे भयंकर दंगे हुए थे। गांधीजी उस गांवको भी देखने गये थे।

उस दिन शामको जहानाबादमें एक घटना हो गई, जिससे पता चलता था कि मुसलमानोंके घाव अब भी भरे नहीं थे। स्थानीय मुस्लिम लीगके कुछ सदस्य गांधीजीसे पटनामें मिले थे। गांधीजीने मजाकमें उनसे पूछा था, जब में जहानाबाद आऊंगा तब क्या आप अपने "दुश्मन नं० १" को (मुझे) अपने घरोंमें रखेंगे ! उन्होंने विरोध करते हुए कहा, कोई भी आपको मुसलमानोंका दुश्मन नहीं समझता। आप खुशीसे तशरीफ लाइये, हम आपका और आपकी मंडलीका सारा इंतजाम करेंगे। गांधीजीने वचन दिया कि मैं आऊंगा और आपके साथ ठहरूंगा। परन्तु उनका काफिला बड़ा था। गांधीजीकी एक महिला सचिवने गांधीजीके आरामकी अत्यधिक चिन्ता करके उनसे सलाह लिये बिना स्वीकार कर लिया कि गांधीजी अधिकारियोंके मेहमान होंगे, परन्तु गांधीजी पहले ही मुस्लिम लीगियोंका निमंत्रण स्वीकार कर चुके थे। जब गांधीजीको इसका पता चला तो उन्हें बड़ा अफसोस हुआ और माफी मांगनेके लिए उन्होंने मुस्लिम लीगी भाइयोंसे सम्पर्क साधनेकी कोशिश की। परन्तु ऐसा नहीं किया जा सका। जहानाबाद पहुंच कर उन्हें फिर बुलानेका प्रयत्न किया, परन्तु वह व्यर्थ रहा। अचानक उन्होंने सुना कि मुस्लिम लीगवालोंने उन पर "वचन-भंग" का दोषारोपण करनेवाला एक प्रस्ताव पास किया है। गांधीजीको दुःख हुआ कि वे लोग जल्दीमें एक निराधार सन्देहके शिकार हो गये और

यह भी न समझ सके कि उनके बिहार आनेका मुसलमानोंकी सेवा करनेके सिवा और कोई उद्देश्य ही नहीं है। उस दिन शामके प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने इस विषयकी चर्चा की।

इन्स्पेक्शन बंगलेके पासका बड़ा मैदान खचाखच भर गया था। विशाल जन-समूहके समक्ष भाषण देते हुए गांधीजीने कहा, अपने विरोधीकी बातको गलत समझने और पर्याप्त प्रमाणके बिना उतावलीमें आशयोंका आरोपण करनेकी कमजोरी सबमें होती है। इस तरहके व्यवहारसे अक्सर बुरे परिणाम निकलते हैं। बुद्धिमान लोगोंको इससे बचना चाहिये। कांग्रेस और मुस्लिम लीगके बीच मतभेद भी बहुत-कुछ ऐसी ही गलतफहमियोंके कारण बढ़े हैं। इसका सबको अफसोस है और इसीसे इतने खेदजनक परिणाम आये हैं।

जहानाबाद थानेमें आमथुआ मुख्यतः एक मुस्लिम गांव था। फौज और पुलिसके समय पर पहुंच जानेसे वह दंगेके दिनोंमें दंगाई भीड़के हमलेसे बाल-बाल बच गया। गांधीजी २७ मार्चको सुबह आमथुआ और बेलाई गांवमें गये। आमथुआमें मुस्लिम लीगका एक कष्ट-निवारण शिविर था। वहां सन्देह और अविश्वासका बोलबाला था। निराश्रित लोग गांवके बीचमें एक विशाल वटवृक्षके नीचे इकट्ठे हुए। वहीं गांधीजीके लिए बैठनेका प्रबन्ध किया गया। निराश्रितोंके एक प्रतिनिधिने एक पत्र पढ़कर सुनाया। वह कटुतासे भरा हुआ था। पुनर्वासकी सारी योजनाको उसमें एक "बड़ा धोखा" बताया गया था और कहा गया था कि न तो सरकारका और न कांग्रेसका "सचमुच कुछ भी करनेका इरादा है।" वातावरणमें इतना कड़वापन भरा हुआ था कि गांधीजीने निराश्रितोंके प्रतिनिधियोंसे बादमें घोसी आकर मिलनेको कहा।

बेलाई गांव पर एक हिन्दू भीड़ने ३ नवम्बर, १९४६ को आक्रमण किया था। उसके शिकार कुछ राष्ट्रीय मुसलमान भी हुए थे। गांवमें संभल कर चलना पड़ता था, क्योंकि गलियोंमें अब भी मलबा जहां तहां बिखरा पड़ा था। हर जगह टूटीफूटी दीवारें और नष्ट हुई छतें आंखोंके सामने आती थीं। कुओंमें सड़ी लाशें भरी थीं और उनकी दुर्गन्ध अपनी कहानी आप कहती थी। जब एक पीड़ितने अपने प्रियजनोंके मरनेकी जगह बताई, तो गांधीजी मूर्तिकी तरह निश्चल खड़े रह गये। कभी कभी बिखरी हुई कोई हड्डी पैरोंके नीचे चरचर बोल उठती थी। एक मस्जिदको हानि

पहुंची थी। एक कमरेमें कुछ पुस्तकें जलकर खाक हुई पाई गईं। साधारण स्थितिके धीरे धीरे लौट आनेकी निशानीके तौर पर आश्वासन देनेवाली एक बात यह थी कि एक मुसलमान वापस आनेको तैयार हो गया था। उसका घर बांधनेका सामान जल्दी ही पहुंचनेवाला था।

८ बजे सुबह गांधीजीकी मंडली घोसी पहुंची। जिस मुसलमान भाईने आमथुआ कष्ट-निवारण शिविरमें वह कड़वा पत्र पढ़ा था वह गांधीजीसे मिलने आया। उसने कहा कि मुसलमानोंको गांधीजीमें तो श्रद्धा है, परन्तु और किसीमें नहीं है। गांधीजीने उससे कहा कि आमथुआकी सभामें आपने जो आचरण किया वह ठीक नहीं था। मुसलमान भाई सरकार पर लगाये गये आक्षेपके बारेमें अटल रहा। उसने भय प्रकट किया कि यदि सरकारको चेतावनो नहीं दी गई, तो गांधीजीके बिहार छोड़ते ही पुराना इतिहास दोहराया जा सकता है। गांधीजीने उससे कहा, मेरा लीगके नेताओंसे सतत सम्पर्क बना रहता है। यहां आनेके बादसे मैं उनमें से अधिकांशसे मिल लिया हुं; और मैं देखूंगा कि मुसलमानोंके साथ न्याय किया जाय। परन्तु मैं उन उपायोंसे सहमत नहीं हो सकता, जो आपने सुझाये हैं। मैं जानता हूं कि पंजाब और नोआखालीमें ऐसे मुसलमान हैं, जो मानते हैं कि किसी हिन्दूको वहां नहीं रहना चाहिये; इसी तरह कुछ हिन्दू भी हैं, जो समझते हैं कि कोई मुसलमान बिहारमें नहीं रहना चाहिये। लेकिन मेरे लिए यह बात सूर्यकी भांति स्पष्ट है कि पाकिस्तान बने या न बने, परन्तु हिन्दुओं और मुसलमानोंको तो आपसमें मिलकर और दोस्त बनकर ही रहना पड़ेगा। इसलिए दोनों पक्षोंका कर्तव्य है कि वे इस सत्यको पहचान कर ऐसे ढंगसे काम न करें, जिससे दोनों कौमोंके बीच शत्रुता और कटुता बढ़े। वैर-द्वेष और कड़वाहटका बादमें उन्हीं पर घातक असर पड़ेगा।

शामकी प्रार्थना ओकरी गांवमें हुईं। उससे पहले गांधीजी दंगोंमें बरबाद हुए तीन और गांव देख आये। उनक मन उस पागलपनके भयंकर गूढ़ार्थोंसे भरा हुआ था, जिसने दिनमें देखे हुए भयंकर विनाशका सर्जन किया था। उन्होंने सोचा, देशमें जो सतही शान्ति फैली दिखाई देती है, वह कहीं तूफानके पहलेकी शांति तो नहीं है?

गांधीजीने शामकी प्रार्थना-सभामें कहा, नये वाइसरॉयने पद संभालने पर पहली घोषणामें यह कहा है कि उन्हें अन्तिम वाइसरॉयके रूपमें भारतसे ब्रिटिश हुकूमतको समेट लेने और भारतवासियोंके हाथमें सत्ता सौंपनेके लिए भेजा गया है। आपने यह भी देखा होगा कि वह घोषणा निश्चित, बिना शर्तवाली और असंदिग्ध है। मैं जानता हूं कि ब्रिटिश घोषणाओं पर भारतमें आज भी गहरा अविश्वास किया जाता है, और इसके लिए काफी कारण हैं। परन्तु सत्याग्रहका पुजारी प्रत्येक घोषणाको किसी शंकाके बिना अक्षरश: स्वीकार करता है। मेरा अनुभव यह है कि धोखा देनेवाला हमेशा घाटेमें रहता है और धोखेका शिकार बना हुआ आदमी, यदि बहादुर और ईमानदार हो तो, कभी घाटेमें नहीं रहता। मुझे बड़ा डर है कि अगर हम जागे नहीं तो हम स्वाधीनताके सुवर्ण फलको खो बैठेंगे, जो अब लगभग हमारे हाथमें आ गया है। यदि बिहार और पंजाबका पागलपन सर्वत्र फैल जाय, तो मैं स्पष्ट रूपमें यह कल्पना कर सकता हूं कि वाइसरॉयने जो शब्द एक गम्भीर अवसर पर शपथपूर्वक कहे हैं, उन्हें वापिस निगल जानेका प्रलोभन उन्हें हो सकता है। “ईश्वर न करे कि ऐसा अवसर आये। परन्तु मान लीजिये कि ऐसा अवसर आ गया, तो चाहे में अकेला ही बोलनेवाला रह जाऊं, फिर भी मैं डंकेकी चोट यह घोषणा करूंगा कि वाइसरॉयको अपनी घोषणा पर दृढ़ता और सचाईके साथ अमल करना चाहिये, अंग्रेजोंके भारतसे हटनेका काम पूरा करना चाहिये और भारतको अपने भाग्यके भरोसे छोड़ देना चाहिये।”

गांधीजीने आगे कहा: मुझे पंजाबके पागलपनकी इतनी अधिक चिन्ता नहीं है, हालांकि वह पागलपन काफी बुरा है; परन्तु मुझे चिन्ता इस बातकी है कि कहीं बिहारके लोग अपने प्रायश्चित्त करनेके वचनका भंग न करें। मैं आज ही सवेरे एक गांवमें गया था। वहां एक मस्जिदके पास किसीने—अवश्य ही किसी मुसलमानने नहीं—पिछली रातमें एक भव्य नारियलका पेड़ काटकर गिरा दिया था। यह पेड़ दंगोंमें मारे गये मुसलमानोंकी हड्डियों पर बनाई हुई एक कामचलाऊ कब्रकी शोभा बढ़ा रहा था। ऐसी स्थितिमें यदि मुसलमान आपके आश्वासनोंको स्वीकार करनेमें हिचके, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। मैं स्वीकार करता हूं कि जो कुछ मैंने आज सुबह देखा है, उसके बाद बिहारी हिन्दुओंके दिये हुए वचनमें मेरा विश्वास हिल गया

है। मुझे आशा है कि लोग उस अपराधीका पता लगा कर उसे स्पष्ट और सच्चे हृदयसे अपना दोष स्वीकार करने और उसके लिए प्रायश्चित्त करनेको समझायेंगे, ताकि वैसे सब लोगोंको एक पाठ मिल जाय।

फिर गांधीजीने निराश्रितोंके लिए निवास-स्थानका प्रबन्ध न करनेके बारेमें मंत्रियोंकी आलोचनाका उल्लेख किया: मैं जानता हूं मंत्री लोग इस बारेमें क्या सफाई देते हैं। और चूंकि मैं उसे जानता हूं इसलिए मैंने आज सुबह घोसीके हाईस्कूलके शिक्षकों और विद्यार्थियोंको जो सलाह दी थी वही यहां दूंगा। हिन्दुओंका यह फर्ज है कि वे मुसलमानोंके नष्ट घरोंको फिरसे स्वेच्छापूर्वक बना दें और उन्हें इतना आकर्षक और सुरक्षित कर दें कि निराश्रित अपने घरोंको लौट आयें। मैंने यह भी सुना है कि कुछ भगाई हुई मुस्लिम लड़कियां अभी भी लापता हैं। मैं आशा करता हूं कि यह सूचना सही नहीं होगी। परन्तु ऐसा न हो कि सबूतको दबा देनेके लिए कुछ लड़कियोंकी हत्या कर दी जाय। इसलिए जिनके पास वे लड़कियां हों उनसे मैं प्रार्थना करता हूं कि वे लड़कियोंको अधिकारियोंके पास न लौटायें तो बादशाह खानके पास या मेरे पास पहुंचा दें, ताकि उन्हें अपने परिवारमें सुरक्षित रूपसे वापस भेज दिया जाय। मैं फिर कहता हूं कि बुराईमें स्पर्धा करनेसे अधिक निर्लज्जताका काम दूसरा कोई नहीं हो सकता। जिन लोगोंने ये अपराध किये हैं, उन्होंने अपने आपको, अपने धर्मको, अपनी कौमको और अपनी मातृभूमिको कलंकित किया है।

*

ओकरीसे गांधीजी रात्रि-निवासके लिए जहानाबाद लौट आये। मंडली छोटी थी, लेकिन कामका दबाव भारी था। रोजकी डाक कम होनेके कोई लक्षण दिखाई नहीं देते थे। परन्तु सबसे बड़ा सिरदर्द उन पैसोंको गिननेका था, जो मुस्लिम कष्ट-निवारण कोषके लिए प्रार्थना-सभाओंमें दिये जाते थे। पिछले दिन मनु और हुनर आधी रात तक उस काममें लगे रहे। नींदके अभावमें मनुकी आंखें लाल होकर सूज गई थीं। उसे आज्ञा देकर सोनेके लिए भेजना पड़ा। बेचारा हुनर रातके १ बजे तक जाग कर अकेला ही उस कामको करता रहा। जब वह रकम दूसरे दिन बैंकमें

भेजी गई, तो गिनतीमें छोटीसी भूल पाई गई। इससे हुनर मुश्किलमें पड़ गया। गांधीजीने कहा कि कोषाध्यक्षकी तो एक पैसेकी भूल भी अक्षम्य होती है ! मंडलीके एक सदस्यने बचाव करनेकी कोशिश की: छोटे छोटे सिक्कोंमें बड़ी बड़ी रकमें, कभी कभी १ हजार रुपयेसे भी अधिककी, रोज गिननी पड़ती हैं और आपका आग्रह होता है कि गिनती रातको ही पूरी होनी चाहिये। शरीरकी अपनी मर्यादाएं होती हैं और प्रकृति अपना तकाजा करती है—इत्यादि इत्यादि। परन्तु गांधीजीके सामने बचाव करनेका अर्थ दोषी बनना होता था। वे टससे मस नहीं हुए। उन्होंने ये सब काम खुद किये थे और उनके पास प्रत्येक कठिनाईका हल मौजूद था। “एक समतल तख्ते पर सिक्कोंकी समान ऊंचाईकी ढेरियां लगाकर और फिर एक ढेरीके सिक्कोंसे सब ढेरियोंकी संख्याको गुणा करके ”गिनतीका काम आसान बनाया जा सकता है। अथवा सिक्कोंको “तौला जा सकता है और सिक्कोंकी एक विशिष्ट संख्याके वजनसे सारे वजनको माग कर सिक्कोंकी ठीक संख्या मालूम की जा सकती है !” यह उन छोटे छोटे पाठोंका नमूना है, जो गांधीजीके पास रहनेका सौभाग्य प्राप्त करनेवाले लोंगोंको समय समय पर मिलते रहते थे।

२८ मार्चका कार्यारम्भ जहानाबादकी मुस्लिम लीगके अध्यक्षके घर पर मुस्लिम निराश्रितोंके साथ एक मुलाकातसे हुआ। विधान-सभाके एक हिन्दू सदस्य भी मौजूद थे। मुसलमानोंने शिकायत की कि उन्होंने उपद्रवके दिनोंमें दंगाइयोंको भड़काया था और उनकी मदद की थी। यह भी आरोप लगाया गया कि वे एक बदनाम डाकूके रिश्तेदार हैं। विधान-सभाके सदस्यने इस बातसे इनकार किया कि वे उस डाकूके संबंधी हैं। उनके विरुद्ध जो आरोप लगाये गये थे, उनके बारेमें वे मुस्लिम लीगियोंके ही बने एक मंडल द्वारा जांच करानेको तैयार थे। उन्होंने कहा, यदि वे मुझे दोषी ठहरायें, तो मैं कोई भी दंड स्वीकार करनेको तैयार हूं। दूसरी तरह भी मैं गांधीजीकी आज्ञाका पालन करनेको तैयार हूं।

गांधीजी बोले, यदि यह डाकू अब भी स्वतंत्र घूमता है, तो उसे गिरफ्तार करनेकी पूरी कोशिश होनी चाहिये और इसके लिए सब लोगोंको सरकारके साथ सहयोग करना चाहिये। “यह तो सरकारके लिए एक चुनौती है। यदि सरकार अपराधियोंको गिरफ्तार करनेमें असफल रहेगी, तो वह बदनाम हो जायगी।” विधान-सभाके सदस्यको संबोधित करके गांधीजीने कहा:

चूंकि आप इस क्षेत्रके चुने हुए सदस्य हैं, इसलिए आप पर विशेष जिम्मेदारी है। यदि मुसलमान आप पर दंगेमें शरीक होनेका सन्देह करते हैं, तो आपको अपनी जगहसे त्यागपत्र दे देना चाहिये—फिर भले ही आप पर किया गया सन्देह निराधार ही हो। मुसलमानोंसे गांधीजीने कहा, आपको केवल ईश्वरके सत्यकी ही खोज करनी चाहिये, लगाये हुए अभियोग सिद्ध करने चाहिये और वे सिद्ध न किये जा सकें तो बिना शर्तके उन्हें वापस ले लेना चाहिये। बादमें पता चला कि सच्चा अपराधी विधानसभाका वह सदस्य नहीं था, बल्कि एक दूसरा ही आदमी था, जो फरार था। इस पर गांधीजी बोले : यह दुःखकी बात है कि सच्चा अपराधी अब तक गिरफ्तारीसे बचनेमें कामयाब रहा। उसे पकड़वानेमें सहायता देना सबका कर्तव्य है।

निराश्रितोंमें से एकने कहा, चूंकि मंत्रि-मंडल और अधिकारियोंने उपद्रवोंके दौरान ठीक तरहसे अपना कर्तव्य-पालन नहीं किया है और वे हमारा विश्वास खो चुके हैं, इसलिए उनको हटा देना चाहिये। परन्तु इस मुद्दे पर गांधीजी अटल रहे। उन्होंने कहा, ठीक यही सवाल नोआखालीमें खड़ा हुआ था और मैंने कहा था कि सुहरावर्दीको जिन लोगोंने मत देकर पदारूढ़ किया है, उनके सिवा और कोई उन्हें नहीं हटा सकता। इसी प्रकार बिहारके मंत्रियोंसे भी त्यागपत्र देनेके लिए तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक कि उन्हें वहां भेजनेवाले लोग यह न चाहें। "बिहारके मंत्रियोंने मझसे कह दिया है कि अगर मैं उन्हें त्यागपत्र देनेको कहूं तो वे दे देंगे। परन्तु उनसे त्यागपत्र दिलवाना मेरे लिए अनुचित होगा। मैं उनसे उचित बात ही करनेके लिए कह सकता हूं।"

इसके बाद गांधीजीसे यह पूछा गया, जब हिन्दुओंका मानस बदला नहीं है तब मुसलमानोंसे केवल ईश्वर पर भरोसा रखकर लौट जानेको कहना कहां तक सच्ची दोस्ती होगी? क्या हालके दंगोंके द्वारा ईश्वरने खुद हमें चेतावनीका संकेत नहीं दे दिया है?

गांधीजीने उत्तर दिया, नोआखालीमें मैंने कहा था कि न तो कोई हिन्दुओंको यहां रखनेके लिए शहीद सुहरावर्दीको मजबूर कर सकता है और न शहीद बहुसंख्यकोंको अपनी इच्छाके विरुद्ध कुछ करनेके लिए विवश कर सकते हैं। क्योंकि ऐसा होगा तो वे विद्रोह करेंगे। इसी

प्रकार मैं कितना ही क्यों न चाहूं कि आप लोग हिम्मत रखकर अपने पुराने स्थानोंमें जमे रहें, फिर भी मैं आपको आपकी इच्छाके विरुद्ध खतरेके स्थानमें रहनेके लिए नहीं कह सकता। "आप अपनी सम्पत्तिके लिए मुआवजा पा सकते हैं और जहां चाहें वहां जा सकते हैं। मैं इसकी भरसक कोशिश करूंगा कि यह व्यवस्था हो जाय।"

निराश्रितोंकी इस मांगके सम्बन्धमें कि निराश्रितोंमें विश्वास पैदा करनेके लिए जो नये पुलिस-थाने कायम किये जा रहे हैं, वहां पुलिसके सिपाही और अधिकारी कमसे कम आधे मुसलमान होने चाहिये, गांधीजीने कहा : मैं ऐसी किसी मांगका समर्थन नहीं कर सकता। न मैं यही समझता हूं कि पाकिस्तानमें गैर-मुस्लिमोंकी तरफसे की जानेवाली ऐसी मांग स्वीकार की जायगी; क्योंकि इसका मतलब यह होगा कि पाकिस्तानकी ज्यादातर पुलिस गैर-मुस्लिम होनी चाहिये। "इसीलिए मैं कहता हूं कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए एक-दूसरेके दोस्त बननेके सिवा और कोई रास्ता नहीं है।"

इसके बाद गांधीजीसे पूछा गया, बिहारमें आपके भाषणोंमें बार-बार नोआखालीका जिक्र आनेसे हिन्दू यह सोच सकते हैं कि जो कुछ उन्होंने बिहारमें किया है वह नोआखालीके जवाबमें ही किया है। क्या इससे उनकी मनोवृत्ति बदलनेके मार्गमें कठिनाइयां उत्पन्न नहीं होंगी?

गांधीजीने उत्तर दिया, यह निष्कर्ष सही नहीं है, क्योंकि मैंने हिन्दुओंको खूब फटकारा है। सच तो यह है कि किसी समय मैं मुसलमानोंको भी इतना ही साफ साफ सुनाया करता था। १९२४ में उन्होंने जो कुछ किया था, उसके लिए मैंने २१ दिनका उपवास भी किया था। तब मुसलमान मुझे अपना शत्रु नहीं समझते थे। परन्तु मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि कुछ अर्सेसे जब मैं मुसलमानोंके बारेमें बोलता हूं, तो बहुत संभल संभल कर बोलता हूं। "जहां तक हो सकता है मैं अपने भाषणोंमें नोआखालीका उल्लेख नहीं आने देता। परन्तु उसका बिल्कुल उल्लेख न करना ठीक नहीं होगा। बिहारके मुसलमानोंके खातिर भी मुझे नोआखाली और पंजाबसे आनेवाले अशांतिकारक समाचारोंके बारेमें चुप नहीं रहना चाहिये। दोनों एक-दूसरेसे जुड़े हुए हैं।"

उनका अन्तिम प्रश्न बिहार सरकारके इस निर्णयके बारेमें था कि दंगों पर रिपोर्ट देनेके लिए बिहार जांच-कमीशनके एकमात्र न्यायाधीशके रूपमें भारतीय सिविल सर्विसवाले श्री रूबेनको नियुक्त किया जाय। ऐसे एक व्यक्तिवाले कमीशन पर हमारा विश्वास कैसे बैठ सकता है?

गांधीजीने उत्तर दिया, एक व्यक्तिवाले कमीशनसे कोई हानि नहीं होगी, यदि न्याय करनेके लिए उस व्यक्ति पर भरोसा किया जा सके। किन्तु यदि आपका श्री रूबेन पर विश्वास नहीं है, तो जिस पर आपका विश्वास हो ऐसे किसी अन्य व्यक्तिका नाम आप बता सकते हैं। परन्तु किसीके गैर-मुस्लिम होनेसे ही उस पर सन्देह करना ठीक नहीं है। मैं खुद तो किसी मुसलमानको न्यायाधीश बनाना पसन्द करता, बशर्ते कि वह सबके लिए स्वीकार्य हो। दुर्भाग्यवश आजकलके बिगड़े हुए वायुमंडलमें हिन्दुओंको मुसलमानोंका और मुसलमानोंको हिन्दुओंका विश्वास नहीं रहा। अगर आप गैर-मुस्लिमोंके कोई ऐसे नाम दे सकें, जिन पर आपका विश्वास हो, तो मेरा काम ज्यादा आसान हो जायगा। "मैं उन लोगोंमें से नहीं हूं, जो किसी कामको करनेसे सिर्फ इसीलिए इनकार कर देते हैं कि लीग उसे चाहती है । हमारी कसौटी केवल सत्यकी ही होनी चाहिये, फिर उसे बोलनेवाला कोई भी हो।"

*

तीसरे पहर गांधीजी आसपासके गांवोंके प्रतिनिधियोंसे और मुस्लिम निराश्रितोंसे मिले। प्रातःकालकी मुलाकातमें जो सवाल पूछे गये थे वे और गांधीजी द्वारा दिये गये उनके जवाब पढ़कर उन्हें सुनाये गये। फिर उन्होंने अतिरिक्त प्रश्न पूछे।

गांधीजी इस बातमें उनसे सहमत थे कि जहां मुसलमानोंने घबराहटके कारण अपनी सम्पत्ति कौड़ियोंके मोल बेच दी थी, वहां उन्हें उसी कीमत पर उनकी अपनी वह सम्पत्ति वापस मिल जानी चाहिये। जहां लूटपाट और जायदादकी बरबादी अभी भी की जा रही है, उन स्थानोंमें पुलिसकी चौकियां कायम की जानी चाहिये। दंगोंके दौरान जिन अधिकारियोंने घोर कर्तव्य-विमुखताका अपराध किया था, उनके आचरणकी जांच होनी चाहिये और जिनके विरुद्ध आक्षेप

सिद्ध हो जायं उन्हें बरखास्त कर देना चाहिये। गांधीजीको यह भी सुझाया गया कि कांग्रेसके गैर-जिम्मेदार और साम्प्रदायिक मनोवृत्तिवाले वर्गकी तरफ ध्यान दिया जाना चाहिये। गांधीजीने यह उत्तर दिया: कांग्रेस मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभाकी तरह नहीं है। वह तो सबकी सेवा करनेके लिए है। यदि वह अपना राष्ट्रवादी स्वरूप छोड़ देगी, तो वह अपना नाश कर लेगी।

एक निराश्रितने अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न किया: "आपको जो अनुभव हुआ है और आप अपने चारों ओर जो वायुमंडल देखते हैं, उससे आपको इस बातकी कोई आशा होती है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें खोया हुआ विश्वास फिरसे स्थापित करनेके मिशनमें आपको सफलता मिलेगी ?"

गांधीजीने उत्तर दिया, "मनुष्य केवल प्रयत्न ही कर सकता है। फल ईश्वरके हाथ है।"

इसके बाद गांवके प्रतिनिधियोंको संबोधित करते हुए गांधीजीने उन्हें अपने हृदय शुद्ध कर लेनेका उपदेश दिया: अगर आप मुझसे यह कहें कि आप निर्दोष हैं, तो मैं आप पर भरोसा नहीं करूंगा। अगर एक भी हिन्दूने अपराध किया है, तो सब हिन्दू उसके लिए जिम्मेदार हैं। क्या मैं आपकी तरफसे मुसलमानोंको यह विश्वास दिला सकता हूं कि आप लोगोंने अपने पापको अच्छी तरह समझ लिया है और सच्चे पश्चात्तापसे आपके हृदय पूरी तरह शुद्ध हो गये हैं? इसके विपरीत, यदि आपको यह लगता है मुसलमानोंकी हत्या करके आपने ठीक किया है, तो आपको ऐसा साफ साफ कहना चाहिये। इससे मुझे ठीक ठीक मालूम हो जायगा कि मैं कहां खड़ा हूं और उसीके अनुसार मैं अपना भावी कार्यक्रम निश्चित कर लूंगा। कारण, मैंने बिहारमें "करो या मरो" की प्रतिज्ञा ले ली है।

इसके बाद कांग्रेसी कार्यकर्ताओंके साथ गांधीजीकी मुलाकात हुई । उसमें गांधीजीसे पूछा गया: "जो मुसलमान अपने घरोंसे भाग गये थे, वे अपनी जायदादें बहुत सस्ते दामों पर बेच रहे हैं, और हिन्दू स्वाभाविक रूपमें उन्हें खरीदना चाहते हैं। क्या उन्हें खरीदना चाहिये?"

गांधीजीने उत्तर दिया, “ईमानदारीका तकाजा तो यह है कि सौदा न्यायपूर्ण हो । हिन्दुओंको चाहिये कि मुसलमानोंकी सम्पत्तिकी उचित कीमत चुकायें । सच तो यह है कि खरीदनेके बजाय उन्हें मुसलमानोंकी सम्पत्तिको अपनी घरोहर समझना चाहिये।”

“क्या हम हिन्दुओंसे कहें कि वे मुसलमानोंकी सम्पत्ति न खरीदें?”

“हां, परन्तु नोआखालीकी तरह इसे बहिष्कारका रूप नहीं लेना चाहिये । हमें मुसलमानोंके संकटसे लाभ नहीं उठाना चाहिये।”

२

मार्च १९४७ के उत्तरार्धमें बिहारके पुलिसवालोंकी जबरदस्त हड़ताल चल रही थी। इससे न सिर्फ बिहार सरकारको बल्कि भारत सरकारके गृह-विभागको भी काफी चिन्ता हो रही थी।

बिहारमें गांधीजीके आगमनके समयसे ही उन्हें ऐसा लगा कि अगर वे पुलिसको सुधार सकें, तो उससे बिहारमें साम्प्रदायिक तनाव कम होनेमें मदद मिल सकती है। बिहारमें जो हत्याकांड हुआ था उसके लिए पुलिसके जवानोंमें पैठा हुआ सम्प्रदायवाद बहुत हद तक जिम्मेदार था।

पुलिसकी यह हड़ताल विद्रोही भारतसे प्रशासनके लिए जिम्मेदार बन रहे भारतमें होनेवाली संक्रान्तिका लक्षण थी। पुलिसका महकमा हमेशा सबसे ज्यादा भ्रष्ट रहा था, परन्तु कानूनके हथियारके द्वारा अंग्रेजोंने भारत पर अपना पंजा जमा रखा था। १९४२ में आजाद होनेका राष्ट्रीय संकल्प इतना अधिक तीव्र हो गया था कि पुलिस पर भी, खास तौर पर बिहारमें, उसका असर पड़ा था और उसके कुछ जवान खुले तौर पर स्वातंत्र्य-आन्दोलनमें शरीक होकर जेल गये थे। जेलमें समाजवादी नेताओंने उनकी खूब तारीफ करके उन्हें आसमानमें चढ़ा दिया और दोनोंमें गहरा संबंध हो गया था। उनकी रिहाईके बाद वह सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो गया। कारण, सत्ताके सचमुच हस्तांतरित होने तक समाजवादियोंको अंग्रेजोंकी नेकनीयती पर अविश्वास था और उनकी यह कल्पना थी कि १९४२ के “भारत छोड़ो” संग्रामसे भी अधिक

भयंकर आन्दोलन छेड़ना पड़ेगा, तब कहीं भारत स्वतंत्र होगा; और इसमें सेना और पुलिसका सहयोग एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व रहेगा।

पुलिस महकमा अपनी पाशविकताके लिए बदनाम हो चुका था। अधिकारी सिपाहियोंके साथ बुरा बर्ताव करते थे और सिपाही जनताके साथ । सिपाहियोंमें अधिकारियोंके तथाकथित दुर्व्यवहारके विरुद्ध रोष बढ़ रहा था और समाजवादी जवानोंके रोषकी इस भावनाका सरकारके खिलाफ एक हथियारके रूपमें उपयोग करना बुरा नहीं समझते थे। उधर जो सरकारी कर्मचारी अतिशय वफादारी अथवा अत्यधिक उत्साहके कारण "भारत छोड़ो" आन्दोलनके दौरान सरकारी दमनके साधन बन गये थे, उन्हें न सतानेकी कांग्रेस-नीतिने पुलिसके नेताओंमें सरकारके प्रति कटुता पैदा कर दी थी और उनमें तथा राजभक्त वर्गमें काफी तनाव पैदा हो गया था; क्योंकि उनके खयालसे इस वर्गने भारतके स्वतंत्रता-संग्रामके साथ विश्वासघात किया था, फिर भी सरकार उन्हें प्रशासनका आधार-स्तंभ मानती थी।

२० मार्च, १९४७ को गयाके एक सब-डिविजनल अफसरने अदालतकी मानहानिके अपराधमें एक पुलिस हवालदारको सजा कर दी। इस पर गयाकी पुलिसने नोटिस दे दिया कि अगर हवालदारके साथ न्याय नहीं किया गया और सब-डिविजनल अफसरको सजा नहीं दी गई, तो हड़ताल की जायगी। जिला-मजिस्ट्रेटने तुरन्त जांचकी आज्ञा दी। इसके बावजूद २४ मार्चको हड़ताल शुरू हो गई; और यद्यपि उसी दिन जांच प्रारम्भ हो गई, फिर भी हड़तालियोंने काम पर लौटनेसे इनकार कर दिया। गयासे हड़तालकी हवा पटना और मुंगेर तक फैल गई। सेना बुला ली गई और एक अवसरपर ब्रिटिश सेनाका उपयोग भी करना पड़ा। दोनों पक्षोंने गोलियां चलाईं। उत्तके फलस्वरूप कुछ पुलिसके सिपाही मारे गये और बहुतसे घायल हुए। फौजका एक सिपाही बुरी तरह घायल हो गया और बादमें उसकी मृत्यु हो गई।

२८ मार्चको पुलिसवालोंके कुछ प्रतिनिधि जहानाबादमें और फिर पटनामें गांधीजीसे मिले। गांधीजीने उनसे कहा, आपकी हड़ताल अनुचित है और उसे जारी रखनेके पक्षमें कोई भी उचित कारण नहीं है। आप लोग निरे वेतनभोगी नौकर नहीं हैं। आप अत्यावश्यक सेवा

करनेवाले लोग हैं। कानूनकी रक्षा करनेवाले सेवकोंसे यह आशा रखी जाती है कि वे कर्तव्यको पहले और स्वार्थको पीछे रखेंगे। अगर आप अपनी मांग पूरी होने तक हड़ताल जारी रखेंगे, तो आपका मामला बिगड़ जायगा। इसलिए आपको तुरन्त और बिलाशर्त अपनी हड़ताल वापिस खींच लेनी चाहिये। इस समय सरकार आपकी अपनी है, इसलिए उसके सामने आत्म-समर्पण करनेमें गौरवकी हानि नहीं है। परन्तु आपको मेरी राय तभी माननी चाहिये जब आपके नेता उसका समर्थन करें। जब तक आप अपने संगठनके सदस्य हैं तब तक वफादारीका तकाजा है कि मेरी सलाह पर अमल करनेसे पहले आप अपने नेताओंसे परामर्श कर लें।

कुछ समयसे पुलिसके मुसलमान जवान मुस्लिम लीगके असरमें अपना अलग संगठन बना रहे थे। गांधीजीने हिन्दू और मुसलमान पुलिसवालोंके बीच बढ़ती हुई फूटकी निन्दा की और उनसे कहा कि हिन्दू पुलिसवालोंको चाहिये कि वे मुसलमान साथियोंको अपने सगे भाई समझें । उनका आचरण ऐसा होना चाहिये कि हिन्दू और मुसलमान दोनोंका उनमें एकसा विश्वास हो और मुसलमानोंको ऐसा न लगे कि उनकी रक्षाके लिए मुसलमान पुलिसवालोंकी जरूरत है। यही बात हिन्दुओं पर लागू होती है।

गांधीजीने सोचा था कि वे मंत्रि-मंडलसे इस मामलेकी चर्चा करेंगे। परन्तु उससे भी पहले एक समाजवादी नेतासे, जो उनसे इस सम्बन्धमें मिलने आये थे, गांधीजीने यह कहा कि अगर समाजवादी पुलिसके मामलेमें हस्तक्षेप करेंगे, तो इसके बहुत गंभीर परिणाम होंगे। साथ ही गांधीजीका यह दृढ़ मत था कि हड़तालसे निबटनेके लिए ब्रिटिश सैनिकोंको बुलाकर सरकारने बड़ी गलती की। ब्रिटिश सैनिकोंका किसी भी हालतमें उपयोग नहीं होना चाहिये था।

दूसरे दिन पुलिस-संघके अध्यक्ष रामानन्द तिवारी, जो फरार थे, समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायणके साथ पटनामें गांधीजीसे मिले। उन्होंने गांधीजीकी सलाहसे अधिकारियोंके सामने आत्म-समर्पण करने और अपने साथियोंको हड़ताल छोड़कर फिरसे काम पर लग जानेकी सलाह देनेका निर्णय किया। उन्हें गांधीजीके शिविरसे मामूली कैदीकी तरह हथकड़ियां

डालकर हिरासतमें ले लिया गया। गांधीजीको यह अच्छा नहीं लगा। अगर इस तरहके आदमीके साथ अधिक वीरोचित व्यवहार किया जाता, तो अवश्य ही कुछ न बिगड़ता।

आत्म-समर्पण करनेसे पहले तिवारीने यह वक्तव्य निकाला था: "मैने गांधीजीसे बातें की हैं और मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि मुझे आत्म-सम्पर्पण कर देना चाहिये। मैं मानता हूं कि जिस संग्राममें पुलिसवाले जुटे हुए हैं, उसमें सफल होनेका यही एक मार्ग है। मैं अपने साथियोंसे अपील करता हूं कि वे हड़ताल छोड़कर फिर कामसे लग जायं। मैं गांधीजीसे भी अपील करता हूं कि वे हमारा मामला हाथमें लेकर हमें न्याय दिलायें।"

गांधीजीको लगा कि पुलिसवालोंको सुधारनेका यह बड़ा अच्छा अवसर है, जो बरसोंसे प्रशासनमें एक बहते हुए नासूरकी तरह रहे हैं। परन्तु मुख्यमंत्रीने गांधीजीसे याचना की कि स्थितिके साथ मंत्रि-मंडलको परम्परागत पद्धतिसे निबटने दिया जाय। गांधीजी कोई ऐसी चीज मंत्रि-मंडल पर थोपना नहीं चाहते थे, जो उसके दिल और दिमागको न जंचे। इसलिए वे इस मामलेसे हट गये, यद्यपि इससे उन्हें पीड़ा अवश्य हुई। सबको मालूम था कि भारत सरकारका गृह-विभाग उस समय पुलिसके मामलेमें किसी तरहका हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता था— खास तौर पर उस समय जब मुस्लिम लीग खुले आम हिंसाका प्रचार कर रही थी। बिहारका मंत्रि-मंडल नई परिस्थितिका पुराने ढंगसे सामना करनेका आग्रह रखता था—इसका कारण ऊपर बताई हुई बात थी या कि बिहारकी कांग्रेस सरकारको तथा केन्द्रकी अंतरिम सरकारको विरासतमें मिली हुई नौकरशाहीकी परम्पराके कारण मंत्रि-मंडल ऐसा आग्रह रखता था? जो भी हो, परन्तु गांधीजीके प्रयत्न अलफल रहे और सरकारी नौकरियोंसे सम्बन्धित एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विभागको सुवारनेका एक बड़ा अवसर हाथसे चला गया।

रामानन्द तिवारीको १० बरसके कठोर कारावासकी सजा हुई । अपीलमें हाईकोर्टने मुख्य अभियोगमें तिवारीको बरी कर दिया। (मुख्य अभियोग सम्राट्के विरुद्ध युद्ध करने और अपराधपूर्ण शक्ति द्वारा बिहार सरकारको धमकानेके षड्यंत्रका था) । परन्तु उन्हें पुलिसके जवानोंमें अप्रीति पैदा करनेके आरोप पर ६ महीनेकी सख्त कैद की सजा मिली, जब कि वे

इससे कहीं अधिक समय तक पहले ही जेलमें रह चुके थे। लगभग २ वर्ष तक विचाराधीन कैदीके रूपमें और फिर १८ महीने तक अपराधीके नाते जेलमें रहनेके बाद वे १९५१-५२ के आम चुनावोंके ठीक पहले छूटे । वे समाजवादी टिकिट पर खड़े हुए। उन्होंने अपने प्रतियोगी कांग्रेसी उम्मीदवारको हराया और विधिवत् चुने हुए सदस्यके रूपमें बिहार विधान-सभामें स्थान ग्रहण किया।

*

२८ मार्चको जहानाबादमें पुलिसवालोंसे मिलनेके बाद गांधीजी बादशाह खान और अपनी मंडलीके साथ मलाथी और गंगासागर नामक गांवोंके लिए रवाना हुए। वहां उन्हें जो अनुभव हुआ वह निराशाजनक था। तीसरे पहर हिन्दुओंके प्रतिनिधियोंसे मिलने पर उन्होंने हिन्दुओंको सुझाया कि वे मुसलमानोंको जरूरी आश्वासन देकर उनका डर और सन्देह दूर करें। परन्तु जवाबमें एक भी हिन्दू खड़ा नहीं हुआ। उसके बाद बिहारकी आगेकी यात्रामें अपने रिवाजके अनुसार मुसलमानोंसे यह कहनेका गांधीजीमें उत्साह नहीं रहा कि वे अपने दिल साफ करें। मुसलमान अत्याचारके शिकार हुए थे, इसलिए पश्चात्तापमें पहल करना हिन्दुओंका कर्तव्य था। गांधीजीने उन कांग्रेसियोंसे, जिनके कार्यक्षेत्रमें अमानुषिक अत्याचार हुए थे, कहा : जब तक आप तमाम अपराधियोंको सामने आकर अपने पापोंके लिए प्रायश्चित्त करनेके लिए राजी नहीं कर लेते तब तक आप अपनी जिम्मेदारीसे मुक्त नहीं हो सकते।

रातको १० बजे एक स्पेशियल गाड़ी गांधीजीकी मंडलीको पटना लाई। मंडलीके कुछ सदस्य स्टेशनसे मोटर द्वारा छोटे रास्तेसे शिविरमें गांधीजीसे कुछ पहले पहुंच गये थे। दो मित्र उन्हें दरवाजे पर मिले। उनके चेहरे गम्भीर थे । बिहार पर एक बड़ी विपत्ति आ पड़ी थी। बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मुस्लिम अध्यक्ष प्रोफेसर अब्दुल बारीको तस्कर-व्यापार विरोधी दलके एक गोरखेने गोलीसे मार दिया था। ड्यूटी पर खड़े गोरखेने उन्हें ललकारा, परन्तु वे उत्तर देनेमें चूक गये। गोरखेने प्रोफेसर बारी पर अपनी बन्दूक तान दी। प्रोफेसर बारीको यह अपमानजनक लगा। उन्होंने मोटरसे कूदकर उसकी बन्दूक छीननेका प्रयत्न किया। ड्यूटीवाले दूसरे गोरखेने

बन्दुकका घोड़ा दबाया, गोली छूटी और बिहारका एक उत्तम लाल स्वभावके एक मामूली दोषका, निर्णयकी एक छोटीसी भूलका, शिकार बन गया। वायुमंडल तरह तरहकी अफवाहोंसे भर गया। इस घटनासे मुसलमान इतने डर गये कि प्रोफेसर बारीकी मृत्यु किन परिस्थितियोंमें हुई इसका ठीक पता न होनेके कारण कुछ प्रमुख मुसलमान अपनी सुरक्षाके विषयमें बहुत अधिक शंकित हो गये।

अब्दुल बारी कांग्रेसके एक अनुभवी परखे हुए नेता थे। उन्होंने मजदूरोंकी, खास तौर पर जमशेदपुरके मजदूरोंकी, निःस्वार्थ सेवा करके बिहारके लोगोंका प्रेम संपादन किया था और लोगोंने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीका अध्यक्ष चुनकर उनका सम्मान किया था। वे एक निर्भय योद्धा थे और आजादीकी लड़ाईके तमाम दौरोंमें उन्होंने दृढ़तासे कांग्रेसकी सेवा की थी। उनका एकमात्र दोष उनका तेज स्वभाव था। गांधीजीको आशा थी कि गांवोंके दौरेसे लौटकर उनसे बात करेंगे और उनका दोष दूर करनेमें उनकी सहायता करेंगे, क्योंकि वह दोष उनके उच्च पदको शोभा नहीं देता था। गांधीजीको अब्दुल बारी पर विश्वास था और वे जानते थे कि उनकी बातका प्रो. बारी पर बहुत असर होता है। परन्तु ईश्वरकी इच्छा कुछ और ही थी। बिहारके भाग्यमें एक ऐसे आदमीकी अनोखी सेवाओंसे वंचित होना लिखा था, जिसमें अडिग साहसके साथ साथ फकीरका दिल भी था।

दूसरे दिन सुबह ही सुबह गांधीजी शोक-संतप्त परिवारके साथ संवेदना प्रगट करनेके लिए गये। उनका घर एक तंग गलीमें था और प्रोफेसर बारीके जीवनकी तपस्यामय सादगीकी गवाही दे रहा था। उनके त्यागके लिए प्रमाण-पत्र तो सभीने दिया था, परन्तु घरके भीतर जाकर गांधीजीने जो विपन्नता देखी, वह किसीका भी दिल हिला देनेके लिए काफी थी। परलोकवासी बारी चाहते तो आसानीसे धनवान बन सकते थे। उनकी दरिद्रता इसलिए और भी उल्लेखनीय थी कि वह स्वेच्छासे स्वीकार की गई दरिद्रता थी और कोई सम्मान नहीं चाहती थी। शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने कहा, "बारी जैसे आदमी कभी मरते नहीं हैं। अब यह पीछे रहनेवालोंका कर्तव्य है कि जो पवित्र कार्य वे अधूरा छोड़ गये हैं उसे जारी रखें।"

३० मार्च, १९४७ को नये वाइसरॉय लॉर्ड माउन्टबेटनके निमंत्रणके उत्तरमें गांधीजी दिल्ली चले गये और एक पखवाड़ेके बाद बिहार लौटे। (देखिये खण्ड-३, अध्याय-४)

३

मुस्लिम लीग निराश्रितोंके पुनर्वासके काममें रुकावटें डालती रही। निराश्रितों पर अपना असर जमा लेनेके बाद उसने ऐसी परिस्थितियां पैदा करनी चाहीं, जिनसे दोनों कौमोंके बीचकी खाई स्थायी हो जाय और संभव हो तो लगभग आधा बिहार पाकिस्तानके लिए प्राप्त कर लिया जाय।

मुस्लिम बहुमतवाली सधन बस्तियों (पॉकेट्स) की मांग लीगकी रणनीतिमें एक निहायत जरूरी कड़ी बन गई । जब तक असुरक्षितताकी भावना बनी रहे तब तक मुसलमानोंके लिए यह चाहना स्वाभाविक था कि उन्हें ऐसे गांवोंमें केन्द्रित कर दिया जाय जहां उनकी बड़ी संख्या है। लीग इस चीजको बिहार राज्यका स्थायी लक्षण बना देना चाहती थी। सरकारने उसकी मांगके बारेमें मध्यम मार्ग अपनानेका प्रयत्न किया। परन्तु लीगकी रीत तो उंगली देने पर पहोंचा पकड़ लेनेकी थी। मुस्लिम बहुमतवाली चुनी हुई सधन बस्तियोंके विचारसे वह एक-दूसरेसे लगी हुई ऐसी बस्तियोंके विचार तक जा पहुंची और लगी हुई बस्तियोंके विचारसे आगे बिहारके विभाजनके विचार तक पहुंच गई, ताकि मुसलमानोंके लिए एक स्वाधीन वतन या मुल्क हो जाय और फिर झारखंडके साथ उसे पाकिस्तानमें मिला दिया जाय। [आदिवासियोंका एक वर्ग बिहारके छोटा नागपुर तथा संथाल परगनोंके बने हुए झारखंडमें अपना स्वतंत्र प्रान्त रचनेके लिए आंदोलन कर रहा था] इस प्रकार पाकिस्तानका किला ठेठ छोटा नागपुरके अन्त तक फैल जाता। ऐसा होने पर यह स्वाभाविक था कि मध्यप्रदेशके आदिवासी कबीले छोटा नागपुरके अपने भाइयोंसे मिल जानेकी इच्छा प्रकट करते। हैदराबाद (निजाम) की बड़ी रियासत इन प्रदेशोंसे सटी हुई थी और चूंकि वह सबसे बड़ी परम्परागत मुसलमान रियासत थी, इसलिए मुसलमानों और आदिवासियोंके इस संयुक्त संघका अंग बननेका उसे “अधिकार” होता। बादमें गोआको हैदराबादके लिए “स्वाभाविक” समुद्र-मार्ग घोषित किया गया। उसे निजामके हाथों

बेच देलेकी गुप्त मंत्रणाएं होनेकी बात भी कही जाती थी। इस तरह भारतके बीचमें होकर निकलनेवाली १२०० मीलकी लम्बी "पट्टी" बनायी जा रही थी। दक्षिण भारतको उत्तर भारतसे काटकर और द्राविड़ोंके लिए उत्तर भारतसे सम्बन्ध विच्छेद करनेमें सहायक बनकर पाकिस्तान उनका
"उद्धारक" बन जाता और उन्हें अपना बना लेता। इस प्रकार अस्तव्यस्त तथा दुर्बल बना हुआ भारतीय संघ (इंडियन यूनियन)—जिसके शरीरमें पाकिस्तानके तेज नख गहरे घुस जाते—विभिन्न देशी राजाओंको, विशेषतः मुस्लिम देशी राजाओंको, अपने नियंत्रणमें नहीं रख पाता, क्योंकि निजामका बलवान राज्य हमेशा उनकी मदद पर दौड़नेके लिए तैयार रहता।

जिन्नाके भाषणोंसे और जिस ढंगसे मुस्लिम लीगकी राजनीतिक मांग उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी उससे राष्ट्रवादियोंके मनमें एक सजीव भय पैदा हो गया था कि विभाजनके बाद लीगका दूसरा कदम यह होगा कि पाकिस्तानको केन्द्र बनाकर भारतको हराया और जीत लिया जाय। इस इरादेने बादमें मुसलमानोंके इस नारेमें मूर्त रूप लिया कि 'हंसके लिया है पाकिस्तान, लड़के लेंगे हिन्दुस्तान ।'

मुसलमानोंके बहुमतवाली "अलग सधन बस्तियों" के विचारकी पूरी संभावना 'डिवाइड बिहार' नामक एक पुस्तिकामें अंशतः प्रकट हुई। यह पुस्तिका अप्रैल १९४७ में गयामें हुए "बिहार विभाजन सम्मेलन" के दूसरे अधिवेशनके समय मुस्लिम छात्रसंघने छपवाई थी। इस पुस्तिकाकी भूमिका बिहार प्रान्तीय मुस्लिम लीगके अध्यक्ष सैयद जाफर इमामने लिखा था:

> बिहारके मुसलमानोंका हिन्दुओंने जो कत्लेआम किया, उससे निःसन्देह यह सिद्ध हो गया है कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं और इसलिए उनको अलग हो ही जाना चाहिये। पाकिस्तानी क्षेत्रोंमें रहनेवाले मुसलमानोंका जल्दी ही अपना स्वाधीन प्रभुसत्ताधारी राज्य बन जायगा, क्योंकि पाकिस्तानका बनना अब निश्चित ही है और दुनियाकी कोई भी ताकत अब उसे रोक नहीं सकती । परन्तु बिहारके ५० लाख मुसलमानोंका क्या हाल होगा, जो १३ प्रतिशतके अल्पमतमें हैं और सारे प्रान्तमें वैरभाव

रखनेवाले एक बहुमतसे घिरे हुए हैं? . . . पूरे विचारके बाद अब हमें विश्वास हो गया है कि हमारा उद्धार इसीमें है कि बिहार प्रान्तके किसी हिस्सेमें हमारे लिए एक स्वतंत्र वतन या मुल्क स्थापित हो जाय, जहां हम अपनी सारी आबादीको एक जगह केन्द्रित कर सकें। . . . मैं . . . छोटा नागपुर और संथाल परगनोंको बिहारसे अलग कर देनेकी मांगका पूरा समर्थन करता हूं। छोटा नागपुरको बिहार प्रान्तसे जुड़ा हुआ रखकर प्रान्तके सवर्ण हिन्दुओं द्वारा उनका शोषण होने देनेमें कोई औचित्य नहीं है। . . .

पुस्तिकामें आगे लिखा था:

अगर बिहारके पचास लाख मुसलमानोंको संपूर्ण संहार और विनाशसे बचाना है, तो बिहारके मौजूदा प्रान्तके टुकड़े करके उनका एक अलग वतन या मुल्क बना देना जरूरी है। . . . यह कहना बेहूदा है कि बिहारमें मुस्लिम आबादी बिखरी हुई है और उसका कहीं बहुमत नहीं है, इसलिए मुसलमानोंका अपना कोई वतन या मुल्क नहीं हो सकता । बिहारके ५० लाख मुसलमान दूसरोंके प्रभुत्व और विनाशके डरसे मुक्त होकर अपने ही ढंगका जीवन बिताना चाहते हैं। . . .

उनकी मांग है कि पूर्णियाका सारा जिला, दक्षिण भागलपुर, दक्षिण मुंगेर, सारा पटना जिला, जहानाबाद और नवादाहके उप-विभाग और गया जिलेके सदर उप-विभागके कुछ हिस्सोंको मिलाकर बिहारके ५० लाख मुसलमानोंके लिए एक वतन बना दिया जाय। पूर्णिया जिलेके बड़े मागमें अब भी मुस्लिम बहुमत है। दक्षिण बिहारके उपरोक्त दूसरे जिले मुस्लिम संस्कृतिके केन्द्र रहे हैं और इसलिए मुसलमानोंको दे दिये जाने चाहिये ।

बिहारके मुसलमान छोटा नागपुर और संथाल परगनोंके लोगोंकी बिहारसे अलग होनेकी मांगकी पूरी हिमायत करते हैं। उस प्रदेशमें छोटा नागपुर और संथाल परगनोंके आदिवासियों तथा मुसलमानोंका मिलाकर बहुमत है, और वे बहुत समयसे छोटा नागपुर और संथाल परगनोंको बिहारसे अलग कर देनेकी मांग करते रहे हैं। . . . भौगोलिक,

आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे छोटा नागपुर और संथाल परगने एक अलग प्रदेश हैं और बिहारके साथ उनकी कोई समानता नहीं हैं।

बिहारके मुसलमानोंके लिए वतनके रूपमें जिन जिलोंकी मांग की गई है, वे एक-दूसरेसे लगा हुआ प्रदेश बनाते हैं; और छोटा नागपुर तथा संथाल परगनोंके साथ किसी न किसी तरहका संघ बनाकर एक बलवान, स्वाधीन, प्रभुसत्ताधारी राज्यका निर्माण कर सकते हैं।

फीरोजखां नूनने योजनाको और आगे बढ़ाया: "बिहारके ४७ लाख मुसलमानोंके लिए दो रास्ते खुले हैं: (क) वे पश्चिम बंगालमें जा सकते हैं। इसमें आबादीकी अदला-बदली करनी होगी; (ख) या तो वे गंगाके उत्तरमें, जहां उनकी जनसंख्या २२ प्रतिशत है, जा सकते हैं, अथवा दक्षिणमें जा सकते है जहां उनकी जनसंख्या लगभग ११ प्रतिशत है। बिहार या पश्चिम बंगालके भीतर उन्हें कोई इलाका दिया जा सकता है, जो पाकिस्तानके साथ मिला दिया जाय । मुझे ऐसा लगता है कि बिहार प्रान्तके आदिवासी लोग हिन्दू बिहारके साथ नहीं परन्तु मुस्लिम बंगालके साथ मिलना चाहेंगे। यदि आदिवासियोंका जनमत लिया जाय, तो उनका निर्णय स्पष्ट होगा। यदि आज उन्हें पृथक् निर्वाचनका अधिकार हो, तो वे और मुसलमान बिहार विधान-सभामें बहुमतमें होंगे। जमशेदपुर और टाटाका लोहेका कारखाना आदिवासी प्रदेशमें है और इस भूभागके सारे खनिज साधनोंका अखंड हिन्दुस्तानके लिए शोषण किया जा रहा है। आदिवासी गोमांस खाते हैं और अपने मुर्दोंको गाड़ते हैं। इसलिए वे सवर्णोंके हिन्दू धर्मसे उतने ही दूर हैं जितने इस्लाम अथवा ईसाई धर्म हैं।" [डिवाइड बिहार, पृ० ८]

आदिवासियोंको अच्छी तरह फंसा लिया गया था, यह बात संथाल परगना आदिवासी सभाके मंत्री कनु कीकूके भाषणसे स्पष्ठ हो जाती है। "बिहार विभाजन सम्मेलन" के अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा: "यह वैधानिक पद्धतिका बहुत बड़ा विपर्यास है कि जो आदिवासी पूरी आबादीके ७० प्रतिशत हैं, उन्हें एक बहुत ही साधारण बहुमतका रूप दे दिया गया है। . . . मंगोल, आये अथवा और भी किसी जातिके लोगोंको यह देश छोड़ देना चाहिये और इसे उसके

मूल निवासी आदिवासियोंके हाथमें सौंप देना चाहिये। . . . जाति और संस्कृतिकी दृष्टिसे हिन्दुओंसे हमारी अलग हस्ती है। भौगोलिक दृष्टिसे झारखंड शेष बिहारसे अलग है। . . . हम इतना ही चाहते हैं: 'झारखंडसे तुरन्त हट जाइये।' " [वही, पृ० ५-६]

मुस्लिम बहुमतवाली अलग बस्तियां बनानेकी मांग जैसी ही पहले बताई गई ये मांगें भी थीं: मुसलमानोंको हथियारोंके लाइसेन्स दिये जायं और पुलिस-विभागके आधे स्थान मुसलमानोंसे भरे जायं, इत्यादि । लीगकी मांगको स्वीकार कर लेनेसे दोनों कौमोंके बीच एक स्थायी दरार पड़ जाती और वे दो विरोधी छावनियोंमें बंट जातीं। गांधीजीका मिशन तो घाव भरनेका था, न कि उसे बढ़ाने या स्थायी बनानेका। लीग ऐसे मिशनमें सहयोग देनेको तैयार नहीं थी। सरकारने बिलकुल निराश होकर उसके साथ बातचीत कतई बन्द कर दी। परन्तु बिहारमें मुसलमान अन्याय और अत्याचारके शिकार हुए थे और बिहार मुस्लिम लीग उनकी प्रतिनिधि संस्था थी। गांधीजीने कभी कोई शब्द लीगका अपमान करनेके लिए नहीं कहा और यथासंभव उसका आदर करनेमें भी वे कभी नहीं चूके। बादमें जब मुस्लिम लीगकी उद्धततापूर्ण कार्य-पद्धति कारण बिहारके मुसलमान भी उससे अलग हो गये और दूसरे मुस्लिम दलोंसे उसका खुला संघर्ष हो गया, तब भी गांधीजी उसके विरोधियोंको किसी भी तरहका प्रोत्साहन या सहारा देनेसे अथवा उसकी प्रतिष्ठा कम करनेवाली कोई भी बात कहनेसे हमेशा इनकार करते रहे । वे बार-बार सरकारको लीगके साथ सलाह-मशविरेका प्रयत्न करनेकी सलाह देते रहे।

४

जब गांधीजी नोआखालीमें थे तब उनके प्रति लीगका रवैया संदेहका था। बिहारमें उनके कार्यने मुस्लिम जनता पर भारी असर किया; और निजी बातचीतमें लीगके नेता भी उनमें विश्वास प्रकट करते थे और उनके मिशनकी सफलता चाहते थे। परन्तु सारा वायुमंडल विषाक्त हों गया था। नोआखालीके हिन्दुओंके एक वर्गकी तरह बिहारके मुसलमान उनसे इस बात पर निराश थे कि वे अधिक सेना, अधिक पुलिस, हथियारों और अलग सधन बस्तियोंकी उनकी मांगको पसन्द नहीं करते थे। एक मुस्लिम पत्रलेखकने लिखा, "आप बिहारके पीड़ित मुसलमानोंको

सान्त्वना देनेके लिए कुछ भी नहीं कर सके हैं और न आप सच्चे दिलसे कुछ करना ही चाहते हैं। आपका विशेष मिशन बिहारकी कांग्रेस सरकारकी प्रशंसा करना ही दिखाई देता है।" लीग गांधीजीमें विश्वास रखनेकी बात कहती तो थी, परन्तु भूतकालकी परम्पराके प्रवाहमें बहकर उसने फिरसे अविश्वासके मार्ग पर फिसल जानेकी वृत्ति दिखाई और तुरन्त ही वह गलतफहमीके रास्ते लग गई।

सैयद अब्दुल अजीज और गांधीजीके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह इसका उपयुक्त उदाहरण है। उसके दो दु:खद मुद्दे थे: मुसलमानोंके लिए अलग सधन बस्तियां बनाना और उन्हें हथियार देना। गांधीजी दोनोंके खिलाफ थे। अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने कहा, जो लोग ऐसे सुझाव देते हैं, उन्हें पता नहीं कि वे क्या बात कह रहे हैं। में तो हिन्दुओंको भी हथियार देनेके विरुद्ध हूं। मैंने नोआखालीके हिन्दुओंसे कह दिया था कि उनका हथियार तो ईश्वरके प्रति सजीव श्रद्धा और उस श्रद्धासे पैदा होनेवाला बलवान हृदय होना चाहिये । इसी विषयका दो दिन बाद विस्तार करते हुए गांधीजी बोले, मेरा यह स्वप्न नहीं है कि आपकी इज्जतको सेना और पुलिसके सिपाही बचायें। मेरा स्वप्न तो यह है कि प्रत्येक पुरुष और स्त्री अपने अपने सम्मानका रक्षक स्वयं बने। यह बात अहिंसाके राज्यमें ही संभव है, अन्य किसी भी राज्यमें नहीं । मैं यह बात कहते कभी थकता ही नहीं कि वीरताका सर्वोच्च स्वरूप वह है जो अहिंसाके द्वारा प्रगट हो।

परन्तु ये सब बातें सैयद अब्दुल अजीजकी समझमें नहीं आईं। उन्होंने गांधीजीको लिखा: "आप छोटी छोटी बस्तियां बनानेका विरोध करते हैं, जिनमें बुरी तरह बिखरे हुए मुसलमान सुरक्षित होकर रह सकते हैं। और आपके इस निश्चयसे कि जरूरतमन्द मुसलमानोंको थोड़ीसी बन्दूकें भी न दी जायं, मुझे और दूसरे बहुतोंको गहरी निराशा हुई है। . . . व्यक्तिगत रक्षाका अधिकार एक मानवीय और कुदरती अधिकार है और संसारके सभी देशोंमें सर्वत्र माना गया है। . . . मुझे यह कहते हुए अफसोस होता है कि आपने बार-बार यह कहा है . . . कि आप किसीको व्यक्तिगत रक्षाका अधिकार नहीं देना चाहते। यदि आपके आदर्शवादमें यथार्थवादका पुट होता, तो शायद आप अपने विचार बदल लेते। मुसलमानोंके सामने ११ में से ७ प्रान्तोंमें हिन्दुओंका प्रचंड बहुमत है; इसलिए वे महसूस करते हैं कि अगर आपका यह कानून अमलमें

काया गया, तो उनका विनाश हो जायगा।" [सैयद अब्दुल अजीजका पत्र गांधीजीको, २१ अप्रैल १९४७]

गांधीजीने उत्तर दिया:

मेरा सधन बस्तियां बनानेका विरोध सरकारी सहयोग तक सीमित है, जिसमें बस्तियोंके लिए जमीन प्राप्त करना भी आ जाता है। मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी, यदि पीड़ित मुसलमान मुस्लिम क्षेत्रोंमें इकट्ठे हो जायं | आजादीसे आने-जाने या एक जगहसे दूसरी जगह बस जाने पर कोई पाबन्दी नहीं होनी चाहिये।

आपकी कानून-विषयक सूक्ष्म दृष्टिको इस प्रकारका व्यापक विधान करनेसे आपको रोकना चाहिये था कि आत्मरक्षाके अधिकारका मैंने कभी भी इनकार किया है। उस अधिकारके साथ हथियार रखनेका लाइसेन्स आवश्यक नहीं होता और न होना चाहिये। एक क्षणके लिए भी सोचें तो आपको इसकी निरर्थकता समझमें आ जायगी । आप कदाचित् यही कहना चाहते हैं कि छोठेसे छोटे नागरिकका भी यह अधिकार है कि वह चोरों, डाकुओं और बदमाशोंसे अपनी रक्षाकी मांग राज्यसे कर सकता है। जो सरकार यह कर्तव्य पालन नहीं कर सकती, उसका शासन करनेका सारा अधिकार मारा जाता है। मैं यह भी कह दूं कि न तो अपने इंग्लैंडके निवास-कालमें और न अफ्रीकाके २० वर्षके जीवनमें मैंने कभी ऐसे किसी पश्चिमिको देखा, जिसने मौका पड़ने पर हथियारोंके बिना अपनी रक्षा करनेमें असमर्थता अनुभव की हो। कई और अन्धविश्वासोंकी तरह आपका बताया हुआ यह अन्धविश्वास भी हमारे इस अभागे देश तक ही सीमित दिखाई देता है। [गांधीजीका पत्र सैयद अब्दुल अजीजको, २५ अप्रैल १९४७]

सैयद अब्दुल अजीजने फिर अपनी बातका समर्थन किया: "लगता है कि मेरे पिछले पत्रके दो मुख्य मुद्दों पर आपने ध्यान नहीं दिया। बिखरे हुए मुसलमानोंके लिए सधन बस्तियां बनाना उपद्रव-पीड़ित क्षेत्रोंके शायद दो-तीन स्थानोंके सिवा और कहीं सरकारके सहयोगके

बिना संभव नहीं है । छोटीसी बस्तीके लिए भी काफी जमीन मुसलमानोंके कब्जेमें नहीं है। इसलिए अगर सरकार मकानोंके लिए जमीन प्राप्त करके उन्हें नहीं देती, तो बस्तियां कायम नहीं की जा सकतीं। . . . सरकारने कई जगह सार्वजनिक कार्यके लिए जमीनके बड़े बड़े टुकड़े हस्तगत कर लिये हैं। परन्तु मुसलमानोंकी रक्षाके लिए ऐसा करनेसे वह इनकार करती है। यदि बस्तियां बनानेका आपका विरोध बिहार सरकारके रवैये पर ही आधारित है और प्रस्तावके गुण-दोष पर आधारित नहीं है, तो हम समझेंगे कि आपने सरकार पर अपने विशाल प्रभावका उपयोग नहीं किया।

"यदि आत्मरक्षाके अधिकारके बारेमें आपके विरोधसे सम्बन्धित मेरी टीका आपकी रायमें व्यापक है, तो उसका आधार आपके ही भाषणोंकी रिपोर्टें हैं। उनमें आपने निःसंकोच होकर बंदूक या पिस्तौल द्वारा आत्मरक्षाके अधिकारका विरोध किया है। आपके जवाबसे यह साफ नहीं होता कि अगर आत्मरक्षाके अधिकारका बन्दूकों या पिस्तौलोंके बजाय तलवारों, कृपाणों, कुल्हाड़ों और लाठियों द्वारा उपयोग किया जाय, तो आप उसका समर्थन करेंगे या नहीं। अगर सिर्फ २०-३० मुसलमानों या हिन्दुओंके समूह पर २०० आदमियोंकी भीड़ हमला कर दे और उसके पास तरह तरहके हथियार हों, तो वे थोड़ेसे लोग अधिक अच्छे हथियारों यानी बन्दूकों या राइफलोंके अभावमें सफलतापूर्वक अपनी रक्षा कैसे कर सकेंगे ? मालूम होता है कि पश्चिमी लोगोंके तौर-तरीकोंसे आप काफी प्रभावित हैं। क्या आप सचमुच यह समझते हैं कि एक बुद्धिशाली और व्यावहारिक मनुष्यकी हैसियतसे किसी पश्चिमीको अगर बन्दूक या राइफल मिल जाय, तो आत्मरक्षाके लिए वह उसे काममें नहीं लेगा? अगर वह भारतकी तरह साम्प्रदायिक अल्पमतकी स्थितिमें हो, तो वह न सिर्फ बन्दुक या राइफल ही चाहेगा बल्कि उससे भी अधिक घातक और कारगर हथियार चाहेगा। बिहारके १३ प्रतिशत मुसलमान अपनी रक्षा कैसे करें, जब विशाल संख्यामें कोई विरोधी हिन्दू भीड़ उन पर टूट पड़े और जब उस भीड़को अपने ही आदमियोंके सत्तारूढ़ होनेके कारण दूसरे भी कुछ लाभ प्राप्त हों ?

"बिहार सरकार मुसलमानोंको संगठित लूट, आगजनी और हत्यासे बचानेमें बिलकुल असफल रही है। . . . जो सरकार आज असफल रही वह भविष्यमें भी असफल रहेगी; इसलिए

कुछ बन्दूकें और राइफल कमजोर पक्षके लिए जरूरी हैं। इससे बिहारके मुसलमानों जैसी छोटीसी अल्पसंख्यक कौमकी रक्षाके लिए अपने उपाय और साधन आजमानेके कर्तव्य और जिम्मेदारीसे सरकार मुक्त नहीं हो जाती।" [सैयद अब्दुल अजीजका पत्र गांधीजीको, २६ अप्रैल १९४७]

सैयद अब्दुल अजीजके साथ वाग्युद्ध करना गांधीजीको पसन्द नहीं था। वे पहले ही कह चुके थे कि जब तक सेवाके कार्यों द्वारा वे अपने स्थान पर डटे रह सकते हैं तब तक बहसमें हार जाने पर उन्हें सन्तोष ही होता है। उन्होंने पहले किसी मौके पर आत्मरक्षा और शस्त्र-प्रयोगके बारेमें अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे:

> मुझे द्वन्द्वयुद्धसे घृणा है। परन्तु इसमें एक रोमांचक पहलू भी है। . . . जब मुझे और बड़े भैया (मौलाना शौकतअली) दोनोंको यह विश्वास हो जाय कि रक्तपातके बिना एकताकी कोई संभावना नहीं है और हम दोनों भी शान्तिपूर्वक रहनेके लिए सहमत नहीं हो सकते, तब मैं खुशीसे मौलाना शौकतअलीसे दो दो हाथ कर लूंगा। तब तो मुझे बड़े भैयाको द्वन्द्वयुद्धके लिए आमन्त्रित करना ही होगा। मैं जानता हूं कि वे अपनी मोटी उंगलियोंसे मेरे शरीरको मरोड़कर मेरे टुकड़े टुकड़े कर सकते हैं। उस दिन हिन्दू धर्म मुक्त हो जायगा। अथवा यदि भीम जैसी शक्ति रखकर भी वे मेरे हाथों मर जायंगे, तो भारतमें इस्लाम मुक्त हो जायगा। . . . मुझे घृणा दोनों पक्षोंके गुंडोंके बीचकी स्पर्धासे है। . . . कायरतासे पिंड छुड़ानेका उपाय यह है कि शिक्षित वर्ग गुंडोंसे लड़े। हम लाठियों और दूसरे निर्दोष हथियारोंका उपयोग कर सकते हैं। मेरी अहिंसा उनका उपयोग करने देगी। उस लड़ाईमें हम मर मिटेंगे। . . . [डॉ. अमिय चक्रवर्ती, 'ए सेन्ट एट वर्क', फिलाडेल्फिया, १९५०, पृ॰ ४४]

बिहारके मुसलमान जिन मुसीबतोंमें से गुजरे थे उसके बाद उनके भयके साथ हमदर्दी न रखना गांधीजीके लिए मुश्किल था। फिर भी उन्हें विश्वास था कि वे स्वयं अपने जितने मित्र हैं उसकी अपेक्षा मैं उनका अधिक बुद्धिमान मित्र हूं, यद्यपि उस समय यह बात उन्हें गांधीजी

समझा न सके थे। उन्होंने अपना दावा मुसलमानोंके लिए कुरबान होनेकी तैयारी दिखाकर जल्दी ही सच्चा सिद्ध कर दिया और केवल बिहारके ही नहीं परन्तु सारे भारतके मुसलमान—जो गांधीजीका विरोध करते थे, उनसे झगड़ते थे, उनकी नेकनीयती पर शक करते थे और उन्हें गालियां देते थे—आखिरमें उनके लिए प्रार्थना करने और शोक मनानेको पीछे रह गये। सैयद अब्दुल अजीजको गांधीजीने यह उत्तर दिया था:

> यदि मेरा कोई भी काम मंत्रियोंके रवैये पर निर्भर हो, तो मेरा यहां कोई उपयोग नहीं है। मैं तो यहां इसलिए आया हूं कि यदि कर सकूं तो बिहारके मुस्लिम अल्पसंख्यकोंकी वैसी ही सेवा करूं, जैसी नोआखालीमें मैं हिन्दू अल्पसंख्यकोंकी कर रहा था। मेरा यह हार्दिक विश्वास था, और आज भी है, कि ऐसा करके मैं बहुसंख्यकोंकी भी सेवा करूंगा। इस प्रकार दोनों ही उदाहरणोंमें मैं अधिकारियों द्वारा सधन बस्तियां बनाने और बन्दूकें या राइफलें देनेके विरुद्ध था और आज भी हूं। यह झगड़ेका रास्ता है, मित्रताका नहीं; क्योंकि मित्रताकी जड़ें प्रेममें होती हैं, भयमें नहीं। मनुष्य तो प्रयत्न करते करते मिट ही सकता है, सफलता ईश्वरके हाथमें होती है।
>
> यदि हिन्दुओंको हमेशाके लिए शत्रु कौम ही समझना हो, तब तो मैं स्वीकार करता हूं कि अलग बस्तियोंमें रहना ही सबसे सुरक्षित नीति है। पाकिस्तानकी रचनाके पीछे यही दलील है और उसका मैंने विरोध किया है, यह पूरी तरह जानते हुए भी कि ऐसा करनेवाला शायद मैं अकेला ही रह जाऊंगा। [गांधीजीका पत्र सैयद अब्दुल अजीजको, २८ अप्रैल १९४७]

अब्दुल अजीजके इस कटाक्षका उल्लेख करते हुए कि बिहार सरकारके मंत्री और गांधीजी सशस्त्र पहरेदार रखते हैं, गांधीजीने पत्रमें आगे लिखा: "मंत्री और मैं अगर सशस्त्र रक्षकोंके बिना जी न सकें, तो इससे आप बेशक हमारी कायरतापूर्ण नामर्दी सिद्ध करते हैं; परन्तु इससे आपकी यह दलील नहीं टिक सकती कि नामर्द आदमी बन्दूक या पिस्तौल जैसे हथियार रखें। आत्मरक्षाके लिए मैं, पिस्तौल रखूं, इसकी कल्पना तो जरा कीजिये! ! !"

सैयद अब्दुल अजीजने यह चर्चा चालू रखनेमें कोई काम नहीं देखा। उन्होंने अन्तिम पत्रमें लिखा: "सरकार पहलेसे ही किसी मुसलमानको बन्दूक रखने देनेके विरुद्ध थी और बड़ी मुश्किलसे किसी मुसलमानको बन्दूक रखने देती है। और अब तो जरा भी पसोपेश रखे बिना वह इनकार कर देगी । आपका समर्थन प्राप्त की हुई सरकारकी नीतिसे मुसलमानोंको यह फैसला करनेमें मदद मिलनी चाहिये कि या तो वे कांग्रेसके सामने पूरी तरह झुक जायं या सदाके लिए प्रान्तको छोड़ दें।" [सैयद अब्दुल अजीजका पत्र गांधीजीको, २९ अप्रैल १९४७]

इसका उत्तर गांधीजीने यह दिया, "आपका यह कहना ठीक नहीं है कि 'आपका समर्थन प्राप्त की हुई सरकारकी नीतिसे मुसलमानोंको यह फैसला करनेमें मदद मिलनी चाहिये कि या तो वे कांग्रेसके सामने पूरी तरह झुक जायं या सदाके लिए प्रान्तको छोड़ दें।' मेरी नीति यह है कि सामान्य परिस्थितिथोंमें नागरिकोंको बन्दुक-पिस्तौल ना दिये जायं और गरीब हों या अमीर, सब नागरिकोंकी पूरी रक्षा की जाय। अगर मैं बिहार सरकारके बारेमें कुछ भी जानता हूं तो मैं कह सकता हूं कि वह नहीं चाहती कि मुसलमान या और कोई भी कांग्रेसके सामने झुक जायं अथवा हमेशाके लिए प्रान्तको छोड़कर चले जायं ।" [गांधीजीका पत्र सैयद अब्दुल अजीजको, २९ अप्रैल १९४७]

गांधीजीकी स्थिति बड़ी नाजुक थी। उनकी दलीलें मुसलमानोंके बुद्धिशाली वर्गको पसन्द नहीं आती थीं। इतनी बात जरूर थी कि चूंकि उन्होंने बिहारके मुसलमानों जैसी ही स्थितिवाले नोआखालीके हिन्दू अल्पमतके लिए भी ऐसा ही उपाय सुझाया था, इसलिए उनके हेतु पर शंका नहीं की गई । परन्तु उनके विचारोंको आदर्शवादी और ऊटपटांग समझकर अस्वीकार किया गया। यह आश्चर्यकी बात है कि बिहारकी मुस्लिम जनतामें उन्होंने विश्वास पैदा कर दिया था। ऐसा लगता था कि वह अंतःप्रेरणासे गांधीजीकी बातको समझ गयी और अपने गांवोंको लौटने लगी थी। हां, जहां किसी छुटपुट प्रतिकूल घटनासे या लीगके प्रचारसे मुसलमान फिरसे डर गये वहां वे नहीं लौटे। मेजर जनरल शाहनवाज मसौढ़ीमें रखे गये थे और गांधीजीके पथ-प्रदर्शनमें काम कर रहे थे। उनकी एक रिपोर्टसे दिये गये दो उदाहरण उस परिवर्तनको बताते हैं, जो बिहारके वातावरणमें हो रहा था: "अतरपुरा गांवमें हमने एक सभा करके ग्राम-पंचायतकी

स्थापना की। दो दिन बाद पंचायतका मुखिया पटना आया, विविध शिविरोंमें सब निराश्रितोंसे मिला और उन्हें यह आश्वासन उसने दिया कि हम गांवमें आप लोगोंका स्वागत करेंगे . . . और अपने प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेंगे। इसके परिणामस्वरूप लगभग पचास मुस्लिम परिवार गांवमें लौट आये हैं और बड़े सुखसे रह रहे हैं। वहां न कोई पुलिस रखी गई है और न उन्होंने पुलिस मांगी है। जब मैंने वहां राशन भेजा तो हिन्दुओंने लेनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मुसलमान हमारे मेहमान हैं और हम उन्हें खिलाने-पिलाने और उनकी फसल काटने वगैराका उचित प्रबन्ध कर देंगे

"दूसरे उदाहरणमें बीर गांवका एक मुसलमान मेरे पास आया और उसने मुझसे कहा कि वह अपने गांवको लौटना चाहता है। दंगेके बाद लौटनेका उसके लिए यह पहला मौका था। वह रो रहा था और अकेला जानेमें डरता था। मैंने उसे अपनी मोटर दी और उसके साथ आजाद हिन्द फौजके दो सैनिक भेज दिये। रास्तेमें वह बीर गांवकी पंचायतके एक हिन्दू सदस्यसे मिला। उसने मोटर रोककर उससे पूछा: 'तुम रक्षकोंको क्यों साथ ले जा रहे हो?' मुसलमानने कहा: 'मुझे डर लगता है।' तब हिन्दू भाईने उससे कहा: यह तो शर्मकी बात होगी कि गांधीजीके आश्वासनोंके बाद भी तुम्हें अपने साथ रक्षक-दल ले जानेकी जरूरत हो। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि तुम्हारा बाल भी बांका होनेसे पहले मैं अपनी जान दे दूंगा। इस पर मुसलमान भाई मेरे पास लौट आया और कहने लगा कि रक्षकोंकी मुझे जरूरत नहीं, क्योंकि मैं अपने आपको बिलकुल सुरक्षित अनुभव करता हूं।"

इस परिवर्तनसे मुस्लिम लीग घबरा गई। शान्ति-समितिके कार्यकर्ताओंको मालूम हुआ कि जो लोग अपने गांवोंमें लौट गये हैं, उनमें लीगके स्वयंसेवक घबराहट पैदा कर रहे हैं। प्रशासनमें समानता रखनेकी दृष्टिसे सरकारने अन्तमें निश्चय किया कि सारे निराश्रित-शिविर सरकारके नियंत्रणमें ले लिये जायं । अपने पैरोंके नीचेसे जमीन खिसकती देखकर लीगने निराश होकर अंतिम प्रयास किया।

पटनामें दीघा-शिविर मुस्लिम लीगके नियंत्रणमें चलनेवाला निराक्षित-शिविर था। सरकारने आदेश जारी किया कि लीगके स्वयंसेवकोंको आगेसे सरकारी राशन नहीं मिलेगा और उन्हें शिविरमें सोने नहीं दिया जायगा। यह आदेश उन सभी दलों पर लागू होता था, जो शिविरोंका नियंत्रण करते थे, और सरकार द्वारा शिविरोंका पूरा नियंत्रण अपने हाथमें लेनेकी दिशामें पहला कदम था। लीगने इसका प्रतिकार करनेका निश्चय किया। लीगके अध्यक्ष और मंत्री गांधीजीसे १५ अप्रैलको मिले। वैसे ये लोग उनसे बहुत कम मिलने जाते थे। वे चाहते थे कि सरकारी आदेश रद्द कर दिया जाय या कमसे कम २० अप्रैल तक स्थगित रखा जाय, ताकि उस बीच वे दिल्ली जाकर जिन्नासे सलाह-मशविरा कर आयें।

प्रान्तीय लीगके अध्यक्ष सैयद जाफर इमामने गांधीजीको समझाया : हम सरकारसे इसलिए सहयोग नहीं कर रहे हैं कि उसने हमारी मांगों पर चर्चा करने तककी परवाह नहीं की; परन्तु जन-साधारणके हितका खयाल करके हम निराश्रितोंके पुनर्वास-कार्यमें बाधा नहीं डाल रहे हैं। निराक्षित-शिविरकी स्थितिका उनका अपना वर्णन यह था: सरकारने आज्ञा दी है कि तमाम निराश्रितोंको अपने गांवोंमें लौट जाना चाहिये, नहीं तो उनका राशन बन्द कर दिया जायगा। दंगोंके शिकार बने लोगोंको घर लौटानेका यह तरीका नहीं होता। लीगके स्वयंसेवकोंको शिविर छोड़नेका आदेश दिया गया है। आज मजिस्ट्रेट इस आदेशका पालन कराने जायंगे। अगर कोई समझौता न हुआ तो मेरे स्वयंसेवक गिरफ्तार हो जायंगे। जिन लोगोंकी रक्षा करनेकी उन्होंने शपथ ली है, उन्हें वे इस तरह बेइज्जतीसे छोड़कर नहीं जा सकते । सैयद जाफर इमामने खिलाफतके उन अच्छे दिनोंकी याद दिलाई जब गांधीजीको हिन्दू और मुसलमान दोनों अपना ही आदमी समझते थे। उन्होंने गांधीजीमें पूर्ण श्रद्धा दिखाई और आशा प्रकट की कि वे बिहार सरकार और लीगके बीच समझौता करा देंगे। इसके पीछे सारी कल्पना यह थी कि सरकारको गांधीजीकी सहायतासे दोषी ठहराया जाय और बादमें यदि गांधीजी उनकी मांगका समर्थन करें तो “बिहारकी अत्याचारी कांग्रेस सरकार” के विरुद्ध—जिसके निर्णयोंको बदलवानेके लिए गांधीजीको भी मजबूर होना पड़ा—मुस्लिम निराश्रितोंके सफल संरक्षक बननेका दंभ किया जाय; और यदि गांधीजी उनकी मांगका समर्थन न करें, तो उनकी

निन्दा की जाय। गांधीजीने सैयद जाफर इमामसे कहा, अगर सरकारका यह आदेश है कि लीगके स्वयंसेवकोंको शिविरसे चले जाना चाहिये, तो उन्हें ऐसा करना चाहिये; नहीं तो सरकारके सामने उनका पक्ष लेना मेरे लिए बहुत कठिन होगा।

जाफर इमाम : "हम आपके स्नेहके सामने सिर झुकाते हैं। सरकार लीगको शिविरसे इसलिए हटाना चाहती है कि निराश्रितोंमें उसका प्रभाव नष्ट हो जाय। इससे निराश्रित लोग असहाय हो जायंगे और वे सरकारकी धमकियोंके दबावमें आकर मजबूरन अपने गांवोंको लौट जायंगें। हमारा खयाल है कि इस प्रकार हमारे संगठनको कमजोर बनानेकी कोशिश करना ठीक नहीं है।"

गांधीजीने उन्हें विश्वास दिलाया कि इस प्रकार लीगका प्रभाव कोई नष्ट नहीं कर सकता। मैंने तो यहां तक कह दिया है कि स्वतंत्र भारतके पहले राष्ट्रपति जिन्ना बनें तो मुझे खुशी होगी। लीग मुझे अपना दुश्मन समझती है, परन्तु मेरा उसके साथ कोई झगड़ा नहीं है। ऐसी बातोंसे मुझे केवल हंसी आती है। उन्होंने आगे कहा कि एक मुस्लिम लीगी नेताने दिल्लीमें मुझे खुले तौर पर मुसलमानोंका शत्रु बताया था, परन्तु दूसरे दिन उनकी पत्नी अपनी बहनके साथ आई और मुझसे मित्रतापूर्ण और हार्दिक बातचीत करके गई। यदि मैं सच्चा हूं तो दूसरे लोग किसी न किसी दिन अवश्य मुझे समझेंगे । हमारे बुरे दिन आ गयें हैं, परन्तु मेरा ईश्वरमें पूरा विश्वास है।

गांधीजीके मुलाकातियोंकी इन सब बातोंमें जरा भी दिलचस्पी नहीं दिखाई दी। लीग केवल समय बितानेका खेल खेल रही थी और अन्तमें गांधीजीको परेशान होकर पीछे हटना पड़ा। आगेकी बातचीत इस प्रकार चली :

गांधीजी : "तो हम दुबारा मिलकर सारे मामलेकी चर्चा करें।"

जाफर इमाम: "हम सब दिल्ली जा रहे हैं और २० अप्रैल तक वापस नहीं आयंगे।"

गांधीजी : "तो अपनी ओरसे काम करनेके लिए आप किसी औरको नियुक्त कर दीजिये।"

जाफर इमाम : “यहां कोई नहीं होगा। आप तो कृपा करके २० तारीख तक सरकारी आदेशको स्थगित करा दीजिये। लौट कर हम आपके साथ इस विषय पर चर्चा करेंगे और किसी निर्णय पर पहुंचेंगे।”

गांधीजी : “मैं मंत्रियोंसे इस सम्बन्धमें बात करके उनका दृष्टिकोण समझ लूंगा। यदि उनसे बात करनेके बाद मुझे ऐसा लगा कि आपके स्वयं सेवकोंको चले जाना चाहिये, तो क्या वे चले जायंगे?”

जाफर इमाम: “हमारी प्रार्थना है कि आप वहां न जायं। अगर कोई आपके साथ दुर्व्यवहार करेगा, तो हमें बड़ी तकलीफ होगी। हम नहीं चाहते कि आपकी आज्ञाकी अवज्ञा की जाय।”

यहां गांधीजीके एक सचिव बीचमें आ गये। उन्होंने समझाया कि अभी तो सरकारका आदेश इतना ही है कि स्वयंसेवकोंको सरकारी राशन नहीं मिलेगा और उन्हें वहां सोने नहीं दिया जायगा। यह आदेश सभी स्वयंसेवकों पर बराबर लागू होता है और किसी खास कौम अथवा संगठनके विरुद्ध नहीं है।

जाफर इमाम : “रात ही का तो ऐसा समय होता है जब स्त्रियों और बच्चोंको संरक्षणकी जरूरत होती है।”

गांधीजी : “मान लीजिये कि मैं या मेरा कोई प्रतिनिधि वहां जाकर सो जाता है, तो क्या इससे काम नहीं चलेगा?”

जाफर इमाम: “हम नहीं चाहते कि आप इस उम्रमें स्वयं कष्ट उठायें। हमारी प्रार्थना तो इतनी ही है कि आप इस आदेशको २० ता. तक रुकवा दें। इससे कई अनावश्यक उलझनें रुक जायंगी।”

जाफर इमाम दिल्ली जाकर जिन्नासे मिले, परन्तु पटना लौटनेके बाद गांधीजीसे कभी मिलने नहीं आये । इसके बजाय २९ अप्रैलको उन्होंने निर्दोषके साथ अन्याय होनेका दिखावा करते हुए गांधीजीको यह पत्र लिखा: “१५ अप्रैल, १९४७ को आपसे मेरी . . . जो बातचीत हुई थी,

वह अखबारोंमें पूरी नहीं आई है और कुछ पत्रोंने उसे तोड़-मरोड़ कर गलत रूपमें दिया है। इससे अनावश्यक गड़बड़ी पैदा हो गई है, और ध्येयको लाभ पहुंचनेके बजाय हानि हो सकती है। आशा है, आपको याद होगा कि जब आपने निराश्रितोंके पुनर्वासके मामलेमें हमारा सहयोग मांगा तब हमने आपसे कहा था कि . . . हमें सरकार पर कोई विश्वास नहीं है और इसलिए हमने मुख्यमंत्रीसे मिलना छोड़ दिया है; और चूंकि आपने यह घोषणा की थी कि आप शान्तिका मिशन लेकर बिहार आये हैं और हम उस मिशनमें आपकी सफलता चाहते थे, इसीलिए हम आपके पास आये थे और हमने उसमें अपना सहयोग देनेका प्रस्ताव आपके सामने रखा था। मैं आपको यह भी याद दिला दूं कि राष्ट्रीय मुसलमानोंके बारेमें हमारी आपसे कोई बात नहीं हुई थी; तब उनमें विश्वास रखनेका तो सवाल ही नहीं उठता। मैं मानता हूं कि हमारी बातचीत आपके स्टेनोग्राफरने नोट की थी। आशा है, आप उसे देखकर मुझे जवाब भेजनेकी कृपा करेंगे। . . ."

इस मुलाकातके बाद गांधीजीने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें इतना ही कहा था और वही अखबारोंमें छपा था: "मैं लीगियोंसे भी मिला। उन्होंने कहा कि यद्यपि वे लीगके आदमी हैं, फिर भी इसका यह मतलब नहीं कि वे गैर-लीगी मुसलमानोंके दुश्मन हैं। लीगके अध्यक्ष जाफर इमाम साहब डॉ. महमूदके बड़े दोस्त हैं।"

गांधीजीने अपने सचिवसे, जिसने बातचीतके कच्चे नोट लिये थे, सारी मुलाकातका पूरा वर्णन तैयार करने और उसे कच्चे नोटोंकी नकल तथा जिस प्रार्थना-प्रवचनमें उस बातचीतका उल्लेख किया गया था उसकी नकलके साथ जाफर इमामको भेजनेकी सूचना की। साथके पत्रमें गांधीजीने लिखा: "हमारी बातचीत इतनी हार्दिक थीं कि मैंने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें उसका उल्लेख कर दिया। उसका संक्षिप्त विवरण अंग्रेजी अखबारोंको भेजा गया था। अखबार अपनी ओरसे क्या लिखते हैं, वह मैं नहीं पढ़ता। . . . उसमें अगर कोई भूल हो, तो कृपया बता दीजिये।"

इसके बाद लीगी नेता गांधीजीसे हमेशा दूर रहे। परन्तु वे उन्हें तार खूब भेजते रहे, जिनमें बहुत बढ़ा-चढ़ाकर शिकायतें की जाती थीं, तथ्योंकी जांच करनेकी जरा भी कोशिश नहीं की जाती थीं और बादमें वे शिकायतें ही अखबारोंमें छपनेको लिए भेज दी जाती थीं।

सोलहवां अध्याय
‘अगर मैं मंत्री होता’

१

मुसलमानोंके पुनर्वासके मार्गमें एकमात्र बाधक मुस्लिम लीग ही नहीं थी । खाकसार भी उसमें बाधक थे।

खाकसारोंका एक अर्ध-सैनिक संगठन था। वह हिटलरके नाजी तूफानी दलसे मिलता-जुलता था। उसका स्वीकृत उद्देश्य भारत और संसार पर “मुस्लिम आधिपत्य” स्थापित करना था। इस ध्येयकी सिद्धिके उपायोंमें बल-प्रयोगकी मनाही नहीं थी। भूतकालमें उनके आक्रमणका विशेष लक्ष्य कांग्रेस थी और १९३७ में प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडल बन जानेके बाद इस बातका प्रबल सन्देह किया जाता था कि ब्रिटिश नौकरशाही कांग्रेसके आंदोलनका मुकाबला करनेके लिए इन लोगोंको प्रोत्साहन और संरक्षण देती है। उनका दुर्भाग्य यह था कि हमेशा किसी न किसी समूहसे उनका झगड़ा बना रहता था और अन्तमें उनकी हिंसापूर्ण कार्य-पद्धतिने केन्द्रीय सरकार को उनके खिलाफ कार्रवाई करनेके लिए मजबूर कर दिया। जब गांधीजी नोआखालीमें थे तब खाकसारोंके कुछ प्रतिनिधि उनके पास यह प्रार्थना लेकर गये थे कि वे केन्द्रकी अन्तरिम सरकारसे कहकर उनके कुछ जेलमें बन्द आदमियोंको रिहा करा दें। गांधीजीने उन्हें सारे सम्बन्धित कागजात भेजनेके लिए कहा। किन्तु वे कागजात उन्होंने कभी नहीं भेजे।

बिहारके दंगोंके बाद खाकसारोंकी टोलियां बिहार भेजी गईं। इसका उद्देश्य तो यह बताया गया था कि जाति और धर्मकी परवाह किये बिना उपद्रव-पीड़ित लोगोंकी मानवतापूर्ण सेवा की जायगीं; परन्तु सच्चा ध्येय था अपने संगठनकी खोई हुई प्रतिष्ठाको पुन: स्थापित करना।

बिहार सरकारकी नीति निराश्रितोंके कष्ट-निवारण और पुनर्वासके काममें गैर-सरकारी संस्थाओंके सहयोगका स्वागत करनेकी थी। उसके अनुसार उसने खाकसारोंको उनका काम

करनेकी सुविधाएं दीं। इससे प्रोत्साहित होकर खाकसारोंने बादमें बिहार सरकार और अपने बीच एक "करार" या "समझौता" करनेकी दिशामें कदम बढ़ाया। और बातोंके अलावा "समझौते" में ये शर्तें भी रखी गई थीं: (१) जिन निराश्रितोंको खाकसार प्रामाणिक निराश्रित होनेका प्रमाण-पत्र दें, उन्हें प्रति व्यक्ति १ हजार रुपयेकी पुनर्वास-सहायता दी जाय; (२) खाकसार संगठनका ब्योरेके मामलोंमें बिहार सरकारके साथ सीधा सम्पर्क होना चाहिये और कोई झगड़ेकी बात खड़ी हो तो उसे मुख्यमंत्रीके साथ सीधा निबटारा करनेकी सत्ता होनी चाहिये; (३) घरोंकी योजना बनाने और उचित स्थानों पर निराश्रितोंको फिरसे बसानेका काम खाकसार संगठन पर छोड़ दिया जाना चाहिये; (४) खाकसार संगठनकी देखभालमें बसनेवाले लोगोंकी जमीनों और अचल सम्पत्तिकी तथा लावारिस अथवा छोड़ी हुई सम्पत्तिकी उचित व्यवस्था करनेकी सत्ता खाकसार रिलीफ कमेटीको होनी चाहिये; (५) खाकसारोंको वैतनिक इंजीनियरों और भवन-निर्माताओंका एक संगठन खड़ा करना चाहिये, जो सर्वथा उनके मातहत काम करे और बिहार सरकारको उनकी सेवाओंके लिए उन्हें वेतन देना चाहिये; और (६) कष्ट-निवारणकी योजनाको सफल बनानेके लिए टैक्स लगानेके खाकसार संस्थाके एक प्रस्ताव पर बिहार सरकारको अनुकूल विचार करना चाहिये। [नवाब अरबाब शेर अकबर खान द्वारा अपने पत्रके साथ गांधीजीको भेजे गये समझौता-करारका मसौदा, २१ मई १९४७]

साथ ही उन्होंने निराश्रितोंमें यह प्रचार आरम्भ कर दिया कि जब तक बिहार सरकार खाकसारोंकी "घटाई न जा सके ऐसी अल्पतम" मांगोंको स्वीकार न कर ले तब तक उन्हें अपने गांवोंमें वापस नहीं जाना चाहिये । बिहार सरकार इन मांगोंको स्वीकार नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसका परिणाम होता "कुछ कार्योंके बारेमें सरकारका स्थान दूसरी संस्थाको देना।" [गांधीजीका पत्र शेर अकबर खानको, २१ मई १९४७]

७ मार्चको गांधीजीके पटना पहुंचनेके थोड़े समय बाद खाकसार उनके सामने अपनी "शिकायतें" पेश करनेके लिए उनसे मिले। गांधीजीने उनसे कहा कि बिहार सरकार कुदरती तौर पर किसी भी ऐसी संस्थाकी सहायता स्वीकार करेगी, जो सरकारकी शर्तों पर काम करनेको तैयार हो। परन्तु मैं उसे किसी प्रजाकीय संस्थाके पक्षमें अपना कोई कार्य छोड़ देनेकी सलाह

नहीं दे सकता। खाकसार नेता अपनी पिछली निःस्वार्थ सेवाके इतिहासकी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करने लगे, जो "साम्प्रदायिक पक्षपातसे सर्वथा" अछूती रही थी। गांधीजीने कहा: यह कष्ट न कीजिये । आप मुझसे पहली ही बार नहीं मिल रहे हैं। मैं आपको बहुत अच्छी तरह जानता हूं ! इस उद्‌गारका सूक्ष्म व्यंग्य इन बलिष्ठ योद्धाओंकी समझमें नहीं आया, अथवा शायद उन्होंने उसकी उपेक्षा की। उनका सालार (नेता) इस उद्‌गार पर उछल पड़ा और बोला: चूंकि आप हमें जानते हैं, इसलिए मुझे यकीन है कि आप हमारी गारंटी देकर सरकारको हमारी मांगें "स्वीकार" करनेके लिए "विवश" करेंगे। उस सूरतमें हम तमाम निराश्रितोंको वापस ले आयंगे, क्योंकि हमारी "निष्पक्ष" सेवाके इतिहासको देखते हुए निराश्रितों और हिन्दू जनता दोनोंको हम पर पूरी श्रद्धा है !

थोड़े दिन बाद वे गांधीजीसे फिर मिले और बोले : हम "अपने ही ढंग" से काम करनेकी स्वतन्त्रता चाहते हैं—सरकारको हमें रुपया देना चाहिये । परन्तु गांधीजीने बिलकुल साफ कहा: आपको सरकारके मातहत काम करना होगा और उसकी नीति पर अमर करना होगा। याद रखिये कि सरकारको दूसरे दलोंका भी विचार करना पड़ता है। उदाहरणके लिए, वह पहले मुस्लिम लीगका सहयोग प्राप्त करनेकी कोशिश जरूर करेगी। अगर लीग सहयोग देनेसे इनकार कर देगी तभी वह दूसरे दलोंसे बातचीत करेगी ।

खाकसारोंने अपने स्थानोंको लौटनेवाले निराश्रितोंकी रक्षाके लिए निराश्रितोंकी एक "सहायक सेना" खड़ी करनेकी वांछनीयताकी बात कही । गांधीजी इसके भी विरुद्ध थे। वे इस प्रस्तावसे भी सहमत नहीं हुए कि जो लोग प्रान्त छोड़कर चले गये थे, उनकी सम्पत्तिका ट्रस्ट बना दिया जाय। उन्होंने कहा, इसके बजाय मैं सरकारको अपनी शर्तें बता देनेकी सलाह दूंगा। जो निराश्रित लौट आयेंगे उन्हें जितनी भी रक्षा और सहायताकी जरूरत होगी वह सब दी जायगी, परन्तु जो नहीं आयेंगे उनके सम्बन्धमें सरकार कोई जिम्मेदारी नहीं लेगी । "इस प्रकार अगर पांच ही निराश्रित लौटे और उनके साथ अच्छा बरताव किया गया, तो उनके पीछे पांच दूसरे जरूर चले आयेंगे। यदि सरकार अपने दायित्व पर पूरा अमल करेगी, तो मुझे विश्वास है कि तमाम निराश्रित लौट आयेंगे।"

खाकसारोंके साथ चर्चा आगे नहीं बढ़ सकी, क्योंकि लीगसे अभी तक बातचीत चल रही थी । लेकिन अन्तमें मुस्लिम लीगने सरकारके साथ असहयोगकी घोषणा कर दी। उस वक्त तक सरकारकी अपनी योजना अमलमें आ गई थी और सरकार बरसात शुरू होनेसे पहले ही बरबाद हुए घरोंको फिरसे बनानेका काम समाप्त करनेके लिए उत्सुक थी। इस मंजिल पर वह किसी नये संगठनके मातहत चलनेवाली किसी नई योजनामें शरीक नहीं हो सकती थी। खाकसार चाहते तो वर्तमान योजनाके अधीन काम कर सकते थे। परन्तु ऐसा करनेको वे तैयार नहीं थे।

मईके अन्तमें यह प्रश्न फिर हाथमें लिया गया। २१ मईको गांधीजीने खाकसारोंको लिखा: "आपने मुझे इकरारनामेका जो मसौदा भेजा है, उसे देखते हुए मेरे खयालसे हमारे मिलनेमें कोई सार नहीं है। मेरी रायमें यह इकरारनामा एक विशेष हेतुके लिए सरकारको स्थानभ्रष्ट करना चाहता है। मेरे विचारसे कोई सरकार ऐसा नहीं कर सकती और न उसे ऐसा करना चाहिये। . . . चूंकि मेरे ये विचार मजबूत हैं, इसलिए आपके लिए उत्तम मार्ग यही है कि आप सरकारसे सीधे समझौता करें।"

खाकसारोंकी कार्य-पद्धतिसे गांधीजी चिढ़ गये। उन्होंने गांधीजीके मुंहमें वे शब्द रख दिये, जो उन्होंने कभी कहे ही नहीं। उन्होंने निराश्रितोंके पुनर्वासके बारेमें "खाकसार-सरकार समझौते" में देर होनेके लिए गांधीजीको जिम्मेदार ठहराया । फिर भी वे गांधीजीको चैन नहीं लेने देते थे, क्योंकि वे जानते थे कि गांधीजी ही एक ऐसे आदमी हैं, जिनके द्वारा आंशिक रूपमें भी वे अपनी मांगें स्वीकार करा सकते हैं। २१ मईका गांधीजीके नाम उनका पत्र उनकी कार्य-पद्धतिका अच्छा नमूना है: "उसके बाद हमने अपने इकरारनामेके मसौदेको बार-बार पढ़ा और उससे मैं यह नहीं समझ सका कि कैसे यह इकरारनामा 'एक विशेष हेतुके लिए सरकारको स्थानभ्रष्ट करना चाहता है।' मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि (उसके पीछे) इसके सिवा और कोई हेतु नहीं है कि जो लाखों अभागे लोग आपके शब्दोंमें 'बिहार मंत्रि-मंडलके लज्जाजनक और अशोभन व्यवहार' के शिकार हैं, उनके पुनर्वासका काम जल्दी, आसान और कारगर हो। . . . आपने मेरे मसौदेको दुर्भाग्यपूर्ण बताया है। मैं नम्रतापूर्वक आपके इस निर्णयको अन्यायपूर्ण मानता हूं कि 'हम सरकारको स्थानभ्रष्ट करना चाहते हैं।' अब मैं मसौदेके आपके पाठकी प्रतीक्षा

करूंगा। . . . चार लाख अभागोंके पुनर्वासके मामलेमें आप जो सल्लाह देंगे, सरकार वही करेगी। आप अगर कुछ नहीं कहेंगे, तो सरकार कुछ नहीं करेगी । मुझे डर है कि अब तक कुछ न किये जानेका दोष आप पर है। . . . उधर आपके साथ हमारी हुई दो दिनकी बातचीतसे मुझे विश्वास हो गया है कि आप इस बातके लिए बहुत उत्सुक हैं कि हम जल्दीसे जल्दी यह काम हाथमें ले लें। . . . जैसा मैं कह चुका हूं, आप जो मसौदा सुझायेंगे वह मुझे स्वीकार होगा। जब हम कल आपसे मिले तब कृपया उसे तैयार रखियेगा।"

इसका उत्तर दूसरे दिन गांधीजीने यह दिया:

> मैं देखता हूं कि हम एक-दूसरेसे सहमत नहीं हैं। मैंने बिहार सरकार पर "लज्जाजनक और अशोभन व्यवहार" का दोषारोपण कभी नहीं किया। मैं चाहता हूं कि जिस पत्रसे आपने मेरा उद्धरण दिया है, वह पत्र मेरे पास भेज दें। मैं इकरारनामेका कोई दूसरा मसौदा नहीं सुझा सकता । ऐसा कोई इकरारनामा हो ही नहीं सकता । बिहार सरकारके किये हुए या न किये हुए कामोंके लिए आप चाहें तो मुझ पर कुछ भी आरोप लगा सकते हैं। आपने सरकारके जिस पत्रकी नकल मेरे पास भेजी है, उसमें मुझे कोई अनुचित या बुरी लगनेवाली बात दिखाई नहीं देती।

इससे खाकसारोंका क्रोध ठंडा पड़ गया: "हमारे 'एक-दूसरेसे सहमत न होनेंका' कोई सवाल नहीं है। हम . . . कठिनाइयोंके होते हुए भी एक-दूसरेके लिए अनुकूल बनकर काम कर सकते हैं। आप पुनर्वासके मासलेमें अपने विचार पहले ही प्रकट कर चुके हैं और दूसरे लोग परिस्थितिको सुधार न सकें तो भी आप जरूर सुधार सकते हैं। हमारा उद्देश्य तो केवल काम ही करना है । हमारे मनमें कोई दुराव-छिपाव नहीं है। . . . जब हम आपसे मिलें . . . तब प्रस्तावित मसौदेमें हमारे दोष आप बता सकते हैं।" [शेर अकबर खानका पत्र गांधीजीको, २२ मई १९४७]

२३ मईको खाकसार गांधीजीसे फिर मिले । उसी दिन उन्होंने एक पत्र लिखा, जिसमें नम्रताका दिखावा होने पर भी कोई समझौता किये बिना अपने ही रास्ते पर चलनेका उनका

संकल्प स्पष्ट था । फिर भी उनके दृष्टिकोणको यथाशक्ति सन्तुष्ट करनेकी उत्सुकतासे गांधीजीने एक मसौदा तैयार करके दे दिया। उसके बाद एक पत्र लिखा:

कल शामको जिन प्रस्तावोंके मसौदेकी एक नकल आपके पास भेजी गई थी . . . और जिन्हें स्वीकार करनेकी बिहार सरकारसे सिफारिश करनेको मैं तैयार हूं, उनके बारेमें मुझे आशा है कि आपकी संस्था सरकार और उसके आदेशोंके अधीन रहकर काम कर सकेगी। अलबत्ता, मंत्रि-मंडलको यह छूट होगी कि वह परिस्थितिके अनुसार समय समय पर उन प्रस्तावोंमें परिवर्तन कर सके। मेरी सलाह है कि आप पुनर्वास-मंत्री अंसारी साहबसे मिल कर कामका ब्योरा तय कर लें। [गांधीजीका पत्र शेर अकबर खानको, २४ मई १९४७]

प्रस्तावोंका मसौदा यह था:

"जहां घर अभी तक फिरसे बनाये नहीं गये हैं और निराश्रित खुद ही बना लेना पसन्द करें, वहां सरकार यह सबूत मिलने पर कि सचमुच उतना जरूरी खर्च किया गया है १००० रुपये तककी सहायता देगी, इससे अधिक नहीं । विशेष मामलोंमें गुण-दोषके आधार पर अधिक खर्च देनेका भी विचार किया जायगा।

"जब आवश्यकता होगी, पांच आदमियोंके प्रत्येक परिवारको पुनर्वास-सहायता दी जायगी, जो ५०० रुपयेसे अधिक नहीं होगी।

"कारीगरों और किसानोंको बिना ब्याजके कर्ज दिये जायंगे, जिनसे बीज या करघे आदि औजार खरीदे जा सकें। वे पांच वर्षमें पांच किस्तोंमें अदा किये जा सकेंगे।

"बच्चोंके लिए मुफ्त शिक्षाकी व्यवस्था की जायगी और जिन्हें जरूरत होगी उन्हें काम दिया जायगा। निराश्रितोंके व्यवस्थित रूपसे बस जाने तक कामके बदले राशनकी व्यवस्था भी की जायगी।

"अनाथालयों और विधवा-गृहोंके लिए भी व्यवस्था की जायगी।"

परन्तु गांधीजीके सुझावोंके अनुसार सम्बन्धित मंत्री अंसारी साहबसे सम्पर्क स्थापित कर सकनेके पहले ही खाकसारोंका पुलिसके साथ संघर्ष हो गया । बिहारकी सारी मुस्लिम निराश्रित जनताको अपनी पुनर्वास-योजनाके द्वारा काबूमें लेनेकी महत्त्वाकांक्षामें निराश होकर उन्होंने सत्ताके लिए सम्मानका बाहरी दिखावा करनेका भी कष्ट नहीं उठाया।

इसी समय "बहादुरशाह दिवस" आ गया, जिसे अखिल भारतीय खाकसार संस्थाने १० जूनको सारे भारतमें मनानेका निश्चय किया था। बहादुरशाह दिल्लीका अन्तिम मुगल सम्राट् था, जिसे १८५७ के सिपाही-विद्रोहके बाद गद्दीसे उतार दिया गया था। वह मांडले (बर्मा) में अंग्रेजोंके कैदीकी हैसियतसे निर्वासनमें ही मरा था। खाकसारोंने मुस्लिम आधिपत्यकी पुनर्स्थापनाके अपने आन्दोलनको आगे बढ़ानेके लिए एकत्र होनेके एक प्रतीकके रूपमें उसके नामका उपयोग किया। एक बार बिहार सरकार पहले असावधानीके कारण मुसीबतमें फंस चुकी थी, इसलिए अब वह फिरसे ऐसा नहीं होने देना चाहती थी। इसलिए सरकारने खाकसारोंकी सभा तो होने दी, परन्तु उन्हें स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि किसी भी हालतमें जुलूस नहीं निकलने दिया जायगा।

किन्तु १० जूनको प्रातःकाल स्थानीय अधिकारियोंको सूचना मिली कि खाकसार अनुमति मांगे बिना ही शामको जुलूस निकालना चाहते हैं। इसलिए शहरके मुसलमान पुलिस-सुपरिस्टेन्डेन्टने जाकर खाकसारोंके स्थानीय नेतासे सम्पर्क स्थापित किया और उसे समझाया कि सभाओं और जुलूसोंके लिए निषेधाज्ञा अभी भी अमलमें है, इसलिए आपको प्रस्तावित जुलूसका विचार छोड़ देना चाहिये । खाकसार नेताने पुलिस-सुपरिस्टेन्डेन्टकी बात माननेसे इनकार कर दिया और कहा कि मुझे जुलूस निकालनेका मेरे नेताओं- से हुक्म मिला है और मैं किसी भी कीमत पर जुलूस निकालूंगा। इस पर पुलिस-सुपरिस्टेन्डेन्ट और सब-डिविजनल अफसरने जुलूसको बननेसे रोकनेकी कोशिश की, परन्तु खाकसार गल्योंमें होकर मुख्य सड़क पर आ गये और यह नारा लगाने लगे: 'जो सामने आये, सिर उतार लो।' ड्यूटी पर खड़े मजिस्ट्रेटने

जुलूसवालोंको रोका, उन्हें गैर-कानूनी समूह घोषित कर दिया और उनसे बिखर जानेको कहा। बिखरनेके बजाय वे हिंसक बन गये और बेलचोंसे पुलिसके जवानों पर हमला करने रगे। पुलिसने लाठीचार्ज किया, जिस पर एक खाकसारने पिस्तौलसे गोली चला दी। दो सिपाही घायल होकर गिर पड़े। बाकीके सिपाहियोंको भी घेर कर दबा लिया गया। सजिस्ट्रेटने स्थितिको गंभीर समझकर सशस्त्र पुलिसको बुला लिया और उसे गोली चलानेका हुक्म दिया। कुल मिलाकर १३ बार गोली चलाई गई, तब कहीं खाकसारोंके हमले बन्द हुए और वे बिखर गये। घायल खाकसारों और पुलिसवालोंको अस्पताल भेज दिया गया। एक खाकसार घटना-स्थल पर मारा गया और दूसरे १२ खाकसार घायल हुए। इनमें से ४ बादमें मर गये । एक सहायक पुलिस-सुपरिस्टेन्डेटट और ८ सिपाही खाकसारोंके हाथों घायल हुए। २ पिस्तौलकी गोलियोंसे घायल हुए थे। बिहारके मुख्यमंत्रीने गांधीजीको यह रिपोर्ट दी: "इन तथ्योंसे स्पष्ट हो जायगा कि गोली तभी चलाई गई जब नितान्त आवश्यक हो गया और दोनों तरफके हताहतोंकी संख्यासे यह सिद्ध हो जायगा कि पुलिसके सिपाहियोंकी जान बचानेके लिए अल्पतम आवश्यक बल-प्रयोग किया गया।" [श्रीकृष्ण सिनहाका पत्र गांधीजीको, १३/१५ जुलाई १९४७]

इस घटनाके खाकसारों द्वारा किये गये वर्णनमें दूसरी बातोंके अलावा ये बातें भी थीं: "अब यह निश्चित हो गया है कि बिहार मंत्रि-मंडलको आपके हस्तक्षेपके कारण बिहारके निराश्रितोंको प्रति परिवार १५०० रुपये देनेकी मांग मजबूरन् स्वीकार करनी पड़ी, इसलिए उसने अल्लामा मशरिकीके पटना छोड़नेके बाद फौरन् खाकसारोंसे बदला लिया। . . . मैं बेगुनाह खाकसारोंके इस कत्लेआमके लिए कांग्रेसको जिम्मेदार समझता हूं। . . . मैं माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरूसे मिला। . . . पंडितजीने मामले पर इकतरफा विचार करके हमें निराश कर दिया। मैं उनसे फिर मिल रहा हूं। मैं पंडितजीको यह समझानेकी कोशिश करूंगा . . . कि बिहार सरकारकी कार्रवाई (किस प्रकार) निर्दयता और घमंडमें मानव-कल्पनासे भी परे है। . . . मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप इस मामलेको तुरन्त निबटाइये। हमारी मांगें ये हैं: (१) प्रत्येक खाकसार शहीदके लिए २० हजार रुपये; (२) बेगुनाह खाकसार कैदियोंकी बिना शर्त रिहाई और जब्त की गई सम्पत्तिकी वापसी; (३) बिहारके मुसलमान निराश्रितोंका महात्माजी और

खाकसार सन्धिवार्ता समितिके बीच हुए समझौतेके अनुसार पुनर्वास और साथ ही यह आश्वासन कि भविष्यमें ऐसी निर्दयता और घमंडके काम फिर नहीं किये जायंगे।" [नवाब मोहम्मद हुसेन खानका पत्र गांधीजीको, २ जुलाई १९४७]

पत्रकी ध्वनिमें धमकी होने पर भी और गांधीजीकी जानकारीमें उसकी कई बातें झूठी होनेके बावजूद उन्होंने उसे बिहारके मुख्यमंत्रीके पास भेज दिया । खाकसारोंको उन्होंने लिखा:

> क्या मैं यह आशा छोड़ दूं कि जब भी संभव हो आप अंग्रेजीके बजाय उर्दू भाषाका इस्तेमाल करेंगे ? आपका यह पत्र इसका एक उदाहरण है। उस हालतमें आप शायद वह अतिशयोक्ति न करते जो आपके हाथसे हो गई है।
>
> अवश्य ही बिहार सरकार पर आपकी मांग स्वीकार करनेके बारेमें कोई जबरदस्ती नहीं थी, न जनताके किसी सदस्यकी ओरसे अपनी सरकार पर कोई मांग हो सकती थी। बिहारके निराश्रितोंको १५०० रुपया प्रति परिवार देनेका आपका प्रस्ताव भी माना नहीं गया था। यह तो उन बातोंके सम्बन्धमें, जिन्हें आप तथ्य कहते हैं और जिन्हें मैं जानता हूं। यद्यपि मैं अपनी जानकारीके आधार पर नहीं कह सकता, फिर भी मुझे पूरा यकीन है कि गत १० जूनको जो कुछ हुआ उसके और निराश्रितोंकी पुनर्वास-योजनाके बीच कोई सम्बन्ध नहीं था।
>
> जब हम मिले थे तब मैंने आपसे यह भी कहा था कि आपके प्रस्तावोंकी चर्चामें पंडित नेहरूको बीचमें नहीं लाना चाहिये। मेरी समझमें नहीं आता कि केन्द्रीय सरकारके सदस्यकी हैसियतसे वे इस सम्बन्धमें कैसे हस्तक्षेप कर सकते हैं।
>
> इसके अलावा, क्या आपका यह वक्तव्य अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि बिहार सरकारकी कार्रवाई 'निर्दयता और घमंडमें मानव-कल्पनासे भी परे है?' मेरा कहना यह है कि इस तरहकी भाषा और विधान, जिनके पक्षमें कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता, किसी शांति-पूर्ण उद्देश्यको प्राप्त करनेका सही उपाय नहीं है। . . . फिर भी . . . मैं (आपका पत्र) बिहारके मुख्यमंत्रीको भेज रहा हूं । मैं देखता हूं कि आपने कृपा करके

अपने पत्रकी एक अतिरिक्त प्रति भी मेरे पास भेजी है। [गांधीजीका पत्र नवाब मोहम्मद हुसेन खानको, २ जुलाई १९४७]

खाकसारोंका मामला उनके अपने झूठके कारण बिगड़ गया और जब खाकसार नेताने आन्दोलनको बंद कर दिया तब बहुतसे खाकसार जेलोंमें थे। बादमें जब उन्होंने प्रान्त छोड़ कर चले जानेकी तैयारी दिखाई तब सरकारने उन्हें रिहा कर दिया।

२

मार्च १९४७ के पहले सप्ताहमें जब गांधीजी बिहार पहुंचे तब उन्होंने देखा कि सरकारके सामने हजारों मानव-प्राणियोंके पुनर्वासका भगीरथ कार्य पड़ा है। ये लोग सदियोंसे जिस भूमि पर रहे थे और बढ़े थे, उस भूमिसे उनकी जड़ें उखड़ गई थीं। घटनाओंके भयंकर आघातने लोगोंके मनमें ऐसी ग्रन्थियां पैदा कर दी थीं, जिनके कारण समस्याका सही हल निकालना लगभग असंभव हो गया था। मुस्लिम लीगकी अड़ंगेबाजीसे निराश्रितोंके पुनर्वासका काम रुका हुआ था। नतीजा यह हुआ कि सरकारके सामने लगभग ५२ हजार आदमियोंके भोजन-वस्त्रका प्रश्न खड़ा हो गया, जिसका कहीं अन्त ही नजर नहीं आता था।

जो सप्ताह गांधीजीके लिए बिहारमें लगभग अन्तिम सप्ताह सिद्ध होनेवाला था (मई १९४७ का तीसरा सप्ताह), उसमें गांधीजीने पुनर्वासकी उस योजनाको अन्तिम रूप दिया जो सरकारने उनकी सलाहसे तैयार की थी। नोआखालीमें भी उन्होंने ऐसी ही परिस्थितिका सामना किया था। उनकी योजनाका आधार था मनुष्यकी मूलभूत अच्छाईमें अटल श्रद्धा । मानव-हृदयमें छिपे हुए इस अच्छाईके भंडारको ही वे जाग्रत करना चाहते थे। इसके लिए वे अन्याय करनेवालोंके हृदयमें सच्चा पश्चात्ताप और अन्यायके शिकार बने हुए लोगोंके दिलोंमें साहस और क्षमाशीलता पैदा कर रहे थे। इसमें आवश्यकता इस बातकी थी कि वे अपनी प्रामाणिकताकी दोनों पक्षोंको प्रतीति करायें।

नोआखालीके हिन्दुओंकी गांधीजीमें श्रद्धा थी, लेकिन अधिकतर मुसलमानोंका रवैया उनके प्रति विरोधी था। जीवनभर सेवा करनेके बावजूद वे मुसलमानोंको अपनी सचाईका

विश्वास नहीं करा सके, इसका कारण वे अपनी ही किसी त्रुटिको समझते थे। उनका तर्क यह था: इसका उपाय अधिक आत्मशुद्धि ही है। इसके लिए मुझे ईश्वरकी कृपा चाहिये। उस अग्नि-परीक्षाके अवसर पर उन्हें अपने आपको ईश्वरकी दया पर छोड़ देनेकी इतनी प्रबल आंतरिक प्रेरणा हुई कि अपने सारे पुराने साथियोंको अलग अलग गांवोंमें भेजकर वे दंगोंमें बरबाद हुए प्रदेशके गांवोंकी पैदल-यात्रा करनेके लिए निकल पड़े। इसके लिए उन्होंने समयकी कोई मर्यादा नहीं रखी। जब तक दोनों कौमोंके बीच फिरसे हार्दिक एकता स्थापित न हो जाय तब तक उनकी यह यात्रा चलनेवाली थी। जब वे दंगोंके शिकार बननेके कारण बरबाद हो चुके गांवों, अंधेरे गहरे जंगलों और उन लोगोंके बीच होकर नंगे पैरों पैदल आगे बढ़ते थे—जिन्हें सिखाया गया था कि गांधी उनका सबसे कट्टर दुश्मन है—तब मुसलमानोंको उन्हें नजदीकसे देखनेका और खुद ही इस बातका फैसला करतेका मौका मिलता था कि गांधी उनका दुश्मन है या दोस्त। अधिकाधिक संख्यामें मुसलमान उनकी प्रार्थना-सभामें आते थे। गांधीजी उन्हें इस्लामकी उदात्त शिक्षाकी याद दिलाते थे और यह बताते थे कि उनके बीच बसे हुए अल्पसंख्यकोंके साथ पशुओंका-सा व्यवहार करके किस प्रकार उन्होंने अपने धर्म पर कायरतापूर्ण प्रहार किया है और स्वयं अपनी अधोगति कर ली है। गांधीजीकी शान्तियात्राके साथ रामधुन और भजन गाये जाते थे, जो उपद्रव-पीड़ित लोगोंके लिए "दयाकी वर्षा" का रूप ले लेते थे। उन्हें अपने भीतर एक नये साहस और नई आशाका संचार अनुभव होता था, जिसने निस्तेज और निःसत्व अस्तित्वसे उनका उद्धार कर दिया था।

बिहारमें चित्र इससे उल्टा था। वहां मुसलमान अत्याचारके शिकार हुए थे। उन्हें भी गांधीजीने वही हिम्मत न हारने और ईश्वर पर विश्वास रखनेका संदेश दिया, जो उन्होंने नोआखालीमें उपद्रवोंके शिकार बने हुए हिन्दुओंको दिया था। परन्तु यहां उन्हें अभी मुसलमानोंको अपनी दोस्तीका असंदिग्ध विश्वास दिलाना बाकी था। उन्हें बहुत ही संभल संभल कर चलना पड़ता था। नोआखालीमें कोई दंगेका शिकार रोता हुआ उनके पास आता था, तो वे अशोभनीय शोक करनेके लिए उसे उलाहना देते थे। परन्तु बिहारमें ऐसी बातको गलतीसे हृदयहीनता समझा जा सकता था। मुसलमानोंसे जो थोड़ीसी बातें वे कहते थे, उन्हें भी कभी

कभी गलत समझ लिया जाता था और उन पर रोष पैदा होता था। परन्तु गांधीजी जानते थे कि अल्पसंख्यकोंकी सुरक्षा हिन्दुओं और मुसलमानोंमें पुनः हार्दिक एकता स्थापित होनेमें ही है— न कि हथियारोंमें, मुस्लिम पुलिसमें या "अलग सधन बस्तियोंमें" । इन इलाजोंको वे निराशासे पैदा हुए इलाज मानते थे, जिनसे रोग बढ़ ही सकता था। फिर भी भयग्रस्त मुसलमानोंकी भावनाओंके साथ हमदर्दी होनेके कारण उन्होंने कहा, जो मुसलमान जाना चाहते हैं उन्हें जहां कहीं सुरक्षा मालूम हो वहां जानेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। मेरा सुझाव है कि सरकारको उनकी जायदाद खरीद लेनी चाहिये और जिन घरोंको नुकसान पहुंचा है उनकी मरम्मत करा देनी चाहिये। आगे-पीछे जब यहांकी परिस्थिति स्थिर हो जायगी तब मुसलमान लौट आयेंगे। अगर वे नहीं लौटे तो उनके मकान राज्यकी सम्पत्ति बन जायेंगे। परन्तु मुसलमानों पर तो उस समय अलग सधन बस्तियों (पॉकिट्स) का भूत सवार था। सरकारको कोई निश्चय करनेमें समय लगा। अन्तमें जो मुसलमान अर्जी दें उन्हींके मकानोंको फिरसे बनानेकी नीति अपनाई गई। निर्माणका काम जितना सोचा गया था उससे ज्यादा धीमा सिद्ध हुआ। नतीजा यह हुआ कि वर्षाऋतु आ गई और मिट्टीकी दीवारें—जो ज्यादातर खड़ी रही थीं—बारिश में गिर पड़ीं। इसके फलस्वरूप अधिकांश घर पूरेके पूरे फिरसे बनाने पड़े और इसमें सरकारका बहुत ज्यादा खर्च हुआ। अगर सरकार गांधीजीकी सलाह पर चलती और मुसलमानोंकी अर्जियोंकी प्रतीक्षा किये बिना सारे मकानोंकी मरम्मत शुरू करा देती, तो बहुत कम खर्च होता।

सरकार उन मुसलमानोंकी जायदाद खरीद कर उनकी सहायता करनेको तैयार थी, जो अपने गांव छोड़कर जाना चाहते थे। परन्तु वह किसी जगह हिन्दुओंको मुसलमानोंके लिए अपनी जमीनें और घर खाली करनके लिए विवश नहीं कर सकती थी। उससे तो स्थायी संघर्षके बीज बो दिये जाते । स्थिति अत्यन्त नाजुक थी।

बिहारके हिन्दुओंके सम्बन्धमें गांधीजीको बहुत बड़ी सुविधा थी। कई स्थानोंके हिन्दू उनके सुझावके अनुसार शरणार्थी-शिविरोंमें गये, मुसलमानोंको वापस ले आये और अपने ही खर्च पर उन्हें खिलाते रहे। मुस्लिम कष्ट-निवारण कोषमें दान देनेके लिए हिन्दुओंकी भीड़ एक-दूसरेसे होड़ लगाती थी। गांवोंमें वातावरण स्पष्ट रूपमें सुधर रहा था, परन्तु गांधीजी आसानीसे

संतुष्ट होनेवाले नहीं थे। स्थितिमें आत्म-संतोषके लिए कोई अवकाश नहीं था। १६ मई, १९४७ को उन्होंने एक ईसाई पादरीको लिखा: "काम कठिन है। परन्तु श्रद्धा यदि सच्ची श्रद्धा है, तो उसे कठिनाईके पहाड़ोंको लांधना होगा। हमें ऐसी श्रद्धा बढ़ानेका प्रयत्न करना होगा।"

घरोंके निर्माणके बारेमें गांधीजीने यह सिद्धान्त तय कर दिया कि मालिकको ही घर बनाने या दूसरेसे बनवानेके लिए प्रोत्साहन दिया जाय। इससे खर्चमें किफायत होगी, भ्रष्टाचार रुकेगा और लोगोंमें स्वावलम्बनकी वृत्ति पैदा होगी। यदि निराश्रित लोग अपने आप यह काम करनेको तैयार न हों, तो ठेकेदारोंको काम सौंप दिया जाय। ठेकेदारोंको उचित मुनाफा मिले, इसमें किसीको आपत्ति नहीं होनी चाहिये । किन्तु यदि वे दूसरोंकी विपत्तिका अनुचित लाभ उठाने लगें, तो सरकारको हस्तक्षेप करके लोकप्रिय अथवा निजी संस्थाओंको यह काम सौंप देना चाहिये।

निराश्रितोंकी यह मांग थी कि उनकी पूरी क्षतिपूर्ति की जाय । गांधीजीने उनसे वही बात कही जो उन्होंने नोआखालीके हिन्दुओंसे कही थी—अर्थात् कोई सरकार सामूहिक पागलपनके दिनोंमें हुए नुकसानका सारा मुआवजा नहीं दे सकती। सरकार इतनी ही जिम्मेदारी ले सकती है कि निराश्रितोंको उनके पैरों पर खड़ा कर दे। जब गांधीजीके एक सचिव, जिन्हें वे अपना काम करनेके लिए बिहारमें पीछे छोड़ गये थे, जनवरी १९४८ के गांधीजीके अन्तिम उपवाससे कुछ दिन पहले उनसे दिल्लीमें मिले, तो गांधीजीने उनसे कहा, "तुम पहले काम शुरू करो और कच्चे छप्परके मकान उनके लिए बनवा दो।" इसी प्रकार नोआखालीमें भी उन्होंने सुझाया था कि बांस, मिट्टी और फूसकी सादी झोंपड़ियां बनवा दी जायं। कष्ट-निवारण सहायताकी रकमके बारेमें उन्होंने तय कर दिया कि असाधारण परिस्थितियोंमें एक हजार रुपये तककी सहायता मकान बनानेके लिए दी जा सकती है, परन्तु आम तौर पर ५०० रुपये ही देने चाहिये। नोआखालीके लिए ये रकमें क्रमशः ५०० और २५० रुपये तय की गई थीं।

परन्तु मकानोंको फिरसे बनानेमें कुछ समय लगना तो स्वाभाविक था। इस अरसेमें लगभग ५० हजार शरणार्थियोंका गुजारा कैसे हो ? दक्षिण अफ्रीकासे ही गांधीजी बड़े बड़े जन-

समूहोंसे काम लेनेकी कलामें प्रवीण हो गये थे। उनके सिद्धान्त थे: स्वाश्रय, समानता तथा सब प्रकारके श्रमकी प्रतिष्ठा—चाहे वह श्रम शारीरिक हो या बौद्धिक—और कामके बदलेमें भोजन। दयाकी सारी दलीलोंको वे "भावुकता" कहकर और सबके लिए उपयुक्त काम तलाश न कर सकनेकी दलीलको "सूझबूझकी कमी" बता कर अस्वीकार करते थे। लोगोंका नैतिक साहस टिकाये रखना जरूरी था। उनका कहना था कि अनुकूल कामकी कोई कमी नहीं है । तालाब साफ करने हैं, सड़कें बनानी हैं और उनकी मरम्मत करनी है और कारकुनीका काम भी लोगोंको दिया जा सकता है। यदि निराश्रित-शिविरोंको स्वावलम्बनके सिद्धान्त पर चलाया जाय, तो उनके चलानेमें भी निराश्रितोंको काफी काम मिल सकता है। झाड़ू लगाना, पाखाने साफ करना, खाना बनाना वगैरा सब कुछ निराश्रितोंको अपने हाथसे करना चाहिये। कोई काम नीचा या हेय न समझा जाय । शरीर-श्रम मेरे लिए जीवन-सिद्धान्त जैसा है। यदि सब लोग संगठित रूपसे उस दिशामें प्रयत्न करें, तो शिविरोंकी व्यवस्था करना सरल हो जाय और शिविरोंसे सामूहिक जीवनकी बढ़िया तालीम मिले । कार्य-क्षमताकी दृष्टिसे फौजी छावनी गांधीजीका आदर्श थी।

निराश्रितों और उन लोगोंके सिवा, जो अपने असली घरोंको लौट जाना चाहते थे और इसलिए जिनकी समस्या केवल उनके मकानोंको फिरसे बना देनेकी थी, ऐसे लोग भी थे, जो अपने असली घरोंको वापस नहीं जाना चाहते थे। वे किसी दूसरे गांवमें चले जानेकी इच्छा रखते थे। उनकी समस्याको रिलीफ कमिश्नर श्री हॉल्टनने एक नोटमें इस तरह रखा था: "यह एक कठिन समस्या है, जो उपद्रव-ग्रस्त भागोंमें सभी जगह पैदा हो रही है। यह राजनीतिक चालों अथवा 'अलग सधन बस्तीकी कल्पना' से ही पैदा नहीं हुई है। यह अधिकांश निराश्रितोंके देहातमें वापस नहीं जा पानेका एक बड़ा कारण है। असलमें बहुधा एक छोटेसे गांवके २०-३० परिवारोंका ही मामला होता है, . . . जो किसी ऐसे गांवमें चले जाना चाहते हैं जहां करीब १०० परिवारोंकी आबादी होती है। वे जिसे अधिक सुरक्षा समझते हैं उसके साथ साथ वे इस तरकीबसे अधिक सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा-संबंधी सुविधाएं भी चाहते हैं। इस प्रकार उनके एकत्र होनेको शायद ही "अलग सधन बस्ती" कहा जा सकता है, अथवा ऐसा शायद ही कहा जा सके कि

उनके इस प्रकार एकत्र होनेसे कौमी सद्भावनाके लिए या दो कौमोंके बीचके भ्रातृभावके लिए कोई खतरा पैदा हो सकता है।" [श्री हॉल्टनका नोट, २१ अप्रेल १९४७]

दूसरी ओर, श्री हॉल्टनको यह डर था कि यदि सरकार यह घोषणा करे कि जो निराश्रित अपने असल मकानमें जानेसे इनकार करेगा, उसे उसके घर और जमीनकी नकद कीमत चुका दी जायगी, तो इससे पैसे लेकर दूसरे प्रान्तमें जानेका प्रलोभन पैदा होगा और "कुछ राजनीतिक लोग निस्सन्देह सक्रिय रूपमें इसका दुरुपयोग करेंगे।" "इस समयकी राजनीतिक अनिश्चितता और सामान्य घबराहटमें यह वृत्ति और भी अधिक रहेगी । यदि यह आन्दोलन एक बार शुरू हो गया, तो वह बढ़ता ही चला जायेगा।" श्री हॉल्टनने आगे कहा, यदि मेरी सुझाई हुई योजनाको अपनाया जाय, तो इस बातकी काफी संभावना है कि लोगोंको फिरसे गांवोंमें ले जानेके काममें, "अत्यन्त उग्र व्यक्तियोंके सिवा", लगभग सारे मुस्लिम नेताओंका सहयोग हमें मिल जायगा। "इस समय तो कांग्रेसी मुसलमानोंका और जो लोग सरकारको मदद देनेके लिए बहुत उत्सुक हैं उनका भी पूरा समर्थन हमें नहीं मिल रहा है । कारण यह है कि इस समस्याके बारेमें अनिश्चितता फैली हुई है। वे सब यह मानते हैं कि मेरे बताये हुए ढंग पर कुछ न कुछ रियायत देना जरूरी है।"

श्री हॉल्टनके सुझावों पर विचार करनेके बाद गांधीजीने अपना निर्णय इस प्रकार बताया:

> मेरी राय बिलकुल स्पष्ट है कि उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रोंके उन मुसलमानोंको, जो डरके कारण अथवा अपने मृत संबंधियोंकी दुःखद स्मृतियोंके कारण अपने घरोंको लौटना नहीं चाहते, यह अधिकार होना चाहिये कि वे बिहारमें या बिहारके बाहर भी जहां चाहें जाकर बसें; उन्हें उनकी जमीनों और मकानोंकी हानिका मुआवजा दे दिया जाय और जमीनें तथा मकान राज्यके हो जायं । मुआवजा कीमत आंकनेवाले लोग चालू भावसे जमीनकी जो कीमत तय करें उस कीमतके रूपमें तथा दंगाइयों द्वारा नष्ठ किये गये मकानोंके बदलेमें दिये जानेवाले रहने लायक मकानोंके रूपमें होगा। मकानोंकी कीमत शुरूमें १ हजार रुपयेसे ज्यादा नहीं होनी चाहिये । चूंकि ऊपरकी योजना केवल दंगोंके शिकार

बने हुए लोगोंके हितकी दृष्टिसे ही सोची गई है, इसलिए यह मान लिया गया है कि राज्यने पर्याप्त पुलिस-संरक्षणकी व्यवस्था करके तथा उस स्थानको मशहूर गुंडोंसे मुक्त करके जो करुण भयंकर घटना हो चुकी है उसकी पुनरावृत्तिके सारे भयोंको दूर करनेका पहले ही संपूर्ण प्रयत्न कर लिया है। [गांधीजीका नोट, २८ अप्रैल १९४७]

गांधीजीने पुनर्वास-कार्यके सरकारी और गैर-सरकारी दोनों तंत्रोंको व्यवस्थित करनेमें भी मदद दी। विकास-मंत्री डॉ. महमूदने दंगोंके दौरान मुसलमानों पर बहुत अच्छी छाप डाली थी और उनका विश्वास प्राप्त कर लिया था । मौलाना आजाद और डॉ. राजेन्द्रप्रसादने बिहारके मुख्यमंत्री को यह सलाह दी थी कि कष्ट-निवारण और पुनर्वासका काम वे डॉ. महमूदको सौंप दें । परन्तु किन्हीं कारणोंसे बिहारका मंत्रि-मंडल पुनर्वासका काम पूरी तरह उन्हींको सौंपनेके लिए तैयार नहीं था । मुस्लिम लीगने इसे बिहार मंत्रि-मंडलकी मुस्लिम विरोधी भावनाका प्रमाण बताकर इसका दुरुपयोग किया। डॉ. महमूदको इस सारी बातसे बड़ा दुःख हो रहा था। इसके बाद वे मंत्रि-मंडलकी बैठकोंमें बहुत ही कम जाते थे और पुनर्वासके कार्यसे बराबर दूर रहते थे । अन्तमें बिहार मंत्रि-मंडलके एकमात्र दूसरे मुस्लिम मंत्री अब्दुल कयूम अंसारीको पुनर्वासका सारा काम सौंपा गया। गांधीजीने डॉ. महमूद और दूसरे मंत्रियोंके बीचकी इस दुर्भाग्यपूर्ण खाईको पाटनेकी कोशिश की और बादमें दोनों मुसलमान मंत्रियोंको मिलानेकी भी उन्होंने कोशिश की । परन्तु उनके प्रयत्न सफल हों इससे पहले ही घटनाओंका ज्वार उन्हें किसी और क्षेत्रमें ले गया, जहां वे दूसरे जरूरी कामों और कर्तव्योंमें फंस गये । वहां उन्हें थोड़ी भी फुरसत नहीं मिली और बिहारका प्रश्न सारे भारतके अधिक व्यापक प्रश्नमें विलीन हो गया।

नोआखालीकी तरह बिहारमें भी गांधीजीने दंगोंसे संबंधित लोगोंके नेताओं और विख्यात अपराधियोंके प्रति सरकार और जनताके रवैयेको उनकी सचाईकी कसौटी बनाया। उस पर न केवल पुनर्वासकी सफलताका आधार था, परन्तु बहुत-कुछ भारतके भविष्यका भी आधार था। अपराधियोंको गांधीजीकी यह सालाह थी कि उन्हें सच्चा पश्चात्ताप करना चाहिये और पुलिसके सामने आत्म-समर्पण कर देना चाहिये। उन्होंने कहा, आपने जो कुछ किया है उसे खुले तौर पर स्वीकार कर लेना और परिणामोंका सामना करना आपके लिए बहादुरीकी बात होगी । राज्यको

यदि अपने अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करना है, तो उसे हर अपराधीका पता लगाना चाहिये और इस काममें सारी वफादार प्रजाको राज्यके साथ सहयोग करना चाहिये। यदि किसी क्षेत्रकी जनता अपराधियोंको शरण देती है, तो राज्यके पास उस सारे क्षेत्र पर दंड-कर लगा देनेके सिवा कोई मार्ग नहीं रहेगा। जब गांधीजीसे यह पूछा गया कि दोनों कौमोंके राजनीतिक दलोंके अनुरोध पर सारे अपराधियोंको माफी देना वांछनीय होगा या नहीं, तो उन्होंने उत्तर दिया: सबको माफी देनेका कोई प्रश्न नहीं उठ सकता। किन्तु यदि संबंधित पक्ष किसी मुकदमेको वापस लेने पर सहमत हो जायं, तो सरकार उन्हें ऐसा करनेकी छूट दे सकती है। ऐसी स्थितिमें भी हत्या और स्त्रियों पर अत्याचार करनेवाले लोगोंको क्षमा नहीं किया जा सकता। उन्हें खुली अदालतमें आकर अपना अपराध स्वीकार करना होगा और ऐसा उन्हें सजासे बचनेके लिए नहीं परन्तु परिणाम भुगतनेकी तैयारीकी निशानीके रूपमें करना होगा । यदि न्यायालय ऐसा समझे कि अपराधीका पश्चात्ताप सच्चा है और मुद्दई पिछली बातोंको भूल जाना चाहे, तो वह दयाका मामला होगा। यहां भी गांधीजीके विचारोंका आधार मानव-स्वभावमें उनके विश्वास पर था। उनका कहना था कि लोगोंमें भलाई, सूझ-बूझ और शक्तिका जो जबरदस्त भंडार छिपा हुआ है, उसके लिए मार्ग खोल देना चाहिये। तभी एक ऐसी समस्याका हल निकल सकता है, जो लगभग हल न होनेवाली दिखाई देती है।

पुनर्वास-कार्यका स्वरूप ही कुछ ऐसा था कि वह शक्तिशाली गैर-सरकारी समर्थनसे ही निबट सकता था। जनवरी १९४७ के शुरूमें पटनामें सब जिलोंके कार्यकर्ताओंकी जो सभा हुई थी, उसमें यह निश्चय हुआ था कि प्रान्तमें शान्ति बनाये रखनेके लिए एक शान्ति-समिति रची जाय। उस सभामें गांधीजीके नोआखाली शिविरके ढंग पर काम शुरू करनेके लिए केन्द्रोंका एक जाल संगठित करनेका भी फैसला किया गया। परन्तु २-३ केन्द्रोंसे अधिक नहीं खोले जा सके। २९ अप्रैल, १९४७ को गांधीजीकी उपस्थितिमें शान्ति-समितिकी जो बैठक हुई, उसमें इस असफलताका कारण सदस्योंने यह बताया कि काम करनेके लिए योग्य कार्यकर्ता नहीं मिलते। गांधीजीने उनसे कहा, असली कारण स्वयं आपकी ही कोई त्रुटि होगी। उसे आपको दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिये । लोकप्रिय सरकारके "आंख-कान" होनेके कारण आपको महत्त्वपूर्ण

भाग अदा करना होगा, क्योंकि यह सरकार विदेशी सरकारकी तरह केवल खुफिया-विभाग पर ही निर्भर नहीं रह सकती। आपको अफसरों पर गहरी निगाह रखनी चाहिये और यदि उनका कोई दुराचरण ध्यानमें आये तो उसकी सूचना अखबारोंको न देकर मंत्रियोंको देनी चाहिये। नोआखालीमें शहीद सुहरावर्दीने गैर-सरकारी संस्थाओंकी रिपोर्टों पर भरोसा नहीं किया और पुलिस अफसरोंकी रिपोर्टों पर दारमदार रखा। उन्हींको वे अपने "आंख-कान" बताते थे। मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूं कि "आंख-कान" के रूपमें पुलिस अन्धी भी थी और बहरी भी थी। पुलिसमें कर्तव्य-पालनकी भावना पैदा करना सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका काम है। मकान जला दिये गये, स्त्रियां भगाई गई और फिर भी पुलिस कहती है कि इसके कोई प्रमाण नहीं हैं ! ऐसी स्थितिमें बेचारे मुसलमान इसका प्रमाण कैसे दे सकते हैं? इसलिए मेरा सुझाव है कि जहां हत्या हुई हो और हत्यारेका पता न चले, वहां संबंधित अधिकारीको बरखास्त कर देना चाहिये। शान्ति-समितिके कार्यकर्ताओंको भी चाहिये कि अपराधियोंका पता लगानेमें वे मदद करें और पुलिसको सूचना दें। यदि वे अपराधियोंको स्वेच्छापूर्वक आत्म-समर्पण करनेके लिए प्रेरित कर सकें, तब तो और भी अच्छा होगा। सरकार यह नहीं कर सकती। वह तो अपराधियोंको पकड़कर उन्हें सजा ही दे सकती है।

दूसरा पेचीदा सवाल यह था कि गैर-सरकारी शान्ति-समिति सरकारसे आर्थिक सहायताकी आशा रख सकती है या नहीं। गांधीजीने कहा, सरकार कुछ निश्चित कामोंके लिए ही रुपया दे सकती है। जहां सरकार मदद न कर सके वहां समितिको निजी फंड पर आधार रखना चाहिये । पुनर्वासके काममें लगे हुए कांग्रेसी कार्यकर्ताओंके लिए मेरा सिद्धान्त यह है कि अगर उन्हें अपनी स्वाधीनता बनाये रखना है और सरकारको सही मार्ग पर चलाना है, तो उन्हें अपने खर्चके पैसेकी आशा सरकारसे नहीं रखनी चाहिये और न सरकारसे कोई वेतन लेना चाहिये। मध्यप्रान्तमें चरखा-संघको भी मैंने यही सलाह दी थी। चरखा-संघ सरकारको तकनीकी सलाह देता था और सरकारके सौंपे हुए कार्यको चलानेके लिए उससे आवश्यक धन लेता था। परन्तु वह अपने लिए कोई पैसा नहीं लेता था। सरकारको सहायता देनेके लिए आप बाहरसे कार्यकर्ताओंको लायें, तो दूसरी बात है। तब तो सरकार उनका खर्च देगी।

सरकारके सम्बन्धमें गैर-सरकारी संस्थाओंका क्या दर्जा होना चाहिये? गांधीजीका मत यह था कि सरकारको किसी भी गैर-सरकारी संस्थाकी, जो सरकारकी नीति पर अमल करे, सहायता स्वीकार करनी चाहिये। उदाहरणके लिए, सरकारको मुस्लिम लीगसे बात करनी चाहिये और अगर वह सरकारकी नीति पर अमल करनेको तैयार हो, तो पुनर्वासका सारा काम—यदि वह करना चाहे—उसे सौंपा जा सकता है। लीग कांग्रेसको अपना शत्रु समझ सकती है; लेकिन कांग्रेसी सरकारका यह काम नहीं कि वह लीगको अपना शत्रु माने। उसे लीगको अपनी तरफ खींचनेकी कोशिश करनी चाहिये। परन्तु यह काम सरकारकी शर्तों पर होना चाहिये, लीगको कोई सरकार-मान्य दर्जा नहीं देना चाहिये। सरकारने लीगको अपनी नीतिसे बांधे बिना निराश्रित-शिविरोंका पूरा नियंत्रण उसे सौंप कर जो भूल की थी, उसे दोहराना नहीं चाहिये। अंतमें अगर सरकारी तंत्रके विरुद्ध कोई शिकायतें हों, तो गैर-सरकारी कार्यकर्ताओं और संस्थाओंको सरकारसे बात कर लेनी चाहिये, परन्तु कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।

गैर-सरकारी कार्यकर्ताओंसे सलाह करनेके बाद पुनर्वास-मंत्री अब्दुल कयूम अंसारीने जल्दी जल्दी काम पूरा करनेकी दृष्टिसे पुनर्वास-कार्यकी व्यापक योजना तैयार की । बरसातका मौसम सिर पर आ रहा था; चौमासा शुरू हो जाने पर तो शिविरोंमें रहना दिनोंदिन कठिन हो जाता। बंगालसे भी निराश्रित लोग लौटने लगे थे और बारिश शुरू होने पर उनका प्रवाह बढ़ने ही वाला था। गांधीजीने मंत्रीके साथ इस योजना पर ध्यानपूर्वक विस्तृत चर्चा की और बादमें मंत्रीके मार्गदशेनके लिए एक टिप्पणीके रूपमें अपने विचार लिख डाले। समान परिस्थितियोंमें पुनर्वासके कार्यमें लगे हुए सभी कार्यकर्ताओंके लिए ये विचार नमूनेका काम दे सकते हैं:

> अगर मैं पुनर्वास-कार्यकी देखरेख करनेवाला मंत्री होऊं, तो पहला काम मैं यह करूंगा कि अपना कर्तव्य स्पष्ट रूपसे निश्चित कर लूं। मंत्रियोंको जहां तक मुझे जरूरत हो कानून और व्यवस्थाका तंत्र मेरे हाथमें सौंपना होगा, ताकि मैं निराश्रितोंकी लूटपाट, आगजनी और हत्यासे पूरी रक्षा कर सकूं। उन्हें निराश्रितोंके लिए अन्न, वस्त्र और मकानोंकी सामग्रीके यातायात तथा उनके भावोंका नियंत्रण भी मेरे हाथमें सौंपना होगा। इस प्रकार अपनी स्थितिको मजबूत बनाकर मैं तुरन्त यह मालूम करूंगा कि जो निराश्रित

लौट आये हैं उनकी संख्या कितनी है, वे कहां हैं और उनके क्या हाल हैं। मैं खुद यह काम करूंगा और उनकी शिकायतोंको जहांकी तहां दूर कर दूंगा।

जो अभी तक नहीं लौटे हैं उनके बारेमें मैं अखबारोंमें सूचनाएं दूंगा और प्रान्तकी भाषामें पर्चे बंटवाऊंगा और उन्हें ठीक ठीक बता दूंगा कि किन शर्तों पर वे लौट सकते हैं। जो लोग नहीं लौटते हैं, उनकी चिन्ता मैं नहीं करूंगा। . . . सरकारका कर्तव्य . . . तभी आरम्भ होता है जब वे लौट आयें। जो लोग लौट आना चाहते हैं उनके या उनकी ओरसे आनेवाले पत्रों पर तुरन्त कार्रवाई करूंगा और लौटनेमें जिन्हें मददकी जरूरत होगी उन्हें निजी व्यक्तियोंसे भी मदद दिलवाऊंगा। जो लोग नहीं आयेंगे उनकी जमीनों और मकानोंको मैं उनकी धरोहर समझूंगा, परन्तु उन्हें यह सूचना दे दूंगा कि दी जानेवाली सूचनामें जो मियाद तय की गई है उसके बीत जाने पर आपके मकान और जमीन राज्यके हो जायंगे और न आनेवालोंके निकट संबंधियों और वे न हों तो प्रान्तके या प्रान्तके किसी हिस्सेके मुसलमानोंके लाभके लिए राज्य जैसा ठीक समझेगा उनका उपयोग करेगा।

इसमें मैं स्थानीय मुस्लिम लीगका सहयोग चाहूंगा और उसकी सिफारिशों पर हर तरहसे उचित विचार करूंगा।

मैं निराश्रितोंको दानमें अन्न नहीं दूंगा, परन्तु यह आशा करूंगा कि जो राशन या दूसरी सहायता उन्हें दी जाय, उसके बदलेमें वे कुछ न कुछ काम—जो कर सकते है—करें। मैं हर प्रकारसे उन्हें यह अनुभव कराऊंगा कि राज्य उन्हें इस तरहसे जो भी सहायता दे सकता है, उसके वे पूरे अधिकारी हैं।

जो लोग सन्देहमें नजरबन्द किये गये हैं उन सब पर मैं अविलंब मुकदमे चलाऊंगा और जो लोग अभी तक सजासे बचे हुए हैं उन्हें गिरफ्तार कराऊंगा। अपराधियोंका पता छूगाकर उन्हें सजा दिलानेमें कोई कोशिश बाकी नहीं रहनी चाहिये।

गांधीजी २४ मई, १९४७ को अंतिम रूपमें बिहारसे चले गये उससे पहले उन्होंने पुनर्वास-कार्यकी सरकारी और गैर-सरकारी व्यवस्थाको केवल अन्तिम रूप देनेमें ही सहायता नहीं की,

बल्कि कार्य करनेकी दिशा भी बता दी। निराश्रितोंको मानसिक दृष्टिसे स्थिर बनानेमें भी अच्छी प्रगति हुई थी। गांधीजीको आशा थी कि दिल्लीसे मुक्त होते ही लौटकर बचा हुआ काम वे पूरा करेंगे। उन्हें विश्वास था कि भारतमें कहीं भी जहरको परिणामकारी रूपमें विफल कर दिया जाय तो उसका असर सर्वत्र फैलेगा, और भारतको अंग-भंगके उस निराशापूर्ण मार्गसे अभी भी बचाया जा सकता है, जिसकी ओर वह न चाहने पर भी धकेला जा रहा है। परन्तु ईश्वरकी इच्छा कुछ और ही थी। गांधीजी बिहारमें जमकर कभी बैठ नहीं सके। उसके बाद तो उनके भाग्यमें अधिकाधिक समय और ध्यान राजधानीमें ही लगाना लिखा था। जो मिशन उन्हें नोआखाली ले गया था और फिर बिहार ले आया था, वही अब उन्हें दिल्ली ले गया। स्थान बदल गया; लड़ाई वही रही।

* * * * *